जगत तरैया भोर की

पहला प्रवचन

दिनांक ११ मार्च, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

हरि भजते लागे नहीं, काल-ज्याल दुख-झाल।
तातें राम संभालिए, दया छोड़ जगजाल।।१।।
जे जन हरि सुमिरन विमुख, तासूं मुखहू न बोल।
रामरूप में जो पडयो तासों अंतर खोल।।२।।
राम नाम के लेव ही, पातक झुरैं अनेक।
रे नर हरि के नाम को, राखो मन में टेक।।३।।
नारायन के नाम बिन, नर नर नर जा चित्त।
दीन भये विललात हैं, माया-बसि न थित्त।।४।।

प्रभु की दिशा में पहला कदम

जब तक न स्वयं ही तार सजें कुछ गाने को
कुछ नई तान सुरताल नया बन जाने को
छेड़े कोई भी लाख बार पर तारों पर
झनकार नहीं कोई होगी
जब तक न मधु पी करके दीवाना हो
मन में रह-रह कुछ उठता नहीं तराना हो
छेड़े कोई भी लाख बार पर भौंरों में
गुंजार नहीं कोई होगी
जब तक न स्वयं ही बेचैनी से उठे जाग
जब तक न स्वयं कुछ करने की जग जाए आग
उकसाए कोई लाख बार मुर्दा दिल में
ललकार नहीं कोई होगी।
जब तक न स्वयं ही तार सजें कुछ गाने को
कुछ नई तान सुरताल नया बन जाने को
छेड़े कोई भी लाख बार पर तारों पर
झनकार नहीं कोई होगी।

संत का अर्थ है, प्रभु ने जिसके तार छेड़े। संतत्व का अर्थ है, जिसकी वीणा अब सूनी नहीं; जिस पर प्रभु की अंगुलियां पड़ीं। संत का अर्थ है, जिस गीत को गाने को पैदा हुआ था व्यक्ति, वह गीत फूट पड़ा; जिस सुगंध को ले कर आया था फूल, वह सुगंध हवाओं में

उड़ चली। संतत्व का अर्थ है, हो गए तुम वही जो तुम्हारी नियति थी। उस नियति की पूर्णता में परम आनंद है स्वभावतः।

बीज जब तक बीज है तब तक दुखी और पीड़ित है। बीज होने में ही दुख है। बीज होने का अर्थ है, कुछ होना है और अभी तक हो नहीं पाए। बीज होने का अर्थ है, खिलना है और खिले नहीं; फैलना है और फैले नहीं; होना है और अभी हुए नहीं। बीज का अर्थ है, अभी प्रतीक्षा जारी है; अभी राह लंबी है; मंजिल आई नहीं।

संतत्व का अर्थ है, मनुष्य वही हो गया जो होने को था; बीज नहीं है, अब फूल है; खिल गया सहस्रदल कमल; फूल जैसा आनंदित मालूम पड़ता है। आनंद क्या है फूल का? अब होने को कुछ और बाकी न रहा। अब जाने को कोई जगह न रही। यात्रा पूरी हुई, विराम आ गया। अब शांत होने की संभावना है। क्योंकि जब तक कहीं जाना है, अशांति रहेगी। जब तक कुछ होना है, योजना करनी होगी। और जब तक कुछ होना है तब तक सफलता-असफलता पीछा करेगी। पता नहीं हो पाए, न हो पाए! शंका-कुशंकाएं घेरेंगी...हजार बातें। चित्त डावांडोल रहेगा। चित्त थिर न हो पाएगा। कौन सी राह चुनें! कहीं भूल तो न हो जाएगी! जो राह चुन रहे हैं वह कहीं ऐसा तो न हो कि राह ही सिद्ध न हो! जो कर रहे हैं, उससे नियति का मेल बैठेगा कि नहीं बैठेगा!...तो संदेह जीता है और संदेह भीतर जलता है और संदेह विषाद से भरता है।

फिर स्वभावतः राह की पीड़ाएं हैं, राह की अड़चनें हैं। सबसे बड़ी अड़चन तो यह है कि बीज को यह भरोसा नहीं आता कि फूल हो सकेगा। आए भी कैसे! कभी हुआ नहीं। जो नहीं हुए उस पर भरोसा कैसे आए? दूसरे बीज हो गए हैं, इससे भी तो यह सिद्ध नहीं होता कि मैं हो जाऊंगा। दूसरे बीज दूसरे थे, भिन्न रहे होंगे, यह मेरा बीज कंकड़ भी तो हो सकता है, इसके भीतर कुछ भी न हो!

और किसी बीज को अपने भविष्य पर भरोसा आने का उपाय नहीं है। भरोसा तो तभी आता है जब अनुभव हो। तो हजार शंकाएं-कुशंकाएं पगों को घेरती हैं। भविष्य है भी? जिसकी तरफ हम जा रहे हैं, उसका कोई अस्तित्व है? जो हम होना चाह रहे हैं, कहीं मन का भुलावा तो नहीं? स्वप्न तो नहीं देखा कोई? कोई नया भ्रमजाल तो, कोई नई माया तो खड़ी नहीं की है? ये सारी बातें पीड़ा देती हैं; कांटे की तरह चुभती हैं।

फूल का आनंद यही है कि अब कहीं जाना नहीं; भविष्य समाप्त हुआ। और जिस क्षण भविष्य समाप्त होता है उसी क्षण अतीत से भी नाता टूट जाता है। जब कुछ होना नहीं है तो याद कौन रखे अतीत से भी नाता टूट जाता है। जब कुछ होना नहीं है तो याद कौन रखे अतीत की? हम याद इसीलिए रखते हैं कि कुछ होना है। तो शायद अतीत का अनुभव काम पड़ जाए। जो पीछे जाना है उसको हम संगृहीत करते हैं, ताकि आगे की यात्रा पर उसका उपयोग हो सके। वह साधन बन जाए। जब कहीं जाना नहीं, जब कुछ होना नहीं, जब भविष्य समाप्त हो गया, उसी क्षण हम अतीत से भी मुक्त हो जाते हैं। अब स्मृति का बोझ

भी ढोने की कोई जरूरत नहीं है। परीक्षा समाप्त ही हो गई। अब कोई परीक्षा बची नहीं। तो न स्मृति रह जाती है, न कल्पना का जाल रह जाता है। जो ऊर्जा अतीत और भविष्य में फैल-फैल कर बिखर जाती थी, सारी संगृहीत हो जाती है वर्तमान के छोटे से क्षण में। उस त्वरा और तीव्रता में परम आनंद है। उस घड़ी में, जिसको सच्चिदानंद कहा है, भक्त जिसको भगवान कहते हैं, ज्ञानी जिसे सत्य कहते हैं, मोक्ष कहते हैं, वह घटित होता है।

संतत्व का अर्थ है, जिस व्यक्ति के जीवन का फूल खिल गया। और जब फूल खिलेगा तो सुगंध भी बहेगी ही। और जब फूल खिलेगा तो उत्सव भी होगा ही। इसलिए सभी संतों ने अपने उत्सव को काव्य में प्रकट किया है। जिन्होंने काव्य नहीं भी लिखा, उनकी वाणी में भी काव्य है; चाहे कविता न बनाई हो, पद्य न बांधा हो, गद्य में ही बोले हों, लेकिन गद्य भी पद्य से भरपूर है। बुद्ध ने कभी कोई पद नहीं बनाए, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। एक-एक शब्द रस से भरा है। एक-एक शब्द में रसविमुग्धता है। एक-एक शब्द अपूर्व काव्य को लिए हुए है। एक-एक शब्द जलता हुआ दीया है।

इसके पहले कि हम दया के इन पदों में उतरें, कुछ बातें खयाल में लेनी जरूरी हैं।

पहली बात, संतत्व एक उत्सव है, महोत्सव है। उससे बड़ा कोई उत्सव नहीं है। जीवन की परम बेला आ गई। नाच होगा, गीत होगा, धन्यवाद होगा, आभार-प्रदर्शन होगा। कौन कैसे करेगा, यह बात अलग है। मीरा नाची, दया ने गाया, सहजो गुनगुनाई, चैतन्य नाचे, कबीर ने पद रखे, बुद्ध बोले; ऐसा भी हुआ कभी कि कोई चुप भी रहा, लेकिन उसकी चुप्पी में भी सौंदर्य है।

तुमने चुप्पी-चुप्पी के भेद भी देखे न! कभी कोई आदमी चुप होता है, सिर्फ नाराजगी में चुप होता है, तो उसकी चुप्पी में क्रोध है। वह चुप तो है लेकिन चुप नहीं है; चुप रह कर भी क्रोध प्रगट कर रहा है। कोई आदमी उदासी में चुप है। तो चुप तो है, लेकिन फिर भी कहे जा रहा है। रोआं-रोआं कह रहा है कि उदास है। चेहरा कह रहा है, आंखें कह रही हैं, भावभंगिमा कह रही है। उठेगा तो उदास, बैठेगा तो उदास। चारों तरफ उसके पास की जो हवा है, वह भारी और बोझिल है। जैसे हजार मन का बोझ उसकी छाती पर है। कोई आदमी सिर्फ इसलिए चुप है कि कुछ कहने को नहीं, तो उसकी चुप्पी में एक रिक्तता होगी, नकार होगा। तुम पा सकोगे, उसका अंतरतम खाली है इसलिए चुप है।

एक तो घड़ा आवाज नहीं करता जब खाली होता है और एक घड़ा आवाज नहीं करता जब भरा होता है। लेकिन भरा होना और खाली होना बड़ी अलग बातें हैं। एक आदमी इसलिए नहीं बोला कि बोलने को कुछ नहीं था--तो तुम अनुभव करोगे एक नकार, एक अभाव। और जब कोई आदमी इसलिए नहीं बोला कि बोलने को तो बहुत था, कैसे बोलें? बोलने को इतना था कैसे समाए शब्दों में, इसलिए चुप रह गया, क्योंकि वाणी असमर्थ थी, भाषा कमजोर थी और जो कहना था वह विराट था और शब्दों में अंटता नहीं था, इसलिए चुप रह गया। भरा घड़ाः सन्नाटा है, लेकिन बड़ा विधायक। नकार नहीं है, शून्य नहीं है, पूर्ण विराजमान है। तुम अनुभव करोगे, इस आदमी के पास अभाव नहीं, ऐश्वर्य होगा।

इसी को हमने ईश्वर शब्द से प्रगट किया है। इस आदमी की मौजूदगी में ईश्वर की मौजूदगी अनुभव होगी। यह भरा-पूरा है। यह अपने से खोली होगा लेकिन परमात्मा से भर गया है। और अपने से खाली होने में कोई खाली थोड़े ही होता है! परमात्मा से खाली होने में कोई खाली रहता है। इसने अपने को तो हटा लिया है, लेकिन परमात्मा को जगह दे दी है। यह खुद तो सिंहासन बन गया है और सिंहासन पर परमात्मा विराजमान हो गया है। कभी ऐसा व्यक्ति चुप भी रह जाता है। लेकिन उसकी चुप्पी में भी परम काव्य होगा। तुम अगर गौर से सुनोगे तो उसकी चुप्पी में संगीत सुनाई पड़ेगा। अगर तुम आंख बंद करके चुप हो जाओगे तो उसकी मौजूदगी में तुम्हें मधुर रव सुनाई देगा। तुम उसके पास ओंकार का नाद अनुभव करोगे। उसके उठने-बैठने में तरंगें होंगी--तरंगें, जो बहुत पार से आती हैं। तुम उसका स्वाद लोगे तो तुम पाओगे, बड़ा पोषण है उसकी मौजूदगी में, नकार नहीं है।

जो आदमी खाली होने की वजह से चुप है, उसके पास से तुम खाली हो कर लौटोगे; जैसे उसने तुम्हें चूस लिया; जैसे तुम्हारा शोषण हुआ; जैसे तुम कुछ लुटा कर आए। तुमने कई दफा अनुभव किया है, भीड़ में जाने के बाद जब तुम वापस लौटते हो तो ऐसा लगता है जैसे कुछ लुटे-लुटे, टूटे-टूटे। घड़ी दो घड़ी आराम न कर लो तो स्वस्थ नहीं होते। क्या हुआ? इतने नकार से भरे हुए लोग वहां थे, सबने लूटा, सबने खींचा। जब कोई खाली गड्ढे की तरह होता है तो तुम्हारी ऊर्जा उसमें बहने लगती है।

तो तुम, खाली कोई अगर चुप बैठा हो तो उसके पास से उजड़े हो कर वापस लौटोगे। और अगर कोई भरा चुप बैठा हो तो उसके पास से तुम भरे हो कर वापस लौटोगे। उसकी ऊर्जा थोड़ी तुम्हारी अंतरात्मा में भी प्रवेश कर जाएगी। उसकी किरणें तुम्हारे अंधकार में भी थोड़ी उतर जाएंगी। उसकी सुगंध तुम्हारे नासापुटों में भर जाएगी। तुम उसके पास से पुलकित लौटोगे, एक नया राग, एक नया छंद ले कर लौटोगे। उसके तारों का बजना तुम्हारे भीतर के सोए तारों को भी कंपा जाएगा।

संत एक उत्सव है। बहुत रूपों में संतत्व प्रगट होता है। किन्हीं ने खजुराहो की मूर्तियां बनाईं, किन्हीं ने अजंता-एलोरा की गुफाएं खोदीं, कोई नाचा, किसी ने गीत रचे, कोई चुप रहा। लेकिन एक बात निश्चित है, गहरे देखोगे तो सभी बड़े अपूर्व काव्य में प्रगट हुए। उस काव्य ने क्या रूप लिया, क्या रंग लिया, यह अलग बात है। संतों ने अधिकतर गाया है; जो कहना था, उसे गाया है; जो कहना था उसे सिर्फ कह ही नहीं दिया, उसे गुनगुनाया है। फर्क है दोनों बातों में।

जब तुम गद्य बोलते हो तो तर्क होता है। जब तुम पद्य बोलते हो तो भाव होता है। जब कोई चीज सिद्ध करनी हो तो पद्य से सिद्ध नहीं होती। जब कोई चीज सिद्ध करनी हो तो गद्य का उपयोग करना पड़ता है। क्योंकि तर्क के लिए बड़ी सुमार्जित भाषा चाहिए। तर्क के लिए साफ-सुथरा गणित जैसा व्यवहार चाहिए। लेकिन भक्तों को या संतों को कुछ सिद्ध नहीं करना है। परमात्मा उनका अनुभूत हो गया है, अनुमान नहीं है; सिद्ध हो ही चुका है, कुछ प्रमाण नहीं जुटाने हैं। संत को यह सिद्ध नहीं करना है कि परमात्मा है। जब संत तुमसे बोलता है

तो वह कुछ सिद्ध करने को नहीं बोलता है। सिद्ध तो हो ही गया। अब तो वह सिर्फ अपनी सिद्धि प्रगट करता है। वह कहता है: मुझे हो गया है, मैं नाच रहा हूं, जो हो गया है उसके कारण नाच रहा हूं; तुम्हें नाच समझ में आ जाए, ठीक; न समझ में आए, तुम्हारा दुर्भाग्य!

संत कुछ सिद्ध नहीं करता। इसलिए संत की भाषा में तुम "इसलिए' नहीं पाओगे। वह ऐसा नहीं कहता कि संसार है, इसलिए परमात्मा होना चाहिए, क्योंकि कोई बनाने वाला होगा। यह भी कोई बात हुई! परमात्मा को तर्क से सिद्ध करना एक तरह की नास्तिकता है। इसका मतलब हुआ कि परमात्मा तर्क से छोटा है; तर्क से सिद्ध हो सकता है। जो तर्क से सिद्ध हो सकता है, वह तर्क से असिद्ध भी हो सकता है।

इसलिए खयाल रखना, संत कोई पंडित नहीं है। संत तो भावाविष्ट भावुक है, भाविक है। संत ने जाना है। अब तुम्हें कैसे जनाए? उसने कुछ अपूर्व अनुभव किया है। अब उस सुसमाचार को तुम तक कैसे लाए? उसकी आंखें खुल गईं, उसने रोशनी देखी--वही रोशनी जिसके लिए तुम तड़प रहे जन्मों से। अब वह तुम्हें कैसे बताए कि रोशनी है? तर्क करे, सिद्धांत बताए, तुम्हारी बुद्धि को समझाए?

नहीं, संत का वैसा कोई कृत्य नहीं। और बुद्धि से कभी कोई किसी को समझा भी सका नहीं। संत तुम्हारे हृदय को गुदगुदाता है। संत तुम्हारे भाव को जगाता है। संत कहता है: आओ, मेरे साथ नाचो, कि मेरे साथ गाओ। छोड़ो भी तर्क विचार, आओ थोड़ा मेरे साथ रसलीन हो लो; शायद जो मुझे छुआ तुम्हें भी छू ले। कोई कारण नहीं। मैं भी तुम जैसा पापी, मैं भी तुम जैसा मनुष्य, तुम्हारी जैसी भूल-चूक मेरी, तुम्हारी जैसी सीमाएं मेरी; तुमसे कुछ भिन्न नहीं, तुमसे कुछ विशिष्ट नहीं; जैसा मैं हूं वैसे तुम हो; शायद मेरे द्वार खुले थे और प्रभु भीतर आ गया और तुम्हारे द्वार बंद हैं और भीतर नहीं आ पा रहा। मेरे जैसे तुम भी हो रहो! देखो, मैं नाचता हूं, ऐसे द्वार खुल जाते हैं। तुम भी द्वार खोल लो। लग जाए शायद तुम्हें स्वाद तो पता चल जाए।

तो संत का कृत्य समझाने का नहीं है, स्वाद दिलाने का है। संत का कृत्य तुम्हारी बुद्धि को सहमत कराने का नहीं है, तुम्हारे भाव को रंगाने का है। यह बड़ी अलग प्रक्रिया है। यह ऐसे ही है जैसे कि किसी ने शराब पी ली; मस्त हुआ, डोला मस्ती में। तुम बैठे रूखे-सूखे, रसहीन; बैठे मरुस्थल से। मरूद्यान तुम्हारे जीवन में कभी घटा नहीं। तो वह क्या करे? वह नाच कर तुम्हें बताए कि शायद तुम मेरा नाच देख लो, मेरी आंखों में झांको, इस मस्ती को जरा देखो, यह मस्ती मुझे घट सकी तो तुम्हें क्यों न घट सकेगी? यह जो मैं डोल रहा हूं आनंदमग्न, तुम क्यों न डोल सकोगे?

फर्क समझना।

पंडित समझाता है, ईश्वर है; संत समझाता है, मस्ती है। फिर मस्ती अगर आ जाए तो ईश्वर के दर्शन हो जाते हैं। पंडित समझाता है, ईश्वर को अगर मान लो तो मस्ती आ सकती है। मगर ईश्वर को मानो कैसे? कौन नहीं मानना चाहता! मस्त कौन नहीं होना चाहता!

लेकिन यह बड़ी अजीब सी शर्त लगा दी कि पहले ईश्वर को मान लो तो मस्ती आ जाए। वहीं तो अटकाव आ जाता है। मानो कैसे? जो दिखाई नहीं पड़ता उसे मानो कैसे? जिसे जाना नहीं, उसे मानो कैसे? जिसका कभी स्वाद नहीं लिया उसे स्वीकार कैसे करो? तो जो स्वीकार कर लेते हैं, उनके स्वीकार में झूठ होता है।

पृथ्वी आस्तिकों से भरी है--झूठे आस्तिकों से। स्वीकार कर लिया है लोभ के कारण, कि स्वीकार करने से आनंद होगा। अब तक हुआ नहीं। जनम-जनम बीत गए। मंदिर में पूजा भी की है, पत्थरों पर फूल भी चढ़ाए हैं, तीर्थयात्राएं भी की हैं, काबा और काशी भी गए हैं, सब कर लिए गोरखधंधे, लेकिन मूल में कहीं भूल है। तुम्हारी मान्यता झूठी है। मान्यता तो अनुभव से आती है, अनुभव के पहले नहीं आती। तुम कुछ उलटा कर रहे हो। तुम बैलगाड़ी के पीछे बैल बांध रहे हो। अब घसिट रहे हो, बैलगाड़ी चलती नहीं, यात्रा होती नहीं और तुम परेशान हो, क्योंकि तुम्हारे पंडितों ने तुम्हें यही समझाया है कि पहले मान लो तो फिर जान लोगे। यह बात उलटी हो गई। जान लो तो मानना होता है।

संत कहते हैं, जान ही लो, मानने की जल्दी मत करो, मानोगे कैसे? मानोगे तो पाखंड होगा। मानोगे तो झूठ होगा। और ईश्वर से कम से कम झूठ का नाता न बनाओ। ईश्वर से तो कम से कम सच्चे रहो। कम से कम उस तरफ तो अपने पाखंड और अपने मिथ्याचार को मत फैलाओ। कम से कम उसकी तरफ तो एक बात सचाई की रखो कि जब जानेंगे तभी मानेंगे। कैसे मान लें? जबर्दस्ती कैसे मान लें? नरक के डर से मान लें कि स्वर्ग के लोभ से मान लें? कि हम तर्क में बहुत कुशल नहीं हैं, इसलिए कोई तर्क से हमको दबा देता है, इसलिए मान लें?

तुमने देखा? तर्क से कभी कोई राजी नहीं होता; ज्यादा से ज्यादा तुम किसी को चुप कर सकते हो। यह हो सकता है कि तुम तर्क में ज्यादा कुशल हो, तुम किसी को चुप कर दो। तुम जिद्द कर लो और वह तुम्हें जवाब न दे सके। मगर जो चुप हो गया है। वह भीतर-भीतर जल रहा है, सुलग रहा है; वह तर्क खोज रहा है कि तुमसे बेहतर तर्क कब मिल जाए; और शायद उसे तर्क न भी मिले तो भी उसके जीवन में रूपांतरण नहीं होगा। यह पृथ्वी झूठे आस्तिकों से भरी है। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा झूठे आस्तिकों से भरे हैं। उन्होंने मान लिया है। संत कहते हैं, मानने से नहीं होगा। अरे, स्वाद ले लो! संत स्वाद को उपलब्ध कराता है। जिस मधुरस में खुद डूबा है, उसे बहाता है। इसलिए सत्संग का बड़ा जोर है।

सत्संग का क्या अर्थ है? संत ने तो पी ली है शराब परमात्मा की, तुम जरा संत से पी लो। इसके कुल्हड़ में अगर तुमने अपना पानी भी डाल कर पी लिया तो भी मस्त हो जाओगे, क्योंकि इस कुल्हड़ में परमात्मा की शराब लगी है। इसके पास भी अगर तुम बैठ गए तो आज नहीं कल, कल नहीं परसों डोलने लगोगे, मन में कुछ गूंज होने लगेगी। अतक्र्य है यह गूंज! बुद्धि के पार है। समझ-बूझ का काम नहीं है। संतत्व का अर्थ है, किसी व्यक्ति ने चख लिया; किसी का झरोखा खुल गया; किसी की आंखों ने जान लिया। तुम जरा इसकी

आंखों के पास आओ। तुम जरा इसकी आंख की दूरबीन बनाओ। तुम इसकी आंख से झांको। यही अर्थ गुरु का होता है। संत वह है, जिसने जान लिया। गुरु वह संत है, जिसको तुमने चखना शुरू कर दिया; जिसके माध्यम से तुम जानने लगे।

तिब्बत में कहावत है, अगर पहाड़ का रास्ता पूछना हो तो उससे पूछो जो रोज पहाड़ पर आता-जाता है। जो पहाड़ पर कभी गए नहीं, घाटी में सदा रहे, चाहे कितने ही नक्शे उन्होंने पढ़े हों और चाहे कितने ही शास्त्रों का उन्हें ज्ञान हो, उनसे मत पूछना अन्यथा भटकोगे। उससे पूछो जो रोज आता-जाता है, चाहे बड़ा पंडित न हो। डाकिया, जो रोज पहाड़ चढ़ता-उतरता है, ले जाता है डाक, लाता है डाक, बड़ा पंडित न हो, नक्शे उसके पास न हों, उससे पूछ लेना।

अब यह दयाबाई कोई बहुत बड़ी ज्ञानी नहीं हैं--ज्ञानी पंडित के अर्थ में। शास्त्रों की ज्ञाता नहीं हैं। फिर भी मैंने चुन लिया है कि उन पर बोलूंगा। बड़े पंडितों को छोड़ कर उनको चुन लिया है कि उन पर बोलूंगा। पढ़ी-लिखी भी होंगी, यह भी संदिग्ध है। लेकिन, उस रास्ते पर आईं-गईं, उस रास्ते से परिचित हैं। उस रास्ते की धूल खूब खाई। उस रास्ते की धूल में रंगी हैं। उस रास्ते पर चल-चल कर, उस रास्ते पर यात्रा कर-करके सब भांति अपनी तरफ से शून्य हो गई हैं। अब तो उसी रास्ते की सुगंध है। इन छोटे-छोटे पदों में वही सुगंध प्रगट हुई है।

तीन तरह के कवि होते हैं। एक, जिसको परमात्मा की झलक स्वप्न में मिलती है। जिनको हम साधारणतः कवि कहते हैं--कि सुमित्रानंदन पंत कि मिल्टन कि एजरा पाउंड--जिनको हम कवि कहते हैं--कि सुमित्रानंदन पंत कि महादेवी। इनको स्वप्न में झलक मिलती है। इन्होंने जाग कर परमात्मा नहीं देखा है; नींद-नींद में, सोए-सोए कोई भनक पड़ गई है कान में। उसी भनक को ये गीत में बांधते हैं। फिर भी इनके गीत में माधुर्य है। इनके जीवन में परमात्मा नहीं है। कभी किसी गुलाब के फूल में थोड़ी सी झलक मिली है, आहट मिली है; कभी चांद में, तारों में आहट मिली है; कभी किसी नदी की, झरने कलकल में आहट मिली है; कभी सागर की उत्तुंग तरंगों में उसका रूप झलका है, लेकिन सीधा-सीधा दर्शन नहीं हुआ है। यह सब सोए-सोए हुआ है। ये नींद-नींद में हैं। ये मूर्च्छित हैं। मगर फिर भी इनके काव्य में अपूर्व रस है।

काव्य तो परमात्मा का ही है--सभी काव्य परमात्मा का है, क्योंकि सभी सौंदर्य उसका है। काव्य का अर्थ हुआ, सौंदर्य की स्तुति। काव्य का अर्थ हुआ, सौंदर्य की प्रशंसा, सौंदर्य का यशोगान, सौंदर्य की महिमा का वर्णन। काव्य यानी सौंदर्यशास्त्र। और सारा सौंदर्य उसका है! इनको कहीं-कहीं उसकी झलक मिली है; कहीं-कहीं उसके पदचिह्न पता चले हैं। जाग कर नहीं, क्योंकि जागने के लिए तो इन्होंने कुछ भी नहीं किया। जागने के लिए तो ये रोए नहीं, जागने के लिए तो ये तड़पे नहीं। जागता तो केवल भक्त है।

तो दूसरे तरह का कवि है, यह है भक्त, संत। उसने सौंदर्य को नहीं देखा है, उसने सुंदरतम को देखा है। उसने सिर्फ भनक नहीं देखी है, उसने मूल को देखा है। ऐसा समझो कि कोई

गीत गाता है किसी पहाड़ पर और घाटियों में उसकी आवाज गूंजती है। कवियों ने उसकी गूंज सुनी है, संतों ने सीधे संगीतज्ञ को देखा है। कवियों ने दूर से संगीत की उठती गूंज घाटियों में है, अनुगूंज, प्रतिध्वनि, उसको पकड़ा है; संतों ने सीधा-सीधा उसके दरबार में बैठ कर पकड़ा है। स्वभावतः उनकी वाणी का बल अपूर्व है। कवि कलात्मक रूप से ज्यादा कुशल होता है, क्योंकि काव्य उसका रुझान है। संत कलात्मक रूप से उतना कुशल नहीं होता, क्योंकि कविता की कला उसने कभी नहीं सीखी है। तो काव्य की दृष्टि से शायद संतों के वचन बहुत कविता न हों, लेकिन सत्य की दृष्टि से परम काव्य हैं।

फिर एक तीसरा कवि होता है जो न तो संत है और न कवि है; जिसको केवल काव्य-शास्त्र का पता है; अलंकार, मात्रा, इस सबका पता है। वह उस हिसाब से तुकबंदी कर देता है। न उसने सत्य को देखा है, न सत्य की छाया देखी, लेकिन भाषाशास्त्र को जानता है, व्याकरण को जानता है; तुकबंद है, वह तुकबंदी बांध देता है।

दुनिया में सौ कवियों में नब्बे तुकबंद होते हैं। कभी-कभी अच्छी तुकबंदी बांधते हैं। मन मोह ले, ऐसी तुकबंदी बांधते हैं। लेकिन तुकबंदी ही है, प्राण नहीं होते भीतर। कुछ अनुभव नहीं होता भीतर। ऊपर-ऊपर जमा दिए शब्द, मात्राएं बिठा दीं, संगीत और शास्त्र के नियम पालन कर लिए। सौ में नब्बे तुकबंद होते हैं। बाकी जो दस बचे उनमें नौ कवि होते हैं, एक संत होता है।

दया उन्हीं सौ में से एक भक्तों और संतों में है। दया के संबंध में कुछ ज्यादा पता नहीं है। भक्तों ने अपने संबंध में कुछ खबर छोड़ी भी नहीं। परमात्मा का गीत गाने में ऐसे लीन हो गए कि अपने संबंध में खबर छोड़ने की फुरसत न पाई। नाम भर पता है। अब नाम भी कोई खास बात है! नाम तो कोई भी काम दे देता। एक बात जरूर पता है, गुरु के नाम का स्मरण किया है--प्रभु के गीत गाए हैं और गुरु के नाम का स्मरण किया है। गुरु थे चरणदास। दो शिष्याएं--सहजो और दया। सहजो पर तो हमने बात की है। चरणदास ने कहा है, जैसे मेरी दो आंखें।

दोनों उनकी सेवा में रत रहीं, जीवन भर। गुरु मिल जाए तो सेवा साधना है; पास होना काफी है। कोई और साधना की हो, इसकी भी कुछ खबर नहीं है। मगर इतना पर्याप्त है। अगर किसी को मिल गया है, तो उसके पास रहना काफी है। बगीचे से गुजर जाओ तो तुम्हारे वस्त्रों में फूलों की गंध आ जाती है। जिसने सत्य को जाना, उसके पास रह जाओ तो तुम्हारे प्राणों में गंध आ जाती है। जिसने सत्य को जाना, उसके पास रह जाओ तो तुम्हारे प्राणों में गंध आ जाती है। सुगंध तैरती है, फैलती है। तो दबाती रही होंगी इस गुरु के चरण, बनाती होंगी भोजन गुरु के लिए, भर लाती होंगी पानी ऐसे कुछ छोटे-मोटे काम करती रही होंगी।

दोनों के पदों में बहुत भेद भी नहीं है। क्योंकि जब गुरु एक हो तो जो बहा है दोनों में, उसमें बहुत भेद नहीं हो सकता है। एक ही घाट का पानी पीआ, एक ही स्वाद पाया। दोनों बेपढ़ी-लिखी मालूम होती हैं। कभी-कभी बेपढ़ा-लिखा होना भी सौभाग्य होता है। पढ़े-लिखे

अपने पढ़े-लिखे होने के कारण झुक नहीं पाते। पढ़ा-लिखा होना अहंकार को जन्म देता है। मैं कुछ हूं! पढ़ा-लिखा हूं, तो कैसे आसानी से झुक जाऊं? गैरपढ़ी-लिखी हैं और उसी गांव से आती हैं, उसी इलाके से आती हैं जहां से मीरा आई।

अक्सर ऐसा होता है, कभी एक क्षेत्र में एक आत्मा पैदा हो जाए, प्रभु का दर्शन हो जाए, तो उस क्षेत्र में चिनगारियां छूट जाती हैं। उस क्षेत्र की हवा संक्रामक हो जाती है। एक लहर दूसरी लहर को उठा देती है। एक लहर के संग-साथ दूसरी लहर जग जाती है, दूसरी के साथ तीसरी लहर जग जाती है। संतत्व के भी तूफान आते हैं। कभी-कभी तूफान आते हैं। जैसे बुद्ध और महावीर के समय में तूफान आया। सारी दुनिया में संतत्व ने ऐसी ऊंचाई ली जैसी कि इसके पहले कभी नहीं ली थी और फिर पीछे भी नहीं ली। लाखों लोग संतत्व की दिशा में बह गए; आंधी पर सवार हो गए। एक व्यक्ति का संत हो जाना जैसे किसी शृंखला की शुरुआत होती है। जिसको वैज्ञानिक "चेन रिएक्शन' कहते हैं। जैसे कि एक घर में आग लग जाए तो पूरा मुहल्ला खतरे में हो जाता है। लपटें एक घर से दूसरे घर में छलांग लगा जाती हैं, दूसरे घर से तीसरे घर में छलांग लगा जाती हैं। एक "चेन' बन जाती है, एक शृंखला बन जाती है। अगर घर बहुत पास-पास हों तो पूरा गांव भी जल कर राख हो सकता है।

संतत्व भी ऐसा ही घटता है। एक हृदय में प्रभु की आग लग गई, एक हृदय प्रभु की अग्नि से दीप्त हो गया, लपटें छलांग लगाने लगती हैं--अदृश्य लपटें--लेकिन जो भी करीब आ जाते हैं उन पर लपटें छलांग लगा जाती हैं। तो मीरा जिस इलाके से आई उसी इलाके से दया और सहजो भी आईं। वह इलाका धन्य है, क्योंकि तीन स्त्री संतों को एक-साथ जन्म देने का सौभाग्य किसी और इलाके का नहीं है।

दोनों के पद एक ही गुरु के चरणों में पैदा हुए, दोनों के पदों में एक ही रंग है, एक ही राग है। थोड़े-बहुत भेद हैं, वह व्यक्तित्व के भेद हैं। भेद इतने कम हैं, इसलिए मैंने पहली शृंखला जो सहजो पर दी, उसका नाम रखा था दया के पद के आधार पर दया का पद है--

बिन दामिन उंजियार अति, बिन घन परत फुहार।

मगन भयो मनुवां तहां, दया निहार-निहार।।

पद थे सहजो के, नाम दिया था दया की वाणी से। इस नई शृंखला को, जिसे हम आज शुरू कर रहे हैं, पद हैं दया के, नाम दे रहा हूं सहजो की वाणी से--

जगत तरैया भोर की, सहजो ठहरत नाहिं।

जैसे मोती ओस की, पानी अंजुलि माहिं।।

...जैसे सुबह का आखिरी तारा देर तक टिकता नहीं। जगत तरैया भोर की! बस सब तारे डूब गए, चांद डूबा, सब तारे डूबे, सूरज उगने के करीब आने को है, भोर होने लगी, आखिरी तारा टिमटिमाया-टिमटिमाया कि गया। तुम ठीक से देख भी नहीं पाते कि अभी था और अभी नहीं हो गया। क्षण भर पहले था और क्षण भर बाद विलीन हो गया। जगत तरैया भोर की: ऐसा है संसार, सुबह के तारे जैसा! अभी है, अभी नहीं। इस पर बहुत भरोसा मत

कर लेना। उसे खोजो जो सदा है, जो ध्रुवतारे की भांति है; सुबह के भोर के तारे की तरह नहीं। जो अडिग है; शाश्वत, सनातन है; जो सदा था, सदा है, सदा रहेगा--उसकी शरण गहो। क्योंकि उसकी शरण गह कर ही तुम मृत्यु के पार जा सकोगे। अब सुबह के तारों को कोई पकड़ ले तो कितनी देर सुख! जिसको तुम पकड़ने जा रहे हो वह पानी का बुलबुला है; पकड़ भी नहीं पाओगे कि फूट जाएगा। जगत तरैया भोर की, सहजो ठहरत नाहिं। तुम लाख करो उपाय ठहराने का, ठहरेगा नहीं। और हम यही कर रहे हैं। सारा संसार यही कर रहा है। क्या-क्या पकड़ते हैं हम? संबंध, राग, प्रेम, पति-पत्नी, बेटे-बेटी, धन-दौलत, यश, पद, प्रतिष्ठा। जगत तरैया भोर की! इधर तुम पकड़ भी न पाओगे कि गया। तुम पकड़ने में जितना समय खो रहे हो, उतने समय में वह बीत ही जाएगा। ये लहरें पकड़ में आती नहीं। संसार का स्वभाव अस्थिर है, चंचल है। यहां जो पकड़ना चाहेगा वह दुखी होगा।

हम क्यों दुखी हैं? हमारे दुख का मूल क्या है? इतना ही दुख का मूल है कि हम उसे पकड़ते हैं जो टिकता नहीं। और हम चाहते हैं कि टिके। हम असंभव चाहते हैं, इसलिए दुखी हैं। पानी के बबूलों पर भरोसा करते हैं, रेत पर भवन बनाते हैं, ताश के पत्तों का महल खड़ा करते हैं, जरा सा हवा का झोंका आता है, सब गिर जाता है। फिर रोते, चीखते-चिल्लाते हैं। फिर बहुत दुखी होते हैं। फिर हम कहते हैं कि यह कैसा दुर्भाग्य! इसमें कुछ दुर्भाग्य नहीं है, सिर्फ मूढ़ता। फिर हम कहते हैं, यह प्रभु हम पर नाराज है। कोई हम पर नाराज नहीं है, तुम्हारी नासमझी। अब तुम बानाओगे ताश के पत्तों का घर, गिरेगा नहीं तो क्या होगा! आश्चर्य तो यह है कि उतनी देर टिक गया जितनी देर तुम बनाते थे, यह काफी है। अक्सर तो बन भी नहीं पाता और गिर जाता है। तुमने बनाए होंगे बचपन में कभी ताश के पत्तों के घर, बन भी नहीं पाते और गिर जाते हैं। और ऐसा भी नहीं कि हवा का झोंका ही आए, बनाने वाले का हाथ ही लग जाता है, उसी से गिर जाते हैं। अपनी ही सांस जोर से चल जाए तो गिर जाते हैं। एक पत्ता सरक जाए तो पूरा महल सरक जाता है।

जगत तरैया भोर की, सहजो ठहरत नाहिं।

जिसने ऐसा देख लिया और उसने ताश के पत्ते और उनका महल बनाना बंद कर दिया और कागज की नावें तैराना बंद कर दिया और रेत पर भवन खड़े न किए और सपनों पर भरोसा छोड़ दिया, वही उसे जान पाएगा जो सदा है। तुम्हारी आंखें जब तक चंचल से भरी हैं, तब तक तुम शाश्वत को न देख पाओगे। चंचल की तरंगों के कारण शाश्वत दिखाई नहीं पड़ता। चंचल का पर्दे पर पर्दा पड़ा है और तुम्हारी सारी ऊर्जा नियोजित है इसी को पकड़ने में, इसी को बनाए रखने में। बनता कभी नहीं। बन-बनकर बिगड़ जाता है। जन्मों-जन्मों बार-बार ऐसा हुआ है।

..."जैसे मोती ओस की'। सुबह देखा, घास के ऊपर, वृक्षों के पत्तों पर, कमल के पत्तों पर ओस की बूंदें सुबह सूरत की रोशनी में ऐसे चमकती हैं जैसे मोती। मोती भी क्या चमकेंगे! मगर बस दूर-दूर रहना, पास मत जाना, छू मत लेना। बीनने मत लगना ये मोती। अन्यथा हाथ में--पानी अंजुलि माहिं; जैसे मोती ओस की, पानी अंजुलि माहिं। अगर

बीनने चले गए, इकट्ठा करने लगे, तिजोड़ी भरने लगे तो हाथ में सिर्फ पानी रह जाएगा, कोई मोती नहीं। मोती भ्रामक है। और यह संसार ऐसा ही है जैसा कोई पानी को अपनी मुट्ठी में भरने की कोशिश कर रहा हो। निकल-निकल जाता है, हाथ से बह-बह जाता है।
दया के इन पदों को यही नाम दे रहे हैं--जगत तरैया भोर की। ज्ञानियों ने बड़ी बातें कही हैं, लेकिन शायद इससे मीठा वचन--जगत तरैया भोर की--इससे सीधा-साफ और क्या कहा जा सकता है! सब शास्त्र, लंबे-लंबे विवेचन इस छोटी सी बात में समा गए हैं।
बुद्ध के जीवन में उल्लेख है कि सुबह के आखिरी तारे को डूबते देख कर उन्हें निर्वाण हुआ। शायद उस क्षण उनकी भावदशा वैसी ही रही होगी, जैसी सहजो ने जब यह पद लिखा--जगत तरैया भोर की। आंख खोल कर बैठे हैं बोधिवृक्ष के नीचे, आखिरी तारा डूब रहा है, डूब रहा है, डूब रहा है, डूब गया। इधर तारा डूबा, उधर कुछ उनके भीतर इस तारे के साथ ही डूब गया। सब जो अब तक सोचा था मैं हूं, वह इसी तारे के साथ समाप्त हो गया। एक क्षण में एक अग्नि प्रज्वलित हो गई, एक दीया जल गया। बुद्ध ने कहीं कहा नहीं, लेकिन अगर सहजो से उनका मिलना हो जाए तो वे जरूर राजी होंगे इस पद से--जगत तरैया भोर की, सहजो ठहरत नाहिं; जैसे मोती ओस की पानी अंजुलि माहिं, उस सुबह के तारे को डूबते देख कर जैसे जगत का सारा स्वभाव बुद्ध के समझ में आ गया। अब यहां पकड़ने को कुछ भी न रहा। अब यहां हाथ में लेने को कुछ भी न रहा। जिसने जगत के चंचल स्वभाव को समझ लिया, वह जगत से मुक्त हो जाता है। और जिसने जगत के चंचल स्वभाव को समझा, वही परमात्मा की तरफ आंखें उठा पाता है। ये सब चीजें संयुक्त हैं।
ऐसा क्यों होता है,
ऐसा क्यों होता है
उमर बीत जाती है करते खोज
मीत मन का मिलता ही नहीं
एक परस के बिना
हृदय का कुसुम
पार कराता कितनी ऋतुएं
खिलता ही नहीं
ऊपर से हंसने वाला मन
अंदर ही अंदर रोता है
ऐसा क्यों होता है,
ऐसा क्यों होता है
कब तक यह अनहोनी
घटती ही जाएगी
कब हाथों को हाथ मिलेंगे
सुदृढ़ प्रेम में

कब नयनों की भाषा
नयन समझ पाएंगे
कब सच्चाई का पथ
कांटों भरा न होगा
क्यों पाने की अभिलाषा में मन
हरदम ही कुछ खोता है
ऐसा क्यों होता है,
ऐसा क्यों होता है
उमर बीत जाती है करते खोज
मीत मन का मिलता ही नहीं
एक परस के बिना
हृदय का कुसुम
पार कराता कितनी ऋतुएं
खिलता ही नहीं
ऐसा क्यों होता है,
ऐसा क्यों होता है!

होने का कारण सीधा है। हम उसे रोकने की चेष्टा में लगे हैं जिसका स्वभाव रुकना नहीं; जो जाएगा ही-- जो जाएगा ही; जाना ही जिसका स्वभाव है। हम उसे पकड़ने की चेष्टा में लगे हैं जो पकड़ में आता ही नहीं; पकड़ में न आना ही जिसका स्वभाव है। जैसे कोई पारे को पकड़ने की कोशिश कर रहा हो और पारा छितर-छितर जाए, और तुम भागो पारे के पीछे और पारा और छितर-छितर जाए, ऐसा ही हम संसार के पीछे पड़े हैं। लेकिन, हमने उस तरफ आंख ही उठा कर नहीं देखी जो सदा मौजूद है। जो हमारे इन सारे खेलों के पार खड़ा है। जो हमारे भीतर खड़ा है, जो साक्षी है। उस प्रभु को हमने निहारा नहीं। इसीलिए तो मन का मीत भी नहीं मिला। बहुत मन के मीत माने, मिला कहां! बहुत बार मान लिया कि मिल गया मन का मीत, फिर-फिर खो गया।

कितनी मित्रता तुमने बनाईं, कितने प्रेम तुमने बनाए, कितनी लगाव की गांठें बांधीं और हर बार हारे और हर बार विषाद हाथ लगा, फिर भी जागे नहीं। फिर भी आशा बनाए हो कि कोई और कहीं शायद मिल जाए, थोड़ा और खोज लें, थोड़ा और खोज लें! आशा मरती नहीं। अनुभव कहता है, यह नहीं मिलने वाला, लेकिन आशा अनुभव के ऊपर जीतती चली जाती है। आशा नए सपने बनाए चली जाती है। जो व्यक्ति आशा से जागा, वही व्यक्ति संसार से जागता है और मुक्त हो जाता है।

नहीं, यहां मन का मीत मिलता ही नहीं और यहां वह जो मन का अंतर्कुसुम है, खिलता ही नहीं। क्योंकि वह तो खिल सकता है केवल परम के स्पर्श से। ऋतुएं आएंगी और जाएंगी और तुम्हारा भीतर का फूल नहीं खिलेगा, नहीं खिलेगा। वह तो एक ही ऋतु आए तभी

खिलता है, परमात्मा की ऋतु आए। वही है वसंत उसके लिए; और सब पतझार है। तुम करो प्रतीक्षा कितनी ही, देर-अबेर लौट आना पड़ेगा। जो समझदार है, जल्दी लौट आता है। जो नासमझ है, देर लगाता है। जो समझदार है, थोड़े अनुभव से सीख जाता है। जो नासमझ है, वह बार-बार वही भूलें करता है और धीरे-धीरे भूलों का आदी होता जाता है। उलटा जागे, सीखे; भूलें करने में कुशल होता चला जाता है; उनको और-और करने लगता है; निष्णात हो जाता है।

जागो, भूलों को दोहराओ मत। जो करके देख चुके हो और फल हाथ न आता है, तो अब सिर मत धुनते रहो कि ऐसा क्यों होता है, ऐसा क्यों होता है! होता है सीधे नियम से। तुम दीवाल से निकलने की कोशिश करोगे, सिर टूटेगा। अब ऐसा क्यों होता है? दरवाजे से निकलो, दरवाजा है। ये सारे संतपुरुष उसी द्वार, उसी दरवाजे की बात कर रहे हैं।

"हरि भजते लागे नहीं, काल-ब्याल दुख-झाल।

ताते राम संभालिए, दया छोड़ जगजाल।।'

यह जो जाल संसार का, इसे खूब सम्हाला, सम्हला तो कुछ भी नहीं! कितनी बार फेंक चुके जाल, मछली फंसी ही नहीं। बैठे तट पर जन्मों-जन्मों के उदास, थके-हारे, फिर-फिर बुनते वही जाल, फिर-फिर फेंकते वही जाल, मछली फंसती ही नहीं।

जीसस ने कहा है, एक मछुआ मछली मार रहा है, सुबह का समय है और जीसस ने उसके कंधे पर हाथ रखा और कहा देख मेरी तरफ, तू कब तक ये व्यर्थ की मछलियां पकड़ता रहेगा? मेरे पीछे आ, मैं तुझे असली मछलियां पकड़ने का राज बता दूं। उस मछुए ने जीसस की आंखों की तरफ देखा--यह बात तो बड़ी अजीब थी, अपरिचित, अनजान आदमी पीछे से आ कर कंधे पर हाथ रख ले--लेकिन वह मछुआ छोड़ दिया जाल वहीं, चल पड़ा जीसस के पीछे। उसका भाई चिल्लाया कि कहां जाते हो--उसका भाई नाव पर सवार है, वह भी मछलियां मार रहा है--कहां जाते हो? उसने कहा कि फेंक चुके जाल, जीवन भर हो गया, मछलियां कभी फंसीं तो भी क्या फंसा! कभी नहीं फंसीं, कभी फंसीं, मगर फंसा कुछ भी नहीं। ऐसे ही खाली के खाली रहे। इस आदमी की आंख में देखता हूं, इसकी बात पर भरोसा आता है। हर्ज कुछ भी नहीं, खोने को हमारे पास कुछ है भी नहीं। मिलेगा सही, न मिला तो कुछ हर्ज नहीं, जाता हूं।

सारे संत तुम्हारे कंधे पर हाथ रख कर इतना ही कह रहे हैं कि कब तक फेंकते रहोगे यह जाल?

"तातें राम संभालिए, दया छोड़ जगजाल'। यह जाल बहुत बार फेंका, कभी इसमें कुछ फंस कर भी आया, कभी फंस कर नहीं भी आया, लेकिन अगर बहुत गौर से देखोगे तो सदा खाली आया, कुछ भी फंस कर नहीं आया। जो फंसा वह भी तो निमूल्य है, उसका भी कोई मूल्य नहीं है। कभी धन मिल गया थोड़ा, कभी पद मिला थोड़ा, कभी प्रतिष्ठा मिली थोड़ी, पर मूल्य क्या है? सद पद-प्रतिष्ठा, सब धन पड़ा रह जाएगा। तुम उसके मालिक नहीं हो पाओगे--तुम उसके मालिक हो भी नहीं। वह तुम से पहले भी यहां था, तुम्हारे बाद भी यहीं

होगा। पद यहीं रह जाएंगे, तुम चले जाओगे। और तुम वैसे ही खाली हाथ जाओगे जैसे खाली हाथ आए थे।

"हरि भजते लागे नहीं, काल-ब्याल दुख-झाल।' दया कहती है, अगर तुम प्रभु को स्मरण कर लो, तो जीवन के दुख, जीवन की दुख की ज्वालाएं, सब शांत हो जाएं। फिर तुम्हें कुछ जला न सके। अभी तो सब तुम्हें जला रहा है। अभी तो तुम जिसे जीवन कहते हो, वह जीवन नहीं है, चिता है। सब तरह से जल रहे हो। कभी चिंता में जलते हो, कभी चिता में जलते हो, मगर जल ही रहे हो। कभी चिता बहुत प्रत्यक्ष होती है, कभी अप्रत्यक्ष होती है; कभी दृश्य, कभी अदृश्य, मगर तुम जल ही रहे हो। कभी तुमने जीवन में अमृत की वर्षा जानी? कभी ऐसा क्षण जाना जब हृदय जलता न हो, जब जलन बिलकुल शांत हो? कभी तेजी से जलता है, कभी कम तेजी से जलता, कभी दाग छूटते, कभी नहीं भी छूटते, मगर तुमने कभी शांति का क्षण जाना, कभी आनंद का क्षण जाना? कभी वह द्वार खुला? वह कभी खुला नहीं।

"हरि भजते लागे नहीं'। पर वही उपलब्ध होता है उस परम शांति को, ज्वाल के पार वही होता है, जो प्रभु को स्मरण करता है।

प्रभु-स्मरण का क्या अर्थ?

आदमी अगर अपने को अपने पर समाप्त समझ ले, तो दुख में ही रहेगा और समाप्त हो जाएगा। जैसे बीज मान ले कि बस बात हो गई, जो मैं हूं यही मैं हूं, तो फिर कभी फूल न खिलेंगे। बीज को अतिक्रमण करना पड़ता है, अपने से पार जाना पड़ता है। मनुष्य भी जब अपने से पार जाने की चेष्टा करता है, तो प्रभु का स्मरण।

प्रभु के स्मरण का क्या अर्थ होता है? ऐसा मत समझ ले, तो दुख में ही रहेगा और समाप्त हो जाएगा। जैसे बीज मान ले कि बस बात हो गई, जो मैं हूं यही मैं हूं, तो फिर कभी फूल न खिलेंगे। बीज को अतिक्रमण करना पड़ता है, अपने से पार जाना पड़ता है। मनुष्य भी जब अपने से पार जाने की चेष्टा करता है, तो प्रभु का स्मरण।

प्रभु के स्मरण का क्या अर्थ होता है? ऐसा मत समझ लेना कि बैठ गए और राम-राम-राम-राम जपने लगे, या राम चदरिया ओढ़ ली, इतना सस्ता नहीं है मामला! प्रभु-स्मरण का अर्थ होता है, तुम अपने से पार जाने लगे, तुम अपने से ऊपर आंख उठा कर देखने लगे; बीज तलाशने लगा फूल को--वह अभी है नहीं फूल, हो सकता है, बीज तलाशने लगा फूल को--दीए की ज्योति उठने लगी आकाश की तरफ, सूरज की तरफ, यात्रा शुरू हुई; अंकुर फूटा, पौधा उठा, चला आकाश की यात्रा पर। तुम जब तक अपने को सोचते हो कि मैं जैसा हूं, जो हूं, मनुष्य हूं, बस समाप्त हो गया, खतम हो गया, तो तुम्हारे भीतर कोई द्वार नहीं जो तुमसे पार खुलता हो। तुम बिना द्वार के हो। बिना द्वार का आदमी दुखी है। अपने में बंद, कारागृह में बंद।

ईश्वर को मानने का यह अर्थ नहीं होता है कि कोई ईश्वर बैठा है आकाश में जो दुनिया को चला रहा है। इन बचकानी बातों में मत पड़ना। ईश्वर को मानने का इतना ही अर्थ होता है--

ठीक से समझोगे तो इतना ही अर्थ होता है कि मैं अपने पर समाप्त नहीं हूं, मुझसे ज्यादा संभव है। इसे मैं दोहरा दूं--मुझसे ज्यादा संभव है। यह मेरी परिधि मेरे अस्तित्व की अंतिम परिधि नहीं है। मैं बड़ा हो सकता हूं। मैं विराट हो सकता हूं। मैं फैल सकता हूं, इस बात का स्मरण आ जाना ही हरिस्मरण है।

हरि-स्मरण तो प्रतीक मात्र है। जब तक आदमी बैठ कर मगन हो कर प्रभु का नाम-स्मरण करता है तो वह क्या कह रहा है? वह यह कह रहा है कि मैं पुकारता हूं मेरे भविष्य, मैं पुकारता हूं मेरी संभावना; जो मैं हूं अभी तो बीज हूं, लेकिन मैं फूल को याद करता हूं कि मेरी संभावना; जो मैं हूं अभी तो बीज हूं, लेकिन मैं फूल को याद करता हूं कि तेरी याद मेरे भीतर यात्रा बन जाए; मैं चलता हूं; अब मैं बैठूंगा नहीं, उठूंगा; अब मैं यात्रा करूंगा, मुझ तलाश करनी है, मंजिल खोजनी है, बैठे-बैठे क्या होगा? जो आध्यात्मिक रूप से असंतुष्ट हो जाए, वही व्यक्ति धार्मिक है। सांसारिक रूप से संतुष्ट हो जाना धार्मिक आदमी का लक्षण है और आध्यात्मिक रूप से असंतुष्ट हो जाना। हालत अभी उलटी है। अभी तुम सांसारिक रूप से बहुत असंतुष्ट हो। धन है, इतने से काम नहीं चलता। मकान है, छोटा है। कार है, पुरानी है, कबाड़ी की दुकान से खरीदी है, नई चाहिए, ढंग की चाहिए। तिजोड़ी है, मगर बहुत छोटी है। पद है, मगर कुछ तृप्ति नहीं होती, कुछ और बड़ा चाहिए। अभी संसार से तुम असंतुष्ट हो। और बड़ा मजा है, अपने से बिलकुल संतुष्ट हो। भीतर कुछ नहीं करना है। बाहर है असंतोष--तिजोड़ी बड़ी करनी है, कार नई लानी, मकान बड़ा करना, धन थोड़ा बढ़ा लेना, पत्नी और अच्छी खोज लें, कि पति और अच्छा, कुछ ऐसे काम में उलझे हो। फैला तुम भी रहे हो, संसार फैला रहे हो, अपने को नहीं फैला रहे।

सांसारिक और आध्यात्मिक में इतना ही फर्क है। तुम संसार को फैलाते हो, आध्यात्मिक अपने को फैलाता है। तुम्हारा अपने से बिलकुल संतोष है। तुम जैसे हो बिलकुल राजी हो, उसमें तुम्हें चिंता ही नहीं है बिलकुल कि इससे भी भिन्न तुम हो सकते हो, कि तुम्हारे भीतर भी बुद्ध का अवतरण हो सकता है, कि तुम्हारे भीतर भी महावीर का जन्म हो सकता है, कि तुम्हारे भीतर जीसस पैदा हो सकते हैं। नहीं, इसकी तुम्हें चिंता नहीं है। तुम क्षुद्र के साथ बड़े असंतुष्ट हो, विराट के साथ बिलकुल असंतुष्ट नहीं।

खयाल रखना, यही असंतोष जो वस्तुओं में लगा है, अंतर की तरह चल पड़े और जो संतोष भीतर लगा रहे, बाहर की तरफ आ जाए, बस तुम धार्मिक व्यक्ति हो गए। इतना छोटा सा फर्क करना है। बाहर की तरफ हो जाए संतोष, मकान छोटा तो छोटा भी चल जाएगा। चार दिन की जिंदगी है, छोटे मकान में रहे कि बड़े मकान में रहे, कुछ बहुत फर्क नहीं पड़ेगा। चार दिन की जिंदगी है, काम चला लो। बाहर तो थोड़े ही देर की बात है, जैसे कोई रेलवे स्टेशन पर बैठा है विश्रामालय में, "वेटिंग रूम' में, ऐसी बाहर की जिंदगी है। अब तुम "वेटिंग रूम' को थोड़े ही बदलने लग जाते हो कि पेंटिंग कर दो, कि जरा सफाई कर दो, कि चित्र लटका दो, कि सजा दो कि तीन घंटे बैठना है! तुम कहते हो, "वेटिंग रूम' है,

मतलब क्या है! अपने बैठे हैं शांति से, अपना अखबार पढ़ते रहते हैं। गाड़ी आएगी, चले जाएंगे।
बाहर की जिंदगी तो रात भर की सराय है, सुबह हुई, चलना पड़ेगा। इसके साथ बहुत परेशान होने की जरूरत नहीं है। इसके साथ संतुष्ट हो जाना धार्मिक आदमी का लक्षण है। हां, अगर असंतुष्ट होना है तो भीतर की यात्रा बड़ी है। वह लंबी यात्रा है। वह शाश्वत यात्रा है, वहां सत्य का अन्वेषण करना है, वहां असंतोष को लगा दो--सारी असंतोष की अग्नि भीतर ले आओ और सारा संतोष बाहर आरोपित कर दो, बस इतना ही तुम कर दो कि तुम संन्यासी हुए, धार्मिक हुए, आध्यात्मिक हुए।
"हरि भजते लागे नहीं, काल-ब्याल दुख-झाल।' और जिसने प्रभु को स्मरण किया--प्रभु के स्मरण का अर्थ हुआ, जो प्रभु बनने की तरफ चला। पहले तो स्मरण ही करना होगा न! जो तुम्हें बनना है उसका पहले स्मरण करना होगा। तुमने कभी विचार के इस विज्ञान को समझा? तुम्हें एक मकान बनाना है, तो पहले तो विचार पैदा होता है--एक मकान बनाना है। योजना बनती, कल्पना के जाल फैलते, शायद तुम कागज ले कर एक रेखाचित्र भी बनाते हो कि ऐसा मकान बनाना है; फिर शायद तुम "आर्किटेक्ट' के पास जाते हो कि और भी व्यवस्थित ढंग से योजना कर ली जाए। मकान कभी बनेगा, पहले विचार में बनता है, पहले स्मरण में बनता है। जो भी तुम दुनिया में देखते हो होता हुआ, पहले विचार में हुआ है फिर दुनिया में होता है। पहले विचार में घटता है, फिर सत्य में घटता है। हरि-स्मरण का अर्थ है, तुमने यात्रा भीतर की शुरू की। अब तुम कहते हो, प्रभुमय होना है, उसमें डुबकी लेनी है; देख लिया संसार--जगत तरैया भोर की--अब उस तरफ चलना है, अब तुम चिट्ठी लिखने लगे; दूर है मंजिल अभी, मगर संदेशे भजने लगे।
ऐसी सुध बिसराई कि पाती तक न पठाई,
बरखा गई
मिलन-ऋतु बीती
घोर घटा घहरी मनचीती
पर गागर रीती की रीती
अधरों बूंद न आई
प्यास से प्यास बुझाई
ऐसी सुध बिसराई कि पाती तक न पठाई,
रोज उड़ाए काग सबेरे
रोज पुराए चौक घनेरे
कभी अंधरे, कभी उजेरे
पथ-पथ धूल रमाई
हुई सब लोक हंसाई
ऐसी सुध बिसराई कि पाती तक न पठाई।

प्रभु-स्मरण का अर्थ है, लिखने लगे पाती। दूर है परमात्मा, अभी तो दूर से भी उसका रथ दिखाई नहीं पड़ता, उसके आते रथ से उठते हुए मार्गों पर धूल भी नहीं दिखाई पड़ती, अभी तो स्वप्न है परमात्मा, अभी तो सिर्फ एक विचार है, एक तरंग है--तरंग इस बात की कि जितना मैं हूं इतना होना काफी नहीं, कि जो मैं हूं ऐसे होने में शांति नहीं, आनंद नहीं, कि जहां मैं हूं वहां अभी विश्राम करने की जगह नहीं, अभी यात्रा करनी है। तुम अपने से राजी हो? सच में राजी हो? क्या तुम न चाहोगे कि तुम्हारे भीतर कुछ घटे--कोई दीया जले, कोई राग बजे, कोई फूल खिले, कोई सुगंध बिखरे? अगर तुम्हारे भीतर यह फूल की, यह सुगंध की, यह दीप की आकांक्षा जगे, अभीप्सा जगे, तो तुमने चिट्ठी लिखनी शुरू की, तुमने पत्र लिखना शुरू किया। तो तुम्हें सुध आई।

"हरि भजते लागे नहीं'...। हरि की सुध आई। तुम्हें याद आया वह घर जहां से तुम आए, जहां से तुम भेजे गए। यह तो परदेश है। यहां तो तुम आए हो, जन्म के पहले तुम यहां न थे और मौत के बाद फिर तुम यहां न रह जाओगे। जब तुम्हें सुध आने लगे अपने घर की कि कहां से मैं आया हूं, कौन है मेरा मूलस्रोत, क्या है मेरा उद्गम, जन्म के पहले मैं कहां था, किस विराट क्षीरसागर में सोया था, मौत के बाद मैं फिर कहां होऊंगा, किस सागर में मेरी सरिता गिरेगी, जहां मैं जन्म के पहले था और जहां मैं मौत के बाद पुनः पहुंच जाऊंगा वह कौन है, उसकी सुध आने लगी, रूपांतरण शुरू हुआ। तुम्हारी आंखें भीतर की तरफ चलने लगीं। तुम्हारी पलकें बाहर की तरफ झुकने लगीं और आंख भीतर की तरफ मुड़ने लगी।

अब भी तुम बाहर रहोगे, बस ऐसे ही जैसे कोई परदेश में रहता है जिसे अपने घर की याद आ गई। रहता है, काम भी चलाता है, दुकान भी जाता है, बाजार में भी उठता है, दफ्तर भी जाता है, सब करता भी है--पति है, पत्नी हैं, बच्चे हैं, सबकी देख-रेख भी रखना है, सब ठीक है, लेकिन अब एक भीतर की याद, एक अदम्य याद उठने लगी, कोई खींचने लगा। तुम्हारा असली प्राण भीतर जाने लगा। बाहर नाम मात्र को। भीतर जीवन की अधिकतम धाराएं संगृहीत होने लगीं। ऊर्जा संगठित होने लगी। और खयाल रखना, कहां से हम आते हैं, वहीं हम जाते हैं। नदी सागर से ही आती है--उठती है आकाश में, बादल बनती, मेघ बनती, बरसती हिमालय पर, नदी बनती, दौड़ती सागर की तरफ। उद्गम ही अंत है। वहीं जाते हैं जहां से आते हैं। जहां जन्म के पूर्व थे, वहीं मृत्यु के बाद हैं। उस मूल उद्गम में शाश्वत है। वहीं विश्राम है। यहां तो दौड़धाप है, आपाधापी है।

ऐसी सुध बिसराई कि पाती तक न पठाई,

बरखा गई मिलन-ऋतु बीती

घोर घटा घहरी मनचीती

पर गागर रीती की रीती

अधरों बूंद न आई

प्यास से प्यास बुझाई

ऐसी सुध बिसराई कि पाती तक न पठाई।

ऐसी ही हालत है। अभी तुम प्यास से प्यास बुझा रहे हो। जल की तो एक बूंद भी नहीं है। मन समझा रहे। कितना ही समझाओ, समझ नहीं पाता। प्यास से कहीं प्यास बुझी है! एक तुमने मजा देखा, एक वासना तृप्त नहीं हो पाती कि तुम जल्दी दूसरी वासना पैदा कर लेते हो। क्यों? क्योंकि अगर एक वासना तृप्त न हो पाई और विषाद आया, तो मन को कहीं उलझाना पड़ता है। नहीं उलझे तो क्या करोगे? जल्दी दूसरी वासना पैदा कर लेते हो। "प्यास से प्यास बुझाई।' एक वासना दुख दे रही थी, दूसरी वासना ले आए। तुमने कभी देखा, एक दुख हो और बड़ा दुख आ जाए तो छोटा दुख भूल जाता है। जैसे समझो कि तुम्हारे सिर में दर्द है और तुम डाक्टर के पास गए और तुमने कहा बड़ा सिर में दर्द है, सिर फटा जाता है, उसने कहा ठहरो, सिर वगैरह तो ठीक, पहले जरा हृदय तो देख लूं। और उसने तुम्हारे हृदय की धकधक सुनी और कहा, कहां की बातों में पड़े हो, "हार्ट अटैक' की संभावना है! तत्क्षण तुम्हारा सिरदर्द बिलकुल ठीक हो जाएगा। तुम भूल ही जाओगे कि सिर भी है, सिरदर्द की तो बात ही छोड़ो!

क्या हुआ?

बड़ा दुख छोटे दुख को दबा लेता है। बड़ी चिंता छोटी चिंता को दबा लेती है। बड़ा विषाद छोटे विषाद को दबा लेता है। यही तुम्हारी तरकीब है। एक दुख है, उसको भुलाने के लिए तुम करोगे क्या? बड़ा दुख पैदा कर लेते हो। छोटी झंझट थी, बड़ी झंझट घर ले आए, छोटी झंझट भूल गई; अब बड़ी में उलझ गए। कुछ देर बड़ी में उलझे रहोगे, फिर उसमें भी ऊबने लगोगे तो और बड़ी झंझट ले ली। आदमी ऐसी झंझटें फैलाता जाता है। इसी को दया कह रही है--जगजाल।

"प्यास से प्यास बुझाई'। प्यास से कहीं प्यास बुझी! पागल हुए हो? एक बूंद तक तुम्हारे ओंठों पर नहीं पड़ी है और ऋतु भी बीती जाती, यह जीवन का अवसर भी खोया जाता। "हरि भजते लागे नहीं, काल-ब्याल दुखझाल; ताते राम सम्हालिए, दया छोड़ जगजाल।' इसलिए बदलो अपने असंतोष की धारा को--ताते राम सम्हालिए। इसलिए अब थोड़ी प्रभु की सुधि लो। उसे सम्हालो जिसके सम्हालने से सब सम्हल जाएगा। जरा उसकी याद से भरो जो तुम्हारा मूल उद्गम है। जो तुम्हारा मूल स्वभाव है उसका स्मरण, उसकी प्यास, उसकी त्वरा तुममें जगे--अभीप्सा--ताते राम सम्हालिए।

तो खयाल रखना, भक्तों के वचन से तुम इतना ही मत समझ लेना कि राम-राम-राम-राम जपने लगे तो हो गया। राम-राम जपने में सार्थकता है। अगर प्रक्रिया न हो तो व्यर्थ है। ऐसा ही समझो कि तुमने बटन दबाई, बिजली जल गई। लेकिन तुम यह मत समझना कि बस तुम एक बटन खरीद लाए बजार से और चिपका दी दीवाल में और दबाई और बिजली जल गई! बिजली का लंबा जाल है। ऐसे बटन से काम न चलेगा।

एक बहुत अदभुत आदमी हुआ है--टी.ई. लारेंस। वह अरब में रहा और अरबी मुसलमानों की सेवा की उसने। था तो अंग्रेज, बड़े हिम्मत का आदमी था, मगर अरबों के प्रेम में पड़ गया

था। और सारी जिंदगी वहीं बिताई। फ्रांस में एक बड़ी प्रदर्शनी हो रही थी, विश्व-प्रदर्शनी। तो वह दस-बारह अरब मित्रों को ले कर फ्रांस गया, उन्हें दिखाने कि जरा दुनिया तो देखो! कहां तुम रह रहे हो, क्या तुम कर रहे, अरब में मरुस्थल में पड़े हो, दुनिया देखो! तो उनको दिखाने वह ले गया प्रदर्शनी। मगर बड़ा हैरान हुआ, उनकी प्रदर्शनी में कोई उत्सुकता ही न थी। वे तो जैसे ही "बाथरूम' में घुस जाएं तो निकलें ही न! उनका एकमात्र रस--"बाथरूम'! उसने कई दफे कहा भी कि तुम करते क्या हो, इतनी देर? घंटों! पानी के प्यासे लोग। स्नान के नाम पर तो कभी कुछ किया नहीं था। यहां बैठते "शावर' के नीचे कि लेटते "टब' में, उनको किसी चीज में रस नहीं। उनको प्रदर्शनी दिखाने ले जाए, वे जल्दी कहें, वापस चलो। जब चलने का, विदा का दिन आया और सब सामान रखा गया गाड़ियों में तो लारेंस ने देखा कि वह दस-बारह अरब नदारद हो गए। वह कहां हैं, उसको कुछ पता न चला। वह बड़ा हैरान हुआ, क्योंकि ये तो हवाई जहाज चूक जाएंगे। तब उसे खयाल आया कि कहीं ऐसा तो नहीं वे फिर "बाथरूम' में पहुंच गए हों। तो वह ऊपर गया--वे दस-बारह ही अंदर घुसे थे। कोई "शावर' खोल रहा था, कोई नल की टोंटी खोल रहा था, खुल नहीं रही थीं! उनसे पूछा, तुम यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि हमने सोचा इनको तो कम से कम लेते चलें, मजा आ जाएगा! ये नल की टोंटी अगर अरब में रही, बस घर में लगा लेंगे!

उनको कुछ पता नहीं है कि नल की टोंटी जो दिखाई पड़ रही है, यह तो सिर्फ दिखाई पड़ने वाला हिस्सा है, इसके पीछे बड़ा जाल है, बड़ी पाइप लाइनें फैली हैं और दूर जलस्रोत से संबंध जुड़ा है, यह टोंटी तो सिर्फ आखिरी अंत है। ऐसा ही राम-राम है। राम-राम तो टोंटी है। तुम यह मत सोचना कि बैठ गए, राम-राम-राम-राम जप रहे--बस टोंटी रखे हैं और नहा रहे हैं! ऐसे नहीं चलेगा। इसके पीछे एक पूरी की पूरी पृष्ठभूमि है चित्त की, चैतन्य की; एक लंबा आयोजन है।

उस आयोजन की पहली बात है कि तुम अपने से तृप्त नहीं। दूसरी बात है, संसार से तुम तृप्त। जैसा है, ठीक। ऐसा तो ऐसा, वैसा तो वैसा। और अब तुम जितने हो भीतर, उतने से राजी नहीं हो। तुम्हारी सारी आकांक्षाएं, सारी वासनाएं, सारी अभीप्साएं एक धारा में प्रवाहित होने लगीं, और वह धारा है अंतर्तम की। इसे विराट तक ले जाना है। असीम को खोजना है। क्योंकि सीमा तो आज नहीं कल मौत आ कर नष्ट कर देगी। शरीर तो टूट जाएगा। तुमने दूसरों की अर्थियां उठते देखी हैं, एक दिन तुम्हारी अर्थी भी उठ जाएगी। तुमने दूसरों की चिताओं को देखा है, एक दिन तुम भी चिता पर जलोगे। यह जो सीमा है शरीर की, यह तो जाएगी। इसके पहले कि सीमा से तुम टूट जाओ, असीम को पहचान लो। नहीं तो ऋतु ऐसे ही बीत गई। अवसर आया और गया और तुम पहचान ही न पाए, और मन का मीत मिला ही नहीं और हृदय का कमल खिला ही नहीं।

असीम को पहचानना है। उस असीम की पहचान की जो पुकार है, वही हरिनाम है। अनाम को पहचानना है। अभी तो तुमने समझा है कि अपना यह नाम, तो यही हम हैं। नाम से

क्या लेना-देना! नाम तो कोई भी दिया जा सकता है। नाम तो सब उधार है। आए तो तुम बिना नाम के थे, जाओगे बिना नाम के। तो इसके पहले कि जाने का क्षण आ जाए, अनाम को पहचानना है। उस अनाम को ही हमने हरि नाम दिया है। कुछ तो पुकारेंगे न अनाम को! कुछ नाम तो देना ही पड़ेगा, नहीं तो पुकारेंगे कैसे! तो हरि।

हरि शब्द बड़ा प्यारा है। उसका अर्थ होता है, चोर। जो हर ले, जो चुरा ले। जो तुम्हारे हृदय को चुरा ले जाए। हिंदुओं जैसे अदभुत लोग दुनिया में नहीं हैं। दुनिया में बहुत भगवान के नाम लोगों ने दिए हैं, लेकिन हरि! बस हिंदुओं की कला है। बात भी ठीक है, प्रेम एक तरह की चोरी ही तो है। तुम्हारे हृदय को बिलकुल चुरा ही तो लेगा। एक दिन तुम पाओगे कि तुम तो रह गए, हृदय गया। जहां हृदय हुआ करता था, हरि वहां विराजे हैं! सब पर कब्जा करके बैठ गए, सब हर लिया। हरण कर लिया तो हरि। कुछ भी न छोड़ेंगे। तुम्हारा सब आत्मलीन कर लेंगे। रत्ती-रत्ती पी जाएंगे, कुछ भी न छोड़ेंगे।

एक सूफी फकीर के घर में रात चोर घुसे। तो सूफी फकीर पड़ा था अपने कंबल पर--एक ही कंबल था--वह देखता रहा कि बेचारे बड़ी मेहनत कर रहे हैं और पाएंगे क्या? काफी मेहनत कर ली उन्होंने, कुछ थोड़ा-बहुत जो कुछ टूटे-फूटे बर्तन कुछ इत्यादि थे, वे उन्होंने इकट्ठे कर लिए। बांध कर जो कुछ मिला वे चलने लगे तो फकीर भी उनके साथ हो लिया। वे बोले, आप कैसे चल रहे हैं, आप कहां जा रहे हैं? अब वे थोड़े डरे भी कि यह आदमी क्यों साथ चल पड़ा। उसने कहा, भई, अब तुम सभी ले चले तो हमने सोचा हम भी चलें। अब हमको कहां छोड़े जा रहे हो? अरे, जैसे यहां पड़े थे वहां पड़े रहेंगे, तुम्हारा कुछ हर्जा तो नहीं है। उन्होंने तत्क्षण उसका सामान रख दिया कि बाबा, तुम अपना सामान ले जाओ; सामान में कुछ है ही नहीं और उपद्रव तुम्हारा कौन सिर पर लेगा!

जब हरि तुम्हें चुरा कर ले जाता है तो कुछ भी नहीं छोड़ता, तुम्हें भी ले जाता है। और तुम्हारे पास और है भी क्या जो चुराया जा सके। तो जब हरि तुम्हारा हृदय ले जाने लगे तो इस सूफी फकीर की याद रखना, साथ हो लेना कि बाबा, हमको भी ले चलो! तुम सामान तो ले चले बाकी, विचार ले चले, भाव ले चले, यह सब ठीक है, अब हमको भी ले चलो। अब हम यहां क्या करेंगे? मगर हरि ले ही जाता है पूरा का पूरा। जब वह चुराता है तो पूरा ही चुराता है। वह कुछ छोड़ता ही नहीं।

"हरि भजते लागे नहीं काल ब्याल दुख-झाल,
तातें राम सम्हालिए दया छोड़ जगजाल।'

"जे जन हरि सुमिरन विमुख, तासूं मुखहू न बोल।' दया कहती है, उनको न समझाऊंगी जो अभी हरि की तरफ विमुख हैं। उनको समझाने से क्या सार! वे तो समझेंगे भी नहीं। वे तो उलटा ही समझेंगे। "जे जन हरि सुमिरन विमुख, तासूं मुखहूं न बोल।' और वह कहती है, तुम भी उनके साथ सिर मत पचाना। विमुख हैं, विमुख रहें। उनको हरि नहीं समझा पा रहा है तो तुम क्या समझाओगे! वे भगवान को झुठला रहे हैं तो तुमको तो झुठला ही देंगे! उनने तो जिद्द बांध रखी है। उनकी वे समझें।

"जे जन हरि सुमिरन विमुख'...। मेरा भी अनुभव यही है। जो लोग प्रभु के सन्मुख हैं, वे ही केवल समझ सकते हैं। क्योंकि यह समझ कुछ ऐसी नहीं है कि जबर्दस्ती हो सके। यह तो तुम्हारे भीतर आकांक्षा हो तो ही समझ होती है। तुम मुझे सुनते हो, अगर सहानुभूति से सुन रहे हो, गहन लगाव और प्रेम से, भक्ति से, तो जो मैं कह रहा हूं वह अमृत जैसा तुम्हारे भीतर बरसेगा। अगर तुम विरोध से सुन रहे हो, बंद सुन रहे हो, विवाद से सुन रहे हो, तो जो मैं कह रहा हूं वह तुम्हें कांटे जैसा चुभेगा।

संतों के वचन कांटों जैसे चुभेंगे उनको, जो अभी संसार में उलझे हैं। वे कहेंगे, यह भी क्या बात! जगत तरैया भोर की! हम अभी "इलेक्शन' में खड़े हुए हैं और यह जगत तरैया भोर की! हमारे मतदाताओं को मत समझा देना कि जगत तरैया भोर की! पहले दिल्ली तो पहुंच जाने दो! फिर जो कहना हो, कहना। पहले हम अपनी मंजिल तो पूरी कर लें। तो जिसको अभी संसार में रस है, उसे तो ये शब्द बड़े जहरीले मालूम पड़ेंगे। जो अभी संसार के पीछे पागल है, उसे राम का शब्द ही कड़वा मालूम पड़ता है। कान में जहर घोलता है। अब तुम खयाल रखना, तुम पर निर्भर है। अगर तुम जहर से भरे हो, तो राम जैसा प्यारा शब्द भी भीतर जहर ही घोलता है। तुम्हारा पात्र अगर पहले से ही जहर भरा है, तो इसमें अमृत डाला नहीं जा सकता।

"जे जन हरि सुमिरन विमुख'--जिन्होंने अभी प्रभु की याद नहीं की है और जिनके जीवन में अभी कोई उसकी सुधि नहीं आई है और जिन्हें समझ में भी नहीं आया है कि कुछ जैसा प्रभु है, या प्रभु की तलाश भी करनी है, जो अभी संसार में मदमस्त हैं, उनसे कहना मत। वे नींद में सो रहे हैं, उनका सपना मत तोड़ना, वे नाराज हो जाएंगे।

"रामरूप में जे पडयो, तासों अंतर खोल।' कहती है दया, जो राम-रूप में पड़ गया है, जो डुबकी लेने लगा, जिसने अपने हृदय का द्वार उसकी तरफ खोला है--"रामरूप में जो पडयो तासों अंतर खोल'--उससे ही कहना। ये बातें बड़ी भीतर की हैं।

मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं, यहां हर एक को आने की सुविधा क्यों नहीं है? यहां उनको आने की सुविधा है, जिनके मन में निश्चित ही खोज जग गई है। हर एक को आने की सुविधा होनी भी क्यों चाहिए! यह कोई तमाशा नहीं है। कुतूहलवश यहां आने का कोई प्रयोजन होना भी नहीं चाहिए। यहां कोई व्याख्यान थोड़े ही हो रहा है, यहां अंतर खोला जा रहा है। यहां उन्हीं के लिए आने की सुविधा है जो अपना अंतर खोलने के लिए तत्पर हैं, तैयार हैं। हृदय से हृदय मिल सके तो ही यहां आने का उपयोग है, अन्यथा व्यर्थ तुम्हारा समय गया, व्यर्थ मेरी मेहनत गई। और तुम उलटे मुझसे नाराज ही हो कर जाओगे। तुम कहोगे, यह भी क्या बात कही! कुछ ऐसी समझाते, कुछ मतलब की बात समझाते।

तुम तो जाते ही हो संतों के पास तो अपने ही मतलब से जाते हो। मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं, आशीर्वाद दे दें। "कम से कम इतना तो बता दो कि आशीर्वाद किसलिए मांग रहे हो?' वे कहते हैं, अब आप तो सब जानते ही हैं। "फिर भी तुम मुझे ठीक-ठीक

बता दो, क्योंकि पीछे मैं फंसू!' क्योंकि आशीर्वाद अगर लग जाए तो हम भी जिम्मेवार हुए। वे कहते हैं कि अदालत में मुकदमा है, बहुत दिन हो गए, वह अब तो निपटवा दें। अदालत में मुकदमा है, उसके लिए तुम मेरे पास आए हो! और तुम्हारे संत यह काम करते हैं--जिनको तुम संत कहते हो। अदालत में मुकदमा हो तो आशीर्वाद देते हैं, चुनाव जीतना हो तो आशीर्वाद देते हैं, बीमारी हो तो ताबीज देते हैं।

जान लेना कि जो तुम्हारे संसार में किसी तरह का सहयोग दे रहा हो, वह संत नहीं हो सकता। वह तुम्हारी दुकानदार की दुनिया का ही हिस्सा है। वह धर्म का दुकानदार है। वह भी व्यवसायी है तुम जैसा ही। वह तुमसे ज्यादा कुशल व्यवसायी है। तुम दृश्य माल बेचते हो, वह अदृश्य माल बेचता है। इसलिए अदृश्य माल को तुम पकड़ भी नहीं सकते। सावधान रहना उससे।

संत तो तुम्हें चौंकाएगा। संत तो तुम्हें चोट मारेगा। संत के साथ तो तुम तिलमिलाओगे। संत के साथ तो तुम कई बार नाराज हो जाओगे। संत के साथ से तुम कई बार भाग जाना चाहोगे। संत से तो तुम्हें भय भी होगा। संत के पास आने में तुम हजार बार सोचोगे। क्योंकि संत के पास जाने का अर्थ है, बदलाहट, रूपांतरण।

"रामरूप में जो पडयो तासों अंतर खोल'। उसके ही सामने हृदय खोला जा सकता है, ये हृदय की बातें उससे ही कही जा सकती हैं, जो राम-रूप में पड़ गया हो, जो राम के प्रेम में पड़ गया हो--"रामरूप में जो पडयो'। जिसको राम की मूरत में रस आ गया, जो प्रेमी हो गया, जिसमें दीवानगी जग गई भीतर की। "रामरूप में जो पडयो'--जिसको परमात्मा के सौंदर्य की थोड़ी-थोड़ी सुध आने लगी--राम-रूप; जिसके भीतर जगने लगी कोई अभिनव प्यास; जो कहता है ठीक है, यहां जो है ठीक है, लेकिन इससे तृप्त होने का कोई कारण नहीं, अगर यही सब कुछ है तो जीने में कोई सार नहीं। उठे सुबह रोज, गए दफ्तर, आए सांझ, खाए-पीए, सोए, फिर सुबह उठे, फिर गए दफ्तर, अगर यही सब कुछ है तो जीवन अर्थहीन है। कुछ ज्यादा चाहिए। कुछ परम अर्थ चाहिए। कोई और देदीप्यमान लोक चाहिए। कोई चैतन्य का नया विस्तार चाहिए, कोई नया आकाश चाहिए।

अगर यही सब कुछ है, यही जमीन पर सरकना, रोज सुबह-शाम, यही कीड़े-मकोड़े की जिंदगी अगर सब कुछ है, तो जीना व्यर्थ है। जिसे ऐसा समझ में आ गया--तासों अंतर खोल--उससे कह देना हृदय की बात, खोल देना हृदय की गांठ। रख देना अपना हीरा उसके सामने। संत वही करते हैं, प्रवचन थोड़े ही। जो हीरा उन्होंने पाया है, तुम्हारे सामने खोल कर रखते हैं। मगर तुम्हारी आंख तभी उस हीरे को देख पाएगी जब तुम्हें संसार में हीरा नहीं है, ऐसा दिखाई पड़ा हो। मिट्टी ही मिट्टी है। अगर तुम्हें अभी कंकड़-पत्थरों में हीरा दिखाई पड़ रहा है तो बेहतर है कि हीरा तुम्हारे सामने न खोला जाए। तुम उसे भी एक कंकड़-पत्थर समझोगे।

हीरे की पहचान, परख आ गई हो, पारखी तुम हो गए हो--रामरूप में जो पडयो तासों अंतर खोल। जिसके जीवन में प्रभु की प्रतीक्षा पैदा हो गई, उससे कहना हृदय की बात। उससे मन

खोल देना। उसके सामने उघाड़ देना सब। उसके लिए अपना सारा खजाना बता देना। उसे बुला लेना अपने भीतर के अंतरतम में, उसे अपने मंदिर में बुला लेना। कहना कि आओ भीतर, बनो अतिथि, जो मेरे भीतर हुआ है उसे देखो, परखो, पहचानो, स्वाद लो, चखो, यही तुम्हारे भीतर भी हो सकता है।

एक गाछ कचनार
प्रतीक्षा और
प्रिया,
बस एक गाछ कचनार।
द्वार खुले रखना
आएंगे लिए गंध के केतु
रंगों के बादल
मुस्कानों के चिरजीवी सेतु
एक प्रात सुकमार
प्रतीक्षा और
प्रिया,
बस एक प्रात सुकमार।
देखे रहना ज्योति
दीए को जीवित रखना रे
रात रजनीगंधा सी सहना
चुप-चुप रहना रे
एक दृष्टि रतनार
प्रतीक्षा और
प्रिया,
बस एक दृष्टि रतनार।
प्रिया,
बस एक गाछ कचनार
प्रतीक्षा और।

द्वार खुले रखना--देखे रहना ज्योति, दीए को जीवित रखना रे! संत तुम्हें अपने हृदय में बुलाता है और कहता है कि तुम जरा देख लो जो मेरे भीतर हुआ। फिर बस तुम्हारे लिए अब प्रतीक्षा हुई। अब जरा सी प्रतीक्षा करनी है तुम्हें और जो मेरे भीतर हुआ, तुम्हारे भीतर हो सकता है, क्योंकि जैसे तुम हड्डी-मांस-मज्जा के पुतले, वैसा मैं; जैसे तुम सीमाओं से लदे, वैसा मैं; जैसे तुम अंधेरे में भटकते, वैसा मैं। मेरे भीतर घट गया दीया, तुम भी मालिक हो इसके। जहां तुम कल खड़े थे, मैं भी वहीं था; जहां मैं आज खड़ा हूं, कल तुम भी वहां खड़े हो सकते हो, बस एक थोड़ी सी प्रतीक्षा और।

द्वार खुले रखना
आएंगे लिए गंध के केतु
रंगों के बादल
मुस्कानों के चिरजीवी सेतु
एक प्रात सुकमार
प्रतीक्षा और,
देखे रखना ज्योति
दीए को जीवित रखना रे
रात रजनीगंधा सी सहना
चुप-चुप रहना रे
एक दृष्टि रतनार
प्रतीक्षा और।

संत से मिलने के बाद प्रतीक्षा करना सुगम हो जाता है। बहुत सुगम हो जाता है। प्रतीक्षा में कोई पीड़ा नहीं रह जाती। प्रतीक्षा रसपूर्ण हो जाती है। क्योंकि अब भरोसा आता है, श्रद्धा आती है। मुझसे लोग पूछते हैं, संत की परिभाषा क्या? मैं कहता हूं, जिसके पास तुम्हारे जीवन में श्रद्धा का जन्म हो जाए, वही संत। जिसके पास तुम्हारी प्रतीक्षा सहज हो जाए, वही संत। जिसके पास हो कर तुम्हें लगे कि होगा, निश्चित होगा, हो कर ही रहेगा। देर-अबेर बात और, मगर होगा। होना सुनिश्चित है। आज तो आज, कल तो कल। अब तुम धैर्य से सह सकोगे। अब ऐसा नहीं है कि संदेह है। संत का अर्थ है, जिसके पास, जिसकी मौजूदगी में तुम्हारे संदेह गिर जाएं।

"रामनाम के लेत ही पातक झुरैं अनेक।'

कहती है दया, रामनाम के लेत ही...जिसके जीवन में आ गई गहन प्रतीक्षा, याद, सुधि और जिसके अंतरतम में गूंजने लगा राम का नाम, डोलने लगा भीतर जो राम के रस में, पड़ गया रामरूप में, राम के प्रेम में। "रामनाम के लेत ही पातक झुरैं अनेक'। सारे पाप जल जाते हैं, एक नाम लेने से। खयाल रखना, नाम तो तुमने भी लिया है, जले नहीं पातक। तो नाम नहीं लिया, इतना जानना।

नाम तो तुमने पी लिया है, बहुत बार लिया है, मगर लिया नहीं। ऐसे ही लिया है, ऊपर-ऊपर लिया है, गया नहीं, प्राण तुमने दांव पर नहीं लगाए, तीर चुभा नहीं। व्यावहारिक रूप से लिया है। लोग कहते थे कि लेने से लाभ होता है, इसलिए लिया है। लेकिन तुम्हारी कोई खोज नहीं है। तुम प्रेम में नहीं पड़े हो, तुम दीवाने नहीं हो। "रामनाम के लेत ही पातक झुरैं अनेक।' सारे पाप जल जाते हैं। जल ही जाने चाहिए। कोई कारण नहीं है पाप के बचने का। जैसे दीए के जलते ही सारा अंधेरा मिट जाता है। ऐसे ही रामनाम की याद के पैदा होते ही गया सब संसार। गया सब संसार और संसार में किए सब कृत्य बह गए। सब सपना था। सब अंधेरा था।

"रे नर हरि के नाम को, राखो मन में टेक'।

टेक का अर्थ होता है, करो कुछ, बोलो कुछ, उठो कि बैठो, चलो कि न चलो, भोजन करो कि सोओ, मगर राम का नाम टेक की तरह बना रहे। उस पर ही टिके रहो। वह टेक न छूटे। "रे नर हरि के नाम को राखो मन में टेक'। गीत में देखते हैं न, एक पंक्ति दुहरती है, उसको कहते हैं--टेक। वही-वही पंक्ति फिर-फिर दोहर आती है। रामनाम एक टेक बन जाए। करो कुछ--चाहे दुकान, चाहे बाजार, चाहे घर-गृहस्थी, पर सबके पीछे एक टेक बनी रहे रामनाम की, याद उसकी आती रहे। बेटे को देखो, लेकिन याद उसकी ही आए। पत्नी को देखो, लेकिन याद उसकी ही आए। पति के चरण धोओ, लेकिन चरण उसके ही धोए जाएं, याद उसकी ही आए। अतिथि को भोजन कराओ, लेकिन याद उसकी ही आए। हर तरफ से उसका ही झरोखा खुलने लगे, यह अर्थ हुआ टेक का।

और तभी तो चौबीस घंटे उसी में रमोगे। नहीं तो कभी बैठ गए मंदिर में जा कर पांच घड़ी, पांच मिनिट, गुनगुना लिया नाम, भागे, जल्दी है, हजार दूसरे काम हैं। अगर रामनाम भी एक काम है हजार कामों में, तो कभी भी गहरा न हो पाएगा। रामनाम सभी कामों में टेक बन जाए। सब कामों का अंतरतम बन जाए। जा रहे बाजार, लेकिन ऐसे ही जा रहे जैसे कि "ग्राहक रामों' से मिलेंगे। जा रहे दुकान, मगर "ग्राहक राम' आ रहे होंगे। कबीर ऐसे ही जाते थे। कहते हैं, कबीर जब जाते अपना कपड़ा बेचने तो नाचते जाते काशी में। और कोई कहता कि इतनी प्रसन्नता क्या है, साधारण सा काम, कपड़ा बेचने जा रहे! वे कहते कि राम आए होंगे, राह देखते होंगे कि कबीर जुलाहा अब तक नहीं आया, आज देर हो गई है। ग्राहक को बेचते तो उससे कहते कि राम, सम्हाल कर रखना, बड़ी मेहनत से बुना है। "झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया'। बड़े प्यार से बीनी है। बड़े रामनाम से बीनी है, जरा सम्हाल कर रखना। ऐसी बीनी है कि जनम भर काम दे, तुम्हारे बच्चों को भी काम दे।

राम की टेक बन जाए। कबीर बुनते कपड़ा और राम--आड़ा कि सीधा धागा पड़े, मगर राम हर धागे में। राम एक गुनगुनाहट बन जाए, जैसे श्वास चलती है, जैसे हृदय धड़कता है। "रे नर हरि के नाम को राखो मन में टेक'।

"नारायन के नाम बिन नर नर नर जा चित्त'।

यही मैं तुमसे इतनी देर से कह रहा हूं। जब तक प्रभु का स्मरण नहीं आया तब तक आदमी में आदमी के सिवाय कुछ भी नहीं। और आदमी में आदमी के सिवाय कुछ भी नहीं, तो कुछ भी नहीं। जरा सोचो, अगर तुम ही तुम हो तुम्हारे भीतर, तो क्या हो? "नारायण के नाम बिन नर नर नर जा चित्त'। आदमी ही आदमी, आदमी ही आदमी है तुम्हारे सिर में, और तो कुछ नहीं। तुम ही तुम, तुम्हारा मन ही मन। इसीलिए तो तुम अर्थहीन हो। अर्थ तो आता है पार से। अर्थ तो आता है दूर से। अर्थ तो आता है ऊपर से। तुम अर्थहीन हो। अर्थ कभी तुममें नहीं हो सकता, अर्थ हमेशा पार से आता है।

तुमने देखा? एक स्त्री भोजन बना रही है--खुद के लिए बना रही--तो तुम पाओगे उसके भोजन बनाने में आनंद नहीं है। बना रही है, बनाना पड़ रहा है। लेकिन उसका प्रेमी आ रहा

है आज वर्षों के बाद, तब एक पुलक है, तब वह नाच रही है, तब वह गुनगुना रही है। तब उसके भोजन बनाने में एक रस ही और है! अर्थ है आज कुछ। आज उसके पार कोई और भी जुड़ गया प्रक्रिया में। जब एक स्त्री मां हो जाती है तो उसके जीवन में एक और सुगंध आ जाती है, जो साधारण नहीं होती। एक स्त्री स्त्री है। जैसे ही एक बेटा उसको पैदा होता है, उसके जीवन में एक अर्थ आ गया। अब उसके जीवन के जीने में कुछ प्रयोजन आ गया। एक आदमी अपने लिए जीता है, तो ठीक है; फिर एक स्त्री के प्रेम में पड़ जाता है, अब उसकी गति बदल जाती है। अब उसके चेहरे पर रौनक आ जाती है। अपने से पार कुछ जुड़ गया।

और ये तो छोटी-छोटी चीजें हैं। ये भी कोई बड़ी पार की चीजें थोड़ी ही हैं। बड़ी छोटी-छोटी चीजें हैं। लेकिन तुम्हारी परिधि में तुम समाप्त नहीं हो रहे हो, एक और परिधि भी तुमसे जुड़ गई, तो अर्थ आ जाता है। एक चित्रकार चित्र बनाता है। जब चित्र बनाता है, तब उसके जीवन में एक अर्थ होता है। वह जो चित्र का सौंदर्य निर्मित हो रहा है, वह उसके ऊपर निछावर। वह अपने से कुछ बड़ी चीज बना रहा है। चित्रकार तो मर जाएगा, चित्र रहेगा। एक मूर्तिकार मूर्ति बनाता है, बुद्ध की मूर्ति बनाता है, मूर्तिकार तो मर जाएगा लेकिन यह मूर्ति रहेगी सदियों-सदियों तक। अपने से कुछ बड़ा जुड़ रहा है। तुम जब भी कुछ अपने से पार को अपने भीतर प्रवेश दे पाते हो, तब तुम्हारे जीवन में अर्थ की सुगंध आ जाती है।

तो ये तो छोटी-छोटी बातें हैं। परमात्मा तो सबसे बड़ी घटना है। जिस दिन तुम्हारे छोटे से पानी की बूंद में परमात्मा का सागर जुड़ जाता है, उस दिन तुम्हारे जीवन में अनंत अर्थ है, अनंत आकाश है, अनंत अवकाश है। तुम फैले। तुम्हारी फिर कोई सीमा नहीं। और सीमा में दुख है, असीम में आनंद है। जहां सीमा है, वहां कारागृह है। वहां दीवाल आ जाती है। जब कोई सीमा नहीं है--और परमात्मा के साथ जुड़ते ही फिर कोई सीमा नहीं रह जाती--वहीं आनंद है। "नारायन के नाम बिन नर नर नर जा चित्त'।

"दीन भये विललात हैं'। और जब तक तुम्हारे भीतर सिर्फ आदमी ही आदमी है और कुछ भी नहीं, दीन भये बिललात हैं, तब तक तुम एक भिखारी हो जो रोते और गिड़गिड़ाते ही रहोगे। "माया-बसि न थित्त'--और इस उपद्रव में, इस रोने में, इस दीनता में, इस भिखारीपन में तुम्हारा चित्त कभी थिर न हो पाएगा। एक द्वार से दूसरे द्वार भीख मांगते हुए भटकते रहोगे। "दीन भये बिललात हैं, मायाबसि न थित्त'। और जब तक माया बसी है हृदय में, तब तक तुम भिखारी हो और, चित्त कभी थिर न होगा, शांत न होगा, विराम को न पाएगा विश्राम को न पाएगा। सब विराम परमात्मा में हैं। विश्राम परमात्मा में है। तुम देखते हो, सदियों से इस देश में हम जहां परमात्मा खोजा जाता है उस स्थल को आश्रम कहते हैं। आश्रम का अर्थ होता है, जहां विश्राम है। आश्रम का अर्थ है, जहां विराम है, जहां शांति है, जहां चित्त थिर हो जाएगा। परिवर्तनशील के साथ बंधे होओ तो बिललाते रहोगे, रोते रहोगे, गिड़गिड़ाते रहोगे। शाश्वत के साथ जोड़ लो। फेरे ही डालने हैं, प्रेम की

गांठ ही बांधनी है, विवाह ही रचाना है तो कबीर कहते हैं, राम दुल्हनिया से रचा लो। फिर क्या छोटी-छोटी दुल्हन और छोटे-छोटे दूल्हे! फिर बड़ा विवाह रच जाने दो। "दीन भये बिललात हैं, माया-बसि न थित्त'।

दिल का आराम यादे-राम से है

जीस्त बाकाम उसके नाम से है।

"दिल का आराम यादे-राम से है'। तुम तभी आराम में पहुंचोगे, जब यादे-राम में पहुंच जाओ। "जीस्त बाकाम उसके नाम से है'। और इस जीवन में अर्थ उसके साथ जुड़ जाने से पैदा होता है। उसके पहले नहीं।

स्मरण रखना, जीवन एक अवसर है परमात्मा के साथ विवाह रचा लेने का। कुंवारे के कुंवारे मत मर जाना।

सहराए तेरगी में भटकती है जिंदगी

उभरे थे जो उफक पे वो महताब क्या हुए।

नहीं तो तुम ऐसे ही डूब जाओगे जैसे तारे ऊगते हैं क्षितिज पर और डूब जाते हैं--अर्थहीन ऊगते, अर्थहीन डूब जाते। आज खिलते फूल, कल मुरझा जाते। "सहराए तेरगी में भटकती है जिंदगी'। यह जो जीवन का मरुस्थल है, ऐसी ही जिंदगी भटकती रहती है--फूल खिलते, मुरझाते, गिर जाते। तुम जन्मे, मरे, फिर जन्मे, फिर मरे। ऐसा ही होता रहा है। उगे, डूबे; उगे-डूबे। सुबह हुई, सांझ हुई, ऐसा ही होता रहा है। कब तक, कब तक ऐसे ही उगते-डूबते रहोगे? अगर प्रभु से जोड़ लो नाता, तो सदा के लिए उग गए। फिर उदय ही होता है, फिर कोई अस्त नहीं।

और आज नहीं कल, जो नशा तुम्हें दिखाई पड़ रहा है कि जीवन को अर्थ दे रहा है वह जल्दी छिन जाता है। बचपन में कुछ नशे होते हैं, जवानी छीन लेती है। जवानी में कुछ नशे होते हैं, बुढ़ापा छीन लेता है। बुढ़ापे में कुछ मरे-खुरे नशे बचते हैं, मौत छीन लेती है। बचपन में बड़े नशे होते हैं, यह बन जाऊंगा, वह बन जाऊंगा।

मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे कह रहा था कि जब मैं छोटा था तो मैंने कसम खाई थी कि करोड़पति हो कर रहूंगा। फिर मैंने कहा, फिर क्या हुआ? उसने कहा, हूं जब मैं अठारह साल का हुआ तो मैंने देखा कि बजाय कसम को पूरा करने के कसम को छोड़ देना ज्यादा आसान है। करोड़पति! तो बदल लेना ज्यादा बेहतर है।

बचपन में हर आदमी सपने देखता है न मालूम क्या-क्या हो जाने के, जवानी छीन लेती है। फिर जवानी में दूसरे सपने जवानी दे देती है--प्रेम के नशे से भर देती है। बुढ़ापा उन्हें छीन लेता। फिर बुढ़ापे में कुछ थोड़े नशे रह जाते हैं--आदर, सम्मान--मौत वह भी छीन लेती है। यहां रोज नशा छिनता ही चला जाता है। समझदार वही है जो भविष्य को देख लेता है। अतीत को देखने में तो कोई समझदारी नहीं है। जो हो गया, उसको समझने में क्या कोई खाक समझदारी है! जो होने वाला है, उसको जो देख लेता है, पहले जो देख लेता है, समय के पूर्व जो जाग जाता है।

हाय वह वक्त कि जब बेपीये मदहोशी थी
हाय यह वक्त कि अब पीके भी मखमूर नहीं।
एक ऐसा वक्त आ जाता है जिंदगी में, एक ऐसा वक्त था जब बेपीए मदहोशी थी--जवानी थी और नशा चढ़ा था। फिर एक ऐसा वक्त आ जाता है कि पीओ भी तो भी नशा नहीं चढ़ता। इसके पहले कि ऐसा वक्त आ जाए, नशे ही छोड़ दो। और फिर मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम सिर्फ नशे ही छोड़ दो। मैं तुमसे कहता हूं कि एक बड़ा नशा है जो फिर कभी नहीं उतरता है। परमात्मा को पीने का नशा है। उसी को दया ने कहा, "रामरूप में जे पडयो'। एक ऐसा नशा है जो एक बार चढ़ जाए तो फिर उतरता नहीं। एक ऐसी मस्ती है जो एक बार आ जाए तो फिर जाती नहीं एक ऐसी मदहोशी है जो शाश्वत है।
दया के इन छोटे-छोटे पदों में हम उसी मस्ती को खोजने की कोशिश करेंगे। लेकिन पहला सूत्र खयाल रखना--जगत तरैया भोर की, सहजो ठहरत नाहिं; जैसे मोती की ओस पानी अंजुलि माहिं। यह पहला कदम कि जगत व्यर्थ, असार। फिर हम दूसरा कदम उठा सकते हैं कि सार क्या है, सार्थक क्या है? असत्य को असत्य की भांति पहचान लेना सत्य की तरफ पहला कदम है।
आज इतना ही।

दूसरा प्रवचन
दिनांक १२ मार्च, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

जिज्ञासाएं

प्यास जगती नहीं, द्वार खुलते नहीं।
भगवान श्री, चारों ओर आप ही आप हैं। इस आनंद-स्रोत में डूब गई हूं। लेकिन आप कहते हैं कि इससे भी मुक्त होना है। ऐसा आनंद जान-बूझ कर क्यों गंवाएं?
साक्षी-भाव साधने में कठिनाई है। क्या साक्षी-भाव के अतिरिक्त परमात्मा तक जाने का और कोई उपाय नहीं?

संसार--एक अनिवार्य यात्रा
पहला प्रश्न: प्यास नहीं जगती, द्वार नहीं खुलते।

प्यास को कोई जगा भी नहीं सकता। जल तो खोजा जा सकता है, प्यास को जगाने का कोई उपाय नहीं है। प्यास हो तो हो, न हो तो प्रतीक्षा करनी पड़े। जबरदस्ती प्यास को पैदा

करने की कोई भी संभावना नहीं है। और जरूरत भी नहीं है। जब समय होगा, प्राण पके होंगे, प्यास जगेगी। और अच्छा है कि समय के पहले कुछ भी न हो।

मन तुम्हारा लोभी है।

जैसे छोटा बच्चा है, प्रेम की बात सुने, संभोगी चर्चा सुने कि वात्स्यायन का कामसूत्र उसके हाथ में लग जाए और सोचने लगे कि ऐसी कामवासना मुझे कैसे जगे, लोभ पैदा हो जाए। लेकिन छोटे बच्चे में कामवासना पैदा हो नहीं सकती। प्रतीक्षा करनी होगी। पकेगी वीर्य-ऊर्जा, तभी कामवासना उठेगी। और जैसे कामवासना पकती है, ऐसे ही प्रभु-वासना भी पकती है। कोई उपाय नहीं है। जल्दी जगाने की आवश्यकता भी नहीं है। लेकिन सुन कर बातें लोभ पैदा होता है; मन में लगता है, कब ईश्वर से मिलन हो जाए। देखा कि दया ईश्वर का गुणगान गा रही है, मस्ती में डोलते देखा मीरा को--तुम्हारे भीतर भी लोभ सुगबुगाया। तुम्हारे भीतर भी लगा, ऐसी मस्ती हमारी भी हो। तुम्हें ईश्वर का प्रयोजन नहीं है। तुम्हें यह जो मस्ती दिखाई पड़ रही है, यह मस्ती तुम्हें आकर्षित कर रही है। मस्ती के तुम खोजी हो। शराबी को राह पर देख लिया डोलते डांवाडोल होते, तो तुम्हारे मन में भी आकांक्षा होती है, ऐसी भावविभोर दशा हमारी भी हो। शराब से तुम्हें मतलब नहीं है। शराब का शायद तुम्हें पता भी नहीं है, लेकिन इस आदमी की मस्ती तुम्हारे मन मेंर् ईष्या जगाती है।

खयाल रखना; संतों के पास जा करर् ईष्या भी जग सकती है, प्रार्थना भी जग सकती है।र् ईष्या जगी तो अड़चन आएगी। तब तुम्हारे भीतर एक बड़ी बेचैनी पैदा होगी कि प्यास तो है नहीं। और प्यास न हो तो जलधार बहती रहे, करोगे क्या? कंठ ही सूखा न हो तो जलधार का करोगे क्या? और बिना प्यास के जल पी भी लो तो तृप्ति न होगी, क्योंकि तृप्ति तो अतृप्ति हो, तभी होती है। तो पानी पी कर शायद वमन करने का मन होने लगे।

नहीं, जल्दी करना ही न। धैर्य रखना, भरोसा रखना। जब समय होगा, जब तुम राजी हो जाओगे, पकोगे। और पकने का अर्थ समझ लेना। पकने का अर्थ है: जब तुम्हें संसार के सारे रस व्यर्थ मालूम होने लगेंगे, तब रस जगेगा प्रभु का। तुमने अभी संसार के रसों की व्यर्थता नहीं जानी। मैंने कह दिया व्यर्थ हैं, इससे थोड़े ही व्यर्थ हो जाएंगे। मेरे कहने से तुम्हारे लिए कैसे व्यर्थ होंगे? बूढ़े तो समझाए जाते हैं बच्चों को कि खिलौने व्यर्थ हैं। क्या बैठे फिजूल के खिलौनों के साथ समय खराब कर रहे हो! इनमें कुछ सार नहीं है। लेकिन बच्चों को तो खिलौनों में सार दिखाई पड़ता है।

एक छोटा बच्चा अपनी गुड़िया से बातें कर रहा है। उसकी मां उससे बोली कि बंद कर यह बकवास! वह भागा। मां भी न समझी कि इतनी तेजी से क्यों भागा। फिर थोड़ी देर में लौट आया, बोला: "अब क्या कहना है?' बिना गुड़िया के आया। तो उसकी मां ने कहा कि तू इतनी जोर से भागा क्यों? उसने कहा: "गुड़िया सुन लेती तो दुखी न होती? उसको मैं सुला आया। अब बोल, तुझे क्या कहना है?'

तुम्हें लगता है, वह व्यर्थ बातें कर रहा है। लेकिन उसके लिए गुड़िया अभी जीवित है। अभी गुड़िया को चोट पहुंचेगी। यह बात ही कि गुड़िया से बात न करो, गुड़िया रूठ जाएगी, नाराज हो जाएगी।

जो बच्चे का सत्य है वह बूढ़े का सत्य तो नहीं है। जो बूढ़े का सत्य है वह बच्चे का सत्य तो नहीं है। और कोई बच्चा अगर जबर्दस्ती मान कर बूढ़ों की बातें कि ठीक ही कहते होंगे; सयाने हैं, ठीक ही कहते होंगे--फेंक आए गुड़िया को तो भी रात सो न सकेगा। नींद टूट-टूट जाएगी। "गुड़िया का क्या होता होगा! रात अंधेरे में कोई सताता तो न होगा! रात अंधेरे में डरती तो न होगी! रात अंधेरे में वर्षा होती है, भीगती तो न होगी! कोई जानवर, कोई दुष्ट कष्ट तो न देता होगा!' रात सो न सकेगा, सपने में गुड़िया ही गुड़िया होगी। अभी गुड़िया को छोड़ने का वक्त न आया था। एक दिन आता है वक्त। एक दिन न गुड़िया ने कभी कुछ सुना है। मुस्करा कर अपनी ही की गई नासमझियों पर हंस कर गुड़िया को एक कोने में डाल कर विदा हो जाता है। फिर उस तरफ नजर भी नहीं जाती।

ऐसा ही जीवन के संबंध में भी है।

तुम्हारी कठिनाई मैं समझता हूं। तुम सुख के लोभी हो। धन में, पद में, जगह-जगह सुख खोज रहे हो। वहां अभी सुख मिला नहीं। और अभी ऐसा भी अनुभव नहीं हुआ कि वहां सुख मिल ही नहीं सकता। यही तुम्हारा द्वंद्व है। सुख मिला भी नहीं। मिल तो सकता ही नहीं। किसी को कभी भी नहीं मिला। तुम कितने ही बच्चे हो और कितना ही तुम्हारा भरोसा हो कि गुड़िया बोलेगी--गुड़िया कभी बोली नहीं, कभी बोलती नहीं। कोई उपाय नहीं है। सुख तो कभी किसी को वहां मिला नहीं। तुम्हें भी नहीं मिला है, लेकिन तुम्हारी आशा नहीं मरी है अभी। तुम सोचते हो, मिल सकता है। गुड़िया बोलेगी। थोड़ी और चेष्टा करूं। थोड़ा और समझाऊं-बुझाऊं, थोड़ी ओर प्रतीक्षा करूं। शायद मैंने श्रम ठीक से नहीं किया; जितना करना था उतना नहीं किया। शायद मेरी दौड़ अधूरी है। मैं ठीक से दौड़ा नहीं। प्राणपण लगाए नहीं दांव पर। एक बार और दांव पर लगा कर देख लूं।

तुम्हारी आशा नहीं मरी है। तुम्हारी आशा परिपूर्ण रूप से जीवित है। उसी आशा में संसार है। उसी आशा में! जिस दिन तुम्हारी आशा टूट जाएगी...और आशा टूटने का मतलब यह नहीं है कि किसी को सुन कर टूट जाएगी। तो फिर बूढ़े की बात से बच्चा बूढ़ा हो जाता है। अगर किसी की बात सुन कर टूटी तो टूटेगी नहीं। तुम मंदिर में बैठ जाओगे, याद बाजार की करोगे। संन्यास ले लोगे, त्यागी हो कर हिमालय की गुफा में बैठ जाओगे, याद बच्चों-पत्नी की आएगी। और इसमें कुछ भी गलती नहीं है। यह बिलकुल स्वाभाविक है। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि तुम गलती कर रहे हो।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपनी टूटी-फूटी घड़ी को ले कर घड़ीसाज के पास गया। घड़ी ऐसी हालत में हो गई थी कि पहचान में भी न आती थी कि कभी घड़ी रही होगी। सात-मंजिल मकान से गिर गई थी। जेबघड़ी थी। कुछ देखने को झांकता था खिड़की से, कुछ ज्यादा झांक गया, घड़ी खिसक गई। अब सात-मंजिल से गिरी थी तो सब तहस-नहस हो गई थी।

घड़ीसाज की टेबल पर जब उसने घड़ी रखी--घड़ी यानी बहुत से कल-पुर्जे, टूटे-फूटे कांच के टुकड़े, सब तुड़े-मुड़े--तो घड़ीसाज ने भी गौर से अपना चश्मा ठीक करके देखा कि क्या चीज है! उसने पूछाः "बड़े मियां, क्या है?' तो नसरुद्दीन ने कहाः "अरे, हद हो गई! देखा नहीं कि जेबघड़ी है?' घड़ीसाज बोलाः "अरे, तुमने...।' इतना ही वह कह पाया था कि अरे तुमने...कि मुल्ला ने समझा कि वह कह रहा है कि अरे तुमने गिरने क्यों दी? तो मुल्ला बोलाः "क्या कर सकता था! गिर गई। सात-मंजिल मकान की खिड़की से झांकता था, चूक हो गई।' घड़ीसाज ने कहाः गिरने की तो मैं कह ही नहीं रहा। मैं यह कह रहा हूं कि तुमने उठाई क्यों? अब इसको उठाने में सार क्या है?

तुम जिस दिन जाग कर देखोगे, उस दिन तुम पाओगे जीवन में कुछ था ही नहीं। तो तुम उस दिन ऐसा थोड़े ही करोगे कि छोड़ दें; तुम उस दिन सोचोगे कि इतने दिन पकड़े कैसे रहा! घड़ी उठाई ही क्यों! ऐसा थोड़े ही है कि उस दिन तुम विचार करोगे कि अरे, त्याग महान है। उस दिन तुम्हारे मन में सवाल उठेगा कि इतने दिन तक भोग में डूबा कैसे रहा? यह हुआ कैसे? इतना अंधा था? इतना अंधेरे में था? इतना बेहोश था कि जहां कुछ भी न था...?

पश्चिम में कहावत है कि दार्शनिक ऐसा आदमी है जो अंधेरी अमावस की रात में एक काली बिल्ली को खोज रहा है, जो वहां है ही नहीं। मिलने का तो कोई उपाय ही नहीं है। लेकिन अंधेरा गहरा है। और तुम्हारी धारणा है कि बिल्ली काली है, तो खोज जारी है; दिखाई नहीं पड़ रही है, खोजेंगे तो मिल जाएगी। किसी को कभी नहीं मिली। मगर किसी और की सुन कर कमरे के बाहर मत निकल आना, अन्यथा भटकोगे; अन्यथा लौट-लौट कर कमरे में आ जाओगे। नहीं भी आए भौतिक रूप से तो मन आएगा, चिंतन आएगा, विचार आएगा, स्वप्न आएगा। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि तुम स्त्री के साथ आंख खोल कर बैठते हो कि आंख बंद करके बैठते हो। इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम वस्तुतः धन को गिनते हो कि कल्पना में धन के सिक्के गिनते हो? इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि धन मात्र कल्पना है। वे जो नगद सिक्के मालूम पड़ते हैं, बजते हैं पत्थर पर पटको तो, वे भी उतनी ही कल्पना हैं जितनी आंख बंद करके जब तुम सिक्के गिनते हो। दोनों ही कल्पना हैं। मगर मेरे कहने से कल्पना न हो जाएगी।

अनुभव उधार नहीं लिए जा सकते।

तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूं। कहते होः "प्यास नहीं जगती, द्वार नहीं खुलते।' तुम उधार अनुभव की आकांक्षा कर रहे हो। उधारी से बचो। उधारी ने ही मारा। उधारी ने ही इतने दिन भटकाया। अब उधारी बंद करो। अब तो अगर तुम्हें लगता है कि इस संसार में कुछ सुख है तो पूरी कोशिश कर लो। पूरी कर लेना--तन, मन, प्राण से। रत्ती भर बाकी मत रखना। क्योंकि बाकी रखा ही सताएगा। बाकी रखा ही पीछा करेगा। संसार पीछा नहीं करता। संसार में तुम जहां नहीं दौड़े, जो कोने अधूरे रह गए, बिना दौड़े रह गए, वही पीछा करते हैं। जो

जान लिया उससे तो छुटकारा हो जाता है। जो अनजाना रह गया उसी के साथ बंधन बंधे रह जाते हैं।

तो तुम उतरो। प्यास नहीं जगती, जगाओ ही क्यों? अभी संसार की प्यास होगी। दोनों प्यास साथ-साथ नहीं हो सकतीं। असत्य की जब तक प्यास हो तब तक सत्य की प्यास नहीं हो सकती। जब तक झूठ को पीने में रस हो तब तक सच को पीने में रस नहीं हो सकता। तो अभी झूठ में रस है। अभी अहंकार में रस है। अहंकार यानी झूठ। अभी पद मिले, प्रतिष्ठा मिले, सिंहासन मिले--अभी अहंकार में रस है। इस रस को अनुभव कर लो। और डर कुछ भी नहीं है, क्योंकि रस वहां है नहीं। बिल्ली कमरे में है नहीं। इसलिए मैं कहता हूं हिम्मत से खोज लो, कोना-कोना खोज लो। पूरे रत्ती-रत्ती को खोज डालो।

तुम्हारे और महात्मा बहुत डरे हुए हैं। तुम्हारे महात्मा भी उधार मालूम होते हैं। वे तुमसे कहते हैं, मत जाओ संसार में, उलझ जाओगे। मैं तुमसे कहता हूं, जाओ, उलझ कैसे सकते हो! उलझाने योग्य वहां है क्या? हां, अगर न गए पूरे-पूरे तो उलझे रह जाओगे। तो मन सदा कहता रहेगा: "काश, गए होते! शायद मिल जाता! कौन जाने, कुछ हिस्सा अनजाना रह गया, वहीं हो संपदा, उसी जगह से चूक गए हों!' तुम्हें पक्का भरोसा कैसे आएगा कि वहां बिलकुल नहीं था सत्य, झूठ ही झूठ का फैलाव था, प्रपंच ही प्रपंच था?

तो मैं तुमसे कहता हूं: जाओ! जहां रस हो वहां जाओ। रस को बदलने की चेष्टा मत करो। कहीं तो रस होगा। ऐसा तो कोई आदमी नहीं है जिसका रस कहीं न हो। क्योंकि ऐसा आदमी जी ही नहीं सकता, एक क्षण नहीं जी सकता। श्वास ही क्यों लेगा ऐसा आदमी जिसका कोई रस नहीं है। सुबह उठेगा क्यों दुबारा? चलेगा क्यों? आंख क्यों खोलेगा? जिस आदमी का कोई भी रस नहीं है वह तो उसी क्षण मृत हो जाएगा। उसी क्षण! एक क्षण भी जीने का कोई उपाय नहीं। जिजीविषा चली जाए तो जीवन चला जाता है।

तो तुम्हारा रस कहीं होगा। तुम्हारी तकलीफ मैं समझता हूं। तुम्हारा रस तो तुम्हें दौड़ा रहा है धन, पद की तरफ और तुम्हारे महात्मा तुम्हें पकड़े हैं पीछे से। वे कह रहे हैं, "कहां जा रहे हो? वहां कुछ भी नहीं हैं।' तुम दुविधा में पड़ गए हो: "महात्मा की सुनें? बात तो लगती है कि महात्माओं की ही ठीक होगी--भले, सज्जन लोग!' मगर तुम्हारा दिल कहता है: अभी खोज लो।

मस्जिद में मौलवी बोला। बोलने के बाद उसने कहा: "जो लोग स्वर्ग जाना चाहते हों, खड़े हो जाएं।' मुल्ला नसरुद्दीन को छोड़ कर सभी लोग खड़े हो गए। मौलवी थोड़ा हैरान हुआ। जब सब बैठ गए तो मौलवी ने कहा: "अब जो नरक जाना चाहते हैं, वे खड़े हो जाएं।' कोई भी खड़ा न हुआ। मुल्ला फिर भी बैठा रहा। तो मौलवी ने कहा: "मुल्ला, क्या इरादा है? कहीं नहीं जाना?' मुल्ला ने कहा: "जाना तो स्वर्ग ही है, लेकिन अभी नहीं। और आप तो कुछ ऐसा कह रहे हैं जैसे कि बस खड़ी हो बाहर और लोग जाने कि तैयारी में हों। अभी नहीं! जाना तो स्वर्ग ही है, लेकिन अभी नहीं। अभी बहुत कुछ करने को यहां बाकी है। अभी मन भरा नहीं।'

...ज्यादा ईमानदार आदमी है। जो लोग बड़े हो गए थे, उनको भी अगर पक्का पता हो कि बस बाहर खड़ी हो गई है तो वे भी बैठ जाएंगे। वे भी सिर्फ आकांक्षा प्रगट कर रहे हैं कि हम स्वर्ग जाना चाहते हैं, लेकिन अभी नहीं। अभी कौन स्वर्ग जाना चाहता है! अभी तो संसार में बहुत कुछ बाकी है। अभी इरादे बाकी हैं। अभी अभिलाषाएं बाकी हैं। अभी सपने टूटे कहां? अभी तो सपनों के इंद्रधनुष फैले हैं! अभी तो बड़े सेतु हैं। अभी तो दूर क्षितिज पर दिखाई पड़ रहे हैं मरूद्यान। अभी तो लगता है: "यह पहुंचे, यह पहुंचे! दिल्ली कितनी ही दूर हो, दूर नहीं है। ऐसा लगता है कि पास ही हैं--पहुंचे, पहुंचे जाते हैं। दो कदम और कि चार कदम और। पहुंच ही जाएंगे। थोड़ा श्रम, थोड़ी मेहनत, थोड़ी प्रतीक्षा...।' मन ऐसा कहे चले जाता है।

तुम्हारा रस संसार में है। फिर, सांसारिक लोगों के चेहरों को देखते हो तो लगता है कि मिलेगा शायद ही। क्योंकि इनमें से किसी को भी नहीं मिला। महात्माओं को देखते हो, संतों को देखते हो--लगता है, शायद इन्हें मिला हो! शांत, आनंदित! मगर अपने भीतर तुम्हारा अनुभव कहता है: अभी नहीं, अभी नहीं; और थोड़ा खोज लो। कौन जाने, जो किसी को भी नहीं मिला, वह तुम्हें मिल सकता हो।

मन की एक बड़ी गहरी बात है। और वह गहरी बात यह है कि मन कहता है, तुम अपवाद हो सकते हो। माना किसी को न मिलेगा; लेकिन इससे क्या यह सिद्ध होता है कि तुम्हें भी न मिलेगा?

मन का एक नियम है कि वह सदा तुम्हें छिपाता है। वह कहता है: तुम अपवाद हो सकते हो। सारे लोग मरे, पृथ्वी कब्रिस्तान है। रोज कोई मरता है, लेकिन तुम्हारा मन तुमसे कहता है: और लोग मरते हैं, तुम थोड़े ही मरते हो! तुम कहां मरे? अब तक तुम कहां मरे? कभी अपने को मरा देखा? तो हो सकता है तुम न मरो!

मरने के आखिरी क्षण तक आदमी यह सोचता रहता है कि मौत सदा दूसरे की होती है, अपनी थोड़े ही। अर्थी किसी और की उठती है, अपनी थोड़े ही। दूसरों को मरघट पहुंचा आते हो तुम; तुमको किसी ने अभी मरघट पहुंचाया? भीतर एक आशा जगी रहती है कि शायद परमात्मा तुम्हें इस नियम से मुक्त रखेगा।

जब चोर चोरी करने जाता है तो वह भी जानता है कि चोर पकड़े जाते हैं। पर वह सोचता है शायद मैं न पकड़ा जाऊं। और पकड़े जाते हैं, पकड़े जाते होंगे--कुशल नहीं, कला नहीं आती।

जब हत्यारा किसी की हत्या करता है तो जानता है कि हत्या का क्या परिणाम हो सकता है। लेकिन सोचता है: "मैं पकड़ा जाऊंगा? नहीं, सारा इंतजाम कर लूंगा। पकड़ना संभव नहीं होगा।'

तुम रोज इस नियम का उपयोग करते हो। कल भी क्रोध किया था, परसों भी किया था। हर बार क्रोध करके दुख आया, आज फिर क्रोध कर रहे हो। फिर भी सोचते हो, शायद इस बार दुख न हो, शायद इस बार पछतावा न हो। कितनी बार कांटे हाथ में चुभे और कितनी बार

लहू बहा; मगर इस बार सोचते हो, फिर कांटे से खेल लें, शायद इस बार कांटा फूल बने, शायद कांटा इस बार दया करे। शायद अब तुम इतने कुशल हो गए हो जीवन के अनुभव से कि अब कांटा तुम्हें न सता पाए। ऐसे मन बचाए चला जाता है।

जिस व्यक्ति को संसार में जीवन का शाश्वत नियम दिखाई पड़ जाता है कि मैं भी अपवाद नहीं हूं; मेरी भी मौत होगी; मैं भी मिट्टी में गिरूंगा; आज नहीं धूल में पड़ा रहूंगा; यहां पद और प्रतिष्ठाएं कहीं भी मुझे बचाने वाली नहीं हैं; कितना ही धन हो तो भी मौत से कोई सुरक्षा नहीं है--जिस दिन व्यक्ति को ऐसा साफ-साफ दिखाई पड़ जाता है, उस दिन जीवन में एक क्रांति घटती है। उस दिन जो सारी प्यास नियोजित थी संसार की तरफ, बाहर की तरफ, वही सारी प्यास भीतर की तरफ नियोजित हो जाती है, परमात्मा की तरफ नियोजित हो जाती है।

प्रतीक्षा करो।

आशिकी जाफजां भी होती है और सब्र आजमां भी होती है।

रूह होती है कैफ परवर भी और दर्द आशनां भी होती है।।

प्रेम बेचैन भी होता है पाने को।

आशिकी जाफजां भी होती है और सब्र आजमां भी होती है।

प्रेम बेचैन होता है पाने को; और फिर भी धैर्यवान होता है, प्रतीक्षा करता है। प्रेम के दो विरोधी पहलू हैं। प्रेम बेचैन होता है, आतुर होता है--मिल जाए! और साथ ही प्रतीक्षातुर होता है। अगर जन्मों-जन्मों तक भी प्रतीक्षा करनी पड़े तो प्रेम प्रतीक्षा भी करता है। यह विरोधाभास है; ऊपर से तुम्हारी समझ में न आएगा।

तुमने देखा प्रेयसी को द्वार पर बैठे अपने प्रेमी की प्रतीक्षा करते! कैसी बेचैन! सूखा पत्ता भी हिलता है तो उठ कर खड़ी हो जाती है कि शायद प्रेमी आ गया! हवा का झोंका लगता है द्वार पर, दौड़ कर आती है, खोलती है द्वार--शायद प्रेमी आ गया!

तुमने देखा नहीं, कभी किसी पत्र की प्रतीक्षा कर रहे, कोई राह से गुजरता है--भाग कि कहीं डाकिया तो नहीं आ गया! हजार काम में लगे रहते हो, लेकिन मन द्वार पर लगा रहता है, मेहमान आता न हो, आ न गया हो! कहीं ऐसा न हो कि तुम उलझे रहो, मेहमान आए और चला जाए! कहीं ऐसा न हो कि तुम स्वागत को मौजूद न रहो! बड़ी बेचैनी होती है, त्वरा होती है; लेकिन साथ ही बड़ी सब्र भी होती है। अगर जन्मों-जन्मों तक भी ऐसी प्रतीक्षा करनी पड़े तो भी प्रतीक्षा में रस भी है। प्रतीक्षा करेंगे!

तो प्रेम में अधैर्य भी है और धैर्य भी। प्रेम विपरीत का संगम है।

तो एक तो अगर प्यास पैदा नहीं हुई तो घबराओ मत। जल्दबाजी भी न करो। जीवन के अनुभव को भोगो। अगर सोचते हो कि संसार से तो छूट गया है रस--सुन कर नहीं, जान कर; अगर सोचते हो कि संसार तो विरस हो गया है तो फिर थोड़ा सा सब्र रखो। आता ही होगा--दूसरा रस आता ही होगा। थोड़ी सब्र रखो। दोनों के बीच थोड़ा सा अंतराल भी होता है

कभी। दोनों यात्राओं के बीच थोड़ा सा विराम भी होता है। एक दौड़ समाप्त होती है, दूसरी दौड़ शुरू हो, इसके बीच-बीच में थोड़ा पड़ाव भी होता है।

हो सकता है, तुम्हारा रस सच में ही समाप्त हो गया हो संसार से, तो फिर घबराओ मत; फिर थोड़ा धैर्य, थोड़ा सब्र, थोड़ी प्रतीक्षा...जल्दी ही दूसरी दौड़ शुरू होगी। बाहर दौड़ते रहे सदा, अब रुकावट आ गई, तो ऊर्जा को थोड़ा मौका दो--मुड़ने का, पीछे की तरफ जाने का, नई आदत बनाने का, नई शैली नया ढंग सीखने का, नई दिशा खोजने का। थोड़ा मौका दो।

साधारणतः आदमी ऐसा है जैसा फोर्ड ने सबसे पहली कार बनाई तो उसमें रिवर्स गियर नहीं था। खयाल नहीं था। आगे जाने के लिए तो गियर था, पीछे जाने के लिए कोई गियर नहीं था। यह तो अनुभव से आया समझ में कि यह तो बड़ी झंझट की बात है; आगे तो चले गए, फिर घर लौटना...तो मीलों का चक्कर लगा कर आना पड़ता, पीछे लौटने का उपाय ही नहीं। अगर अपने गैरेज के भी बाहर निकाल लिया और गैरेज में गाड़ी रखनी है तो भी पूरे गांव का चक्कर लगा कर आओ, तब गाड?ी रख सकते हैं, नहीं तो रख नहीं सकते। तो फिर रिवर्स गियर डाला।

अब तुम्हारे मन की जो गाड़ी है, जन्मों-जन्मों से बिना रिवर्स गियर के चलती है; उसमें कोई रिवर्स गियर नहीं है; बस आगे की तरफ जाती है; बाहर की तरफ जाती है; दूसरे की तरफ जाती है, अपनी तरफ तो आने का कोई उपाय ही नहीं है। अपने गैरेज में तो आने की तुमने कभी सोची ही नहीं। अभी तो तुम सारे संसार का चक्कर लगाओगे, तभी अपने पर आ पाओगे। और संसार बड़ा है; जनम-जनम लग जाते हैं तो भी चक्कर पूरा नहीं होता, विराट है।

तो कभी ऐसा भी हो सकता है, तुम्हारा बाहर से रस सच में चला गया; लेकिन थोड़ी देर लगेगी कि रिवर्स गियर पैदा हो जाएगा। संभावना तो है, जंग खा गया है। पड़ा तो है भीतर, क्योंकि परमात्मा ने तुम्हें बाहर ही जाने के योग्य बनाया, ऐसा नहीं; तुम्हें भीतर जाने के योग्य भी बनाया। अंततः तो भीतर जाना ही है। इसलिए तुम्हारे यंत्र में कोई भूल-चूक नहीं, लेकिन अनुपयोग से, जन्मों-जन्मों तक भीतर मुड़ने की चेष्टा कभी तुमने की नहीं, लौट कर कभी देखा नहीं। जैसे एक आदमी कभी गर्दन लौट कर न देखे तो गर्दन अकड़ जाएगी। फिर अचानक वर्षों के बाद एक दिन तुम पीछे लौट कर देखना चाहो, गर्दन जवाब देगी, मांस-पेशियां सख्त हो गईं।

ठीक ऐसी ही मन की दशा है। तो थोड़ा सब्र, थोड़ी प्रतीक्षा...।

"प्यास नहीं जगती, द्वार नहीं खुलते।'

द्वार कैसे खुलें? प्यास ही तो चोट है द्वार पर। जब तुम प्यासे हो कर तड़पते हो, जब तुम प्यासे हो कर मछली की तरह तड़पते हो, जैसे मछली को किसी ने पानी से निकाल कर तट पर डाल दिया हो--जब संसार तुम्हारे लिए ऐसा हो जाता है जैसे मछली के लिए जलती हुई

रेत और तुम परमात्मा के लिए ऐसे तड़पते हो जैसे मछली वापस सागर में उतर जाने को तड़पती है, उसी तड़पन में तो तुम दरवाजे पर चोट देते हो।

जीसस ने कहा है: खटखटाओ और द्वार खुल जाएंगे। लेकिन खटखटाने का मतलब? यहां कोई भौतिक द्वार थोड़े ही लगे हैं कि तुम गए और सांकल पकड़ी और खटखटा दी। यह भीतर के द्वार की बात हो रही है। यहां कोई भौतिक द्वार नहीं है, न कोई सांकल लटकी है जिसे तुम खटखटा दो। यह तो जब तुम्हारे प्राणपण से उठेगी एक अभीप्सा...जैसे तुमने पत्नी को चाहा, बच्चे को चाहा, धन, पद को चाहा, संसार को चाहा, जिस दिन तुम्हारी सारी चाहत एक धारा में गिर जाएगी और तुम परमात्मा को चाहोगे, उसी दिन द्वार खुल जाएगा। उतनी बड़ी धारा के सामने कौन द्वार अटका रह सकता है, कौन द्वार अड़ा रह सकता है! पूर आ गया, बाढ़ आ गई, तुम्हारी सारी ऊर्जा चली बह कर, सब द्वार-दरवाजे टूट जाते हैं। और द्वार कुछ लगा थोड़े ही है, कुछ ताले थोड़े ही पड़े हैं। परमात्मा अपने-आप को तुमसे बचा थोड़े ही रहा है। परमात्मा तो तुम्हें पुकार रहा है, तुमने ही नहीं सुना। परमात्मा तो रोज तुम्हारे द्वार खटखटा रहा है, लेकिन तुम जब तक परमात्मा के द्वार पर खटखटाओ न, तब तक मेल न होगा, मिलन न होगा। कैसे हो?

तो प्यास अगर न जगे तो निश्चित ही द्वार भी नहीं खुलते। तो दो बातें। एक--अगर संसार में रस हो तो जल्दी मत करो। परमात्मा ने संसार दिया ही इसलिए है कि ताकि तुम इसके अनुभव से गुजरो, ताकि इसका अनुभव तुम्हें बता दे कि बाहर कुछ भी नहीं है, पाने योग्य कुछ भी नहीं है। दौड़ है खाली, रिक्त! हाथ खाली के खाली रह जाते हैं, प्राण कभी भरते नहीं।

संसार एक अनुभव है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने छोटे बेटे को कहा कि तू सीढ़ी पर चढ़ जा। वह सीढ़ी पर चढ़ गया। मुल्ला ने उससे कहा कि अब तू कूद जा, आ मेरे हाथ में कूद जा। बेटा थोड़ा डरने लगा। उतने ऊपर से कूदे, कहीं हाथ से खिसक जाए, गिर जाए। मुल्ला ने कहा: "डरता क्या है? अरे, अपने बाप पर भरोसा नहीं?' बेटा कूदा और मुल्ला हट गया। धड़ाम से जमीन पर गिरा, रोने लगा और कहने लगा कि यह आपने क्या किया? मुल्ला ने कहा कि एक पाठ सिखाया: अपने बाप का भी भरोसा मत करना। भरोसा करना ही मत। यह बुद्धिमान आदमी का लक्षण है। समझा?

परमात्मा ने संसार बनाया--एक अनुभव है। यहां बाहर का भरोसा मत करना। यहां बड़े प्रलोभन हैं, सुंदर प्रलोभन हैं। दूर के ढोल हैं और बड़े सुहावने हैं। बस दूर से ही सुहावने हैं, पास गए, जैसे-जैसे पास गए, सब सुहावनापन खो जाता है। जब बिलकुल पहुंच जाते हो तो मृगमरीचिका सिद्ध होती है।

और संसार को बनाया इसलिए कि जो वास्तविक धन है वह तुम्हारे भीतर है। और जब तक तुम बाहर खोजते रहोगे, निर्धन रहोगे। जिस दिन बाहर की सारी खोज से तुम थक

जाओगे, थके-मांदे बाहर की खोज को छोड़ दोगे, बंद करोगे आंख, डूबोगे अपने में--पाओगे, सब धनों का धन वहां मौजूद था।

तुम्हें परमात्मा ने सम्राट बना कर भेजा। लेकिन सम्राट होने की क्षमता तुममें आएगी तभी जब तुम बाहर के सब भिखमंगेपन का अनुभव ले लो। भिखमंगा हुए बिना सम्राट होने का अनुभव नहीं आता। जिसने अंधेरा नहीं देखा, उसे रोशनी दिखाई नहीं पड़ सकती। और जिसने कांटा नहीं जाना, उसे फूल के सौंदर्य का पता नहीं हो सकता। जिसने व्यर्थता को अनुभव नहीं किया उसके जीवन में सार्थकता का अवतरण नहीं हो सकता है।

मुझसे लोग पूछते हैं कि संसार आखिर है ही क्यों? संसार इसीलिए है कि ताकि विपरीत का तुम्हें अनुभव हो जाए। देखते हैं न कि स्कूल में बच्चों को हम पढ़ाते हैं तो काले ब्लैक-बोर्ड पर सफेद खड़िया से लिखते हैं। सफेद बोर्ड पर भी लिख सकते हैं; लिख तो जाएगा, लेकिन पढ़ा नहीं जा सकेगा। तुम कभी नहीं पूछते कि काले तखते पर क्यों लिखते हैं? काले तखते पर सफेद अक्षर उभर कर दिखाई पड़ते हैं। सफेद तखते पर लिखोगे तो काले अक्षर से लिखना पड़ेगा, तब उभर कर दिखाई पड़ेंगे।

यह संसार ब्लैक-बोर्ड है। इसमें तुम्हारे जीवन की जो ऊर्जा है वह शुभ्र प्रगट हो सकती है। इसके बिना प्रगट नहीं होगी।

संसार का दुख पृष्ठभूमि है। इसी पृष्ठभूमि में सच्चिदानंद प्रगट होता है। और कोई उपाय नहीं है। मृत्यु की पृष्ठभूमि में ही जीवन प्रगट होता है। असफलता में ही सफलता, विषाद में ही आनंद, खोने में ही पाने का पता चलता है। प्यासे होओगे, तभी तो कंठ तृप्त होगा। भूखे होओगे, तभी तो संतुष्टि होगी।

यह संसार परमात्मा का ही उपाय है। इस संसार में गए बिना तुम कभी अपने पर न आ सकोगे। अगर नहीं गए हो संसार में, अभी भी मन में कुछ रस-लगाव रह गया है--जाओ! बेझिझक जाओ! मत सुनो किसी और की। सुन भी लो सबकी तो भी गुनो अपनी। जाओ जब तुम्हीं पाओगे कि यह रेत ही रेत है और रेत से तेल नहीं निचुड़ता, उस दिन तुम आओगे। उस दिन ही शास्त्र जो कहते हैं, वह तुम्हारी समझ में आएगा। उस दिन द्वार खुल जाएंगे। उस दिन द्वार पर जरा भी बाधा नहीं पाओगे। द्वार खुले ही हैं।

बहकीं बगियां महकीं कलियां
गूंजे आंगन, झूमीं गलियां
खुलीं न मेरी किंतु कंवरियां
सांकल कौन लगाई कि खोलत उम्र सिराई!
ऐसी सुध बिसराई कि पाती तक न पठाई।
मन की कुटिया सूनी-सूनी
बनी चंदन की धुनी
बहुत हुई प्रिय आंख-मिचौनी
अब तो हो सुनवाई

सुबह संध्या बन आई
ऐसी सुध बिसराई कि पाती तक न पठाई!
जब सुबह सांझ बन जाएगी खोजते-खोजते, जब हारे-थके, दौड़ते-दौड़ते तुम गिर पड़ोगे, उसी क्षण सांकल खुलेगी, द्वार खुलेगा। उसी क्षण प्रभु अवतरित होता है।
संसार का प्रगाढ़ अनुभव प्रभु को खोज लेने की अनिवार्य प्रक्रिया है। परमात्मा के विपरीत नहीं है संसार; परमात्मा को खोजने की व्यवस्था है संसार। तब तुम्हारी पूरी दृष्टि बदल जाएगी।
तुम्हारे तथाकथित महात्मा तुम्हें जो कहते हैं उसमें बहुत मूल्य नहीं है। वे तो तुम्हें ऐसा समझाते हैं कि संसार परमात्मा का दुश्मन है और परमात्मा संसार का दुश्मन है। यह बात बड़ी अजीब है। और तुम कभी उनसे पूछते भी नहीं, क्योंकि वे ही तुम्हें यह भी समझाते हैं कि संसार परमात्मा ने ही बनाया। वही स्रष्टा है। और फिर यह भी समझाते हैं कि संसार परमात्मा का दुश्मन है। ये दोनों बातें ठीक हो नहीं सकतीं। अगर उसने ही बनाया तो दुश्मन कैसे होगा? और अगर दुश्मन है तो उसने कैसे बनाया होगा?
नहीं, संसार परमात्मा का दुश्मन नहीं है। संसार परमात्मा की तरफ जाने की अनिवार्य यात्रा है। अनिवार्य यात्रा! छोड़-छाड़ कर भाग कर बीच से परमात्मा को न पा सकोगे। यह परीक्षा है, इससे गुजर जाना जरूरी है।
गुरु सुवास है प्रभु की
दूसरा प्रश्नः भगवान श्री, सूरज में आप हैं, चांद में आप हैं, चारों ओर आप ही आप हैं। बिना जाने और बिना मांगे ऐसा आनंद-स्रोत मिल गया कि मैं उसी में डूब गई। लेकिन आप कहते हैं कि इससे भी मुक्त हो जाना है। ऐसा आनंद कोई जान-बूझ कर क्यों गंवाए?
पूछा है निरुपमा ने।
बात तो ठीक है। जब आनंद मिलता है तो कौन गंवाने को राजी होगा!
समझो लेकिन।
एक सुख है जो संसार आशा बंधाता है कि मिलेगा--मिलता नहीं। आशा बंधती है सुख मिलेगा, मिलता दुख है। द्वार पर सुख लिखा होता है, भीतर जाने पर दुख मिलता है। एक संसार का सुख है जो झूठा है। एक परमात्मा का आनंद है जो सच्चा है। दोनों के बीच में गुरु है। गुरु यानी द्वार। गुरु यानी जहां से तुम संसार की तरफ से परमात्मा में प्रविष्ट होते हो। गुरु तो ऐसे है जैसे कि एक राहगीर धूप में चलते-चलते थक गया और एक वृक्ष की छाया में विश्राम करने लगा। गुरु तो ऐसे है जैसे छाया में बैठ गए।
लेकिन यह पड़ाव है, मंजिल नहीं। सुख मिलेगा, बहुत सुख मिलेगा। और तुमने अब तक सुख तो संसार में जाना नहीं था। इसलिए गुरु के सान्निध्य में, गुरु की प्रीति में, गुरु के प्रसाद में बहुत सुख मिलेगा। और तुमने और तो कोई सुख जाना नहीं, इससे बड़ा तो तुमने सुख जाना नहीं। इसलिए मन करेगा, अब इसको क्यों छोड़ें? अब तो इसको खूब कस कर पकड़ लें। लेकिन गुरु अगर सच में गुरु है तो वह कहेगा कि अभी और बड़े सुख की संभावना

है। अभी इतनी जल्दी मत पकड़ो। वह कहेगा: देखो, संसार को छोड़ा तो मैं मिला; अब अगर मुझको भी छोड़ दो तो परमात्मा मिले। मेरी बात सुनी, संसार को छोड़ कर इतना सुख मिला; अब जरा और मेरी बात सुनो, मुझे भी छोड़ो, तो अनंत सुख मिले।

मगर भक्त की तकलीफ मैं समझता हूं। उसने कभी संसार के इस मरुस्थल में कहीं कोई मरूद्यान नहीं पाया था; तृषा ही तृषा थी, क्षुधा ही क्षुधा थी, जलन ही जलन थी--भटका ही भटका। अब एक विश्राम मिला, जलस्रोत मिला, झरना मिला, झरने के किनारे खड़े हरे वृक्ष मिले, हरी दूब मिली। हरी दूब पर विश्राम करने लगा, झरने से जल पीया। वृक्षों की छाया में बैठा। अब कोई कहे इसे छोड़ दो, तो कैसे छोड़ दे? क्योंकि उसके सामने तो दो ही विकल्प हैं: अगर इसको छोड़े तो मरुस्थल। उसके दो ही अनुभव हैं। इसको छोड़ने का मतलब वापस मरुस्थल। तीसरा तो कोई अनुभव नहीं है।

लेकिन गुरु क्या कहता है? गुरु यह कह रहा है कि यह जो छोटा सा झरना बह रहा है यहां, यह झरना सागर से जुड़ा है; यह झरना अपने में नहीं है। अपने में तो सभी झरने सूख जाएंगे। अगर झरने में बस अपनी ही झर हो और कहीं सागर से जोड़ नहीं, तो कितनी देर चलेगा? जल्दी चुक जाएगा। झरना कोई हौज थोड़े ही है। हौज तो बंद है, कहीं से कोई स्रोत नहीं है; जल्दी ही पानी सड़ जाएगा और जल्दी ही चुक भी जाएगा। हौज का पानी तो मुर्दा होता है।

यही तो फर्क है पंडित और ज्ञानी में। पंडित यानी हौज। पानी तो दिखाई पड़ता है ज्ञानी जैसा ही, मगर मुर्दा, उधार, बासा, मरा हुआ, सड़ रहा है; कहीं कोई जीवंत झरना नहीं है जो उसे ताजा रखे, जो उसे प्रफुल्लित रखे, जो स्वच्छ रखे। जब जल बहता है तो स्वच्छ, जब बंद हो जाता है तो अस्वच्छ।

गुरु झरना है। ज्ञानी का अर्थ है जिसमें परमात्मा झर रहा है। तुम्हें तो गुरु दिखाई पड़ता है जैसे कि गंगोत्री उतरती है तो छोटे से गोमुख से गिरती है। गुरु तो गोमुख है। वह तो सिर्फ मुंह है; जो गिर रहा है, वह तो परमात्मा ही है। अब इस छोटी सी धार को ही पकड़ कर मत बैठ जाना। सुख है इस धार में, लेकिन उस अनंत की तुलना में तो कुछ भी नहीं जहां से यह धार आ रही है।

तो जो गुरु तुम्हें अटका ले वह गुरु न हुआ। गुरु का लक्षण ही यही है कि वह तुमसे कहे: "आओ मुझमें और जाओ मेरे पार। पकड़ो मुझे और छोड़ो मुझे। बनाओ मुझे सीढ़ी, चढ़ो मुझ पर, मगर रुक मत जाना।'

सीढ़ी पर क्या करते हो? चढ़ते हो। फिर ऐसा थोड़े ही है कि सीढ़ी पर ही बैठे रह जाते हो, कि यह सीढ़ी इतनी दूर तक लाई, इतने ऊपर उठाया, अब इसे कैसे छोड़ें!

नाव पर बैठते हो...बुद्ध निरंतर कहते थे कि गुरु नाव है। तुम नाव पर बैठे; इस किनारे से उस किनारे उतर गए। फिर नाव को सिर पर ले कर थोड़े ही चलते हो। फिर तुम यह थोड़े ही कहते हो कि यही नाव तो इस पार लाई, इसने इतना सुख दिया, भटकते थे उस पार अंधेरे

में, रोशनी तक पहुंचाया, अब इस नाव को सिर पर ले कर चलेंगे, अब इस नाव का मंदिर बनाएंगे और पूजा करेंगे और इस नाव को अब कभी न छोड़ेंगे। तो झंझट हो गई।

बुद्ध ने कहा हैः ऐसा हुआ एक दफे, चार मूढ़ नदी पार किए और चारों ने सिर पर उठा ली नाव और बाजार पहुंच गए। लोगों ने पूछाः "यह तुम क्या कर रहे हो? नाव में तो लोग देखे, मगर नाव लोगों पर कभी नहीं देखी।' पर उन्होंने कहाः "इस नाव को हम कभी न छोड़ेंगे। यह बड़ी प्यारी है। इसी के कारण हम पार आए हैं। उस तरफ बड़ा खतरा था, रात थी, अंधेरा था, जंगली जानवर थे। इसी नाव ने बचाया। अब हम ऐसे अकृतज्ञ थोड़े ही हैं कि इसे कभी छोड़ दें। अब तो इसे हम अपने सिर पर रखेंगे। यह हमारा सिरताज है। इसे तो अपनी प्राणों की धरोहर की तरह संभालेंगे।'

बुद्ध कहते, उन पागलों को कोई समझाए कि नाव से पार तो होना है और नाव के प्रति धन्यवाद भी रखना है, क्योंकि जो पार कराए उसके प्रति बड़ी कृतज्ञता का भाव--लेकिन नाव को सिर पर लेने की कोई भी जरूरत नहीं है। वह तो मूढ़ता हो गई।

तो मैं समझा। निरुपमा ठीक कह रही है कि आपको पा कर सुख मिला, छाया मिली, एक शरण मिली। अब आप कहते हैं, मुझसे भी पार जाओ। कष्ट भी होता है, वह भी मैं समझता हूं। पीड़ा भी होती है, वह भी मैं समझता हूं। क्योंकि तुम्हारे सामने केवल दो ही अनुभव हैं--एक गुरु से मिलने के पहले का अनुभव और एक गुरु से मिलने के बाद का अनुभव।

मगर मेरे पास तीन अनुभव हैं। वह जो तीसरा आगे का है उसकी भी कुछ सुधि रखो। और जब गुरु कहे कि चलो आगे हटो, और आगे बढ़ो, तो जिससे इतना सुख मिला है उसकी बात का भरोसा लेना। उससे और भी सुख मिल सकता है।

परम गुरु तो परमात्मा है। इसलिए तो हम गुरु को भी परमात्मा कहते हैं, क्योंकि गुरु सूक्ष्म रूप में परमात्मा का प्रतिनिधि है। और परमात्मा विराट रूप में गुरु का विस्तार है।

जब मैं तुमसे कहता हूं मुझे छोड़ो तो तुम मुझे वस्तुतः छोड़ थोड़े ही रहे हो। जब मैं तुमसे कहता हूं मुझे छोड़ो, तो तुम मुझको और बड़े रूप में पा लोगे, और विराट रूप में पा लोगे--जहां कोई सीमा न रहेगी, जहां झरना झरना न रह जाएगा, महासागर होगा। छोटे-छोटे झरने भी महासागर से जुड़े हैं। उनमें जो जल की धार आती है, आती तो महासागर से ही है। सारा जल तो उसका है।

जहां भी ज्ञान है और जहां भी रोशनी है, सभी परमात्मा से बहती है।

तो गुरु तो गोमुख, उससे गिरती गंगोत्री। दिल भर कर पीयो, नहाओ, डुबकी लगाओ! मगर इस अनुभव से इतना ही लेना कि और आगे जाना है, और आगे जाना है। कहीं रुकना नहीं जब तक कि परम स्थल न आ जाए, जिसके आगे जाने की कोई जगह ही न हो। उसी को हम परमात्मा कहते हैं जिसके आगे फिर और जाने की कोई जगह नहीं। गुरु के आगे जाने की थोड़ी जगह शेष है।

इसलिए तो नानक ने सिक्खों के मंदिर को "गुरुद्वारा' कहा। ठीक शब्द दिया। उसका अर्थ होता है, गुरु द्वार है। द्वार पर रुकते थोड़े ही हैं, द्वार से गुजर जाते हैं। द्वार पर बैठे थोड़े ही रहते हैं। देहरी पर बैठ गए तो पागल, न घर के रहे न बाहर के। तो धोबी के गधे हो गए, न घर के न घाट के। बाहर से भीतर जाना है। देहरी से पार होना है। द्वार से गुजर जाना है। मंदिरों के लिए बहुत शब्द हैं--मस्जिद है, चैत्यालय है, चर्च है, सिनागॉग है; मगर सिक्खों ने जो शब्द दिया है, उससे सुंदर कोई शब्द नहीं--गुरुद्वारा! वह बड़ा सार्थक है। उसका अर्थ है, गुरु द्वार है। सहारा लो, पार हो जाओ। इसका अर्थ यह थोड़े ही है कि तुमने धन्यवाद नहीं किया। पार हो कर तो तुम और भी धन्यवादी हो जाओगे। इसको समझो। जब गुरु को पकड़ कर इतना सुख मिल रहा है और इतना धन्यवाद है तो पार हो कर तो और परम धन्यवाद हो जाएगा।

इसलिए तो कबीर ने कहाः गुरु गोविंद दोइ खड़े, काके लागूं पांए! किसके पैर पडूं पहले? अब दोनों सामने खड़े हैं। कहीं ऐसा न हो कि मैं पहले गोविंद के पैर पडूं तो गुरु का अपमान हो जाए! कहीं ऐसा न हो कि मैं गुरु के पहले पैर पडूं तो गोविंद का अपमान हो जाए! बड़ी अड़चन है।

एक दिन ऐसी अड़चन आए तो बड़ा सौभाग्य। जिस दिन तुम्हें आए, धन्यभागी! यह घड़ी अड़चन की तो है, मगर बड़े सौभाग्य कीः जब "गुरु गोविंद दोइ खड़े, काके लागूं पांए! किसको पकडूं पहले! कहीं कोई अवज्ञा न हो जाए! कहीं ऐसा न हो कि कोई चूक हो जाए!

स्वभावतः कबीर घबरा गए होंगे। इधर खड़े रामानंद, उनके गुरु! इधर खड़े राम। किसके पैर लगूं पहले?

पंक्ति कबीर की बड़ी अदभुत हैः

गुरु गोविंद दोइ खड़े, काके लागूं पांए।

बलिहारी गुरु आपकी, गोविंद दियो बताए।।

तो गुरु ने कहाः झिझक मत कर, अब सोच-विचार मत कर, गोविंद के पैर लग।

यह तो पद कहता है। इस पद के बड? अर्थ हो सकते हैं। लेकिन मेरा मानना है कि कबीर गुरु के ही पैर पड़े होंगे। यही अर्थ ज्यादा सार्थक मालूम पड़ता है; क्योंकि जब वे कहते हैं, बलिहारी गुरु आपकी! जब वे झिझके होंगे दोनों को सामने देख कर, "अब किसके पैर पहले पडूं', तो गुरु ने जल्दी से इशारा कर दिया कि परमात्मा के पैर लग, मेरी बात छोड़। मगर अब तो कैसे परमात्मा के पहले पैर लगे जा सकते हैं! जिस गुरु की कृपा इतनी हो कि वह अपने से भी मुक्त करने में सहयोगी हो रहा हो, उसके तो पैर पड़ने ही पड़ेंगे। इसलिए कहते हैंः बलिहारी गुरु आपकी! धन्य हैं कि आपने इशारा कर दिया, अन्यथा मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा था। आखिरी इशारा भी आपने कर दिया, स्वयं को छोड़ने का इशारा भी आपने कर दिया।

तो मैं मानता हूं, पहले तो वे गुरु के ही चरण लगे होंगे, क्योंकि यह धन्यवाद तो देना ही पड़ेगा।

गुरु का अर्थ ही यही है, जो तुम्हें संसार के बाहर ले आए और जो तुम्हें परमात्मा में पहुंचा दे।

तो अभी निरुपमा, आधी यात्रा हुई कि मैं तुम्हें संसार के बाहर ले आया। अभी यात्रा पूरी नहीं हुई। अभी आधी यात्रा पर भी इतना स्वाद है! आधी यात्रा पर भी इतनी मस्ती है! अभी आधी यात्रा पर भी इतनी मस्ती है! अभी आधी यात्रा पर भी ऐसा गीत गुनगुना रहा है, एक सुख-सौरभ फैल रहा है, तो पूरी यात्रा की तो सोचो। अभी तो हम मंजिल पर पहुंचे नहीं, बीच के पड़ाव पर हैं।

मोह मत लगाना। पकड़ कर मत रुक जाना। रुक जाने की आकांक्षा स्वाभाविक है, यह जानते हुए भी...

तुम जो आए हो तो शक्ल-ए-दर-ओ-दीवार है और
कितनी रंगीन मेरी शाम हुई जाती है।

गुरु अगर जीवन की सांझ में भी आ जाए, गुरु अगर जीवन के अंतिम क्षण में भी आ जाए--कितनी रंगीन मेरी शाम हुई जाती है! तो शाम भी सुबह हो जाती है और बुढ़ापा भी बचपन हो जाता है। फिर फूल खिल जाते हैं, फिर कमल खिल जाते हैं, फिर कमल खिल जाते हैं, फिर वसंत आ जाता है।

तो मैं समझता हूं, तकलीफ बिलकुल स्वाभाविक है।

कहीं दूर किरणों के तार झनझना उठे
सपनों के स्वर डूबे घरती के गान में
लाखों ही लाख दीए तारों के खो गए
पूरब के अधरों की हलकी मुसकान में
भोर हुई, पेड़ों की बीन डोलने लगी
पात-पात हिले, डाल-डाल डोलने लगी।

तुम्हारे प्राण पुलकित होंगे। गुरु का संस्पर्श रोएं-रोएं को एक अपूर्व आनंद से भर जाएगा। एक नृत्य का जन्म होगा। एक गीत जो तुमने कभी नहीं गाया, सुनाई पड़ने लगेगा अपने ही प्राणों के अंतर्तम में। एक बीन बजने लगेगी जो कभी नहीं बजी थी और जिसके लिए जन्मों-जन्मों आकांक्षा की थी। कुछ धुंधला दिखाई पड़ने लगा। मंजिल दूर भला हो, दिखाई पड़ने लगी, झलक आने लगी। जैसे बहुत दूर से हिमालय के से उत्तुंग शिखर दिखाई पड़े हों, हजारों मील दूर से, शुभ्र,हिमाच्छादित हिमालय के उत्तुंग शिखर दिखाई पड़े हों--ऐसा कुछ दिखाई पड़ने लगा। धुंधला होगा अभी। बदलियां होंगी। कभी खो जाएगा, कभी मिल जाएगा। कभी दिखाई पड़ेगा, कभी फिर नहीं दिखाई पड़ेगा। ऐसी घटनाएं घटेंगी।

मगर रुक नहीं जाना है। जो झलक मिली है, उसे वहां तक ले जाना है जहां झलक तुम्हारे जीवन का सत्य बन जाए। जो अभी तुम्हें सुख मिला है वह मेरे माध्यम से मिला है। उस जगह पहुंचना है जहां तुम्हारे जीवन में परमात्मा सीधा बरसे, मेरे माध्यम की जरूरत न रह जाए। मैं भी तुम्हारे बीच में खड़ा रहूं तो उतनी अड़चन रह जाएगी, उतना परदा रह जाएगा।

प्यारा परदा सही, सोने-चांदी का परदा सही, हीरे-जवाहरातों से जड़ा परदा सही--लेकिन उतना परदा रह जाएगा। उतना परदा भी नहीं रखना है। गुरु का परदा भी हटा देना है।
आंचल थाम लिया है तुमने, इतना ही आधार बहुत है!
--ऐसा कहने का मन होगा। क्योंकि इतना घटता है कि लगता है इससे ज्यादा अब और क्या होगा? एक बूंद भी अमृत की ओठों पर आ जाए तो लगता है अब इससे ज्यादा और क्या होगा!
आंचल थाम लिया है तुमने
इतना ही आधार बहुत है
नेह-नजर से देख रहे हो
इतना ही आभार बहुत है।
चाहे दूरी पर जलता हो
दीप रूप का जलता तो है
जिसे देख कर दुर्गम पथ पर
श्वास-पथिक यह चलता तो है
मेरी राहें चमकाने को
इतना ही उजियार बहुत है।
किसी सगे को तरस रहा था
मेरा एकाकीपन कब से
सारा जग अपना लगता है
तुम आए जीवन में जब से
तुम मेरे कोई अपने हो
इतना ही अधिकार बहुत है।
भीगे रहते अधर हंसी से
महका करता मन का उपवन
चहका करता प्राण-पपीहा
बरसा करता सुधि का सावन
सारी उम्र हरी रखने को
इतनी ही रसधार बहुत है।
बड़भागी मेरा मन कितना
जन्मों का वरदान मिला है
गाने को मृदु गान मिला है
पूजन को भगवान मिला है
कर चुका पाऊं न उम्र भर
इतना ही यह प्यार बहुत है।

समझा। तुम्हारी बात मेरी समझ में आती है। तुम्हारी जगह मैं होता तो मैं यही कहताः
आंचल थाम लिया है तुमने
इतना ही आधार बहुत है।
पर और बहुत घटने को बाकी है। दूर से क्या देखना दीए को, पास पहुंचना होता है। पास पहुंचना ही नहीं होता, तुम स्वयं ही दीए में लीन हो जाते हो, एक बन जाते हो।
पतंगे को देखा दीए पर मरते! ऐसा ही एक दिन भक्त भगवान में लीन हो जाता है। उसी दिन घटी पूरी घटना। उससे पहले राजी मत होना। उससे पहले बहुत बार मन होगा कि बस जाओ, सुंदर जगह आ गई, अब और सुंदर जगह क्या होगी! मत रुकना, चलते ही जाना।
एक पुरानी सूफी कथा है। एक फकीर जंगल में ध्यान करता और एक लकड़हारा रोज लकड़ियां काटता। फकीर को दया आई। बूढ़ा लकड़हारा, हो गया होगा सत्तर वर्ष का। अब भी लकड़ियां काटता। हड्डी-हड्डी! देह दुर्बल, कमर झुक गई। अब भी लकड़ियां ढोता। एक दिन उसने कहा कि सुन पागल, लकड़ियां ही जिंदगी भर काटता रहा, जरा आगे जा! तो उस लकड़हारे ने कहाः "आगे क्या होगा? जंगल ही जंगल है। मैं बूढ़ा हुआ, ज्यादा चल भी नहीं सकता। इतनी ही दूर आना मुश्किल होता है, आगे क्या करूंगा?' उस फकीर ने कहाः "तू मेरी मान, आगे जा। वहां एक खदान है। लकड़ियां तू सात दिन में जितनी काटता है उतना उस खदान से एक दिन में मिल जाएगा।'
वह आगे गया। तांबे की एक खदान थी। तो वह जितना तांबा ला सकता था, रोज बेच देता। सात दिन के लिए काफी हो जाता। वह मस्त हो गया। फिर सात दिन तो वह आता ही नहीं। बस एक दिन आ जाता हर सप्ताह में। उस फकीर ने कहा कि सुन, रुक मत, और जरा आगे जा, एक और खदान है। उसने कहाः "करना क्या?' उसने कहाः "वहां अगर जाएगा तो महीने भर में एक ही बार ले आएगा, पर्याप्त होगा। चांदी की खदान है।' फकीर की बात माननी पड़ी। मन तो हुआ कि क्या फायदा, कौन पंचायत करे! क्या लेना-देना! मजे से गुजर रही है। इतना ही क्या कम है! जिंदगी भर से हफ्ते में सात दिन लकड़ियां काटता था, तब कहीं रोटी जुट पाती थी। अब बड़े मजे हो गए हैं। सात दिन में एक दिन हो आता हूं, सात दिन मजा ही मजा है, विश्राम ही विश्राम है। खूब सुख मिल रहा है।
फकीर से उसने कहाः अब और मत उलझाओ। फकीर ने कहाः "तेरी मरजी, मगर तू एक दफे तो जा।' उत्सुकता जगी तो गया। मिल गई चांदी की खदान। तो महीने भर में एक ही दफे आने लगा। फकीर ने कहा कि देख, तुझे अक्ल अपने से नहीं आती। जरा और आगे जा, सोने की खदान है। एक दफे ले आएगा, साल भर के लिए काफी है।
उसने कहा कि अब कहां उलझाते हो, इस बुढ़ापे में कहां झंझट...। मगर फकीर पर भरोसा भी आने लगा कि बात तो अब तक दो बार सही ठीक-ठीक निकली, ठीक ही कहता होगा। साल भर में एक बार! मैं जिंदगी ऐसे ही गंवाया। जरा आगे मैं खुद क्यों न गया? यह जंगल सदा मेरा था, यहां सदा मैं आया, बस यहीं से लकड़ियां काट कर ही लौट गया, बाहर-

बाहर आया और लौट गया। कभी मैंने सोचा ही न कि जंगल में और संपदाएं भी हो सकती हैं!

तो वह गया। सोने की खदान मिल गई। फिर तो साल में एकाध बार कभी दिखाई पड़े। उसे फकीर ने कहाः देख, अब तू बहुत बूढ़ा हुआ जा रहा है, जरा और आगे जा। मूरख! अपने से क्यों नहीं जाता?

उसने कहाः अब और क्या हो सकता है? सोना तो आखिरी बात है।

फकीर ने कहाः कोई भी चीज आखिरी नहीं। जरा और आगे जा।

वह गया, हीरों की खदान मिल गई। वह तो एक ही बार ले आया तो जन्म भर के लिए काफी हो गया। फिर तो उसका पता ही न चले। तो फकीर एक दिन उसके घर पहुंचा और बोला कि तू पागल है? दिखाई नहीं पड़ता?

उसने कहाः अब करना क्या है? अपने लिए ही काफी नहीं, बच्चों के लिए भी काफी हो गया, एक दफा ले आए।

उसने कहाः जरा और आगे जा।

उसने कहाः अब क्या हो सकता है हीरों के आगे?

उसने कहाः हीरों के आगे मैं हूं। तू आ तो!

वह गया, तो हीरों के आगे फकीर बैठा था--परम शांत! अपूर्व उसकी शांति थी। भूल गया लकड़हारा। उसके चरणों में झुका तो उठा ही नहीं। घड़ियां बीज गईं। ऐसी शांति, ऐसा आनंद उसने कभी जाना न था। एक जलधार बह रही थी। फकीर चिल्लाया कि पागल, फिर रुक गया? और थोड़ा आगे जा!

उसने पूछाः लेकिन अब और क्या हो सकता है? इससे ज्यादा आनंद तो कभी मिला नहीं।

तो उसने कहाः और आगे जो, आगे परमात्मा है।

यही कहता हूं निरुपमा सेः और थोड़े आगे, और थोड़े आगे!

गुरु के चरणों में सुख है। संसार से तौलो तो अपूर्व, परमात्मा से तौलो तो कुछ भी नहीं। परमात्मा के पहले नहीं रुकना है।

तुम्हारी तकलीफ को समझ कर यह कह रहा हूं। छोड़ना बहुत मुश्किल है। पहले तो गुरु को पाना बहुत मुश्किल है। जन्मों-जन्मों में कभी किसी से तालमेल बैठता है। जन्मों-जन्मों में बहुत से शिक्षकों से मिलना होता है, लेकिन तालमेल नहीं बैठता। जिससे तालमेल बैठ जाए, वह शिक्षक गुरु हो जाता है। जिससे तालमेल न बैठे, वह कितना ही बड़ा गुरु हो, तुम्हारे लिए गुरु नहीं, शिक्षक ही रहता है।

तुम बुद्ध के पास जाओ; अगर तालमेल बैठ जाए तो गुरु, अगर तालमेल न बैठे तो शिक्षक। तुम मेरे पास आए; तालमेल बैठ गया तो गुरु, तालमेल न बैठा तो शिक्षक। तो मुझसे तुम कुछ सीख लोगे और चले जाओगे। तालमेल बैठ गया तो जाना समाप्त हुआ; तुम मुझमें डूबोगे, सीखने पर बात समाप्त न होगी। तुम मेरे साथ आत्मरूप होने लगोगे। यही संन्यास का अर्थ है। जिनका तालमेल बैठ गया, वे संन्यास की तरफ उत्सुक होंगे। जो आए, सुना,

अच्छा लगा, कुछ थोड़ी सी बातें पकड़ लीं, चले गए। सम्हाल कर रखेंगे, संजो कर रखेंगे बातों को, कभी-कभी याद कर लेंगे, मगर हृदय से डूबे नहीं। पतंग न बने, मतवाले न हुए; बुद्धि ने कुछ संपत्ति बना ली, लेकिन हृदय में कुछ भी न हुआ, रसधार न बही।

संन्यास का अर्थ है: डूब गए। उन्होंने कहा: अब ये चरण मिल गए, अब ये छोड़ेंगे नहीं। अब इन चरणों के लिए पागल होने की तैयारी है।

तो पहले तो गुरु पाना कठिन, और फिर जब गुरु मिल जाए तो दूसरी और बड़ी कठिन बात है कि एक न एक दिन गुरु कहता है: "अब मुझे भी छोड़ो; क्योंकि मेरा तो उपयोग था कि तुम्हारा हाथ पकड़ लूं और प्रभु तक पहुंचा दूं। मैं द्वार हूं, अब यह प्रतिमा आ गई, अब तुम मुझे भूल जाओ और प्रभु में डूब जाओ।' तब और कठिन। पहले तो गुरु को पाना कठिन, फिर खोना और भी कठिन है।

तुमने तो हुक्मेत्तर्केत्तमन्ना सुना दिया

किस दिल से आह करके तमन्ना करे कोई।

--तुमने तो कह दिया कि छोड़ दो प्रेम, छोड़ दो लगाव।

तुमने तो हुक्मेत्तर्केत्तमन्ना सुना दिया

--तुमने तो कह दिया, आज्ञा दे दी कि छोड़ दो, तर्क कर दो इस प्रेम को।

तुमने तो हुक्मेत्तर्केत्तमन्ना सुना दिया

किस दिल से आह तर्केत्तमन्ना करे कोई।

लेकिन किस दिल से, कैसे यह संभव होगा? ऐसा कठोर कोई कैसे हो जाए कि प्रेम को छोड़ दे?

मुझको यह आरजू वो उठाएं नकाब खुद

उनको यह इंतजार तकाजा करे कोई।

अंतिम घड़ी में भी, अंतिम घड़ी में, परमात्मा से मिलने की घड़ी में भी...

मुझको यह आरजू वो उठाएं नकाब खुद

...कि परमात्मा खुद उठाए अपना नकाब

उनको यह इंतजार तकाजा करे कोई।

और परमात्मा प्रतीक्षा करता है कि तुम आकांक्षा करो, प्रार्थना करो। कहो, मांगो, तब उठे परदा।

या तो किसी को जुर्रते-दीदार ही न हो

या फिर मेरी निगाह से देखा करे कोई।

--या तो परमात्मा को देखने का पागलपन ही सवार न हो, या तो उस परम प्रेमी को देखने की जिद ही सवार न हो...

या तो किसी को जुर्रते-दीदार ही न हो

...कोई हिम्मत ही न करे...

या फिर मेरी निगाह से देखा करे कोई।

और अगर तुमने हिम्मत की है तो अब इतनी हिम्मत और करो कि मेरी निगाह से देखो। जब मैं तुमसे कहता हूं मुझे छोड़ दो तो तुम जरा मेरी निगाह का खयाल करो। मुझे कुछ दिखाई पड़ रहा है जो तुम्हें अभी दिखाई नहीं पड़ रहा। इतनी दूर मेरी मान कर चले आए--कहा तांबे की खदान तो तांबे की खदान पर चले आए; कहा कि चांदी की खदान तो चांदी की खदान पर चले आए; कहा कि सोने की खदान तो सोने की खदान पर चले आए; कहा कि ध्यान की खदान तो ध्यान में डूब गए--अब थोड़े और आगे। वहां सब समाप्त हो जाता है--न कोई ध्यानी, न कोई ध्यान; न कोई शिष्य, न कोई गुरु; न कोई खोजने वाला, न कोई खोजी, न कुछ खोजा जाने को। वहां एक ही हो जाता है सब। सरिता वहां सागर में मिलती है। वहां परम आनंद है। गुरु के पास जो मिला वह उस परम आनंद की थोड़ी सी भनक है।

जैसे फूल की सुगंध हवाओं पर चढ़ कर तुम्हारे नासापुटों तक आ गई हो। फूल दिखाई नहीं पड़ा तुम्हें। कहां है, कहीं होगा जरूर। सिर्फ सुगंध आ गई है तैर कर। गुरु तो परमात्मा की सुवास है।

इस सुवास के सूत्र को पकड़ लो। इसी के सहारे को पकड़ कर धीरे-धीरे फूल को खोज लो। गुरु को पकड़ कर फूल को खोज लेना है।

एक हिम्मत की--बड़ी हिम्मत है गुरु को पकड़ना। क्योंकि गुरु को पकड़ने का मतलब है खुद को छोड़ना। गुरु को पकड़ने का अर्थ है खुद के अहंकार को समर्पित करना। एक हिम्मत कर ली, खुद को छोड़ा, गुरु को पकड़ा। अब एक और हिम्मत करना, गुरु को भी छोड़ देना। तब सारी पकड़ छूट जाएगी। तब एक ऐसी स्थिति बनती है जहां कोई पकड़ने वाला नहीं और कुछ पकड़ा जाने को नहीं। वहीं परमात्मा का अवतरण है।

साक्षी और भक्ति का मार्ग

तीसरा प्रश्नः साक्षी-भाव साधने में कठिनाई है। क्या साक्षी-भाव के अतिरिक्त परमात्मा तक जाने का और कोई उपाय नहीं।

है। रोज तो उसकी हम बात कर रहे हैं। यह दया-वाणी दूसरा ही उपाय है। भक्ति दूसरा उपाय है।

दो उपाय हैं। साक्षी--साक्षी यानी ध्यान। और भक्ति--भक्ति यानी भाव।

साक्षी का अर्थ हैः जाग कर देखो।

और भक्ति का अर्थ हैः डूब जाओ, देखना इत्यादि सब छोड़ो।

भक्ति का अर्थ हैः सब तरह से विस्मरण में डूब जाना। भजन में, नृत्य में, गीत में इस तरह डूब जाना जैसे किसी ने शराब पी ली हो; भूल ही गए; आत्मविस्मरण हो गया।

आत्मविस्मरण एक उपाय है; और आत्मस्मरण दूसरा। दोनों की प्रक्रियाएं अलग हैं, लेकिन अंत एक। मार्ग भिन्न; मंजिल एक। आत्मस्मरण यानी साक्षी। अपने को स्मरण रखो, एक क्षण को भी भूलो मत। अपने को दूर रखो, प्रत्येक चीज से दूर रखो। जो भी सामने आए, मुझसे भिन्न है--ऐसा स्मरण रखो। तादात्म्य को बनने मत दो। कुछ भी हो, अगर साक्षी के

सामने परमात्मा भी आएगा तो साक्षी वहां भी साक्षी ही रहेगा। वह यह नहीं कहेगा कि मैं परमात्मा में लीन हो जाऊं। लीनता साक्षी के मार्ग पर नहीं है। वह तो देखता रहेगा।

इसलिए साक्षी के मार्ग के अनुयायियों ने क्या कहा, मालूम है? बौद्धों ने कहा है: अगर बुद्ध भी रास्ते पर आ जाएं साक्षी के तो तलवार उठा कर दो टुकड़े कर देना। साक्षी का अर्थ ही यह होता है कि जो भी तुम्हारे सामने विषय बन जाए वह तुम नहीं हो। तुम आंख बंद करके ध्यान करने बैठे और कृष्ण खड़े हो गए, बांसुरी बजाने लगे, उठा कर तलवार दो टुकड़े कर देना। यह मैं नहीं, मैं तो देखने वाला हूं। जिस दिन ऐसा करते-करते, नेति-नेति, इनकार करते-करते, यह भी मैं नहीं, यह भी मैं नहीं, सब विषय खो जाएं, निर्विषय चित्त हो जाए, निर्विचार, निर्विकल्प, कोई विकल्प न रह जाए, परम सन्नाटा हो जाए, बस तुम अकेले रह जाओ जानने वाले और जानने को कुछ भी शेष न रहे--तो आ गए, पहुंच गए।

तो साक्षी की यात्रा से चलने वाला परमात्मा को सामने नहीं देखेगा। साक्षी से चलने वाला अनुभव करेगा, मैं परमात्मा हूं। इसलिए उपनिषद कहते हैं: "अहं ब्रह्मास्मि!' वह साक्षी का मार्ग है। इसलिए मंसूर कहते हैं: "अनलहक! मैं सत्य हूं!' वह साक्षी का मार्ग है।

साक्षी के मार्ग पर एक दिन जब सारा विकार शांत हो जाता है मन का, तो तुम स्वयं ही परमात्मा के उद्घोष हो जाते हो।

पूछा है: "साक्षी-भाव कठिन है।'

कोई चिंता न लो। दूसरा मार्ग है--ठीक साक्षी से विपरीत। जिसको साक्षी नहीं जमता, उसे दूसरा जमेगा ही। दो ही तरह के लोग हैं। जैसे शरीर के तल पर स्त्री और पुरुष हैं, ऐसे ही चैतन्य के तल पर भी स्त्री और पुरुष हैं। पुरुष का अर्थ होता है साक्षी। "पुरुष' शब्द का भी अर्थ साक्षी होता है। "पुरुष' शब्द भी साक्षी-मार्ग का शब्द है। पुरुष चित्त--और ध्यान रखना, जब मैं कहता हूं पुरुष चित्त, तो मेरा मतलब यह नहीं है कि सभी पुरुष पुरुष हैं; बहुत पुरुष हैं कि जिनको कि पुरुष-चित्तता नहीं जमेगी। और जब मैं कहता हूं स्त्रियां, तो स्त्रियां स्त्रियां हैं, ऐसा भी नहीं। बहुत सी स्त्रियां हैं जिनको साक्षी-भाव जमेगा। इसलिए शरीर के तल पर जो भेद है, उससे मेरे भेद को मत बांध लेना। यह भीतर का भेद है। स्त्री-चित्त पुरुष में भी हो सकता है। पुरुष-चित्त स्त्री में भी हो सकता है। पर इनका भेद साफ है।

स्त्री-चित्त--भक्ति, भाव विस्मरण! फर्क: साक्षी में जो दिखाई पड़े, उसको काटना है, अलग करना है और केवल द्रष्टा को बचाना है। और भक्ति में जो दिखाई पड़ रहा है उसको बचाना है और द्रष्टा को डुबा देना है। दोनों बिलकुल अलग हैं, ठीक विपरीत हैं। कृष्ण खड़े हैं...मूर्ति कृष्ण की खड़ी हुई है भाव में, तो अपने को विसर्जित कर देना है और कृष्ण को बचा लेना है। अपना सारा प्राण उनमें उंडेल देना है। इस भांति प्राण उंडेल देना है कि तुम्हारी ही प्राण-ऊर्जा कृष्ण की बांसुरी बजाने लगे। यही तो भक्त करता रहा।

भक्त का मार्ग और साक्षी का मार्ग इतना भिन्न है कि दोनों की भाषाएं भी अलग-अलग हैं। भक्त कहता है: आत्मविस्मरण, अपने को भूलो! मस्ती में, प्रभु, स्मरण में डुबाओ! अपने

को इस भांति भूल जाओ जैसे शराबी भूल जाता है शराब में। परमात्मा का नाम बनाओ शराब। ढालो घर में शराब, इसे पीयो। हो जाओ मतवाले।

अगर तुम्हें अड़चन आती हो साक्षी-भाव में तो घबराने की कोई जरूरत नहीं। भक्ति तुम्हारे लिए मार्ग होगा। मस्ती, मतवालापन...उस तरफ चलो। नाचो-गुनगुनाओ! हरिनाम में डूबो। यही दया का संदेश है--यही सहजो का; यही मीरा का।

विजन वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहागभरी
स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल कोमल तनु तरुणी
जूही की कली
सोती थी
जाने कहो कैसे प्रिय-आगमन वह
नायक ने चूमे कपोल
डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल
इस पर भी जागी नहीं
चूक, क्षमा मांगी नहीं
निद्रालस बंकिम विशाल नेत्र
मूंदे रही
किंवा मतवाली थी
यौवन की मदिरा पीए कौन कहे
निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोंको की झड़ियों से
सुंदर सुकुमार देह
सारी झकझोर डाली
मसल दिए
गोरे कपोल गोल
चौंक पड़ी युवती
चकित चितवन ने
चारों ओर फेर
हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुखी हंसी, खिली
खेल रंग प्यारे संग।

भक्ति है प्यारे की खोज। भक्ति में परमात्मा सत्य नहीं है, परमात्मा प्रिय है, प्रेय है। भक्ति है प्रीतम की खोज।

हेर प्यारे को सेज पास

नम्रमुखी हंसी, खिली

खेल रंग प्यारे संग।

भक्ति का मार्ग बहुत रंगभरा है। भक्ति का मार्ग वसंत का मार्ग है। खूब फूल खिलते हैं भक्ति के मार्ग पर। वीणा बजती है, मृदंगों पर थाप पड़ती है। भक्ति का मार्ग घूंघर का मार्ग है, नृत्य है, गान है, गीत है, प्रेम है, प्रीति है। और सारा प्रेम और प्रीति प्रभु-चरणों में समर्पित है। सारा प्रेम गागर भर-भर कर उसके चरणों में उंडेल देनी है। अपने को इस भांति उंडेल देना है कि पीछे कोई बचे ही नहीं। सब उंडेल देनी है। अपने को इस भांति उंडेल देना है कि पीछे कोई बचे ही नहीं। सब उंडल जाए तो पहुंचना हो जाए।

जिनको भक्ति कठिन लगे उनके लिए साक्षी है। पहले तो भक्ति को ही तलाश लेना। क्योंकि भक्ति अधिक लोगों को सुगम मालूम पड़ेगी। रसपूर्ण भी है। जहां नाच कर पहुंचा जा सकता हो वहां चल कर क्या पहुंचना! जहां गीत गा कर पहुंचा जा सकता हो वहां उदास शक्लें ले कर क्या पहुंचना! जहां मृदंग को बजा कर उल्लास से पहुंचा जा सकता हो, जहां प्रफुल्लता साथ-संग रहे, वहां महात्मागीरी, विरागी, उस सब में क्यों पड़ना! वह उनके लिए छोड़ दो जिनको भक्ति न जमती हो। भक्ति जम जाए, प्रेम जम जाए, तो सब जम गया; कुछ और जमाना नहीं।

लेकिन मैं जानता हूं, तकलीफ कुछ ऐसी है कि अगर मैं कहूं भक्ति तो घबराहट होती है। तो मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं: भक्ति में तो जरा हिम्मत नहीं पड़ती। इतना पागल होने की हिम्मत नहीं पड़ती। लोग पागल भी हिसाब से होते हैं...इतने तक होते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर रही थी बिस्तर पर पड़ी। मरते वक्त उसने कहा कि नसरुद्दीन, मैं मर जाऊंगी तो तुम क्या करोगे? मुल्ला ने कहा, मैं पागल हो जाऊंगा। पत्नी ने कहा: "अरे छोड़ो भी! किसको समझा रहे हो! मैं मरूंगी भी नहीं इधर कि उधर तुम दूसरा विवाह रखा लोगे।' मुल्ला ने कहा: "पागल तो होऊंगा, लेकिन इतना पागल नहीं।'

लोग पागल भी हिसाब से होते हैं--कहां तक जाना! अगर भक्ति की कहता हूं तो लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं कि यह तो जरा पागलपन का मार्ग है। नाचना, गाना, कीर्तन, यह तो जैसे मीरा ने कहा न, सब लोक-लाज खोई, इसमें तो सब लोक-लाज खो जाएगी! मैं तो डिप्टी-कलैक्टर हूं कि तहसीलदार हूं कि डॉक्टर हूं कि इंजीनियर हूं कि यह मामला तो सब गड़बड़ हो जाएगा।

एक डाक्टर मुझे देखने आते थे। कुछ मेरे अंगूठे में तकलीफ थी तो उन्होंने ऑपरेशन किया। प्यारे आदमी हैं। संयोगवशात वे ऑपरेशन करने आए तो मेरे प्रेम में पड़ गए। कहने लगे: "आऊंगा, लेकिन अभी नहीं। जरूर आऊंगा। आना है एक दिन, लेकिन अभी डर लगता है।'

मैंने कहा: "क्या डर है?'

उन्होंने कहाः "डर यही है कि आपके पास आया और कहीं यह नाचना, गाना, यह जम गया...और मुझे डर है कि जम सकता है, क्योंकि मेरे भीतर सदा से यह भाव है...तो बड़ी अड़चन होगी।'

नहीं आए। दुबारा नहीं आए। कई दफा खबर करते हैं कि आना है, आता हूं, मगर अभी तक दिखाई नहीं पड़े। उनको पता भी है कि यह घटना घट सकती है। घट सकती है। उनके हृदय में वैसा रस है। मगर बाहर एक और ढंग की प्रतिष्ठा है। उसके विपरीत जाती है बात। बाहर लोग समझते हैं, डाक्टर हैं, गंभीर हैं, बड़े सर्जन हैं! अब ऐसा नाचने-कूदने लगें...।

और वे कहने लगे कि मुझे डर यह है कि अगर मैं आया तो मैं यह गेरुआ वस्त्र भी पहन ही लूंगा। क्योंकि जब से आया हूं आपके पास, इनका सपना मुझे आने लगा है। जिस दिन आपके हाथ का ऑपरेशन किया उस रात मैंने सपना देखा कि मैं गेरुआ वस्त्र पहने नाच रहा हूं।...यह नहीं। यह अभी नहीं। अभी आप मुझ पर कृपा करो। अभी मेरे बच्चे हैं, पत्नी है और अभी सब जम रहा है। अभी व्यवस्था...। एक दिन आना है, मगर आज डर है।

ऐसे बहुत लोग हैं जिनको भक्ति में भय लगता है। अगर उनसे कहो साक्षी, तो साक्षी जमता नहीं। क्योंकि साक्षी कठोर मार्ग है--तपश्चर्या का, साधना का, रूखा-सूखा! वहां रूखा-सूखापन है तो घबराहट होती है। जहां रसधार बहती है वहां लगता है कहीं पागल न हो जाएं।

भक्ति तो पागल का मार्ग है। और पागलपन में हिसाब-किताब नहीं चलते। अगर हिसाब-किताब रखना हो तो साक्षी का मार्ग है। वहां गणित है। वहां शुद्ध गणित है। वहां पागलपन कभी नहीं आता। वहां पागलपन का कोई उपाय ही नहीं है। वहां तो सीधी की सीधी वैज्ञानिक प्रक्रिया है। तुम्हें जो रुचि पड़ती हो...। लेकिन एक न एक दफा तय करना पड़ेगा।

मेरे अनुभव में ऐसा आया कि अगर भक्ति की लोगों से कहो तो वे साक्षी की सोचते हैं, क्योंकि भक्ति में डर लगता है। अगर साक्षी की कहो तो वे भक्ति की सोचते हैं। क्योंकि साक्षी में लगता है, बहुत कठोर है। डर लगने लगता है कठोरता का।

नहीं, इतने रूखे-सूखे शायद हमारी सामर्थ्य नहीं है। और फिर जैसे ही तुम साक्षी में प्रवेश करोगे, जीवन में से सारा रस खोने लगेगा। अगर तुमने साक्षी का प्रयोग किया तो तुम अपनी पत्नी को तो देखोगे, लेकिन तुम यह न देख सकोगे कि वह तुम्हारी है। "मैं'-भाव विलीन हो जाएगा। सिर्फ साक्षी रह जाओगे। कोई गाली देगा तो वह तो सुनाई पड़ेगा कि गाली दे रहा है, लेकिन अपमान नहीं होगा। क्योंकि साक्षी को कैसा अपमान! कोई फूलमाला पहनाएगा तो यह तो लगेगा कि गले में फूलमाला डाली गई, ठीक; मगर कोई सम्मान नहीं होगा। तो अड़चन आती है। इसमें तो सारा जीवन दांव पर लग जाएगा। अभी तो थोड़ा रस है कि कोई फूलमाला डाले। अभी तो फूलमाला डाली भी कहां गई! अभी तो प्रतीक्षा ही कर रहे थे, उसके पहले साक्षी होने लगे, तो अड़चन है। अभी तो कोई गाली दे तो बदला लेने का मन होता है।

तो साक्षी इस सबसे तोड़ देगा। साक्षी का तो अर्थ ही होता है संसार में रहोगे और एकदम अछूते खड़े हो जाओगे। कुछ नहीं छुएगा। जल में कमलवत। उतनी हिम्मत भी नहीं होती।

कोई चिंता की बात नहीं है भक्ति में। लेकिन भक्ति में और दूसरा मामला है। अगर पत्नी को भक्ति की नजर से देखोगे तो परमात्मा दिखाई पड़ेगा। अगर पति को भक्ति की नजर से देखोगे तो परमात्मा दिखाई पड़ेगा। बेटे में भी परमात्मा दिखाई पड़ेगा। तो भी पागलपन मालूम पड़ता है। पत्नी में परमात्मा! यह जरा बात जंचती नहीं। स्त्रियों को चाहे जंच भी जाए कि पति में परमात्मा, क्योंकि हजारों साल से समझाया गया है; लेकिन पत्नी में परमात्मा! तो पतिदेव को जरा अड़चन होती है। लेकिन अगर तुमने भक्ति का भाव रखा तो किसी दिन तुम पाओगे कि पत्नी के चरणों में सिर रख दिया।

मेरे एक मित्र थे। सरल हृदय हैं। एक रात मुझसे कुछ देर तक बात करते रहे। बात उनको जंच गई। किसी निमित्त यह बात निकल पड़ी परमात्म-भाव की, तो मैंने कहा, सभी में परमात्मा है, पत्नी में भी परमात्मा है। मैं सिर्फ उदाहरण को कह रहा था। उनको बात जंच गई। वे घर गए, जा कर पत्नी के चरणों में सिर रख दिया। पत्नी तो घबरा गई। उसने घर के लोगों को जगा दिया कि इनको क्या हो गया! और उनको पत्नी के चरणों में सिर रख कर ऐसा मजा आया कि उन्होंने घर में जो भी था, सबके चरणों में सिर रखा। नौकर-चाकर...। घर के लोग समझे कि गए! इनका दिमाग खराब हो गया है।

मुझे रात दो बजे आ कर जगाया कि आपने यह क्या कर दिया। मैंने कहा: इसमें क्या बुराई हो गई है? पत्नी सदा पति के चरण छूती रही, तुमने कभी न समझा कि पागल है। आज पति ने छुए तो हर्ज क्या हो गया?

उन्होंने कहा: आप क्या बातें कर रहे हैं? हम पहले से ही उनको समझाते कि आपके पास न जाया करो।

और उनको ऐसा मजा आया यह सब देख कर कि वे तीन महीने तक इस मस्ती में रहे। घर के लोग तो उनके पीछे पड़ गए--दवा-दारू और झाड़ा-फूंक...। और वे हंसें। कहें कि मैं पागल नहीं हूं। भूत-प्रेत की झड़वाई शुरू हो गई कि कोई भूत-प्रेत तो नहीं लग गया। और आखिर उन्होंने मेरी न सुनी। उनको इलेक्ट्रिक शॉक दिलवा दिया। यह तो बात बिगड़ती चली गई। और वे तो ऐसी मस्ती में आ गए कि राह चलते किसी के भी पैर छूने लगे। और जरा भी खराबी न थी, जरा भी खराबी न थी। भोले सरलचित्त आदमी थे।

तो भक्ति में भी डर लगता है, क्योंकि भक्ति एक दूसरा जगत खोलती है।

तो अक्सर ऐसा होता है यहां। जब मैं साक्षी पर समझाता हूं तो लोग आ जाते हैं कि इसमें अड़चन है। भक्ति पर समझाता हूं तो आ जाते हैं कि इसमें अड़चन है। एक बार तुम ठीक से तय कर लो। और तय करने में ध्यान रखना, अड़चन इत्यादि का हिसाब मत लगाओ। तय करने में एक ही बात विचारणीय है कि तुम्हें किस बात से तालमेल बैठता है। और कोई बात महत्वपूर्ण नहीं है। शेष सब बातें गौण हैं। अगर तुम्हें लगता है कि भक्ति तुम्हारे लिए रसपूर्ण है तो हिम्मत करो। और यह मत करो कि एक दिन करेंगे। क्योंकि वह एक दिन कभी भी नहीं आएगा। आज नहीं तो कभी नहीं। कल आता नहीं। और कौन जाने मौत पहले आ जाए!

तो जो भी तुम्हें लगता हो कि मेरे हृदय के भीतर तरंगित होता है, मेरे हृदय में बजती है धुन जिस बात की...। मीरा को नाचते सोचते हो, तुम्हारे मन में धुन बजती है कि तुम भी नाचो कभी ऐसे? कि बुद्ध को शांत साक्षी बने बैठे देखा है कि मूर्ति देखी है बुद्ध की कभी, तुम्हें ऐसा लगता है कि ऐसा मेरा रूप हो, ऐसा मैं बैठ जाऊं?--किससे तालमेल बैठता है।

और सब बातें विचारणीय नहीं हैं। न तो यह विचारणीय है कि तुम किस घर में पैदा हुए हो। हो सकता है, जिस घर में तुम पैदा हुए हो वहां भक्ति मार्ग है, वल्लभमार्गी हो कि रामानुज-मार्गी हो; मगर अगर तुमको बुद्ध में रस है और महावीर में रस है और तुम्हें उनकी प्रतिमा पुकारती है तो फिक्र छोड़ो। घर में पैदा होने से कुछ लेना-देना नहीं है। तो तुम्हारे लिए वही मार्ग है साक्षी। और इससे भी कुछ फर्क नहीं पड़ता कि तुम जैन घर में पैदा हुए हो कि बौद्ध घर में पैदा हुए हो, कि वेदांती हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। हृदय को टटोलो। अगर वहां लगता है कि जब मीरा का भजन सुनते हो तो कोई डोलने लगता है भीतर, कि मीरा के हाथ में उठी वीणा को देख कर तुम्हारे स्वप्न में भी कोई वीणा उठाने लगता है; कल्पना उठती है कि कभी तुम भी ऐसे ही मग्न हो कर, मस्त हो कर नाचो, सब भूल-भाल कर नाचो, और उस कल्पना में भी रसधार आने लगती है, बहने लगती है और एक सुवास फैलने लगती है--तो फिर छोड़ो फिक्र कि तुम जैन घर में पैदा हुए कि बौद्ध घर में, कि वेदांती हो कि क्या, ये सब फिजूल की बातें हैं। घर में पैदा होना, किस घर में पैदा होना केवल संयोग की बात है।

हृदय को पहचानो। वहीं तुम्हारा असली घर है। वहीं से पकड़ो अपने सूत्र को और फिर कठिनाइयां तो सभी रास्तों पर आएंगी। तुम यह सोचते हो कि, ऐसा कोई रास्ता हो जिस पर कठिनाई आती ही न हो, तो कोई रास्ता नहीं है। फिर तुम चल ही न पाओगे। कठिनाइयां तो सभी रास्तों पर आएंगी। कठिनाइयों का तो मतलब ही इतना होता है कि तुमने अब तक एक जीवन की शैली बनाई थी, ढांचा बनाया था, उसमें बदलाहट करनी होगी। इसलिए कठिनाई आती है। तुमने अब तक लोगों को अपना एक रूप दिखाया था, अब तुम्हारा दूसरा रूप प्रगट होगा तो कठिनाई होती है। मगर कठिनाई तो जल्दी हल हो जाती है। हिम्मत चाहिए।

इसलिए मैं साहस को धार्मिक व्यक्ति का पहला गुण कहता हूं। जो साहसी नहीं है वह धार्मिक न हो सकेगा। धर्म कायर के लिए नहीं है।

तो तुमसे मैं कहूंगा कि साक्षी नहीं सध सकता, उदास न हो जाओ, निराश न हो जाओ। साक्षी नहीं सधता, अगर यह बात तुम्हारे लिए साफ हो गई, तो दूसरा मार्ग स्पष्ट है। दो के अतिरिक्त तीसरा कोई मार्ग नहीं है। और एक सधेगा ही। एक सधना ही चाहिए। दो ही तरह के लोग हैं संसार में। तो फिर तुम गाओ, गुनगुनाओ, डूबो रामरूप में।

धनियों के तो धन हैं लाखों

मुझ निर्धन के धन बस तुम हो!

गाओ! प्रभु के चरणों में सिर रखो! और सभी तरफ उसी के चरण हैं। जहां सिर रखो वहीं उसी के चरण हैं।

कोई पहने माणिक-माल
कोई लाल जड़ावे
कोई रचे महावर मेहंदी
मोतियन मांग भरावे
सोने वाले चांदी वाले
पानी वाले पत्थर वाले
तन को तो लाखों सिंगार हैं
मन के आभूषण बस तुम हो!
कहो, प्रभु से कहो...
कोई जावे पुरी-द्वारिका
कोई ध्यावे काशी
कोई तपे त्रिवेणी संगम
कोई मथुरावासी
उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम
भीतर-बाहर सब जग जाहिर
अन्यों के सौ-सौ तीरथ हैं
मेरे वृन्दावन बस तुम हो।
करो निवेदन...
अन्यों के तीरथ सौ-सौ
मेरे वृन्दावन बस तुम हो।
कोई करे गुमान रूप पर
कोई बल पर झूमे
कोई मारे डींग ज्ञान की
कोई धन पर घूमे
काया-माया जोरू जाता
जस-अपजस सुख-दुख त्रितापा
जीता-मरता जग सौ विधि से
मेरे जन्म-मरण बस तुम हो।

खोजो, प्रेम से खोजो अगर साक्षी नहीं जमता। भक्ति से खोजो, अगर साक्षी नहीं जमता। मगर खोजो जरूर। ऐसी कठिनाइयां बता-बता कर अपने को समझा मत लेना कि कठिन है, कैसे जाएं! जाना है तो जाना है, कठिनाइयों की कौन फिक्र करता है। कठिनाइयों की बहुत

फिक्र इसलिए होती है कि जाने की हिम्मत नहीं जुड़ रही। तो कठिनाइयों का जाल खड़ा कर लेते हो।

सुना है मैंने, सम्राट अकबर शिकार करके लौटता था। सांझ हो गई, नमाज का समय हो गया, तो एक गांव के किनारे कपड़ा बिछा कर एक वृक्ष के तले नमाज पढ़ने बैठा। बैठा ही था, नमाज में उतर ही रहा था कि एक स्त्री भागी हुई आई। एक जवान मदमस्त पागल सी स्त्री, अल्हड़, भागी हुई आई। उसके नमाज के लिए बिछाए गए कपड़े पर से दौड़ती हुई उस स्त्री की साड़ी अकबर को छूती हुई, विघ्न डालती हुई, वह भाग गई, निकल गई पास से। अकबर बहुत नाराज हुआ। लेकिन बीच नमाज में तो बोल भी न सकता था। जल्दी-जल्दी नमाज पूरी की, घोड़ा कस कर खोजने जा रहा था कि स्त्री कौन है। इस तरह की बेहूदगी! एक तो कोई भी नमाज पढ़ता हो तो भी इस तरह की बेहूदगी गलत है; फिर सम्राट! लेकिन जाने की जरूरत न पड़ी। वह स्त्री लौट कर आ रही थी। तो उसने उसे रोका कि ऐ बदतमीज औरत, तुझे इतनी भी समझ नहीं कि कोई प्रभु की प्रार्थना कर रहा है तो बाधा नहीं डालनी चाहिए? और तुझे यह भी नहीं दिखाई पड़ता कि खुद सम्राट प्रार्थना कर रहा है?

उस स्त्री ने गौर से देखा। उसने कहा: अब आप याद दिलाते हो तो मुझे खयाल आता है कि जरूर कोई नमाज पढ़ता था जब मैं यहां से भागी गई। और मुझे याद आता है कि मेरी साड़ी का पल्लू किसी को छुआ था। आप ठीक याद दिलाते हैं। लेकिन मेरा प्रेमी आ रहा था। और मैं उससे मिलने जा रही थी। और मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा था। आप मुझे क्षमा कर दें। एक बात भर मुझे आपसे पूछनी है कि तुम अपने परमात्मा से मिलने जा रहे थे, तुम परम प्रेमी से मिलने जा रहे थे--और तुम्हें मेरी साड़ी के पल्लू के छू जाने का पता चल गया? और मैं तो अपने साधारण प्रेमी से मिलने जा रही थी, मुझे तुम्हारा पता न चला। मेरा धक्का तुम्हें लगा, तुम्हारा धक्का मुझे न लगा। यह बात जरा, सम्राट, जमती नहीं। यह नमाज कैसी थी?

सम्राट ने अपनी आत्मकथा में लिखवाया है कि मेरे मन पर जो चोट पड़ी, वह कभी न भूली। सच मेरी नमाज नमाज न थी। ये छोटी-मोटी बाधाएं कि कोई पास से गुजर गाय, बाधा पड़ जाए। अगर प्रेम हो तो बाधा पड़ जाए! अगर भीतर रस बह रहा हो तो किसी की साड़ी छू जाए, इससे बाधा पड़ जाए, कि कपड़ा लग जाए, इससे बाधा पड़ जाए!

तुम भी बैठते हो ध्यान करने, छोटी-छोटी चीज से बाधा पड़ जाती है। बाधा इसलिए पड़ जाती है कि अभी ध्यान ध्यान नहीं है। भजन करने बैठते हो, छोटी-छोटी चीज से बाधा पड़ जाती है, क्योंकि भजन भजन नहीं।

तुम ढोंग कर रहे हो, तो सब चीजों में अड़चन आएगी। प्रामाणिक बनो। एक बात तय करो कि तुम्हारे हृदय में कौन सी चीज का तालमेल बैठता है, कौन सी बात संगत बैठती है। फिर उस पर चलो। और चलो हृदयपूर्वक। डुबाओ अपने को पूरा। पूरा डुबाए बिना न तो साक्षी पहुंचता है न भक्त पहुंचता है; न ध्यानी न प्रेमी। डुबाना तो पड़ेगा ही। अगर तुम

सोचते हो कि डुबाने में ही अड़चन आ रही है तो फिर तुम कभी न चल सकोगे। डूबना तो है ही। या तो साक्षी में डूबो या भक्ति में डूबो। डूबना तो पड़ेगा ही।

दोनों मार्ग की कठिनाइयां है, दोनों मार्ग की खूबियां हैं। ऐसा नहीं है कि कोई ऐसा मार्ग है जिस पर कोई कठिनाई ही नहीं है। फिर मार्ग ही क्या होगा? चलोगे तो अड़चन तो होगी। यात्रा करोगे तो धूप-धाम भी सहनी पड़ेगी। कंकड़-पत्थर भी रास्ते पर हैं, कांटे भी हैं।

लेकिन जिसके जीवन में परमात्मा की सुधि आ गई, जिसके जीवन में दौड़ पैदा हो गई, वह सब कठिनाइयों को भूल जाता है, कठिनाइयां भी सीढ़ियां बन जाती हैं।

आज इतना ही।

प्रवचन तीसरा

दिनांक १३ मार्च, १९७७; रजनीश आश्रम, पूना

प्रेम मगन जो साधजन, तिन गति कही न जात।

रोय-रोय गावत-हंसत, दया अटपटी बात।।

हरि-रस माते जे रहैं, तिनको मतो अगाथ।

त्रिभुवन की संपति दया, तृनसम् जानत साथ।।

कहूं धरत पग परत कहूं, उमगि गात सब देह।

दया मगन हरिरूप में, दिन-दिन अधिक सनेह।।

हंसि गावत रोवत उठत, गिरि-गिर परत अधीर।

पै हरिरस चसको दया, सहै कठिन तन पीर।।

विरह-ज्वाल उपजी हिए, राम-सनेही आय।

मनमोहन मोहन सरल, तुम देखन दा चाय।।

काग उड़ावत कर थके, नैन निहारत बाट।

प्रेम-सिंधु में मन परयो, ना निकसन को घाट।।

पूर्ण प्यास एक निमंत्रण है

कोई ए शकील देखे यह जुनूं नहीं तो क्या है

कि उसी के हो गए हम जो न हो सका हमारा।

परमात्मा की खोज में प्रेम का मार्ग पागलों का मार्ग है। तुम तो परमात्मा के हो सकते हो, परमात्मा तुम्हारा कभी भी न होगा। क्योंकि तुम्हारा होने के लिए तो एक बात जरूरी होगी कि तुम बचो। तुम बचो तो ही कोई तुम्हारा हो सकता है। परमात्मा को पाने की अनिवार्य शर्त तो एक ही है कि तुम मिटो। तुम मिट जाओगे तो ही परमात्मा प्रगट होगा। तुम तो बचोगे नहीं, तभी परमात्मा होगा। इसलिए एक बात पक्की है: तुम परमात्मा के हो सकते हो; परमात्मा तुम्हारा कभी भी नहीं होगा। तुम तो बचोगे ही नहीं; दावा कौन करेगा? "मैं' हो तो "मेरा' हो सकता है। "मैं' ही न बचे तो फिर "मेरा' कैसा?

तो परमात्मा के रास्ते पर खोना ही खोना है प्रेमी को; पाने की बात ही व्यर्थ है। और मजा यही है कि उस खोने में ही पाना है। डूबना ही डूबना है। उबरने की बात व्यर्थ है। और मजा यही है कि उस डूबने में ही उबरना है। ठीक मझधार में मिल जाता है किनारा। मिटने का साहस चाहिए। और मिटने के साहस में जो पहला कदम है वह बुद्धि को गंवाने का है--होशियारी गंवाने का है; चालाकी गंवाने का है; गणित, हिसाब और तर्क गंवाने का है।

इसलिए प्रेम की राह दीवानों की राह है, मस्तों की राह है, हिम्मतवरों की राह है। ज्ञान के रास्ते पर तो दुकानदार भी जा सकता है, क्योंकि गणित साफ-सुथरा है। प्रेम के रास्ते पर सिर्फ जुआरी ही चल पाते हैं। क्योंकि खोना है सब और पाने का कुछ पक्का नहीं है। पाना तो होगा ही नहीं, खोना ही खोना होगा। इतना विराट हृदय हो कि हार को ही जीत मान लो, कि मौत को ही जीवन मान लो, कि मिट जाने को ही पहुंचना मान लो--तो ही प्रेम के रास्ते पर द्वार खुलता है। समझदार के लिए प्रेम का रास्ता बंद है। इसलिए प्रेम के रास्ते को हम कहें मधुशाला का मार्ग, शराबी का मार्ग।

प्रेम शराब है। सच तो यह है कि तुम और-और तरह की शराबें खोजते हो, क्योंकि प्रेम की शराब को ढालने का तुम्हें अब तक विज्ञान नहीं आ पाया। तुम्हें मधुशाला जाना पड़ता है, क्योंकि मंदिर अभी तुम्हारी मधुशाला नहीं बन सकता। तुम्हें अंगूरों की शराब पीनी पड़ती है, क्योंकि आत्मा की शराब पीने की तुमने अब तक क्षमता नहीं जुटाई। तुम्हें छोटी-छोटी सस्ती बेहोशी खोजनी पड़ती है, क्योंकि बेहोशी की भाषा तुम्हें भूल गई है।

परमात्मा परम बेहोशी है।

आज के सूत्र बड़े अदभुत हैं! भक्त के ठीक हृदय से निकले हैं--जैसे भक्त का हृदय खिले। एक-एक सूत्र एक-एक कमल की पंखुड़ी है। खयाल से समझना।

"प्रेम मगन जो साधजन, तिन गति कही न जात।

रोय-रोय गावत हंसत, दया अटपटी बात।।'

अटपटी बात! अटपटी बात का अर्थ होता है जो तर्क में न बैठे, गणित में न समाए, हिसाब की पकड़ में न आए। अटपटी बात का अर्थ होता है: उलटी बात। पाना हो तो गंवाना पड़े; पहुंचाना हो, खो जाना पड़े। किनारा मिलने का एक ही उपाय हो कि नौका ठीक मझधार में डूब जाए। उलटी बात।

इसलिए तो कबीर ने उलटबांसियां कही हैं। उलटबांसी का अर्थ होता है: जैसा तर्क में नहीं घटता वैसा जीवन में घटता है। कबीर ने कहा है: नदिया लागी आग! अब नदी में कहीं आग नहीं लगती। नदी में आग लग सकती। यह गणित, विज्ञान, तर्क के नियम के प्रतिकूल है। लेकिन कबीर कहते हैं, जीवन में ऐसा हो रहा है। जो नहीं हो सकता वही हो रहा है। आदमी परमात्मा है और भिखारी बना है--नदिया लागी आग। आदमी अमृत है और मौत के सामने थर-थर कांप रहा है--नदिया लागी आग! नदिया लागी आग! आदमी अविनाशी है, शाश्वत है, सदा से है और सदा रहेगा; स्वयं परमात्मा उसके भीतर विराजमान है; और दो-दो कौड़ी की चीजों के लिए गिड़गिड़ा रहा है, चिल्ला रहा है भिक्षापात्र लिए; जैसे कोई सम्राट भिक्षापात्र लिए भीख मांगता हो। नदिया लागी आग! जो नहीं होना चाहिए वही हो रहा है। और जहां सारा ऐसा उलटा-सीधा हो गया है वहां तुम गणित से परमात्मा तक न पहुंच सकोगे। वहां तो तुम्हें कुछ रास्ता खोजना पड़ेगा--ऐसा रास्ता जो इतना ही अटपटा हो जितना अटपटा जीवन हो गया है। वही तुम्हें बाहर ले जा पाएगा।

अटपटी बात का अर्थ होता है: समझो--सूरज को तुम सुबह उगते देखते हो तो किसी को संदेह नहीं है सूरज पर। तुम्हें कुछ ऐसे लोग मिलते हैं कभी जो कहते हैं, हम मानते हैं कि सूरज है? नहीं। न तो मानने वाले मिलते, न न मानने वाले मिलते। सूरज है ही; सभी के अनुभव में है। तो न तो कोई आस्तिक है न कोई नास्तिक। सूरज है। संसार के संबंध में हम सब तय हैं कि है, क्योंकि अनुभव में आता है, आंख के सामने है। हाथ छू सकते हैं, कान सुन सकते हैं, जीभ स्वाद ले सकती है। इंद्रियों के भीतर है। परमात्मा इस तरह तो इंद्रियों के भीतर नहीं है; न आंख को दिखाई पड़ता, न हाथ से छू सकते हैं, न कान सुन सकते हैं। तो जो आदमी परमात्मा में भरोसा करता है, बड़ा अटपटा आदमी है। संसार में भरोसा तो अटपटी बात नहीं, गणितयुक्त है; तर्क के भीतर है; लेकिन परमात्मा में भरोसा तो बिलकुल अटपटी बात है। जिसे देखा नहीं, जिसे छुआ नहीं, जिसे कभी अनुभव नहीं किया, उस पर भरोसा! जुआरी कर सकते हैं। अज्ञात पर भरोसा! बड़ी हिम्मत चाहिए।

सूरज पर भरोसा करने के लिए कोई हिम्मत तो नहीं चाहिए। लेकिन परमात्मा पर भरोसा करने के लिए तो एक अपूर्व साहस चाहिए--ऐसा साहस जो सब तर्कजाल को एक तरफ उठा कर रख दे।

ऐसा जीवन में एक ही द्वार है हमारे हृदय में--और वह द्वार है प्रेम का। प्रेम के क्षण में ही तुम कभी-कभी तर्कजाल उठा कर एक तरफ रख देते हो। किसी से तुम्हारा प्रेम हो गया, फिर तुम सब हिसाब-किताब छोड़ देते हो। किसी से तुम्हारा प्रेम हो गया, फिर तुम सब हिसाब-किताब छोड़ देते हो। फिर तुम कहते हो, अब प्रेम ही हो गया, अब हिसाब-किताब कैसा! तुम सब दांव पर लगाने को तत्पर हो जाते हो। मजनू ने सब दांव पर लगा दिया न। तुम मजनू हो जाते हो। फिर सोच-विचार काम नहीं पड़ता। फिर तुम कहते हो, अब कुछ हृदय की बात है, यहां सोच-विचार बीच में नहीं आएगा।

एक युवक ने अपनी प्रेयसी के पिता को जा कर कहा कि महानुभाव, आपकी बेटी से विवाह करने को उत्सुक हूं। बाप हिसाबी-किताबी आदमी, जैसा कि बाप को होना चाहिए। उसने युवक को गौर से देखा और कहा कि तुम्हारे इस विवाह की आकांक्षा का क्या कारण है? उस युवक ने कहा: क्षमा करें, कारण कुछ भी नहीं, प्रेम हो गया है। कारण कुछ भी नहीं। ,

प्रेम कोई कारण थोड़े ही है। प्रेम तो कुछ ऐसी बात है जो सब कारण के जाल को तोड़ कर प्रगट होती है। प्रेम कोई कारण नहीं है। प्रेम तो कुछ अज्ञात से आता है। तुम्हारे बस की बात नहीं है; तुम तो अवश हो जाते हो। इसलिए प्रेमी परवश हो जाता है, बिलकुल अवश हो जाता है, असहाय हो जाता है। कुछ घट रहा है जो उसकी सीमा के बाहर है, जो उसके नियंत्रण के बाहर है।

साधारण जीवन का प्रेम ही तुम्हारे नियंत्रण के बाहर है...। एक स्त्री के प्रेम में पड़ जाओ कि एक पुरुष के प्रेम में, यह भी तुम्हारी सीमा और नियंत्रण के बाहर है, तुम्हारे कब्जे के बाहर है। तुमसे बड़ा है। तुम्हें घेर लेता है। तुम इसे नहीं घेर पाते। तुम्हारी मुट्ठी छोटी पड़ जाती है। तुम्हारी मुट्ठी इसे नहीं बांध पाती। यह तुम्हारी मुट्ठी को बांध लेता है। तो फिर परमात्मा के प्रेम की तो बात ही क्या कहनी! वह तो विराट का प्रेम है। वह तो शाश्वत लगाव है। जब किसी के जीवन में परमात्मा के प्रेम की किरण उतरती है तो अटपटी बात हो जाती है, जो साधारणतः नहीं होनी चाहिए।

मीरा नाचने लगी गांव-गांव, सब भूल गई व्यवस्था। राज घर की महिला थी। पागल की तरह सड़कों पर, भीड़-भरे बाजारों में, मंदिरों में नाचने लगी। घर के लोग परेशान हुए होंगे। जहर का प्याला भेजा था तो समझदारी से भेजा था, दुश्मनी से नहीं; खयाल रखना। दुश्मनी का क्या कारण था? जहर का प्याला भेजा था कि यह मीरा अब परिवार के लिए एक अपमान हो गई, अपयश का कारण हो गई; यह मर जाए तो बेहतर।

यहां परमात्मा प्रगट हो रहा है मीरा में और घर के लोग बेचैन हैं। इसे प्रतीक समझना। जब तुम्हारे हृदय में परमात्मा की किरण उतरेगी, तुम्हारी बुद्धि बेचैन होने लगेगी। बुद्धि यानी घर के लोग। बुद्धि यानी हिसाब-किताब। बुद्धि यानी तर्कजाल। जब तुम्हारे हृदय में प्रेम की किरण उतरेगी तो थोड़ा साथ देना उसका, अन्यथा बुद्धि बहुत मजबूत है, मार डाल सकती है, द्वार बंद कर दे सकती है।

अक्सर ऐसा हुआ है। अक्सर तुम्हें भी अनुभव हुआ होगा। कभी-कभी ऐसा होता है, कोई बात पकड़ने लगती है तो तुम घबरा जाते हो, तुम जल्दी से बुद्धि को जोर से जकड़ लेते हो। तुम कहते हो, यह कैसी बात! यह कैसे होने गई थी!

यहां मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, ध्यान करते-करते एक क्षण ऐसा आ जाता है कि नाच उठें, मगर कोई भीतर से पकड़ लेता है, जैसे पैर में जंजीरें अचानक पड़ गईं। जाते-जाते रुक जाते हैं। एक भाव उठता है कि यह क्या कर रहे हैं, यह तो पागलपन है।

बुद्धि विपरीत है हृदय के। और बुद्धि के लिए प्रेम पागलपन है। इसलिए जो बुद्धि की मान कर चलेंगे, उनके जीवन प्रेम-शून्य हो जाते हैं। उनके जीवन में फिर अटपटी बात नहीं घटती।

और जिसके जीवन में अटपटी बात नहीं घटती उसके जीवन में कमल नहीं खिलते। कमल बड़ी अटपटी बात है। देखा, कीचड़ में खिलता है! अब और अटपटी बात क्या होगी! गंदगी में खिलता है। इतना सुंदर! कुरूप कीचड़ में खिलता है। इसलिए तो उसको पंकज कहते हैं। पंक का अर्थ होता है कीचड़। सच तो यह है कि कमल अगर सोने में भी खिले तो भी चमत्कार होगा। लेकिन कीचड़ में खिलता है, तब तो चमत्कार का कहना ही क्या! कमल अगर हीरे-जवाहरात में भी खिले तो भी चमत्कार होगा। क्योंकि हीरे-जवाहरात मुर्दा हैं, कमल जीवंत। कीचड़ में खिलता है, जहां सिर्फ बदबू के, गंदगी के कुछ भी न था। जहां से तुम नाक पर रूमाल रख कर निकलते, वहां खिलता है। और अपूर्व सौंदर्य और अपूर्व सुगंध को फैला देता है। अटपटी बात है। शरीर के ही कीचड़ में परमात्मा एक दिन खिलता है। अटपटी बात है। कामवासना के ही कीचड़ में प्रेम का कमल एक दिन खिलता है। अटपटी बात है। जब मैंने पहली दफे लोगों से कहा कि संभोग से ही समाधि तक पहुंचा जाता है, लोग अब तक नाराज हैं। कहते हैं, यह बात ठीक नहीं है, यह कहनी नहीं चाहिए। मैं इतना ही कह रहा हूं कि कीचड़ में कमल खिलता है; कुछ और नहीं कह रहा हूं। उसको मानवीय तल पर खींच कर ला रहा हूं कीचड़-कमल के प्रतीक को। और अगर कीचड़ में कमल न खिलता हो तो छोड़ दो सब आशा। फिर कमल कभी नहीं खिलेगा। क्योंकि तुम सिवाय कीचड़ के और कुछ भी नहीं हो। कोई भी कीचड़ के सिवाय कुछ भी नहीं है। लेकिन कीचड़ में कमल खिलता है।

जब बुद्ध बुद्ध हो जाते हैं तो क्या हुआ--कीचड़ में कमल खिल गया।

तुम अभी कीचड़ हो; बुद्ध कमल हो गए। भेद आज दिखाई पड़ रहा है। लेकिन कल अगर तुम्हारा कमल भी खिलेगा तो तुम भी बुद्ध जैसे हो जाओगे। और एक दिन बुद्ध भी तुम्हारे जैसे कीचड़ थे। जब मैं कहता हूं, संभोग समाधि बन जाती है, कीचड़ कमल बन जाता है और काम ही राम बन जाता है, तो मैं इतना ही कह रहा हूं कि अटपटी बात घटती है। तर्कयुक्त तो नहीं है। अगर तर्क-शास्त्रियों से पूछा जाता कि क्या कीचड़ में कमल खिल सकता है तो तर्कशास्त्री तो कहते कि यह हो नहीं सकता, यह कैसे हो सकता है! कहां कमल, कहां कीचड़! अगर तुम्हें भी पता न हो कि कीचड़ में कमल खिलता है, तुम किसी ऐसी देश में पैदा हुए हो जहां कमल नहीं होते और एक दिन तुम्हारे सामने कीचड़ का एक ढेर और एक तरफ कमल की एक राशि लगा दी जाए तो क्या तुम कल्पना भी कर सकोगे कि यही कीचड़ कमल हो गया है? असंभव! अटपटी बात है।

प्रेम मगन जो साधजन, तिन गति कही न जात।

रोय-रोय गावत हंसत, दया अटपटी बात।।

प्रेम-मग्न जो साधजन...! जो प्रेम में मग्न हो गए हैं, ऐसे साधु पुरुष...। यह "साध' शब्द बड़ा प्यारा है। विकृत हो गया। भाषाकोश में पढ़ने जाओगे तो साधु का अर्थ होता है महात्मा, तपस्वी। लेकिन साधु शब्द का ठीक-ठीक अर्थ केवल होता है, सरल, सीधा-सादा। जो सीधा-सादा, इतना सरल कि जिसके जीवन में कोई बुद्धि के जाल, तर्कजाल नहीं हैं। बुद्धि बड़ी तिरछी-तिरछी है। बुद्धि बड़ी चालाक है, बड़ी कपटी है। बुद्धि करती कुछ, दिखाती

कुछ; होता कुछ, भीतर कुछ, बाहर कुछ। बुद्धि बड़ा पाखंड है। जो बुद्धि के पाखंड से मुक्त हो गया वह साधुजन। जो जैसा भीतर वैसा बाहर। जिसके बाहर और भीतर में अब जरा भी अंतर नहीं है। वही कहेगा जो है। वही होगा जो कहा है। तुम उसका स्वाद लो कहीं से, तो एक ही जैसा पाओगे।

बुद्ध ने कहा है: साधु ऐसा जैसे सागर का स्वाद; कहीं से चखो, खारा; कभी चखो, खारा; दिन में कि रात, सुबह कि सांझ, अंधेरे कि उजेले, इस किनारे कि उस किनारे, इस तट कि उस तट--कुछ भेद नहीं पड़ता। साधु सागर जैसा है; एक ही उसका स्वाद है।

कपटी का अर्थ होता है, उसके स्वाद अनेक हैं। कपटी का अर्थ होता है, उसके ऊपर बहुत मुखौटे लगे हैं; अपना चेहरा उसने छिपा रखा है; जब जैसी जरूरत होती है, वैसा नकाब लगा लेता है।

साधु का अर्थ होता है, जिसने अपने चेहरे को खोल रखा है; जैसा है वैसा है।

साधु का तुमने जो अर्थ सुन रखा है, वह तो उलटा ही है। तुम तो साधु का अर्थ समझते हो, जिसने बड़ी साधना की है। साधु का अर्थ, जिसने साधना की है, तुम्हें लगता है। लेकिन साधना का तो मतलब ही यह हुआ कि अब वह सरल न रह जाएगा। साधना तो उसी को पड़ता है जो सरल नहीं है! सरल को कहीं साधना पड़ता है! बच्चे साधु हैं। साधा क्या हैं उन्होंने? स्वाभाविक हैं। जो स्वाभाविक--वही साधु! जिसने साधा वह कुछ का कुछ हो जाएगा। साधने का अर्थ ही होता है, भीतर कुछ था, ऊपर से कुछ आरोपित कर लिया। भीतर क्रोध था, ऊपर करुणा दिखलाने लगे। भीतर वासना थी, ऊपर ब्रह्मचर्य प्रगट किया। भीतर लोभ था, भारी लोभ था, बाहर त्याग किया। भीतर कुछ और आकांक्षा जलती थी और बाहर आचरण कुछ और बना लिया। इसी को तुम साधु कहते हो!

दया इस तरह के व्यक्ति को साधु नहीं कहती। दया के साधु की परिभाषा है: प्रेम मग्न जो साधजन...! वे जो प्रेम में मग्न हैं, जो प्रेम में सरल हैं, जो प्रेम में डुबकी लगा रहे हैं, जो प्रेम के पागलपन में उतरने को राजी हैं--तिन गति कही न जात--उनकी गति कहनी बड़ी मुश्किल है। उनके पैर डगमगाते हैं जैसे शराबी के डगमगाते हैं। उनके रोएं-रोएं में मस्ती है। उनके उठने-बैठने में एक गीत है। उनके श्वास-श्वास में संगीत है।

और उनके जीवन में तुम संगति न पाओगे--संगीत जरूर पाओगे। संगति, कंसिस्टेंसी, तो उनके जीवन में होती है जिन्होंने आचरण को साध लिया है। साधु के जीवन में संगति न पाओगे, संगीत जरूर पाओगे। प्रतिपल पाओगे, एक अपूर्व संगीत बज रहा है। लेकिन तुम ऐसा न पाओगे कि जो उसने कल किया था वही वह आज कर रहा है। कल कल था, आज आज है। आज जो परमात्मा कराएगा, वह करेगा; कल से उसका कोई बंधन नहीं है। इसलिए साधु की भविष्यवाणी नहीं हो सकती। तुम यह नहीं कह सकते कि कल वह क्या कहेगा, क्या करेगा। कल आएगा तभी पता चलेगा। साधु को भी पता नहीं है कि कल क्या होगा। कल जो परमात्मा कराएगा वही करेंगे; दिखाएगा वही देखेंगे; जैसा नचाएगा वैसा नाचेंगे। साधु का अर्थ है, जिसने अपने को समर्पित किया परमात्मा के हाथों में; जिसने

अब अपने जीवन को स्वयं नियंत्रित करना बंद कर दिया है; जो निमित्त मात्र हो गया है; जो कहता है; "तुम जैसा करोगे! पत्ता हिलेगा, तुमने हिलाया तो हिलेगा; नहीं हिलेगा, तुमने नहीं हिलाया तो नहीं हिलेगा।'

साधु का अर्थ है जिसने अपनी मर्जी से जीवन छोड़ दिया और प्रभु-मर्जी से जीने लगा। इसलिए "तिन गति कही न जात'। साधु की गति फिर ऐसी ही अटपटी हो जाती है जैसी परमात्मा की गति है। साधु परमात्मा का ही छोटा सा रूप हो जाता है। रोज-रोज नए-नए फूल खिलते हैं। रोज-रोज नए गीत लगते हैं। अगर तुम ऊपर-ऊपर संगति खोजने जाओ तो संगति न मिलेगी। ऐसी संगति तुम्हें महात्मा में मिल जाएगी। क्योंकि उसने तो जीवन पर एक ढांचा बिठा रखा है। उसका ढांचा बंधा हुआ है।

सुना है मैंने एक नाथ के संबंध में। एक गांव में एक नास्तिक था और उस नास्तिक से गांव परेशान हो गया। सब तरह से समझाने की कोशिश की, लेकिन उसकी समझ में न आए। न केवल इतना कि समझ में न आए, वह उलटा गांव को समझाए कि ईश्वर नहीं है। गांव उससे बेचैन होने लगा। तो उन्होंने कहा, ऐसा करो कि एक परम साधु का अवतरण हुआ है--एकनाथ का--तुम उसके पास चले जाओ। अब तो तुम्हें शायद वही समझा सकें तो समझा सकें।

नास्तिक गया। जब पहुंचा, एकनाथ जहां रुके थे, जिस गांव में--एक शिव-मंदिर में ठहरे थे--जब वहां पहुंचा तो बड़ा हैरान हुआ, खुद भी सकपका गया। नास्तिक था, फिर भी उसने देखा कि एकनाथ जो कर रहे हैं, यह तो मैं भी नहीं कर सकता। वे शंकर जी पर पैर टेके हुए विश्राम कर रहे हैं। नास्तिक था, शंकर जी को मानता भी नहीं था, मगर तो भी छाती उसकी धड़क गई कि यह आदमी तो कुछ अजीब सा मालूम होता है! शंकर पर पैर टेके हुए है! यह तो महा नास्तिक है। हालांकि मैं कहता हूं कि कोई ईश्वर नहीं, लेकिन अगर मुझसे भी कोई कहे कि शंकर जी को पैर मारो तो मेरी भी छाती धड़केगी कि पता नहीं हो न हो! कहीं हो ही! पीछे कोई झंझट हो! ये तो बिलकुल निश्चिंत लेटे हुए हैं!

पूछा कि महाराज, यह आप क्या कर रहे हैं? मैं नास्तिक हूं, आस्तिकता की तलाश में आया था। गांव के लोग भी हद मूढ़ हैं, कहां भेज दिया! आप यह क्या कर रहे हैं?

एकनाथ ने कहा: कभी, कहीं भी पैर रखो, वही है। कहीं भी पैर टिकाओ, उसी पर पैर टिकता है। उसके अलावा सहारा कौन! इसलिए कोई अड़चन नहीं है।

बात तो जरा अटपटी थी, पर बात थी तो अर्थपूर्ण। जैसे इस आदमी को कुछ दिखाई पड़ा है! परमात्मा ही है तो अब कहां पैर रखो! कहीं भी रखो, वही है। हर हालत में पैर उसी पर टिकेगा। तब क्या फर्क पड़ता है, शंकर जी पर टेक लो।

खैर, उस आदमी ने सोचा कि आदमी है तो कुछ गहरा। रुक जाऊं, देखूं इसका आचरण--क्या करता है, और क्या करता है!

पड़े रहे, सुबह हो गई, सूरज सिर चढ़ गया। उस आदमी ने कहा: महाराज मैंने तो सुना है कि साधु ब्रह्ममुहूर्त में उठते हैं, पर आप अभी तक विश्राम ही कर रहे हैं!

एकनाथ ने कहाः जब उठे साधु, तभी ब्रह्ममुहूर्त! और क्या ब्रह्ममुहूर्त होता है? ब्रह्ममुहूर्त में साधु उठते हैं, ऐसा नहीं; साधु जब उठते हैं, तभी ब्रह्ममुहूर्त। मैं कौन हूं बीच में आने वाला? जब उसकी मर्जी, उठे; जब उसकी मर्जी, सो जाए।

इस बात को समझना--जब उसकी मर्जी, उठे! तुम्हारे भीतर बैठा तो वही है। अगर उसकी मर्जी अभी उठने की नहीं तो तुम कौन हो उठाने वाले? यह निमित्त-भाव, यह परिपूर्ण समर्पण! मगर ऐसे आदमी के आचरण की संगति नहीं हो सकती।

फिर एकनाथ उठे। भीख मांग लाए, बाटियां बनाने लगे। बाटियां बन कर तैयार हो गई हैं, ठोक-ठोक कर उनकी राख झाड़ रहे थे कि एक कुत्ता आया और एक बाटी ले भागा। वह आदमी बैठा देख रहा है। वे तो भागे उस कुत्ते के पीछे। उस आदमी ने सोचा कि हद हो गई, अभी तो कह रहा था कि सभी जगह परमात्मा है और इतनी तेजी से भाग रहा है कुत्ते के पीछे! तो वह भी भागा कि क्या होगा, देखें! उसने भाग कर कोई दो मील जा कर कुत्ते को पकड़ा हाथ में हंडी भी ले आया है। और कुत्ते का पकड़ कर मुंह और कहा कि नासमझ, हजार दफे तुझसे कहा कि जब तक घी न लगा लूं, कभी भूल कर बाटी ले कर मत भागा कर। राम और बिना घी की बाटी खाएं, मुझे जंचता नहीं।

कुत्ते के मुंह से बाटी छीन कर हंडी में डुबाई घी में, वापस उसको दी और कहाः राम, अब खाओ मजे से।

साधु का आचरण सरल होगा, बालवत होगा। साधु का आचरण साधना का नहीं होगा, सरलता का होगा; साधा हुआ नहीं होगा, कल्टीवेटिड नहीं होगा, सहज होगा। और प्रतिपल नई उमंग होगी। तुम कुछ तय नहीं कर सकते कि साधु कैसा व्यवहार करेगा। जिसका व्यवहार तुम तय कर सको वह तो यंत्रवत है। कल भी ऐसा था, परसों भी ऐसा था, आज भी ऐसा है, कल भी ऐसा होगा। मुर्दा है। साधु तो जीवंत है। इसलिए साधु का जीवन बड़ा अटपटा होगा।

"प्रेम मगन जो साधजन, तिन गति कही न जात'। उनकी गति कही नहीं जा सकती, क्योंकि उनकी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। वे क्या करेंगे, कोई भी नहीं जानता है। वे स्वयं भी नहीं जानते हैं। जो होगा, होगा। तुम्हें पता हैं कल तुम क्या करोगे, तो फिर तुम्हारा कल अभी से मुर्दा है। पैदा नहीं हुआ और मर गया। तुम्हें पता है कोई तुम्हें गाली देगा तो तुम क्या करोगे तो तुम परमात्मा को मौका ही नहीं दे रहे। तुमने पहले ही सब तय कर रखा है। तुमने निर्णय पहले ही ले रखा है। नहीं, गाली तो आने दो, तुम पीछे परमात्मा को कहो कि यह आदमी गाली दे रहा है, अब तू कर, क्या करना है। तब हर बार तुम पाओगे, कुछ नया उठता है। और तब तुम्हारे जीवन में प्रतिक्रियाएं न होंगी; तुम्हारे जीवन में संवेदनशीलता होगी। तुम यंत्रवत व्यवहार न करोगे। अभी तो ऐसा है, बटन किसी ने दबाई कि क्रोधित हो गए; दूसरी बटन दबाई तो प्रसन्न हो गए। अभी तो बटन जैसा मामला है। एक बटन दबाई, बिजली जल गई; एक बटन दबाई, पंखा चल पड़ा। अभी तो तुम यंत्रवत हो। अभी तो तुम गुलाम हो। और हर कोई जो तुम्हारा जीवन थोड़ा सा समझता

है, तुम्हारा मालिक हो जाता है। क्योंकि जिसको भी तुम्हारी बटनें पहचान में आ गईं, तुम उसके गुलाम हो जाते हो। वह तुम्हारी बटनें दबाने लगता है।

तुमने देखा, आमतौर से लोग यही करते हैं! पत्नी जानती है, कौन सी बटन पति की दबाए। पति जानता है कि कौन सी बटन पत्नी की दबाए। बेटे बच्चे तक जानते हैं कि बाप की कौन सी बटन दबानी है, कब दबानी है। भिखमंगे जानते हैं कि कब बटन दबानी है। तुम अगर अकेले हो तो भिखमंगा भीख नहीं मांगता; वह देखता है कि अभी बटन दबेगी नहीं। तुम बाजार में खड़े हो, चार आदमियों से बात कर रहे हो, वह एकदम आ कर पकड़ लेता है। अब वह जानता है कि इस वक्त चार आदमियों के सामने इज्जत का सवाल खड़ा कर दिया; अब अगर दो पैसे तुम न दो, देना तुम चाहते नहीं, तुम्हारा मन तो हो रहा है इसका सिर खोल दें, दया भाव से तुम दे भी नहीं रहे, तुम सिर्फ दे रहे हो कि सिर्फ झंझट छूटे। ये चार आदमी क्या कहेंगे! इनके सामने एक प्रतिष्ठा है। तो तुम मुस्कराते हो, दो पैसे देते हो। भिखमंगा भी जानता है कि तुम दो पैसे उसे नहीं दे रहे, तुम अपनी प्रतिष्ठा में डाले रहे हो दो पैसे। वह तुम्हारी बटन दबा रहा है।

तुम अगर अपने को जांचोगे तो तुम पाओगे कि तुम भी दूसरों की बटनें दबाते रहते हो। और यह भी तुम पाओगे कि दूसरे तुम्हारी बटनें दबाते रहते हैं। क्योंकि लोग यंत्रवत हैं।

साधु की गति नहीं कही जा सकती, क्योंकि साधु की कोई बटन ही नहीं है। और तुम बटन दबाते भी रहो तो भी कोई फर्क न पड़ेगा। साधु जाग्रत है। और साधु ने अब आचरण से जीना बंद कर दिया है। अब वह सरलता से जीता है, स्वाभाविकता से जीता है।

"रोय-रोय गावत हंसत'...। बहुत मुश्किल है साधु की बात। कभी रोता, कभी हंसता, कभी दोनों साथ-साथ भी करता। तुम सिर्फ पागलों को ही कभी रोते और गाते एक साथ पाओगे। क्योंकि बड़ी अतक्र्य बात है। एक आदमी रो रहा है, समझ में आता है कि रो रहा है, दुखी है एक आदमी हंस रहा है, समझ में आता है कि सुखी है। लेकिन एक आदमी रो भी रहा है और हंस भी रहा है, तब जरा अड़चन है। यह जरा मुश्किल की बात है। इसको सुलझाना कठिन है। यह पहेली है। क्योंकि अगर यह दुखी है तो सिर्फ रोए और अगर यह प्रसन्न है तो सिर्फ हंसे; यह दोनों साथ क्यों कर रहा है?

लेकिन साधु की ऐसी दशा है: एक तरफ देखता है संसार और रोता है; और एक तरफ देखता है परमात्मा और हंसता है। मध्य में खड़ा है; द्वार पर खड़ा है। एक तरफ देखता है अथाह दुख और पीड़ा और लोगों को तड़पते और बिलबिलाते कीड़े-मकोड़ों की तरह, और रोता है। और एक तरफ देखता प्रभु का परम प्रसाद, आनंद की वर्षा; हंसता है। हंसता भी है, रोता भी है।

"रोय-रोय गावत हंसत, दया अटपटी बात'।

इसलिए तुम साधु को अगर सच में पहचानने चले हो तो तुम कुछ बातें खयाल में ले लेना: साधु मतवाला है, मस्त है। बिना पीए पीए बैठा है।

बेपिये कहते हैं सब रिंद-ए-मयाशम मुझे

बेखुदी तूने किया मुफ्त में बदनाम मुझे।

वह जो साधु है, वह बिना पीए बैठा है। वह तुम्हें ऐसा ही लगेगा कि पीए बैठा है।

अब यह आलम है तेरे हुस्न की खैर

होश औ' मस्ती में इम्तियाज नहीं।

अब उसे कुछ फर्क नहीं रहा कि क्या होश है और क्या बेहोशी है। दोनों मिलजुल गए हैं। द्वंद्व एक-दूसरे में लीन हो गए हैं, डूब गए हैं। इसलिए हंसना और रोना साथ-साथ चल सकता है। रो भी सकता है, गा भी सकता है।

हम तो जीवन को बांट कर जीते हैं। हम जीवन की हर चीज को बांट लेते हैं। इधर जीवन को रखते हैं, इधर मौत को। इधर सुख इधर दुख। इधर स्वर्ग इधर नर्क। इधर प्रेम इधर घृणा। इधर अपने इधर पराए। इधर मित्र इधर शत्रु। हम तो हर चीज को बांट लेते हैं। और जीवन अनबंटा है। साधु बांटता नहीं; जीवन के अनबंटेपन को जीता है। जीवन अद्वैत है; साधु जीवन को उसकी समग्रता में जीता है।

जीवन और मौत अलग-अलग हैं नहीं, तुमने मान रखे हैं। तुम जिस दिन पैदा हुए उसी दिन आखिरी सांस की शुरुआत हो गई। ऐसा थोड़े ही है कि सत्तर वर्ष बाद एक दिन तुम अचानक मर जाओगे। अचानक कहीं कुछ होता है? सत्तर साल लगते हैं मरने में--धीरे-धीरे, धीरे-धीरे मरते-मरते-मरते सत्तर साल में मर पाते हो।

तो जन्म और मृत्यु कोई दो अलग-अलग चीजें नहीं हैं। जन्म और मृत्यु ऐसी ही हैं जैसे तुम्हारा दायां और बायां पैर साथ-साथ चल रहे हैं। जैसे भीतर जाती श्वास, बाहर जाती श्वास...। अगर जन्म है भीतर जाती श्वास तो मौत है बाहर जाती श्वास। साथ-साथ चल रहे हैं। ये दोनों पैर साथ-साथ, ये दोनों पंख साथ-साथ।

तुम्हें तो कभी-कभी हैरानी होती है। अगर तुम रो रहे हो और हंसी आ जाए तो तुम रोक लोगे; तुम कहोगे, लोग कहेंगे पागल हो!

मेरे एक शिक्षक चल बसे। वे बड़े प्यारे आदमी थे, बड़े मोटेत्तगड़े आदमी थे। "तरुलता' कुछ भी नहीं है! और बड़े भोले-भाले भी थे। और उनका चेहरा देख कर ही हंसी आती थी। उनके चेहरे पर ही ऐसा भोलापन था। और भोलानाथ कहने से वे चिढ़ते थे। तो स्कूल में तखते पर भोलानाथ लिख देना काफी था घंटे भर उनको परेशान करने के लिए। बस वे फिर घंटे भर नाराज ही रहते। उनकी उछल-कूद और उनकी नाराजगी और उनका डंडे को पीटना और उनका मोटा शरीर और पसीना-पसीना हो जाना...।

वे मर गए तो सब बच्चे भी उनके घर गए। मैं उनके बिलकुल पास खड़ा था। उनके चेहरे को देख कर मुझे हंसी आने लगी। आंसू भी गिर रहे हैं। मैंने बहुत कोशिश की कि हंसी रोक लूं, क्योंकि यह बात जंचेगी नहीं। कोई मर गया और कोई हंसे...! और मैं रो भी रहा था और मैं दुखी भी था। क्योंकि सबसे ज्यादा उनको मैंने ही सताया था और सबसे ज्यादा मैं ही दुखी था। सबसे ज्यादा नुकसान मेरा ही हुआ था। अब दुबारा वैसा सुख न मिल पाएगा। तो इसलिए मेरा उनसे लगाव भी था, उनका मुझसे लगाव भी था। तभी उनकी पत्नी आई भीतर

से और एकदम पछाड़ खा कर उनके ऊपर गिर पड़ी और उसने कहाः "हाए मेरे भोलानाथ'! तब, फिर...तब फिर मैं नहीं रोक पाया। क्योंकि जिंदगी भर हम भोलानाथ कह कर उनको परेशान करते रहे और यह उनकी खुद पत्नी मरे हुए पति को फिर वही बात कह रही है! अगर उनकी आत्मा कहीं आसपास होगी तो वह एकदम उछल-कूद करने लगेगी। तो मैं रोता रहा और हंसी फूट पड़ी। मैं बहुत डांटा-डपटा गया। और कहाः दुबारा किसी के मरने में जाना मत। मैंने उससे पूछाः लेकिन इसमें बात क्या है? दोनों बात एक साथ नहीं घट सकतीं? उन्होंने कहाः बकवास नहीं। सारे लोगों ने समझायाः घट सकती है कि नहीं, इसमें विचार नहीं करना है। लेकिन जब कोई मर गया हो तो रोना संगत है, हंसना असंगत है। और फिर दोनों साथ-साथ तो बिलकुल ही पागलपन है।

लेकिन तुमने कभी खयाल किया, छोटे बच्चों को रोते देखा? छोटा बच्चा अगर ज्यादा हंसे तो धीरे-धीरे हंसी रोने में बदल जाती है। इसलिए गांव में माताएं कहती हैं कि ज्यादा मत हंसो बेटे, नहीं तो रोने लगोगे। क्योंकि छोटे बच्चे को अभी विभाजन साफ-साफ नहीं हुआ है। अभी अद्वैत में है। अभी हंसता है तो हंसी धीरे-धीरे रोना बन जाती है; रोता है तो हंसी बन जाती है। अभी विपरीत विपरीत नहीं है। अभी कहीं सब चीजें जुड़ी हैं। साधु फिर जुड़ जाता है। साधु फिर छोटे बच्चे जैसा हो जाता है।

इसलिए जीसस ने कहा है, जो छोटे बच्चों की भांति होंगे वे ही केवल मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे। बालवत।

तो साधु का अर्थ साधक मत लेना। साधु का अर्थः जो पुनः छोटे बच्चे जैसे हो गया; पुनः हो गया निर्दोष।

अपनी हालत का खुद अहसास नहीं है मुझको

मैंने औरों से सुना है कि परीशान हूं मैं।

साधु को अपनी हालत का भी पता नहीं रहता; लापता हो जाता है। जैसा परमात्मा बेपता है ऐसा ही साधु भी बेपता हो जाता है। बेपते से जुड़ोगे तो बेपता हो ही जाओगे। अज्ञात से जुड़ोगे तो खुद भी अज्ञात हो जाओगे।

अपनी हालत का खुद अहसास नहीं है मुझको।

मैंने औरों से सुना है कि परीशान हूं मैं।

साधु को औरों से पता चलता है कि तुमने क्या किया, कि तुम हंस दिए, कि तुम रो रहे थे, कि तुम पागल हो गए थे, कि रास्ते पर नाच रहे थे। लोग जब कहते हैं, तब उसे पता चलता है। क्योंकि जब वह किसी कृत्य में होता है तो पूरा-पूरा होता है; ऐसा दूर खड़े हो कर देखता नहीं। यही तो साक्षी और भक्ति के मार्ग का भेद है। साक्षी के मार्ग पर तुम सदा दूर खड़े हो कर, पार खड़े हो कर देखते हो; तुम सदा द्रष्टा हो। कुछ भी हो रहा है, तुम दूर रहते हो; अछूते खड़े रहते हो; प्रवेश नहीं करते घटना में।

भक्ति का अर्थ हैः दूर नहीं खड़े रहना है। द्रष्टा नहीं बनना है, भोक्ता हो जाना है। भक्ति यानी बिलकुल भोक्ता हो जाना, डूब जाना है; जो हो रहा है उसमें ऐसे डूब जाना है कि तुम्हारा

कोई कोना-कातर भी अछूता न रह जाए। तुम्हारा रोआं-रोआं डूब जाए, तल्लीन हो जाए। कृत्य तब पूर्ण होता है जब तुम्हारी चेतना उसमें पूर्ण डूब गई होती है। जब तुम द्रष्टा नहीं रहते, भोक्ता होते हो; जब तुम इस तरह भोक्ता होते हो कि तुम बचते ही नहीं अलग, भोग ही बचता है--उस परम भोग का नाम भक्ति है। और जब तुम बिलकुल मिट जाते हो कृत्य में--गीत गाते वक्त गीत गाना ही बचता है, गीत गाने वाला नहीं; नाचते वक्त नाच ही बचता है, नर्तक नहीं; भजन में भजन ही बचता है, भजनीक नहीं। जब झुकता है भक्त परमात्मा के चरणों में तो सिर्फ झुकना ही होता है वहां, वहां कोई झुकने को देखने वाला नहीं होता पीछे खड़ा कि देख भी रहे हैं कि मैं झुक रहा हूं। अगर तुम देख रहे हो कि तुम झुक रहे हो तो तुम झुके ही नहीं; तुम्हारा अहंकार तो खड़ा ही रहा। शरीर झुक गया, तुम नहीं झुके।

ऐसा सुना मैंने, एक फकीर बायजीद को मिलने आया। नियमानुसार झुका। झुक कर खड़ा हुआ और बायजीद से उसने कुछ सवाल पूछा। बायजीद ने कहा: लेकिन पहले झुको तो! उसने कहा: अभी झुका और आप कहते हैं, झुको तो! आपने देखा नहीं! बायजीद ने कहा: शरीर झुका, तुम नहीं झुके। तुम झुको!

ऐसा बुद्ध के जीवन में उल्लेख है। एक सम्राट एक हाथ में कमल के फूल--असमय के फूल, अभी मौसम न था--और एक हाथ में हीरे-जवाहरात ले कर आया। सोचा उसने, हीरे-जवाहरात चढ़ाऊंगा, शायद बुद्ध नापसंद करें, क्योंकि हीरे-जवाहरात से बुद्ध को क्या लेना-देना! तो फिर फूल चढ़ा दूंगा। फूल तो पसंद करेंगे न! तो वह एक हाथ में हीरे-जवाहरात भर कर चढ़ाने को ही था कि बुद्ध ने कहा: चढ़ा मत, गिरा दे! वह थोड़ा झिझका। क्योंकि चढ़ाने में एक मजा था। अहंकार का एक मजा है कि मैंने ऐसे बहुमूल्य हीरे-जवाहरात चढ़ाए! और बुद्ध कहते हैं, गिरा दिए कि अब ठीक है, अब सामने बेइज्जती हो जाएगी, इतनी भीड़, लोग मौजूद! और बुद्ध कहते हैं, गिरा दे। अगर वह न गिराए...। गिरा दिए।

फिर वह फूल चढ़ाने को हुआ। बुद्ध ने फिर कहा कि गिरा दे, तो उसने फूल भी गिरा दिए। तब वह दोनों खाली हाथ झुकाने को ही था कि बुद्ध ने फिर कहा गिरा दे! तो वह खड़ा हो गया। उसने कहा कि आप होश में हैं? अब हाथ में कुछ गिराने को ही नहीं। बुद्ध ने कहा: हाथ में जो था उसको गिराने की यहां बात ही नहीं थी। फूल और हीरे-जवाहरात ले कर आया है दिखाने कि देखो कि मैं कितना बड़ा सम्राट हूं, इतनी बहुमूल्य चीजें चढ़ा रहा हूं! तू ऊपर से दिखा रहा है, चढ़ा रहा है, लेकिन भीतर तू अकड़ा खड़ा है।

भक्त जब झुकता है तो वहां सिर्फ झुकना ही होता है; वहां कोई झुकने वाला नहीं होता। और भक्त जब नाचता है तो सिर्फ नाच ही होता है; कोई नाचने वाला नहीं होता। कृत्य ही रह जाता है; कोई कर्ता नहीं बचता। सब तरह से डूब जाता है कर्ता। भोग ही बचता है; भोक्ता सब तरह से उसी में लीन हो जाता है। इस लवलीनता का नाम है सरलता। इस लवलीनता का नाम है समर्पण।

"रोय-रोय गावत हंसत, दया अटपटी बात'।

फिर प्रभु हंसाता है तो हंसता है, रुलाता है तो रोता है; न अपनी तरफ से हंसता है न अपनी तरफ से रोता है; फिर जहां प्रभु ले चले, चलता है; जो कराए करता है; न कराए, नहीं करता है। अपनी मर्जी खो दी। अपनी योजनाएं छोड़ दीं। अब प्रभु के हाथ का एक उपकरण हो जाता है। इसलिए बड़ी अटपटी बात है।

"हरिरस माते जे रहैं, तिनको मतो अगाध।

त्रिभुवन की संपति दया, तृनसम जानत साध।।'

"हरिरस माते जे रहैं।'...बड़ा प्यारा वचन है: हरिरस माते जे रहैं...! जो हरिरस को पी कर उन्मत्त हो गए हैं, मनमत्त हो गए हैं। हरिरस माते जे रहैं...! जिन्होंने हरिरस की शराब पी ली है, अब जिनका कुछ अपना होश नहीं रहा, जिन्हें अपना अब कोई भान, अपनी कोई सुधि नहीं रही।

खयाल रखना, जब तक तुम्हें अपनी सुधि है तब तक प्रभु की सुधि न आएगी। ये दो तलवारें एक ही म्यान में बनती नहीं। जब तक "मैं' है तब तक प्रभु नहीं। और जब प्रभु आता है तो तभी आता है जब "मैं' चला गया होता है।

"हरिरस माते जे रहैं'! जो मदमस्त हो गए हैं हरिरस को पी कर..."तिनको मतो अगाध', इनकी चेतना बड़ी अगाध है, असीम! क्योंकि जैसे ही तुमने अपने को समर्पित किया, तुम्हारी सब सीमाएं गईं। तुम्हारे होने के कारण ही तुम सीमित हो। प्रभु तो असीम है।

समझो, गंगा बहती है। बड़ी है नदी, पर सीमा तो है ही। जब सागर में गिर जाएगी तो सीमा खो जाएगी। आदमी छोटे-छोटे झरने हैं; जब सागर में उतर जाते हैं तो सीमाएं खो जाती हैं। जैसे एक बूंद सागर में उतर जाए तो फिर बूंद बूंद तो नहीं रह जाती है; सागर ही हो जाती है। बूंद की तरह मिट जाती है और सागर की तरह हो जाती है।

"हरिरस माते जे रहैं, तिनको मतो अगाध'।

--उनका जो चैतन्य है, उनकी जो धारणा-अवस्था है, उनकी जो बोध की स्थिति है, वह अगाध हो जाती है--जो प्रभु के रस में मस्त हो गए!

उमर खय्याम ने रुबाईयात में इसी हरिरस की बात की है। लेकिन फिट्ज़राल्ड, जिसने अंग्रेजी में अनुवाद किया उमर खय्याम का, समझा नहीं। वह समझा कि यह शराब की ही बात हो रही है। इसलिए सूफी उमर खय्याम के साथ बड़ी ज्यादती हो गई। लोग यही समझे कि उमर खय्याम शराब की, शराबखाने की, साकी की, इन्हीं की बात कर रहा है। इसलिए तुम पाओगे अब शराबघरों के नाम रख दिए गए: उमर-खय्याम या रुबाईयात। उमर खय्याम हरिरस की बात कर रहा था। सूफी फकीर है। शराब तो उसने कभी चखी नहीं, शराबघर कभी गया नहीं। लेकिन तुमने जितने भी चित्र देखे होंगे उमर खय्याम के, उनमें सुराही लिए बैठा है। वह सुराही बड़ी और है। वह सुराही कहीं और की है। वह सुराही इस जगत की नहीं, इस मिट्टी से बनी नहीं। और जो शराब ढाल रहा है, वह शराब हरिरस की है। दुनिया में संतों के साथ सदा ज्यादती होती रही, लेकिन जैसी ज्यादती उमर खय्याम के साथ हुई वैसी किसी के साथ नहीं हुई। क्योंकि उसका तो जितना भी अनुवाद हुआ, जिस भाषा में अनुवाद

हुआ, वहीं भूल हो गई। फिट्ज़राल्ड बड़ा कवि था और महत्वपूर्ण कवि था। उसने उमर खय्याम में चार चांद लगा दिए, मगर सारी बात गलत कर दी। कहां प्रेमरस की बात, कहां हरिरस की बात! वह सब खराब हो गई। वह शराबखाने बात की हो गई।

लेकिन शराब का प्रतीक बड़ा महत्वपूर्ण है। महत्वपूर्ण इसलिए है कि जो शराब में घटता है छोटे-मोटे पैमाने पर, वही परमात्मा में घटता है बहुत बड़े पैमाने पर, विराट पैमाने पर।

"हरिरस माते जे रहैं, तिनको मतो अगाध।

त्रिभुवन की संपति दया, तृनसम जानत साध।।'

और जो साधु है, जो सरल हुआ, उसे इस सारे जगत की संपत्ति तृणवत् मालूम पड़ती है। क्यों? गलत मत समझ लेना, जैसा अभी तक लोग समझाते रहे हैं तुम्हें। वे यह समझाते रहे हैं कि संसार की संपत्ति को तृणवत् समझो। इस सूत्र को ऐसा मत समझ लेना। यह सूत्र यह नहीं कह रहा है कि तृणवत् समझो; यह सूत्र कह रहा है कि जो साधु हैं, वे तृणवत् जानते हैं। समझने की बात नहीं है कि तुम रखो सोना और समझो कि मिट्टी है। कैसे समझोगे? लाख दोहराओ कि मिट्टी है, तुम जानते हो सोना है। मिट्टी को सामने रख कर तो तुम नहीं दोहराते कि मिट्टी है; सोने को सामने रख कर दोहराते हो कि मिट्टी है। तुम जानते हो फर्क, भलीभांति जानते हो। फर्क को झुठलाने की कोशिश कर रहे हो; अपने को समझाने की कोशिश कर रहे हो कि मिट्टी है, कुछ भी नहीं रखा इसमें। किसको समझा रहे हो कि कुछ भी नहीं रखा? भीतर तुम्हारा मन कह रहा है कि बहुत कुछ रखा है। उस मन को तुम दबा रहे हो कि कुछ भी नहीं रखा, यह तो सब मिट्टी है, इसमें क्या रखा है; और आज है कल चला जाएगा! सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब बांध चलेगा बंजारा! लेकिन अभी तुम जानते हो कि है ठाठ। पड़ा रह जाएगा; तुम्हारा बस चले तो पड़ा भी न रहने दो, साथ ले जाओ। चलते वक्त दुखी होओगे।

यह तुम अपने को समझा रहे हो। खयाल करना, साधु वह नहीं है जो सोचता है कि सोना मिट्टी है; साधु वह है जो जानता है कि सोना मिट्टी है। और जानने और सोचने में क्या फर्क है? सोचना उधार है। दूसरों के जानने को तुम समझ रहे हो तुम्हारा जानना है। बासा है, दो कौड़ी का है। इस तरह तुम एक झूठा आचरण बना सकते हो; पाखंडी हो जाओगे, साधु नहीं।

साधु कैसे जानता है कि तृणवत् है सारी संपत्ति? उसके जानने की कला बड़ी और है। जब तक तुम्हें परमात्मा की संपत्ति का पता न चले, इस जगत की संपत्ति तृणवत् हो ही नहीं सकती। कैसे होगी? बड़े को जान लो तो छोटा छोटा हो जाता है।

तुमने अकबर की कहानी सुनी न! लकीर खींच दी उसने दरबार में आ कर एक दिन और कहा कि कोई इसे बिना छुए छोटी कर दे। उसके दरबारियों ने सोचा, बहुत सिर मारा, मगर बिना छुए कैसे कोई छोटी कर सकता है! फिर उठा बीरबल, उसने एक बड़ी लकीर उसके पास खींच दी। उस लकीर को छुआ भी नहीं और वह छोटी हो गई।

तुम्हें समझाया गया है कि इस संसार की संपदा को तुम मिट्टी समझो। मैं नहीं समझाता; न दया तुमसे यह कह रही है। न जानने वालों ने कभी कहा है, न जानने वाले कभी कह सकते हैं। क्योंकि ऐसी नासमझी की बात जानने वाले कैसे कहेंगे! लेकिन तुम्हारे सौ महात्माओं में निन्यानबे तुम जैसे ही नासमझ होते हैं, कभी-कभी तो तुमसे भी ज्यादा नासमझ होते हैं।

बड़ी लकीर पहले खींचो; छोटी लकीर को छूने की जरूरत भी न पड़ेगी। तुम परमात्मा की संपत्ति को थोड़ा अनुभव करो; इस जगत की सब संपत्ति तृणवत् हो जाएगी। जैसे एक आदमी एक पत्थर को हाथ में लिए चला जा रहा है--रंगीन पत्थर सूरज की रोशनी में चमकता है। वह सोचता है बहुमूल्य है। इसको हीरा मिल जाए, इसको कोहिनूर मिल जाए--फिर थोड़े ही सोचेगा कि यह चमकदार पत्थर बहुमूल्य है। फिर इसको छोड़ना थोड़े ही पड़ेगा, त्याग थोड़े ही करना पड़ेगा! भूल ही जाएगा इसको। यह तो कब हाथ से सरक कर नीचे गिर जाएगा, याद भी न आएगा, लौट कर भी न देखेगा। हीरे को सम्हालेगा कि पत्थर को सम्हालेगा? मुट्ठी खाली करनी पड़ेगी न! जगह बनानी पड़ेगी।

मैं तुमसे कहता हूं, परमात्मा को खोजो और संसार को मत छोड़ना। जिस दिन परमात्मा की किरण उतरेगी, संसार छूटने लगेगा। इसलिए मैंने अपने संन्यासी को संसार छोड़ने की प्रक्रिया नहीं दी है। संन्यास छोड़ना नहीं है। संन्यास त्याग नहीं है। संन्यास भागना नहीं है। संन्यास है प्रभु को निमंत्रण देना। संन्यास है प्रभु को बुलावा देना कि अतिथि, आओ, पधारो; कि मैं प्रतीक्षा करूं; कि मैं पूजूंगा, प्रार्थना करूंगा, बुलाऊंगा स्मरण करूंगा; तुम आओ! जिस दिन प्रभु आ जाता है, बड़ी लकीर खिंच जाती है, अनंत लकीर खिंच जाती है--और-छोर नहीं जिसके! यह संसार की छोटी सी लकीर कब धूमिल हो कर कहां खो जाती है, पता भी नहीं चलता। तब तुम कभी बाद में यह दावा भी न कर सकोगे कि मैंने त्याग किया। क्योंकि क्या दावा? तुमने कभी किया ही नहीं तो दावा कैसा! इसलिए जो त्याग का दावा करे, समझ लेना चूक हो गई! जो कहे मैंने लाखों रुपए छोड़ दिया, समझना कि लाखों की गिनती अभी जारी है। जो कहे कि देखो मैंने कितना छोड़ा, समझ लेना इसके जीवन में बड़ी लकीर नहीं आई अभी। यह उसी लकीर के साथ संघर्ष कर रहा है; उसी को छू-छू कर छोटा करने की कोशिश कर रहा है। और वह लकीर इतनी आसानी से छोटी नहीं हो सकती। तुम पोंछ भी डालो तो भी मिटेगी नहीं; क्योंकि जब तक बड़े का अवतरण न हो जाए, क्षुद्र मिटता नहीं है।

अंधेरे को मिटा सकते हो कमरे के, जब तक रोशनी न आ जाए? कैसे मिटाओगे? लड़ सकते हो, या आंख बंद करके मान ले सकते हो कि मिट गया अंधेरा। जब भी आंख खोलोगे, सदा उसे पाओगे। रोशनी आ जाए, फिर अंधेरा नहीं बचता।

संसार अंधेरा है; परमात्मा प्रकाश है। तुम प्रकाश को खोजो, अंधेरे से मत लड़ो।

"हरिदास माते जे रहैं, तिनको मतो अगाध'।

डूब जाओ हरि की शराब में! जी भर कर पीओ। रोएं-रोएं को मदमस्त हो जाने दो।

"त्रिभुवन की संपति दया, तृनसम जानत साध'।
जानता है ऐसा, मानता नहीं। मानने से कुछ भी नहीं होगा। मानना तो बहुत लचर, नपुंसक है। ऐसा अनुभव होता है कि यह सब व्यर्थ है। जब यह अनुभव होता है कि यह व्यर्थ है, पकड़ छूट जाती है। छोड़नी नहीं पड़ती, छूट जाती है। जैसे सूखा पत्ता गिर जाता है वृक्ष से चुपचाप, ऐसे संसार तिरोहित हो जाता है। तुम फिर यह न कहते फिरोगे कि मैंने त्याग किया। दूसरे भला कहें कि कितना त्याग कर दिया; तुम्हें बड़ी हैरानी होगी कि क्या त्याग कर दिया, कैसा त्याग कर दिया।
रामकृष्ण के पास एक दिन एक आदमी ने आ कर कहा कि आप महा त्यागी हैं! रामकृष्ण हंसने लगे और कहने लगेः यह भी खूब रही! हम तो सोचते थे, तुम बड़े त्यागी हो। वह आदमी कहने लगेः आप मजाक कर रहे हैं। आप कभी मजाक नहीं करते; आप क्या कह रहे हैं? मैं और त्यागी! मैं संसारी, चौबीस घंटे संसार में रगा-पगा! चौबीस घंटे यही संसार के ठीकरे जोड़ रहा! मुझको आप त्यागी कहते हैं?
रामकृष्ण ने कहाः निश्चित, तुमको मैं त्यागी कहता हूं। भूल कर मुझे त्यागी मत कहना, क्योंकि मैं तो उस परम प्रभु को भाग रहा हूं; त्यागी कैसे! और तुम संसार के ठीकरे जोड़ रहे हो, परमात्मा को छोड़े बैठे हो; त्याग तुम्हारा बड़ा है। तुम हो असली परमहंस देव! हम तो साधारण भोगी हैं--परमात्मा को भोग रहे हैं? हमने छोड़ा क्या? कौड़ी छोड़ी, हीरा पाया; इसको त्याग कहोगे? तुमने हीरा छोड़ा, कौड़ी पाई; यह तुम्हारा त्याग बड़ा है। निश्चित बड़ा है।
संसारी बड़ा त्यागी है। कूड़ा-कर्कट बीन रहा है, छांट-छांट कर कूड़ा-कर्कट इकट्ठा कर रहा है। हीरे-जवाहरात बीच में आ जाएं तो सरका देता है। अगर कभी ध्यान बीच में आने लगा, हटा देता है, कि अभी कहां, अभी तो धन इकट्ठा करो! ध्यान--अभी नहीं! कभी संन्यास बीच में सिर उठाने लगे, हटा देते हैं कि अभी नहीं, अभी जिंदगी पड़ी है, अभी बहुत कुछ करना है, अभी दुनिया में बहुत कुछ सिद्ध करना है। अगर राम कभी बीच-बीच में याद आने लगे, कभी उसकी तरंग आने लगे, तुम जल्दी से अपने को झकझोर कर साफ कर लेते हो कि यह खतरनाक मामला है, इसमें उलझो मत!
नहीं, जिसके जीवन में त्याग घटता है, उसे तो पता भी नहीं होता।
मुझको तो होश नहीं, तुमको खबर हो शायद
लोग कहते हैं कि तुमने मुझे बरबाद किया।
भक्त तो एक दिन परमात्मा से कहेगा कि लोग भी खूब हैं; लोग कहते हैं कि बरबाद हो गए, त्याग कर दिया, सब छोड़ बैठे, नासमझ हो गए, दिमाग खराब हो गया।
मुझको तो होश नहीं, तुमको खबर हो शायद...भक्त भगवान से कहेगाः शायद तुमको पता हो, मुझको तो कुछ पता नहीं कि कब क्या हो गया, क्या गुजरी, कैसी गुजरी! मैं तो मस्त हूं। लोग कहते हैं कि तुमने मुझे बरबाद किया।
"कहूं धरत पग परत कहूं उमगि गात सब देह।

दया मगन हरिरूप में, दिन-दिन अधिक सनेह।।'

"कहूं धरत पग परत कहूं'--यह भक्त की दशा है। कहीं पैर रखते हैं कहीं पड़ता है। कहीं जाते हैं, कहीं पहुंच जाते हैं। अपने बस में नहीं, परमात्मा के बस में। अपना नियंत्रण नहीं। खयाल रखना, जब तक तुम अपने नियंत्रण में हो तब तक अहंकार है। अहंकार तुम्हारे नियंत्रण का ही नाम है। जिस दिन तुम अपनी मालकियत छोड़ देते हो उसके चरणों में, रख देते हो कि अब तू सम्हाल, तेरी मर्जी पूरी हो--फिर जहां पैर पड़ें, जैसे पैर पड़ें! तुम पैर भी नहीं सम्हालते।

"कहूं धरत पग परत कहूं'...और फिर मस्ती ऐसी, इतना विराट उतर आए तुम्हारे छोटे से आंगन में, मस्त न हो जाओगे? तुम्हारे दुख भरे जीवन में आनंद की ऐसी धार बह उठे, तुम्हारे निराश और उदास और विषाद से भरे मरुस्थल में हरिरस की धार बह उठे, मरूद्यान आ जाए--नाचने न लगोगे? फिर पैर होश में पड़ेंगे? फिर पैरों को कुछ पता रहेगा, कहां पड़ रहे हैं?

"कहूं धरत पग परत कहूं, उमगि गात सब देह।' बड़ी अनूठी बात है...उमगि गात सब देह...। रोआं-रोआं सब उमंग से भर गया, उत्सव से भर गया है। विराट का आगमन हुआ! प्रीतम घर आए! अंधेरे में रोशनी उतरी। जहां मौत ही मौत थी वहां जीवन नाचा। उमगि गात सब देह...रोआं-रोआं पुलकित है, नाच रहा है। रोआं-रोआं संगीत से भरा है। हृदय-वीणा बजी है। उमंग है, उत्साह है, उत्सव है।

भक्त का जीवन उत्सव का जीवन है।

धर्म के नाम पर बड़ी उदासी छा गई है। मंदिर-मस्जिद-चर्च बड़े उदास हो गए हैं। नाच, राग-रंग खो गया है। महात्मा भारी चट्टानों की तरह छाती पर बैठ गए हैं।

धर्म का वास्तविक रूप बड़ा पुलकित रूप है। धर्म का वास्तविक रूप पथरीला नहीं है। फूलों जैसा है। उदास नहीं है; उमंग का है, उत्सव का है।

एक बूढ़े संन्यासी मुझे मिलने आए कुछ दिन पहले। वे कहने लगे: यह क्या मामला है? यह कैसा आश्रम? लोग नाचते, लोग पुलकित, लोग आनंदित...। लोग मस्ती में है जैसे नशे में हों। गंभीर होना चाहिए। सत्य के खोजी को तो गंभीर होना चाहिए। सत्य की खोज तो बड़ी गंभीर बात है।

मैंने उनसे कहा: सत्य की हम यहां खोज ही नहीं कर रहे; हम तो प्रभु की खोज कर रहे हैं। सत्य शब्द ही गंभीर हो जाता है। सत्य शब्द ही रूखा-सूखा हो गया है। मरुस्थल तो आ गया उसमें।

फर्क देखते हो! "सत्य की खोज'--जैसे तर्क का एक जाल फैलाना होगा, बुद्धि लगानी होगी, सिर टकराना होगा। प्रभु की खोज, प्यारे की खोज, परम मीत की खोज--बड़ी और बात है! दार्शनिक सत्य की खोज करते हैं; धार्मिक प्रभु की खोज करते हैं। दार्शनिक परमात्मा को सत्य कहते हैं, और तब परमात्मा को भी उदास कर देते हैं। धार्मिक सत्य को

भी परमात्मा कहते हैं, प्रीतम कहते हैं, प्यारे का संबंध जोड़ते हैं। यह कोई तर्क का नाता नहीं है; प्रेम, प्रीति, लगाव का नाता है।

"उमगि गात सब देह...'!...जब तुम्हारा मनत्तन सब नाचने लगे, मनत्तन दोनों एक ही उमंग में बंध जाएं...और खयाल रखना, दया। कह रही है: उमगि गात सब देह! ऐसा नहीं कि सिर्फ तुम्हारी आत्मा नाचेगी। यह भी अधूरी दृष्टि है कि आत्मा प्रसन्न है। यह भी शरीर के विपरीत दृष्टि है। जब आत्मा नाचेगी तो मन भी नाचेगा। जब मन नाचेगा, देह भी नाचेगी। तुम्हारी समग्रता नाचेगी। तुम पूरे के पूरे नाचोगे। प्रभु जब आएगा तो सिर्फ आत्मा को ही संपदा थोड़े मिलेगी, मत भी अगाध हो जाएगा। तिनको मतो अगाध। और जब प्रभु आएगा तब तुम्हारी देह भी पुनीत हो जाएगी; दिव्य हो जाएगी, तुम दिव्यदेही हो जाओगे। उसके आगमन पर सब कुछ कंचन हो जाएगा। उसके आगमन पर सब अमृत हो जाएगा। फूल तो खिलेंगे ही खिलेंगे, कांटे भी खिलेंगे।

"कहूं धरत पग परत कहूं, उमगि गात सब देह।
दया मन हरिरूप में, दिन-दिन अधिक सनेह।।'

और जैसे-जैसे इस हरिरूप में डुबकी लगती है--दिन-दिन अधिक स्नेह--उतना-उतना प्रेम उपजता है।

तो धार्मिक व्यक्ति का लक्षण है उसमें से बहता हुआ प्रेम का झरना। वही कसौटी है कि कोई धार्मिक है या नहीं। जितना तुम्हारा स्नेह, जितना तुम्हारा प्रेम बढ़ने लगे कि तुम अकारण बेशर्त प्रेम बांटने लगो--उनको जिनको जरूरत है, उनको जिनको जरूरत नहीं है; उन्होंने जिन्होंने मांगा, उन्होंने जिन्होंने नहीं मांगा; तुम जा-जा कर झोलियां भरने लगो लोगों की प्रेम से, तुम अपने प्रेम को उछाल कर चलने लगो; परिचित-अपरिचित को देने लगो; अकारण देने लगो, बिना हिसाब देने लगो...दोइ हाथ उलीचिए...जब तुम उलीचने लगो...!

कबीर ने कहा है: जैसे कभी नाव में पानी भर जाता है तो दोनों हाथ उलीचना पड़ता है; ऐसे ही जब तुम्हारे हृदय में प्रेम भरे--दोनों हाथ उलीचिए, यही संतन को काम।

जब तुम प्रेम उलीचने लगो और प्रेम बंटने लगे और प्रेम तुमसे बहने लगे और तुम एक मंदिर बन जाओ जहां से प्रेम की अनंत धाराएं बहें, तभी जानना कि प्रभु घटा। प्रभु के घटने का दावा वक्तव्यों से नहीं होता; तुम यह कहो कि मुझे ईश्वर मिल गया, इससे कुछ हल नहीं है--तुम्हारे जीवन में कितना प्रेम बंट रहा है, कितना तुम्हारा जीवन प्रेम के मार्ग पर बह रहा है!

यहां तो हालत उलटी है। हजारों साल के उपद्रव ने--धर्म के नाम पर जो पंडित-पुरोहितों ने चलाया है...। हम महात्मा उसी को कहते हैं जिसकी प्रेम-धार बिलकुल सूख जाती है, जो बिलकुल काठवत् हो जाता है, सूखा लक्कड़; जिसको तुम जलाओ भी तो धुआं न निकले, क्योंकि जलधार बिलकुल नहीं बची उसमें--उसको हम महात्मा कहते हैं, कहते हैं, पहुंच गया। लेकिन यह कहीं और पहुंच गया मालूम होता है; परमात्मा को तो नहीं पहुंचे, कहीं

और पहुंच गए। क्योंकि परमात्मा तो बहुत रससिक्त है। ये महात्मा बहुत रस-शून्य हैं; परमात्मा बहुत रससिक्त!

तुम जरा सोचो, अगर महात्माओं के हाथ में दुनिया चलाने का काम हो तो क्या गति हो! फूल खिलेंगे? नहीं। वृक्ष हरे होंगे? नहीं। कोई पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करेगा? नहीं। कोई मां किसी बेटे को प्रेम करेगी? नहीं। कोई मित्र किसी मित्र के लिए मरेगा-जीएगा? नहीं। अगर महात्माओं के हाथ में दुनिया हो तो सारा जीवन यंत्रवत् हो जाएगा। उसमें से एक बात कम हो जाएगी--प्रेम। प्रेम बिलकुल कम जाएगा।

इसलिए गुर्जिएफ कहता था कि दुनिया के तथाकथित महात्मा परमात्मा के विपरीत मालूम होते हैं, क्योंकि परमात्मा तो बड़ा रस से बह रहा है। परमात्मा तो खूब बह रहा है--चांदत्तारों में, पत्थर-पहाड़ों में, सब दिशाओं में, अनंत-अनंत रूपों में। परमात्मा नर्तक है, गायक है, प्रेमी है! जब तुम्हारे जीवन में धर्म बढ़ेगा तो यही होगा।

"दया मगन हरिरूप में, दिन-दिन अधिक सनेह।'

यही लक्षण है। इसी को कसौटी मानना कि रोज-रोज, कदम-कदम पर तुम्हारा प्रेम बढ़ता जाए तो समझना कि पहुंचे प्रभु के पास, बढ़ रहे, ठीक मार्ग पर हो। अगर प्रेम घटने लगे तो समझना कि कुछ चूक रहे हो, कहीं भटक रहे हो। जैसे बगीचे के करीब आते हो न, तो ठंडी हवा आने लगती है! हवा में थोड़ी-थोड़ी उड़ती फूलों की सुगंध भी आने लगती है। चाहे बगीचा दिखाई भी न पड़ता हो तो भी तुम जानते हो कि हवा सुगंधमय होने लगी, हवा शीतल होने लगी, दिशा ठीक है, हम बगीचे की तरफ जा रहे हैं। ऐसे ही तुम्हारे भीतर जब प्रेम उमगने लगे--उमगि गात सब देह--और प्रतिपल तुम्हारा स्नेह बढ़ने लगे और बिना किसी शर्त के तुम उसे बांटने लगो, सौदा न हो, प्रेम का दान शुरू हो जाए--तो तुम जानना कि प्रभु के पास आने लगे; मंदिर ज्यादा दूर नहीं, करीब ही है। शायद तुम सीढ़ियों पर आ खड़े हुए हो।

"हंसि गावत रोवत उठत, गिरि-गिरि परत अधीर।
पै हरिरस चसको दया, सहै कठिन तन पीर।।'

इस वचन को खयाल में लेना: "हंसि गावत रोवत उठत, गिरि-गिरि परत अधीर'! वह जो प्रभु का प्यासा है, हंसता है, गाता है, रोता है, उठता है, गिरता है, आनंदित है कि कुछ-कुछ बरसा होने लगी, और अधीर भी है कि और वर्षा कब होगी! तृप्त है कि प्रभु, थोड़े तुम उतरे; अतृप्त है कि पूरे कब उतरोगे! संतुष्ट है कि तुम्हारी एक किरण आई, और असंतुष्ट है, महा असंतुष्ट है, इतना असंतुष्ट कभी भी न था; क्योंकि जब किरण जानी न थी तो पता भी न था; अब एक किरण का स्वाद लग गया, अब पूरा सूरज कब मिलेगा? अब वह महासूर्य से मिलन कब होगा?

"हंसि गावत रोवत उठत, गिरि-गिर परत अधीर।
पै हरिरस चसको दया, सहै कठिन तन पीर।।'

लेकिन जिसको एक बार चसका लग गया हरिरस का, एक बार स्वाद आ गया, एक घूंट पी ली शराब--"पै हरिरस चसको दया सहै कठिन तन पीर'--अब चाहे कितनी ही पीड़ा हो, विरह कितना ही जले और जलाए, अब चाहे रोआं-रोआं तड़पे और रोए, लेकिन जिसको एक बार चसका लग गया, अब लौट नहीं सकता, अब पीछे जाने का कोई उपाय नहीं है। बहुत बार भक्त सोचता है कि लौट जाऊं। इसे तुम न समझ सकोगे। बहुत बार भक्त सोचता है लौट जाऊं, क्योंकि आनंद भी मिल रहा है, लेकिन आनंद के मिलने के साथ-साथ एक महान पीड़ भी मिल रही है।

ऐसा समझो, तुमने निन्यानबे के चक्कर की कहानी सुनी है! वैसा संसार में ही नहीं घटता, वैसा अध्यात्म में भी घटता है।

एक सम्राट का एक नाई था--मालिश करने वाला। वह रोज मालिश करता सम्राट की; एक रुपया उसे मिलता। पुराने दिन की बात है; एक रुपया बड़ी बात थी। एक रुपया एक महीने के लिए काफी था। तो नाई की मस्ती का क्या कहना! दिल खोल कर आनंद लेता, मित्रों को दावत देता। सारा गांव उसको दानी मानता था। एक रुपया बड़ी बात थी। और उसकी मस्ती ही मस्ती थी। एक दफे सुबह मालिश कर आया सम्राट की, फिर दिन भर मस्त ही मस्त था। बैठक जमती, ताश खेला जाता, चौपड़ फैलती, शतरंज होती, गीत-गान होता; रात नाच होता। मस्त था।

सम्राट उससेर् ईष्या करने लगा। उसकी मस्ती सेर् ईष्या होने लगी कि मेरे पास सब है और इतना मस्त नहीं, और इसके पास कुछ भी नहीं है और इसकी मस्ती का क्या कहना! बस सुबह काम किया, निपट गए घंटे भर में; फिर दिन भर मजा ही मजा है।

उसने अपने वजीर से कहा कि इसकी मस्ती का राज क्या है? वजीर ने कहाः कुछ खास राज नहीं, ठीक कर देंगे। और दूसरे दिन से नाई ठीक होने लगा। ठीक होने का मतलब खराब होने लगा। पांच-सात दिन में तो नाई की हालत खराब हो गई। सम्राट ने पूछाः मामला क्या है? तू सूखा क्यों जा रहा है एकदम? अब चौपड़ नहीं बैठती, शतरंज भी नहीं सुनाई पड़ती, अब रात को ढोलक भी नहीं बजती; बात क्या है?

उसने कहाः अब आप मालिक पूछते हैं तो बताना पड़ेगा। निन्यानबे का चक्कर पैदा हो गया है।

क्या मामला है, क्या मतलब है तेरा?

उसने कहाः न मालूम क्या मामला है? किसी ने मेरे घर में निन्यानबे रुपए से भरी एक थैली फेंक दी।

तो सम्राट ने पूछाः "इसमें परेशान होने की क्या बात है? मजा कर।'

उसने कहाः उसी ने तो सब मजा किरकिरा कर दिया। तो दूसरे दिन जब मुझे एक रुपया मिला, मैंने सोचा कि अगर एक रुपया बचा लूं तो सौ हो जाएंगे तो एक दिन की बात है। आज न सही रबड़ी, आज न सही दूध, आज न सही खेलकूद। एक ही दिन की तो बात है। तो मैं एक दिन उपवास कर गया। उसी दिन से हालत खराब है। वह एक रुपया भी जमा कर

दिया। फिर दूसरे दिन यह खयाल आया, अरे इस तरह अगर बचाते चले जाओ तो कुछ दिन में अमीर हो जाओगे। सौ हो गया, अब एक सौ एक कर लेना चाहिए। बस इसी उधेड़बुन में सब बरबाद हुआ जा रहा है।

जो सांसारिक जीवन में घटती है वही आध्यात्मिक जीवन में भी घटती है। जब तुम्हारे जीवन में पहली किरण उतरती है परमात्मा की, तब तुम्हें पहली बार पता चलता है कि अब तक क्या गंवाते रहे! अब तक क्या खोया! अब तक जिसको जीवन कहा, जीवन था ही नहीं; आज पहली दफे जीवन मालूम हुआ। अब बड़ी महत आकांक्षा जगती है, अभीप्सा जगती है कि अब पूरा-पूरा कैसे मिल जाए! स्वाद लग गया। चसका! दया ने ठीक शब्द उपयोग किया है: "पै हरिरस चसको दया, सहै कठिन तन पीर'। अब एक तरफ रस भी आने लगता है और एक तरफ बड़ी पीड़ा भी होने लगती है कि और, और, और कब होगा, पूरा कब होगा! जब इतनी छोटी सी किरण इतना मस्त किए जा रही है, जब एक घूंट ऐसा आनंद से भर गया, तो डुबकी कब लगेगी?

इन घड़ियों में बड़ी अड़चनें होती हैं। कई बार भक्त सोचने लगता है: प्रभु, वापिस ही लौट आएं! यह पीड़ा तो बहुत है, सही नहीं जाती। अब एक क्षण भी प्रतीक्षा नहीं सही जाती।

मजाल-एत्तर्क-ए-मुहब्बत न एक बार हुई

खयाल-एत्तर्क-ए-मुहब्बत तो बार-बार आया।

बहुत बार खयाल आता है: छोड़ें यह झंझट, छोड़ें यह प्रेम का नशा।

मजाल-एत्तर्क-ए मुहब्बत न एक बार हुई। हिम्मत तो न जुटा पाए छोड़ने की। खयाल-एत्तर्क-ए-मुहब्बत तो बार-बार आया। लेकिन यह खयाल तो बार-बार आया कि छोड़ें झंझट, लौट जाएं, वापिस; वे पुराने दिन ही बेहतर थे; अंधेरे में खोए थे, कुछ पता तो न था। स्वाद ही न लगा था तो सुख तो था। एक तरह का सुख था, एक तरह की शांति थी। यह उधेड़बुन तो न थी। यह बेचैनी तो न थी। यह दिन-रात का रोना-रोना तो न था। यह हर घड़ी पलकें बिछाए राह देखना तो न था। यह न अब सोना ठीक रहा, न जगना ठीक रहा; अब सब तरफ एक ही एक बेचैनी है।

मजाल-एत्तर्क-ए-मुहब्बत न एक बार हुई। हिम्मत तो न कर सके छोड़ने की प्रेम, त्याग तो न कर सके प्रेम का। खयाल-एत्तर्क-ए-मुहब्बत तो बार-बार आया। लेकिन विचार तो बार-बार आया कि छोड़ दें, लौट जाएं।

उठाना है जो पत्थर रख के सीने पे वो गाम आया

मुहब्बत में तेरी तर्क-ए-मुहब्बत का मुकाम आया।

ऐसे भी मौके आए जब ऐसा लगा कि यह तेरी मुहब्बत की यात्रा में मुहब्बत छोड़ने के भी पड़ाव आते हैं क्या? ऐसा बहुत बार लगा, छोड़ दें और भाग जाएं। ऐसा बहुत बार लगा, अभी भी लौट जाएं। अगर इतने से होने से इतनी पीड़ा हो रही है...। सुख भी हो रहा है, उसी के कारण पीड़ा हो रही है। थोड़ा-थोड़ा दिखाई भी पड़ने लगा है, इसलिए अब अंधेरा भी दिखाई पड़ रहा है।

तो अब ऐसा समझो कि एक अंधा आदमी अंधेरे में जीता रहा है, कोई अड़चन न थी। थोड़ी-थोड़ी आंख ठीक होने लगी, धुंधला-धुंधला दिखाई पड़ता है। धुंधला-धुंधला दिखाई पड़ता है, इसलिए अब अंधेरा भी दिखाई पड़ता है। पहले अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ता था।

खयाल रखना, अंधे आदमी को अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ता है, क्योंकि दिखाई पड़ने के लिए आंख चाहिए। चाहे अंधेरा देखो चाहे रोशनी, बिना आंख कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। तुम शायद सोचते हो कि अंधे आदमी को अंधेरा-अंधेरा दिखाई पड़ता होगा तो तुम गलती में हो। तुम अपने हिसाब से सोच रहे हो। तुम आंख बंद करते हो तो तुमको अंधेरा दिखाई पड़ता है, क्योंकि तुम्हारी आंख ठीक है। अंधे को अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ता। तो जब अंधे की आंख थोड़ी-थोड़ी ठीक होने लगती है, तब बड़े कष्ट का मुकाम आ जाता है। धुंधला-धुंधला दिखाई पड़ता है, और धुंधले-धुंधले दिखाई पड़ने में अंधेरा भी दिखाई पड़ता है। और धुंधले-धुंधले दिखाई पड़ने में अभीप्सा जगती है कि ठीक-ठीक कब दिखाई पड़ेगा, पूरा-पूरा कब दिखाई पड़ेगा!

लेकिन बार-बार, चाहे लाख बार यह विचार आए, लौटना हो नहीं सकता। कई बार भक्त छोड़ कर बैठ जाता है, दरवाजे बंद कर देता है, फिर-फिर खोल लेता है।

वफासवार कई हैं, कोई हंसीं भी तो हो

चलो फिर आज उसी बेवफा की बात करें।

बहुत बार सोच लेता है कि छोड़ो, भूल जाओ; यह यात्रा कठिन है। कहां की झंझट में पड़े हो! यह किस अभागे क्षण में यात्रा शुरू कर दी। इससे तो सांसारिक आदमी भी ठीक हैं। अपने मजे से जी तो रहे हैं--जाते हैं दुकान, आते हैं घर, चलाते हैं काम, अदालत-मुकदमा, सब तरह की दुनिया और चल रहे हैं। उन्हें कुछ पता ही नहीं है। यह किस दुर्भाग्य में हमें पता चल गया! यह चसका हमें कैसा लग गया!

सत्संग चसका है। और बहुत बार तुम भागना चाहोगे। बहुत बार तुम्हारा मन होगा कि छोड़ दो। बहुत बार तुम छोड़ कर बैठ जाओगे। लेकिन छोड़ न सकोगे।

वफासवार कई हैं, कोई हंसीं भी तो हो। एक बार परमात्मा का सौंदर्य दिखाई पड़ गया, फिर इस जगत में कहीं कोई सौंदर्य नहीं है। फिर तुम लाख उलझाने की कोशिश करो, न उलझ सकोगे।

चलो फिर आज उसी बेवफा की बात करें!

फिर, फिर, फिर करोगे भजन, फिर करोगे पूजा, फिर करोगे याद।

वक्त तो दो ही कठिन गुजरे हैं सारी उम्र में

एक तेरे आने से पहले, एक तेरे जाने के बाद।

लेकिन यह भी तभी पता चलता है जब प्रभु की किरण आ गई, उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ गई। तब पता चलता है कि इसके पहले भी जो था वह भी कष्ट था, कुछ भी सार न था, व्यर्थ जीए; और अब, अब और महाकष्ट की घड़ी आ गई।

वक्त तो दो ही कठिन गुजरे हज सारी उम्र में

एक तेरे आने से पहले, एक तेरे जाने के बाद।

लेकिन धीरे-धीरे द्वार खुलता है। धीरे-धीरे रोशनी साफ होती है।

तेरे फिराक के गम ने बचा लिया सबसे

मेरे करीब कोई अब बला नहीं आती।

फिर धीरे-धीरे एक ही याद रह जाती है--परमात्मा की। उसकी ही विरह की एक ही अग्नि रह जाती है। फिर हजार बलाएं हट जाती हैं; एक बला रह जाती है। हजार बलाएं--धन की, पद की, प्रतिष्ठा की, इसकी-उसकी, सब हट जाती हैं; एक झंझट शेष रह जाती है। लेकिन उस झंझट से लौटने की कोई सुविधा नहीं है।

"पै हरिरस चसको दया, सहै कठिन तन पीर'।

"विरह-ज्वाल उपजी हिए, राम-सनेही आय'।

और अब एक ज्वाला की तरह जलता है कुछ भीतर हृदय में।

"विरह-ज्वाल उपजी हिए, राम-सेनही आय'!

अब तो राम-प्यारा आए, प्यारा आए, प्रीतम आए! ऐसी ज्वाला जलती है कि अब तो वर्षा हो, अब तो उसका मेघ आ जाए और सब शीतल कर आए।

"विरह-ज्वाल उपजी हिए, राम-सनेही आय।

मनमोहन मोहन सरल, तुम देखन दा चाय।।'

बस एक ही चाह, एक ही अभीप्सा रह गई है--"तुम देखन दा चाय'--तुम्हें देखने की आकांक्षा। सब कुछ आंखों में समा जाता है; सब कुछ प्रतीक्षा बन जाता है। भक्त की सारी ऊर्जा प्रार्थना और प्रतीक्षा बन जाती है।

दुनिया के सितम याद न अपनी ही वफा याद

अब मुझको नहीं कुछ भी मुहब्बत के सिवा याद।

बस एक पागलपन, एक गहन पागलपन, एक ऐसी मस्ती जिसे तुम किसी को न समझा सकोगे। हां, दो पागल मिलेंगे तो समझ लेंगे। इसलिए तो दया ने कहा है: जो राम-विमुख हों उनसे अपने हृदय की बात मत कहना; जो राम-सनेही हों, उनके सामने अपना हृदय खाल देना। क्योंकि इस पीड़ा को केवल वे ही समझ सकेंगे।

विरह-ज्वाल उपजी हिए, राम-सनेही आय।

मनमोहन मोहन सरल, तुम देखन दा चाय।।

बस आंखें अटकी रह जाती हैं भक्त की। सारी ऊर्जा धीरे-धीरे आंख बन जाती है। और जिस दिन तुम्हारी पूरी ऊर्जा आंख बन जाती है उसी क्षण घटना घट जाती है।

नयन का संबंध था मेरातुम्हारा

अब हृदय तक बात पहुंची जा रही है

बात जो कल तक हृदय से थी छिपाई

अब स्वरों में बंध अधर तक आ रही है

देख कर एक बार फिर तुम को न देखूं

पर नयन में रूप बंधता ही नहीं है
छवि तुम्हारी पूर्ण गाना चाहता हूं
किंतु कोई राग सधता ही नहीं है
लग रहा ज्यूं पड़ गई भांवर हृदय की
प्रीति दुल्हन ज्यों कि डोली चढ़ गई है
और सपनों के कहारों ने उठाई
स्वर्ण-डोली प्रिय-सदन को मुड़ गई है
पग महावर और मेहंदी हाथ रच कर
प्रीत मानस-द्वार को खटका रही है
नयन का संबंध था मेरा तुम्हारा
अब हृदय तक बात पहुंची जा रही है

धीरे-धीरे-धीरे सारी ऊर्जा एक ही, एक ही केंद्र पर आंदोलित होने लगती है: पाना है, देखना है, मिलना है! और जब तुम्हारे भीतर दूसरा स्वर नहीं रह जाता तो मिलन में कोई बाधा नहीं रह जाती। जब तक मिलन न हो तब तक जानना आकांक्षा अभी पूरी नहीं, प्यास अधूरी है; और, और प्यासे भी अभी मौजूद हैं। जब तक तुम्हारे जीवन के फेहरिश्त में और भी चीजें मौजूद हैं और परमात्मा को भी पाना और पाने में एक पाना है तब तक परमात्मा से मिलना न होगा। जब तुम्हारी सारी ऊर्जा एकीभूत होकर एक ही आकांक्षा बन जाएगी, उस आकांक्षा का नाम ही अभीप्सा है।

अभी हमारी आकांक्षाएं बहुत हैं--धन पाना, पद पाना, प्रेम पाना, प्रतिष्ठा पानी, यह करना, वह करना, बड़ा मकान बनाना--हजार आकांक्षाएं हैं! इन में हम बंटे हैं। हमारी आकांक्षाओं के घोड़े अलग-अलग दिशाओं में भाग रहे हैं। जब ये सारे घोड़े एक दिशा में जुत जाते हैं और एक ही आकांक्षा रह जाती है प्रभु को पाने की...।

जीसस ने कहा है: पा लो पहले प्रभु को, शेष सब पीछे अपने-आप से आ जाएगा। और शेष के पीछे भागे तो शेष तो मिलेगा ही नहीं, प्रभु भी न मिलेगा। बहुत के पीछे जो भागता है वह एक को भी चूक जाता है। एक साधे सब सधै। और जो एक को साध लेता है उसका सब सध जाता है। परमात्मा को पा कर और क्या प्रतिष्ठा पाने को रह जाएगी? परमात्मा को पा कर और क्या पद पाने को रह जाएगा? परमात्मा को पा कर और क्या धन पाने को रह जाएगा? परमात्मा के पाने में सब पाना अपने-आप हो जाएगा।

"काग उड़ावत कर थके, नैन निहारत बाट।
प्रेमसिंधु में मन परयो, ना निकसन को घाट।।'

लौटने का उपाय नहीं है। नदी गिर गई सागर में, अब लौटे कैसे?

"काग उड़ावत कर थके' . . .। "काग' प्रतीकात्मक है। काग यानी तुम्हारे मन के आकाश में चलने वाले व्यर्थ के विचार; जिनको तुमने कभी बुलाया नहीं और आ गए, कौवे, और कांव-कांव कर रहे हैं।...बंबई में कृष्णमूर्ति ने जो जगह चुन रखी है अपने व्याख्यान के लिए,

वहां सारे हिंदुस्तान के कौवे इकट्ठे हैं। उनको जंचती है वह जगह। कृष्णमूर्ति को सुनना ही मुश्किल, क्योंकि वे कौवे बहुत कांव-कांव मचाते हैं। मगर उनका आग्रह है कि उनको मचाने दो कांव-कांव और तुम सुनो।...ऐसी चित्त की दशा है। कौवे कांव-कांव कर रहे हैं। तुम प्रभु को पुकारो, कौवे अपना कांव-कांव मचा रहे हैं। हर विचार एक कौवा है। और कौवा कहने में अर्थ है, क्योंकि एक तो बिन बुलाया आ गया और कांव-कांव है, बड़ी बेसुरी है। स्वर जरा भी नहीं है, भीड़-भाड़ है, उपद्रव है, शोरगुल है, उत्पात है, संगीत जरा भी नहीं।

"काग उड़ावत कर थके...'। दया कहती है, तुम्हें देख रही हूं, कहीं ऐसा न हो कि किसी कौवे में चूक जाऊं, कोई कौवा बीच में पड़ जाए, तुम आओ और आंख से ओझल हो जाओ, कोई विचार परदा बन जाए--तो विचारों को उड़ाते-उड़ाते हाथ थक रहे हैं।

"काग उड़ावत कर थके, नैन निहारत बाट'।

और आंखें लगी हैं द्वार पर, और आंखें लगी हैं मार्ग पर--पलक-पांवड़े बिछाए प्रतीक्षा में। आंखें थकी जा रही हैं; हाथ थक गए हैं।

"प्रेम सिंधु में मन परयो'...। और मन है कि जैसे नदी सागर में उतर गई। ऐसा मन सिंधु में डूब गया है। "ना निकसन को घाट'...। खूब उलझाया! दया शिकायत कर रही है। कह रही है, खूब जाल फैलाया; लौटने की जगह न छोड़ी। ना निकसन को घाट! अब बाहर लौटने का कोई उपाय नहीं। नदी गिर गई सो गिर गई, अब वापस लौट सकती नहीं। न लौटने का कोई उपाय है और तुम कितनी देर लगाए दे रहे हो! तुम्हारे आने की कोई खबर भी नहीं मिलती। इधर हाथ भी थक गए, इधर आंखें भी सूजी जा रही हैं। इधर लौटने की जगह भी न छोड़ी। खूब उलझाया, खूब षडयंत्र किया है!

यह प्रेमी की शिकायत है। कई बार भक्त शिकायत करता है--भक्त ही कर सकता है। दूसरे तो हिम्मत भी नहीं जुटा सकते। भक्त कई बार लड़ भी लेता है, नाराज भी हो जाता है। कई बार साफ कह देता है कि बंद पूजा-पत्री सब! आखिर एक सीमा है।

प्रेमी ही इतना साहस कर सकता है, क्योंकि प्रेम साहस है। और प्रेमी जानता है कि दुस्साहस भी क्षमा हो जाएगा। पंडित साहस नहीं कर सकता; पुरोहित साहस नहीं कर सकता।

रामकृष्ण पूजा करते थे मंदिर में तो कभी करते, कभी न करते। और कभी करते तो पूजा भी अनूठी थी, कभी घंटों चलती, कभी मिनटों में खतम हो जाती। कभी दिन बीत जाता। और भी खूबी थी। भोग पहले खुद लगा लेते अपने को, फिर भगवान को लगा देते। शिकायत पहुंची। तो जो ट्रस्टी-मंडल था, उसने बुलाया रामकृष्ण को और कहा: यह किस तरह की पूजा हो रही है। नियम होना चाहिए।

रामकृष्ण ने कहा: प्रेम और नियम का कभी कोई संबंध सुना? जहां नियम वहां प्रेम कहां? और जहां प्रेम है वहां कैसे नियम टिकेगा? ये दोनों बात साथ चलती नहीं। अगर नियम चाहते हो, कोई पुजारी खोज लो। मैं प्रेमी हूं। पूजा करूंगा, मगर नियम से नहीं हो सकती। जब मेरा दिल ही करने का नहीं हो रहा तो झूठ थोड़े ही करूंगा। वहां खड़े हो कर झूठ पूजा

करूंगा? और जब मैं नाराज हूं, तब कैसे पूजा करूं? नहीं करेंगे। पूजा नहीं हो सकती। खड़े रहने दो भगवान को। सताते मुझको, मैं भी सताऊंगा। रहेंगे द्वार बंद, तड़पो! करो याद, जैसा हम याद करते हैं! और रही भोग लगाने की बात, सो मेरी मां भी पहले खुद चखती थी तब मुझे देती थी; मैं भी बिना चखे नहीं चढ़ा सकता। क्योंकि पता नहीं चढ़ाने योग्य हो भी कि न हो। स्वाद तो देख लूं। तो अगर नियम चाहिए, पुजारी खोज लो।

रामकृष्ण सच्चे पुजारी थे। यह बात और है। यह भाव की एक दशा है। कई बार भक्त शिकायत करता है, नाराज भी हो जाता है। आखिर हर चीज की सीमा होती है।

ऐसा न हो यह दर्द बने दर्द-ए-लादवा

ऐसा न हो कि तुम भी मुदावा न कर सको।

भक्त बहुत बार कहता है कि मामला बिगड़ा जा रहा है, यह दर्द बढ़ा जा रहा है।

ऐसा न हो यह दर्द बने दर्द-ए-लादवा

--कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे पास औषधि भी न हो और मुझको उलझाए जा रहे हो और पीछे कह दो कि नहीं है दवा। लौटना मुश्किल हुआ जा रहा है:

ऐसा न हो यह दर्द बने दर्द-ए-लादवा

ऐसा न हो कि तुम भी मुदावा न कर सको।

कहीं ऐसा न हो कि तुमसे भी इलाज न हो सके आखिर में! तो फिर हम फंस गए। लौटना समाप्त! क्योंकि वह जो रस लग गया--"पै हरिरस चसको दया'....! ना निकसन को घाट! खूब उलझाया!

तो भक्त बहुत बार लड़ भी लेगा, झगड़ भी लेगा। जब प्रेमपूर्ण झगड़ा होता है तो प्रार्थना का ही एक रूप है। अगर तुम्हारी परमात्मा से झगड़ने की हिम्मत नहीं तो तुम्हें भक्ति का पता ही नहीं। अगर तुम प्रेमी से लड़ नहीं सकते तो तुम्हारा प्रेम कमजोर है। प्रेम इतना सबल है कि लाख लड़ाइयों को पार कर जाता है और बचता है। कौन लड़ाई उसे तोड़ पाएगी! सच तो यह है कि हर लड़ाई के बाद और गहरा हो कर, और निखर कर प्रगट होता है। भक्त नाराज भी हो लेता है, फिर मना भी लेता है। और भक्त अगर सच में ही नाराज हो जाए तो भगवान भी मनाता है।

वैसी घड़ियां भी आती हैं जब तुम्हारी नाराजगी सच में ही प्रामाणिक होती है और तुम्हारी प्रार्थना सच में ही यथार्थ होती है; तुम्हारा अधैर्य वास्तविक होता है और तुम्हारा हृदय एक जलती हुई लपट होता है। तो घटना घटती है, वर्षा भी होती है।

यह जगत तुम्हारे प्रति तटस्थ नहीं है। यह अस्तित्व तुम्हारे प्रति उदास नहीं है। यह अस्तित्व तुम्हारे में इतना ही उत्सुक है जितना तुम इसमें उत्सुक हो जाते हो। इस सूत्र को खयाल में ले लेना। अगर तुम्हें लगता है कि अस्तित्व तुम्हारे प्रति उदास है, निरपेक्ष है, अस्तित्व को तुममें कुछ रस नहीं है--तो उसका केवल एक ही अर्थ है कि तुमने अभी अस्तित्व में रस नहीं लिया। तुम दूर खड़े, अस्तित्व दूर खड़ा। तुम पास आओ, अस्तित्व पास आता है। तुम गुनगुनाओ, अस्तित्व गुनगुनाता है। तुम गले में हाथ डालो, अस्तित्व

भी आलिंगन में तुम्हें लेता है। तुम जितनी हिम्मत करोगे उतना ही अस्तित्व को भी तुम पाओगे कि उस तरफ से भी उत्तर आता है। अस्तित्व निरुत्तर नहीं है। यही तो भक्ति का पूरा का पूरा शास्त्र है। अस्तित्व में उत्तर छिपा है। अगर तुम पुकारोगे तो उत्तर आएगा; अगर न आए तो जानना कि पुकार में कहीं कोई कमी रह गई है।

ओ प्यासे अधरों वाली इतनी प्यास जगा
बिन जल बरसाए यह घनश्याम न जा पाए
गरजी बरसी सौ बार घटाएं धरती पर
गूंजी मल्हार की तान गली-चौराहों में
लेकिन जब भी तू मिली मुझे आते-जाते
देखी रीती गगरी ही तेरी बाहों में
सब भरे-पूरे तब प्यासी तू
हंसमुख जब विश्व, उदासी तू
पपीहे के कंठ पिया का गीत थिरकता है
रिमझिम की बांसी बजा रहा घनश्याम झुका
है मिलन-प्रहर नव आलिंगन कर रही भूमि
तेरा ही दीप अटारी में क्यों चुका-चुका?
तू उन्मन, जब गुंजित मधुवन
तू निर्धन, जब बरसे कंचन
ओ चांद लजाने वाली ऐसे दीप जला
जो आंसू गिरे, सितारा बन कर मुसकाए
ओ प्यासे अधरों वाली इतनी प्यास जगा
बिन जल बरसाए यह घनश्याम न जा पाए।

बरसा तो होती है। बरसा तो हुई। दया पर हुई, सहजो पर हुई, मीरा पर हुई। तुम पर क्यों न होगी? वर्षा तो हुई है, वर्षा फिर-फिर होगी। प्यास चाहिए--गहन प्यास चाहिए। तुम्हारी प्यास जिस दिन पूर्ण है, उसी पूर्ण प्यास से वर्षा हो जाती है। पूर्ण प्यास ही वर्षा का मेघ बन जाती है। और मेघ अलग-अलग नहीं हैं। तुम्हारी पुकार ही जिस दिन पूर्ण होती है, प्राणपण से होती है, जिस दिन तुम सब दांव पर लगा देते हो अपनी पुकार में, कुछ बचा नहीं रखते--उसी दिन परमात्मा प्रकट हो जाता है।

आज इतना ही।

चौथा प्रवचन

दिनांक १४ मार्च, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

जिज्ञासाएं

भक्ति यानी क्या?

आपकी शिक्षा सम्यक शिक्षा है। लेकिन शासक क्या इसे सम्यक शिक्षा मानेंगे?

न संसार में रस आता है और न जीवन रसपूर्ण है। फिर भी मृत्यु का भय क्यों बना रहता है?

कुछ दिन पहले आपने अष्टावक्र के साक्षी-भाव की डुंडी पीटी, फिर दया की भक्ति का साज छेड़ दिया। इन दोनों के बीच लीहत्जू महज सफेद मेघों पर चढ़कर घूमा किए। आज भक्ति, कल साक्षी...क्या यह संभव है?

लोग पीते हैं, लड़खड़ाते हैं
एक हम हैं कि तेरी महफिल में
प्यासे आते हैं और प्यासे जाते हैं...?

प्रभु को न पाया तो हर्ज क्या है?

भक्ति--प्रेम की निर्धूम ज्योतिशिखा

पहला प्रश्न: भक्ति यानी क्या?

भक्ति का अर्थ है: पदार्थ में परमात्मा की प्रतीति शुरू हुई; रूप में अरूप का आभास शुरू हुआ; आकार में निराकार झलकने लगा।

भक्ति का अर्थ है: जो दिखाई पड़ रहा है, उसमें जो दिखाई नहीं पड़ता, उसकी छाया बनने लगी। जो दिखाई पड़ता है, उसी पर रुक गए तो भक्ति कभी पैदा न होगी। जो नहीं दिखाई पड़ता, उसकी आहट मिलने लगे। जो नहीं सुनाई पड़ता उसकी पगध्वनि कानों में पड़ने लगे। जो इंद्रियातीत है, इंद्रियां उसके संबंध में किसी आह्लाद से भरने लगें, पुलकित होने लगें। जो नहीं दिखाई पड़ता, वह भी किसी अनूठे माध्यम से दिखाई पड़ता है--उसी माध्यम का नाम भक्ति है। जिसे सीधे-सीधे नहीं देखा जा सकता है; वह अदृश्य भी दृश्य हो जाता है। उस अदृश्य को दृश्य बना लेने का चमत्कार भक्ति है। भक्ति रसायन है, एक विज्ञान है।

तुम जब किसी के प्रेम में पड़ते हो तो तुमने शायद विचार भी न किया हो क्या घटता है। जब तुम किसी के प्रेम में पड़ जाते हो तो क्या हड्डी-मांस-मज्जा, इतना ही दिखाई पड़ता है प्रेमी में? अगर इतना ही दिखाई पड़ता है तब तो तुम किसी दिन किसी मुर्दा लाश के भी प्रेम में पड़ सकते हो। नहीं, कुछ और भी झलकने लगा। किसी व्यक्ति में तुम्हारी आंख भीतर जाने लगी। किसी व्यक्ति की अंतर्प्रतिमा प्रगट होने लगी। जब भी तुम प्रेम में पड़ते हो

तो उसका यही अर्थ है, तुम समझो या न समझो, किसी झरोखे से परमात्मा ने तुम्हें पुकारा।

इसलिए प्रेमी में परमात्मा की पहली झलक मिलती है। और जिसने प्रेम नहीं जाना वह कभी भक्ति न जान पाएगा। क्योंकि भक्ति तो प्रेम की ही बाढ़ है। प्रेम, ऐसा समझो, बूंदाबांदी है; भक्ति, ऐसा समझो, बाढ़ है। मगर प्रेम और भक्ति का स्वभाव एक ही है। प्रेम की सीमा है, भक्ति की कोई सीमा नहीं। प्रेम समाप्त हो जाता है; आज है कल नहीं; क्षण भर को आता, खो जाता है; क्षणभंगुर है। जगत तरैया भोर की। भक्ति आई तो आई। फिर तो उसके बाहर निकलने के लिए कोई उपाय नहीं; गए तो गए। लौटना संभव नहीं है। प्रेम में लौटना संभव है। क्योंकि प्रेम धुंधला-धुंधला है। भक्ति बहुत प्रगाढ़ है।

इसलिए तुम प्रेम से ही भक्ति को समझना। प्रेम भक्ति का पहला पाठ है। पति हो, पत्नी को चाहा है; पिता हो, बेटे को चाहा है; पत्नी हो, पति को चाहा है; किसी मित्र को चाहा है--जहां चाह है, वहां थोड़ा खोजना, टटोलना।

प्रेम ऐसा है जैसे हीरा खदान में पड़ा, अभी साफ-सुथरा नहीं, मिट्टी जम गई हैं, कंकड़-पत्थर जुड़ गए हैं, सदियों से पड़ा है, चमक खो गई है। प्रेम ऐसे है जैसे खदान से निकला हीरा--अभी साफ-सुथरा नहीं किया; अभी जौहरी के हाथ नहीं लगा; अभी छैनी नहीं पड़ी। तो अभी तो जो बहुत गहरा देख सकता है, वही समझ पाएगा कि हीरा है। अभी तो तुम न समझ पाओगे कि हीरा है। इसलिए तो प्रेम में भक्ति दिखाई नहीं पड़ती, क्योंकि प्रेम अनगढ़ हीरा है। यही हीरा मीरा में, दया में, सहजो में, निखार पा गया। इसी हीरे पर चमक आ गई। इसी हीरे को जौहरी के हाथों की कला मिल गई। तब यह चमकता है। बहुत कुछ काटना पड़ता है।

कोहिनूर संसार का सबसे बड़ा हीरा है। जब मिला था तो आज से तीन गुना ज्यादा वजन था उसका। फिर काटते-काटते, छांटते-छांटते एक तिहाई बचा है। लेकिन जितना कटा, जितना छंटा, उतनी कीमत बढ़ गई है; क्योंकि उतना सौंदर्य, उतने नए पहलू उभरते चले गए हैं। आज एक तिहाई है वजन के हिसाब से। अगर परिणाम को तौलो तो हीरे की कीमत कम होनी चाहिए आज, जितनी उस दिन होती जिस दिन मिला था। लेकिन जिस दिन मिला था उस दिन कोई भी कीमत न थी। कीमत तो निखार से आई है।

पश्चिम का बहुत बड़ा मूर्तिविद हुआः माइकल एंजिलो। निकलता था एक रास्ते से, संगमरमर के दुकानदार से पूछा कि यह चट्टान बहुत दिन से पड़ी है, आवारा छोड़ रखी है, उपेक्षा कर रखी है, क्या दाम हैं इसके? तो उस दुकानदार ने कहा, इसके कोई दाम नहीं क्योंकि यह बिलकुल बेकार है, कोई मूर्तिकार इसे लेने को राजी नहीं। अगर चाहिए हो तो उठा ले जाओ। हमारा छुटकारा होगा। दाम कुछ भी नहीं, बस ले जाने में जो खर्च पड़ेगा वह तुम जानो।

माइकल एंजिलो ले गया उस चट्टान को उठा कर। जाते वक्त दुकानदार ने फिर कहाः "क्या करोगे इस व्यर्थ की चट्टान का? यह किसी काम की नहीं।' माइकल एंजिलो ने कहाः "कुछ

महीनों बाद खबर करूंगा।' कुछ महीनों बाद बुलाया उस दुकानदार को अपने घर। सामने ही रखी थी जीसस की प्रतिमा। मंत्रमुग्ध खड़ा हो गया दुकानदार। उसने कहा: "बहुत प्रतिमाएं देखीं, मगर यह अनूठा पत्थर कहां पाया?' माइकल एंजिलो ने कहा: "यह वही पत्थर है जिसे तुमने दुकान के पास फेंक रखा था और जो मैं मुफ्त उठा लाया था।' उसे तो भरोसा न आया। उसने कहा: वह अनगढ़ पत्थर, कहां यह मूर्ति! इन दोनों में कोई तालमेल नहीं। और तुमने कैसे पहचाना कि अनगढ़ पत्थर यह मूर्ति बन सकेगा?' माइकल एंजिलो ने कहा: "मैं जब भी निकलता था उस रास्ते से, यह मूर्ति मुझे उस पत्थर के भीतर से पुकारती थी कि मुझे छुड़ाओ, मुझे निकालो इस कारागृह से, इस बंधन से मुक्त करो।'

तुमसे मैं कहना चाहता हूं: प्रेम है--भक्ति कारागृह में। और प्रेम पुकार रहा है कि मुक्त करो! जिस दिन प्रेम से भक्ति मुक्त हो जाती है, बाहर निकल आती है--निखर कर, छन कर--उस दिन भगवान मिल जाता है। प्रेम है कूड़े-कचरे से भरा हुआ सोना; भक्ति है अग्नि से निकल गया सोना, निखर गया, स्वच्छ हुआ। जो कचरा था जल गया; जो कंचन था बच रहा। भक्ति है शुद्धतम प्रेम और प्रेम है अशुद्ध भक्ति।

तो प्रेम में दो चीजें हैं। उसमें भक्ति भी छिपी है और संसार भी छिपा है। अशुद्धि यानी संसार। और उसमें जो शुद्ध भक्ति छिपी है, वही परमात्मा। इसलिए जो पारखी है वह प्रेम में से परमात्मा को खोज लेगा और जो नासमझ है वह प्रेम में से ही संसार में उतर जाएगा। प्रेम तो सीढ़ी है; उसके नीचे संसार है, उसके ऊपर भगवान है। अगर तुम प्रेम को शुद्ध करते चले गए तो भगवान में उतर जाओगे; अगर प्रेम को अशुद्ध करते चले जाओगे तो तुम संसार में उतर जाओगे। प्रेम ही सपना बन जाता है अगर अशुद्धि बहुत बढ़ जाए और प्रेम ही सत्य बन जाता है अगर शुद्धि निखर आए।

प्रेम में छिपा है भगवान, उसे मुक्त करो। और बहुत बार प्रेम में तुम्हें भगवान की झलक मिली भी है। लेकिन तुम समझ नहीं पाते कैसे मुक्त करें! प्रेम को वासना कम और प्रार्थना ज्यादा बनाओ। प्रेम में मांगो मत, दो। प्रेम में भिखारी मत रहो, बादशाह बनो। प्रेम में बांटो, संग्रह मत करो। और तुम धीरे-धीरे पाओगे प्रेम की अशुद्धि गलने लगी। और प्रेम की अशुद्धि के गलते-गलते ही प्रेम में से ही वह शुद्ध ज्योतिशिखा प्रगट होती है जिसको भक्ति कहते हैं।

कोई चुटकी सी कलेजे में लिए जाता है
हम तेरी यादों से गाफिल नहीं होने पाते।

हर प्रेम चुटकी है; वह परमात्मा की ही याद है। धुंधली, बहुत धुंधली, बहुत पर्दों में दबी! लेकिन है उसी की याद। इसलिए तो जब तुम प्रेम में पड़ते हो तो दीवाने हो जाते हो--थोड़े सही, पर दीवाने हो जाते हो।

तेरी सूरत से किसी की नहीं मिलती सूरत
हम जहां में तेरी तस्वीर लिए फिरते हैं।

और इसलिए तुम्हें हर प्रेम तृप्ति का आश्वासन देता है और फिर भी तृप्ति नहीं मिलती। जब तुम किसी प्रेम में पड़ते हो तो शुरू-शुरू वह जो प्रेम का सौंदर्य है, अपूर्व है। पर जल्दी ही सब राख जम जाती है। जल्दी ही जंग खा जाता है प्रेम। जल्दी ही कलह और द्वंद्व और उपद्रव शुरू हो जाता है। वह जो प्रेम की ऊंचाई थी, कहां खो जाती है, पता नहीं चलता। हर प्रेम कलह बन जाता है जल्दी ही। लेकिन पहले क्षणों में, जब तुम्हारी आंख ताजी थी और सब नया था, कुछ झलक मिली थी, अन्यथा तुम प्रेम में पड़ते क्यों! किसी ने पुकारा था, कोई चुनौती आई थी! किसकी चुनौती थी? किसकी झलक मिली थी? लगा था कि मिल गया परमात्मा। लगा था मिल गया जिसको खोजते थे; मिल गया यार जिसकी तलाश थी! लेकिन फिर जल्दी ही सब खो जाता है। वासना का धुआं, जीवन की आपाधापी, जीवन की सारी क्षुद्रताएं, क्रोध, मलिनता, सब हावी हो जाती है। जल्दी ही तुम डूबने लगते हो। वह जो क्षण भर को तुम उठे थे जल के ऊपर और आकाश देखा था, वह क्षण भर का ही सिद्ध होता है। बस वह सुहागरात ही सिद्ध होती है। फिर डुबकी खाने लगते हो।

जब भी कहीं तुम्हें प्रेम में रस मालूम हुआ है तो इसीलिए--

तेरी सूरत से किसी की नहीं मिलती सूरत

हम जहां में तेरी तस्वीर लिए फिरते हैं।

इस बात को समझना। हर व्यक्ति के हृदय में परमात्मा की तस्वीर छिपी है। उसी तस्वीर को लिए हम फिर रहे हैं कि किसी से मिल जाए यह तस्वीर, बाहर कोई मिल जाए इस तस्वीर से मेल खाता! यह जिसकी तस्वीर है वह मिल जाए! जब तक वह न मिलेगा प्राणों का प्यारा, तब तक तकलीफ रहेगी, पीड़ा रहेगी, खोज रहेगी, भटकन रहेगी। कभी-कभी क्षण भर को किसी की सूरत मिलती मालूम पड़ती है, उसको तुम प्रेम कहते हो। मगर जब बहुत गौर से देखते हो, फिर छिटक जाती है बात: नहीं, यह सूरत आभास भर थी। धुंधलके में, अंधेरे में लगा था कि मिलती है, लेकिन मिली नहीं, फिर चूक हो गई।

इसलिए जब तुम प्रेमी को, प्रेम-पात्र को दूर से देखते हो तो लगता है सब ठीक; जैसे-जैसे पास आते हो, सब गलत होने लगता है। क्योंकि उससे किसी की सूरत मिलती नहीं, यद्यपि सभी सूरत में वही छिपा है। लेकिन सौ प्रतिशत किसी सूरत से उसकी सूरत नहीं मिलती; एक प्रतिशत मिलती है, निन्यानवे प्रतिशत नहीं मिलती। प्रेम के पहले क्षणों में वह एक प्रतिशत दिखाई पड़ता है, फिर धीरे-धीरे निन्यानवे प्रतिशत प्रगट होता है।

आदमी प्रेम में हार-हार कर ही एक दिन भक्ति में आता है। प्रेम की हार इस बात का सबूत है कि तुझे खोजा बाहर और नहीं मिल, अब भीतर खोजेंगे; तुझे खोजा देह में, पदार्थ में, रूप में, रंग में, नहीं मिला, अब अरूप में, निराकार में खोजेंगे; तुझे खोजा क्षणभंगुर में...।

ऐसा समझो कि रात चांद हो आकाश में, पूरा चांद हो और तुम झील के किनारे बैठे और झील शांत हो तो तुम्हें लगे कि चांद झील के भीतर है। तुमने ऊपर आंख उठाई ही न हो, तुम्हें लगे झील के भीतर चांद है।

मैंने सुना है, रमजान के दिन थे और मुल्ला नसरुद्दीन एक कुएं के पास बैठा था। प्यास लगी तो कुएं में झांक कर उसने देखा कि पानी कितनी दूर है। पूरे चांद की रात थी। चांद नीचे दिखाई पड़ा। उसने कहाः "अरे बेचारा, कहां कुएं में फंस गया! इसको कोई निकाले!' यहां कोई दिखाई भी नहीं पड़ता। एकांत जगह थी। तो अपनी प्यास तो छोड़ दी उसने। रस्सी फेंकी कुएं में कि किसी तरह चांद को फांस ले तो निकाले, नहीं तो दुनिया का क्या होगा! रस्सी फंस गई कहीं कुएं में कोई चट्टान में, तो उसने सोचा कि ठीक है, फंस गई चांद में। उसने बड़ी ताकत लगाई। ताकत का परिणाम यह हुआ कि रस्सी टूट गई, वह धड़ाम से गिरा। जब वह गिरा तो उसे चांद ऊपर दिखाई पड़ा। तो उसने कहाः "कोई हर्जा नहीं, थोड़ी हमें चोट भी लग गई; मगर बड़े मियां तुम छूट गए, यह बहुत।'

संसार में जो हमने देखा है वह कुएं में चांद की झलक है। संसार में जो हमने देखा है वह प्रतिबिंब है परमात्मा का। परमात्मा की तरफ हमारी आंख अभी उठी नहीं। हमें पता भी नहीं कि कैसे ऊपर आंख उठाएं। सारी दुनिया के धर्म जब प्रार्थना करते हैं तो आकाश की तरफ आंख उठाते हैं। वह प्रतीक है। आकाश में परमात्मा नहीं है; मगर ऊपर उठना है, ऊपर देखना है। कहीं ऊपर, कहीं हमसे ऊपर है! कैसे अपने से ऊपर देखें, इसका हमें कुछ पता नहीं है। हमें अपने से नीचे ही देखने की आदत है। वही सुगम है।

जब भी तुम वासना से भर कर किसी की तरफ देखते हो, तुम नीचे देखते हो। और जब तुम प्रार्थना से भर कर किसी की तरफ देखते हो तब तुम ऊपर देखते हो। यह जो ऊपर देखना है, यह भक्ति है। और यह जो नीचे देखना है, प्रेम है। दोनों में कुछ तालमेल है। दोनों जुड़े हैं। ऊर्जा वही हैः नीचे की तरफ जाती है तो प्रेम बन जाती है; ऊपर की तरफ जाती है तो भक्ति बन जाती है।

और जैसे प्रेम में हृदय जलता है, ऐसा भक्ति में भी जलता है। फर्क है, जलन-जलन में भी फर्क है, सच निश्चित ही। प्रेम की जलन में तो एक तरह का ज्वर है। और भक्ति की जलन में एक तरह की शीतलता है--ठंडी आग! प्रेम की जलन में तो सिर्फ जलन ही जलन है। जैसे किसी ने तेजाब छिड़का हो घाव पर। भक्ति की जलन में जलन तो है, विरह है, पीड़ा है; लेकिन बड़ी शीतल, बड़ी शांतिदायी।

शायद इसी का नाम मुहब्बत है शेफ्ता

इक आग सी है सीने के अंदर लगी हुई।

प्रेम में भी आग लगती है, भक्ति में भी आग लगती है। लेकिन बड़ा फर्क है। प्रेम की आग सिर्फ जलाती है और भक्ति की आग जलाती ही नहीं, जगाती भी है। प्रेम की आग सुलाती है; भक्ति की आग उठाती है, जगाती है। प्रेम की आग में तुम शरीर ही रह जाते हो; भक्ति की आग में शरीर खो जाता है और चैतन्य मात्र शेष रह जाता है।

भक्ति का अर्थ है--

खोजता हूं उसे जिसने बनाया;

मिलना चाहता हूं उससे जिससे मैं आया;

स्रोत को खोजता हूं,

क्योंकि स्रोत में ही अंतिम नियति छिपी है;

आत्यंतिक को खोजता हूं

कि जिसे खोजने के बाद

फिर कोई और खोज न रह जाए

लेकिन ज्ञानी भी खोजता है और भक्त भी खोजता है। ज्ञानी की खोज ज्ञानी पर ही निर्भर होती है। भक्त कहता हैः "मुझे अकेले से कैसे खोज होगी, तुम भी हाथ बंटाओ।' वह भगवान से कहता है कि मुझे तुम्हारा पता नहीं, लेकिन तुम्हें तो मेरा पता होगा। मैं तुम्हें न जानूं, लेकिन तुम तो मुझे जानते-पहचानते होओगे। मैंने तुम्हें न देखा हो; लेकिन यह कैसे हो सकता है कि तुमने मुझे न देखा हो! तो मैं तुम्हें खोजता हूं, यह खोज अधूरी है। क्योंकि मैं तो अंधेरे में टटोलूंगा, अंधे की तरह टटोलूंगा। तुम मेरा हाथ बंटाओ। तुम मेरा हाथ अपने हाथ में ले लो।

ज्ञानी अपने पर निर्भर है। संकल्प है ज्ञान की यात्रा। और भक्त की यात्रा है समर्पण। भक्त कहता है, मैं तो खोजूंगा, प्राणपण से खोजूंगा; लेकिन इतना पक्का है कि तुम जब मिलना चाहोगे तभी मिलन होगा। इसलिए तुम खयाल रखना। मेरी ही खोज पर मत छोड़ देना।

मैं बुलाता तो हूं उनको मगर ऐ जज्बए दिल

उन पे बन जाए कुछ ऐसी कि बिन आए न बने।

--बुलाता हूं, लेकिन मेरे बुलाने से क्या होगा!

उन पे बन जाए कुछ ऐसी कि बिन आए न बने।

--आना ही पड़े! यह आग दोनों तरफ से लगे तो ही कुछ हो सकेगा। दूसरी तरफ से भी लगी है। भगवान भी तुम्हें उतनी ही आतुरता से खोज रहा है, शायद ज्यादा आतुरता से, जितनी आतुरता से तुम खोज रहे हो।

ऐसा समझो कि एक बच्चा खो गया है बाजार में या मेले में, भीड़-भाड़ में। तो बच्चा तो खोज ही रहा है मां को। क्या तुम सोचते हो मां नहीं खोज रही? और बच्चा तो शायद कई बार भूल भी जाएगा--कहीं खिलौने होंगे, डमरू बजता होगा, मदारी खेल दिखाता होगा, तो खड़ा हो जाएगा, भूल भी जाएगा कि मां खो गई है। लेकिन मां को अब कोई डमरू, कोई मदारी, कोई खेलतमाशा न अटकाएगा। वह तो पागल की तरह खोजती फिरेगी। बच्चा तो भूल ही जाएगा जगत में। जगत तरैया भोर की! लेकिन उसे तो लगने लगेगा कि यही सब कुछ सत्य हैं। खिलौनों की दुकान पर खड़ा हो जाएगा। या कोई मिठाई दे देगा तो भूल जाएगा कि बस ठीक है। बच्चे की समझ कितनी! खोजेगा भी तो कैसी खोज करेगा! और दो-चार दिन अगर मां न मिली तो विस्मरण करने लगेगा। महीने दो महीने बाद याद भी न आएगी। साल दो साल बाद तो चित्र भी खो जाएगा। लेकिन मां खोजती रहेगी, तड़फती रहेगी।

इस दूसरी बात को खयाल में लेना। भगवान भी तुम्हें खोज रहा है।

तुम जब खोजते हो अपने ही बल से तो ज्ञान के मार्ग पर हो। जब तुम कहते हो, मैं खोजूंगा, अपनी पूरी ताकत लगाऊंगा, लेकिन एक बात पक्की है कि तेरे बिना खोजे मिलन होगा नहीं'...उन पे बन आए कुछ ऐसी कि बिन आए न बने! मैं बुलाता तो हूं उनको मगर ऐ जज्बए दिल...मैं बुलाता रहूंगा। मगर कुछ तुझ पे ऐसी बन आए कि तू रुक न सके, तुझे आना ही पड़े।

भक्ति समर्पण है। भक्ति अपना परिपूर्ण त्याग है।

ज्ञानी छोड़ता है संसार को; भक्त छोड़ देता है स्वयं को। ज्ञानी छोड़ता है और चीजें; भक्त छोड़ देता है अपनी अस्मिता को। तुम्हें प्रेम के क्षणों में कभी-कभी लगा होगा कि अहंकार खो जाता है। कभी-कभी, क्षण भर को! अगर तुमने सच में प्रेम किया है कभी तो उन क्षणों में तुमने पाया होगा कि अहंकार खो जाता है। यह क्षण भर अहंकार खो जाता है। तुम बचते हो, लेकिन कोई "मैं भाव' नहीं बचता। जहां "मैं-भाव' न बचा, वहीं मंदिर करीब आ गया। जहां "मैं भाव' न बचा, वहां पट खुले, द्वार खुले। तुम्हारे "मैं' का ही ताला जड़ा है।

सम्यक शिक्षा का मौलिक सूत्र

दूसरा प्रश्नः आप जिस ढंग से शिक्षा दे रहे हैं, वह परमरूपेण सम्यक शिक्षा है। लेकिन राजनेता और शासक भी इसे सम्यक शिक्षा मानेंगे, यह बात संदिग्ध लगती है।...?

संदिग्ध नहीं है, सुनिश्चित रूप से वे इसे सम्यक शिक्षा नहीं मानेंगे। निश्चित रूपेण, जो मैं सिखा रहा हूं, उन्हें तो लगेगा कि कुशिक्षा है; उन्हें तो लगेगा रोक दी जाए। क्योंकि राजनेता तो आदमी की नासमझी पर जीता है; समझदारी हो जाए आदमी में तो राजनेता जी नहीं सकता। राजनेता का तो सारा का सारा बल तुम्हारे अज्ञान में है। तुम जितने अज्ञानी उतना ही राजनेता बलशाली। जिस दिन पृथ्वी पर ज्ञान थोड़ा ज्यादा होगा, लोग थोड़े ज्यादा जागरूक होंगे, उस दिन जो चीज पृथ्वी से तिरोहित हो जाएगी, वह राजनीति है।

राजनीति का अर्थ ही यही होता है कि तुम समझदार नहीं हो, दूसरे कहते हैं कि हां, तुम समझदार नहीं हो, हम समझदार हैं। हम तुम्हारे जीवन को व्यवस्था देंगे। तुम तो हो समझदार नहीं, इसलिए तुम तो जीवन को व्यवस्था दे न सकोगे। हमें दो हाथ में ताकत, हम व्यवस्था देंगे। तुम खुद तो मालिक अपने हो नहीं सकते; हमें मालिक बना दो, हम सम्हालेंगे। तुम खुद तो अपने हित की रक्षा कर नहीं सकते; हम तुम्हारे हित की रक्षा करेंगे।

राजनीति का कुल अर्थ इतना ही है। तुम्हें नेता की जरूरत ही तब पड़ती है जब तुम्हें खुद नहीं सूझता कि क्या करें। तो राजनीति तो नहीं चाहती कि लोग जागरूक हों--लोग सोए रहें--राजनीति नहीं चाहती कि लोग ध्यानी बनें। क्योंकि जैसे ही लोग ध्यानी बनते हैं, राजनीति के घेरे के बाहर होने लगते हैं। राजनीति के घेरे में तो चाहिए क्रोध, वैमनस्य,र् ईष्या, जलन, द्वेष, संघर्ष! तुम में जलती हों। ये सब उपद्रव की लपटें तो तुम राजनीति में रुकते

हो। राजनीति में तो चाहिए हिंसा; एक दूसरे पर हावी होने की दौड़; एक दूसरे को दबाने की आकांक्षा, प्रतियोगिता, प्रतिस्पर्धा। राजनीति तो एक तरह का संघर्ष है।

तो जैसे-जैसे ध्यान बढ़ेगा, जैसे-जैसे भाव बढ़ेगा, प्रेम बढ़ेगा, शांति बढ़ेगी--तुम राजनीति के बाहर होने लगोगे। तुम युद्ध न चाहोगे दुनिया में।

राजनेता युद्ध पर जीता है। अगर युद्ध मिट जाएं तो राजनेता का बल निकल जाता है। जब युद्ध होते हैं तब राजनेता बड़ा नेता हो जाता है।

तुमने देखा, दुनिया के जो बड़े राजनेता हैं, उनका बड़प्पन युद्ध पर निर्भर करता है। अगर युद्ध न हो किसी राजनेता के जीवन में तो उसके बड़प्पन का पता ही नहीं चलता। तो हर राजनेता चाहता है, कोई बड़ा युद्ध हो जाए उसके जीवन में और वह युद्ध में विजयी हो जाए, तो सिद्ध करके दिखा दे कि हां मैं ठीक आदमी था।

राजनीति अहंकार का विस्तार है; और ध्यान, अहंकार का विसर्जन। राजनीति धोखा है, पाखंड है।

मैंने सुना है, एक घने जंगल में अचानक जैसे चमत्कार हुआ, एक सिंह एकदम सरल हो गया और एकदम हाथ जोड़-जोड़ कर लोगों से नमस्कार करने लगा! जंगल के जानवर बड़े चकित हुए कि यह हुआ क्या! उसने गुर्राना, चिंघाड़ना, गर्जन करनी सब बंद कर दी। जो मिलता रास्ते में, वह उससे बड़े भाईचारे की बातें करने लगा। एक दिन भूखा था और क्षण भर को भूल गया। क्योंकि राजनीति तो ऊपर के चेहरे हैं। एक गधे को एक झाड़ के नीचे खड़ा देखा। गधा ऐसे तो भाग गया होता, लेकिन पंद्रह-बीस दिन से यह सिंह बिलकुल अहिंसक हो गया था, सर्वोदयी हो गया था, तो गधा डर नहीं रहा था, वह खड़ा था। एक क्षण में भीतर की असलियत प्रगट हुई, सिंह ने झपट्टा मारा, लेकिन जब झपट्टा मारा, तभी उसे याद आई कि यह मैं क्या कर रहा हूं! तत्क्षण गिर पड़ा गधे के पैरों में और बोला: "बापू! क्षमा करना, भूल हो गई!' गधे को तो बिलकुल ही भरोसा न आया कि यह हो क्या रहा है! सिंह और गधे से कहे बापू!

एक उल्लू बैठा देख रहा था वृक्ष पर। गधा तो चला गया। उल्लू ने पूछा कि मामला क्या है? यह तो हद हो गई! अफवाहें तो मैंने भी सुनी थीं कि तुम बड़े सरल हो गए, सात्विक हो गए; मगर यह जरा सीमा से बाहर है कि गधे के चरणों में गिर कर तुम कहो बापू!

सिंह ने कहा कि तुम उल्लू के उल्लू रहे! चुनाव करीब है, गधे को नाराज करके क्या जमानत डुबवानी है?

राजनेता की सारी आकांक्षा एक है, कैसे अधिकतम लोगों पर कैसे शक्तिशाली हो जाए! राजनीति तो अहंकार पर ही खिलती-फूलती है। इसलिए राजनीति सम्यक शिक्षा के पक्ष में कभी नहीं हो सकती। राजनीति तो पाखंड है। उससे बड़ा और कोई धोखा नहीं है। राजनीति तो झूठ का व्यापार है। राजनीति का अर्थ ही है कि तुम झूठ बोलने में कितने कुशल हो।

कल ही मैं देख रहा था कि एक राजनेता व्याख्यान कर रहे थे, समझा रहे थे लोगों को कि थोड़ी देर धीरज और रखें, बस समाजवाद आ ही रहा है। एक आदमी खड़े हो कर चिल्लाया

कि समाजवाद कभी नहीं आएगा; सुनते-सुनते तीस साल हो गए। राजनेता ने कहा: "मानो मेरी बात; अब ज्यादा दूर नहीं, बस पहुंचने को ही है। अब ज्यादा देर नहीं है, थोड़ा धैर्य और। बस यह चुनाव और कि समाजवाद आ ही रहा है।' और कुछ लोग खड़े हो गए, उन्होंने कहा कि समाजवाद कभी नहीं आएगा। तुम्हारा सेक्रेटरी कल रात क्लब में कह रहा था कि समाजवाद कभी नहीं आएगा।

लोगों की इतनी भीड़ खड़ी हो गई, इतने जोर से चिल्लाने लगी कि राजनेता सकपका गया। उसने कहा: "मेरा सेक्रेटरी कह रहा था, यह कैसे हो सकता है? क्योंकि यह व्याख्यान मेरे सेक्रेटरी ने ही लिखा है। और मैं तुम्हें फिर समझाता हूं कि समाजवाद आ रहा है।'

लेकिन और लोग खड़े हो गए। उन्होंने कहा: "कभी नहीं आएगा समाजवाद। यह बकवास बंद करो, यह सुनते-सुनते काफी समय हो गया।' तब तो देखा राजनेता ने कि मामला बिगड़ता है तो वह हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। उसने कहा कि जहां तक मुझे पता था, आ रहा था; लेकिन अब आप कहते हैं तो शायद नहीं ही आ रहा हो। मैं ठीक से पता लगाऊंगा, शायद कार्यक्रम बदल गया हो।

राजनीति शोषण है, लफ्फाजी है, नारेबाजी है। और स्वभावतः आदमी अगर सम्यक होने लगे तो खुद को राजनीतिक दृष्टि उसकी खो ही जाएगी; वह दूसरे की राजनीति को भी आरपार देखने में समर्थ हो जाएगा।

दुनिया जिस दिन थोड़ी ज्यादा समझदार होगी, राजनीति की कोई जगह न रह जाएगी। होनी भी नहीं चाहिए कोई जगह। कोई आवश्यकता भी नहीं है। राजनीति जीती है अज्ञान पर। और राजनीति तुम्हें जो सिखाती है वह सब उतने ही दूर तक सिखाती है जितनी दूर तक तुम्हारे जीवन में क्रांति न घट जाए। तुम रहो तो पंगु और तुम रहो निर्भर उन पर। तुम कहीं मुक्त न हो जाओ! राजनीतिज्ञ न चाहेंगे कि दुनिया में बुद्ध और महावीर और कृष्ण और कबीर और क्राइस्ट जैसे लोग बढ़ जाएं--कभी न चाहेंगे। क्योंकि ये खतरनाक लोग हैं। राजनीति जीसस को बर्दाश्त न कर सकी, सूली लगवा दी; सुकरात को बर्दाश्त न कर सकी, जहर पिलवा दिया। ये खतरनाक लोग हैं! इनका खतरा क्या है? इनका खतरा यह है कि ये सीधे-सच्चे लोग हैं। जो सच है, वही कहेंगे; लाग-लपेट नहीं है। झूठ न कहेंगे। अवसरवादी नहीं हैं। मनुष्य का जो परम हित है, उसकी ही बात करेंगे। चाहे मनुष्य ही इनके विपरीत क्यों न हो जाए, तो भी मनुष्य के परम हित की ही बात करेंगे। यही तो संत का लक्षण है।

किसी मित्र ने एक और प्रश्न पूछा है कि संत कौन? संत का लक्षण क्या है?

संत का यही लक्षण है कि जो है उसे वैसा ही कह दे; जो है उसे वैसा ही जीने का मार्ग बता दे; जो है उसमें जरा भी हेर-फेर न करे। और जो है वह इतना क्रांतिकारी है कि अगर तुम उसके साथ संबंध जोड़ोगे तो तुम्हारे जीवन में आमूल रूपांतरण हो जाएगा।

राजनीतिज्ञ सदा ही संतों से नाराज रहे हैं; पुजारी-पंडों से, पुरोहितों से नाराज नहीं रहे, संतों से सदा नाराज रहे। पुजारी, पंडे, पुरोहित राजनीतिज्ञों के साथ षडयंत्र किए बैठे हैं।

पुजारी, पंडित, पुरोहित राजनीति के साथ धर्म को भी जोड़ देते हैं; धर्म को भी राजनीति की सेवा में लगा देते हैं।

संत का अर्थ है जिसने जीवन को परमात्म-रूप में जीना चाहा और कोई शर्तबंदी स्वीकार न की; कोई सीमाएं न बांधीं और कोई सीमाएं न मानीं। संतत्व यानी विद्रोह। संतत्व तो जलता हुआ अंगारा है। तुम्हें जलाएगा, तुम्हें राख कर देगा। और तुम्हारी जहां राख हो जाएगी वहीं पदार्पण होगा परमात्मा का। जितने अधिक लोगों में परमात्मा का पदार्पण हो जाएगा। उतने ही अधिक लोग राजनीति के जाल के बाहर हो जाएंगे। अगर एक बड़ी संख्या में लोग ध्यान और भक्ति में डूब जाएं तो दुनिया की पूरी हवा बदल जाएगी। जिनको तुम अभी नेता कहते हो उनको तुम अनुयायी बनाने को भी राजी न होओगे। ये अंधों को अंधे मार्गदर्शन दे रहे हैं।

इसलिए पूछते हो तो ठीक ही पूछते हो। जिसे मैं शिक्षा कहता हूं, राजनीतिज्ञ उसे शिक्षा मानने को राजी नहीं। उनकी तो पूरी चेष्टा रहेगी कि मैं अपनी बात लोगों तक पहुंचा ही न पाऊं। सब तरह की चेष्टा चलती है कि तुम मुझ तक न पहुंच जाओ, कि मैं तुम तक न पहुंच पाऊं। मैं जो कह रहा हूं वह जितने कम से कम लोगों तक पहुंचे उतना राजनीतिज्ञ के हित में है।

और मजा यह है कि एक तरह का राजनीतिज्ञ मेरे विपरीत होगा ऐसा नहीं है; मेरे विपरीत सभी तरह के राजनीतिज्ञ हैं, यह बहुत मजे की बात है। आमतौर से ऐसा होता है कि अगर कोई कांग्रेस की राजनीति में पड़ा है तो विपरीत होगा तो जनता पार्टी उसके पक्ष में होगी। कोई जनता पार्टी के पक्ष में है तो कांग्रेस उसके विपक्ष में होगी। लेकिन तुम यह पाओगे कि अगर संतत्व कहीं भी प्रगट होगा तो सभी राजनीतिज्ञ उसके विपरीत होंगे; उस मामले में वे सब राजी होंगे। क्योंकि संतत्व तो आधार ही खींच लेता है राजनीति के।

दुनिया दो ही ढंग से जी सकती है: एक ढंग है राजनीतिज्ञ का और एक ढंग है धर्म का। अब तक दुनिया धार्मिक ढंग से जी ही नहीं, राजनीतिज्ञ के ढंग से जी है। इसलिए जीयी कहां? जीयी ही कहां! मरती रही है, सड़ती रही है। धार्मिक ढंग से जीने की हिम्मत अभी तक किसी समाज ने नहीं की और राजनीतिज्ञ करने न देंगे। कौन अपने बल को खोना चाहता है! कौन अपनी शक्ति, मान-मर्यादा, पद को खोना चाहता है!

जागरूक प्रबुद्ध लोगों की मात्रा बढ़े, ध्यान की ऊर्जा का देश में थोड़ा अनुपात बढ़े तो बहुत सी बातें एक क्षण में बदल जाएंगी। उनमें एक बड़ी बात होगी: प्रतिस्पर्धा का इतना ज्वार, इतना जोर, इतनी हिंसा, इतनी एक-दूसरे के प्रति प्रतिस्पर्धा, एक-दूसरे की टांगों को खींचना और पद का इतना मान खो जाएगा। जो अपने भीतर के पद पर प्रतिष्ठित हुआ उसे फिर कोई और कुर्सी नहीं चाहिए। उसे सिंहासन मिल गया। उससे बड़ा कोई सिंहासन नहीं है। और जिसके जीवन में परमात्मा की थोड़ी धार बहने लगी उसके जीवन में अहंकार की सारी यात्राएं तत्क्षण बंद हो जाएंगी। और राजनीति या धन या पद या प्रतिष्ठा सब अहंकार की यात्राएं हैं।

सम्यक शिक्षा का मौलिक सूत्र है: अहंकार-विसर्जन। और असम्यक शिक्षा का मौलिक सूत्र है: अहंकार का संवर्धन। तुम्हारे स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटी और सब सिखाते हैं, लेकिन अहंकार छोड़ना नहीं सिखाते, अहंकार को बड़ा करना सिखाते हैं। इसलिए तो जो प्रथम आता है उसको गोल्ड मैडल मिलेगा। जो आगे आता है उसकी प्रशंसा होगी। जो प्रथम कोटि में आता है, उसको जल्दी नौकरी मिलेगी। प्रतिस्पर्धा सिखाई जा रही है।

तीस छोटे से बच्चों को तुम पहली क्लास में भर्ती करते हो, जो पहला काम है वह राजनीति है, कि अब इन तीसों को तुमने संघर्ष में डाल दिया कि हरेक उनतीस के खिलाफ है। हरेक को प्रथम आना है, उनतीस से दुश्मनी है। दुश्मनी शुरू हुई। शुरू हुई राजनीति। अब तुम इनको पारंगत करोगे राजनीति में, चालाक बनाओगे, बेईमान बनाओगे। और फिर तुम बड़ी हैरानी की बातें करते हो बाद में। जब पढ़ा-लिखा आदमी बेईमान हो जाता है, तुम कहते हो यह कैसी शिक्षा है! पूरी बीस-पच्चीस वर्ष की उम्र तक तुम व्यक्ति को बेईमान होने की शिक्षा देते हो। फिर जब वह आ कर जेबें काटने लगता है और बेईमानी करने लगता है, धोखाधड़ी करता है, तो तुम कहते हो यह मामला क्या है? इससे तो गैर-पढ़े-लिखे बेहतर थे, कम से कम बेईमान तो न थे। गैर पढ़ा-लिखा बेईमान हो भी नहीं सकता; बेईमानी के लिए कुशलता चाहिए। पकड़ा जाएगा अगर जरा बेईमानी की। उसके लिए थोड़ी कारीगरी चाहिए। उसके लिए विश्वविद्यालय का सर्टिफिकेट चाहिए।

जिसको तुम शिक्षा कहते हो, यह सब अहंकार का परिवर्द्धन है। मैं जिसे शिक्षा कहता हूं वहां अहंकार बिलकुल विसर्जित होना चाहिए। विश्वविद्यालय उस दिन वास्तविक होंगे जिस दिन महत्वाकांक्षा न सिखाएंगे; जिसे दिन विश्वविद्यालय से लौटा हुआ व्यक्ति विनम्र हो कर लौटेगा, ऐसा हो कर लौटेगा जैसे है ही नहीं, शून्य-भाव से वापस आएगा।

जीवन दुख है

तीसरा प्रश्न: न तो संसार में ही रस आता है और न जीवन ही रसपूर्ण है। फिर भी मृत्यु का भय बना ही रहता है। यह कैसी विडंबना है?

मृत्यु का भय अगर बना है तो सिर्फ एक ही कारण हो सकता है, सुनिश्चित रूप से बस एक ही कारण हो सकता है। और कारण यही होगा कि तुमने अभी तक जीवन को जीया नहीं। तो डर है कि कहीं मर न जाओ। तुम सोचते हो विडंबना है। तुम सोचते हो यह कैसी बेबूझ बात, कैसी अटपटी बात, कि जीवन में मुझे रस भी नहीं आता है और जीवन रसपूर्ण भी नहीं है, फिर भी मृत्यु का भय क्यों बना है? तुम्हारा मन कहता होगा, तर्कयुक्त तो यह होता, जीवन में रस नहीं आता, जीवन रसपूर्ण है भी नहीं, तो मृत्यु का भय मिट जाना चाहिए।

नहीं, लेकिन ऐसा नहीं होगा, तुम्हें जीवन के गहरे आधारों का पता नहीं है। मृत्यु का भय तब तक नहीं मिटता जब तक तुम यह जान ही न लो कि "जगत तरैया भोर की'। जीवन में रस है ही नहीं। तुम्हें जीवन में रस नहीं आ रहा है, लेकिन भीतर तुम मानते हो कि "है रस कहीं। रस नहीं आ रहा है, कुछ बाधाएं हैं।' लेकिन जीवन में रस है ही नहीं, ऐसी

तुम्हारी प्रतीति अभी नहीं बनी। ऐसा तुम्हारा बोध अभी सघन नहीं हुआ। जीवन रसपूर्ण नहीं है, यह भी सच है। तुम्हारा जीवन रसपूर्ण नहीं है; लेकिन जीवन, यह विराट जीवन जो चारों तरफ फैला है, यह भी रसपूर्ण नहीं है, ऐसा तुम्हारा अभी अनुभव नहीं हुआ, ऐसा साक्षात्कार नहीं हुआ। तो तुम डरते हो कि अभी तो जीए भी नहीं, कहीं मौत न आ जाए! अभी तो रस मिला ही नहीं, कहीं मौत न आ जाए! कहीं ऐसा न हो कि हम अभी रसहीन ही थे और मर गए बीच में ही, जी ही न पाए और मर गए! इसलिए मौत का भय है।

मौत का भय इतना ही बता रहा है कि अभी जीवन में तुम्हें रस है। रसपूर्ण न होगा तुम्हारा जीवन, इससे मैं राजी हूं। लेकिन अभी जीवन से आशा है, अभी आशा नहीं टूटी है, अभी आशा का धागा बंधा है। कच्चा धागा है लेकिन बंधा है। अभी तुम्हें लगता है कि कोई न कोई उपाय होगा, कहीं न कहीं से रास्ता जाता होगा। अगर मैं ठीक रास्ते पर नहीं हूं तो कोई और रास्ता होगा, जो ठीक है। लेकिन जीवन में रस होना चाहिए।

तुम भाग रहे हो अभी भी। नहीं पहुंच रहे हो, लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं होता कि पहुंचने को वहां कुछ है ही नहीं। जिस दिन ऐसा लगेगा कि पहुंचने को वहां कुछ है ही नहीं, कि जीवन में रस है ही नहीं, कि जीवन मात्र दुख है; जैसा बुद्ध ने कहा...।

बुद्ध ने कहाः चार आर्य सत्य हैं। पहला आर्य सत्य कि जीवन दुख है। इसको उन्होंने कहा पहला आर्य सत्य, पहला महान सत्य। जिसने यह जाना वही आर्य है, वही सच में मनुष्य है--कि जीवन दुख है। दूसरा आर्य सत्य है, कि जीवन से, जीवन के दुख से मुक्त होने का उपाय है। तीसरा आर्य सत्य कि मुक्त हो गई ऐसी चित्त की एक दशा है; जीवन के दुख से मुक्त हो गई चैतन्य की दशा है। चौथा आर्य सत्य कि यह कल्पना ही नहीं है, ऐसा औरों को हुआ है, तुम्हें भी हो सकता है।

चार आर्य सत्य बुद्ध ने कहे, उसमें पहला आर्य सत्य है कि जीवन दुख है। आमूल-चूल जीवन दुख है। प्रथम से ले कर अंत तक जीवन दुख है।

तुम्हें अभी यह दिखाई नहीं पड़ा। और कारण? कारण यही होगा कि तुम शास्त्रों, संतों, उनकी वाणी में समय के पहले उलझ गए। तुमने जरा जल्दी बात सुन ली। तुमने जीवन के अनुभव से नहीं पहचाना कि जीवन व्यर्थ है। तुमने सुन लिया किसी को कहते कि जीवन व्यर्थ है। तुम्हारा मन तो कहे चले जाता है कि जीवन रसपूर्ण है। और तुमने सुन ली किसी महात्मा की वाणी कि जीवन व्यर्थ है, अब तुम दुविधा में पड़ गए; एक द्वार पीछे खींचने लगा, एक द्वार आगे बुला रहा है। अब तुम अड़चन में हुए।

मैं तुमसे कहूंगा, भूलो महात्मा को। तुम जाओ जीवन में। थोड़ा और भटको। थोड़ा और ठोकरें खाओ। थोड़ा और सिर टकराओ। दीवाल है, खुलने वाली है नहीं; दरवाजा वहां है नहीं। लेकिन जब तक तुम लहूलुहान न हो जाओ तब तक तुम्हें प्रतीति न होगी। बुद्ध कहते होंगे, जीवन दुख है। तुम कैसे मानो? तुम कैसे मानो कि जीवन दुख है? बुद्ध को भी कोई दूसरा कहता तो बुद्ध भी नहीं मान सकते थे। खुद जाना तो माना। तुम भी जानोगे तो मानोगे।

मैं तुमसे कहूंगा कि महात्माओं की सुन कर ऐसे अधूरे पीछे मत लौट आना। अन्यथा, धर्म तो तुम्हारे जीवन का सत्य कभी बन ही न सकेगा, क्योंकि पहला ही सत्य चूक गया। बुनियादी ही नहीं तो मंदिर कैसा बनेगा! तुम महात्माओं की बात सुन कर बीच से मत लौट आना। तुम तो जब तक तुम्हें अनुभव न आ जाए, जब तक तुम्हारा हृदय सब तरफ से जार-जार न हो जाए, तब तक लौटना मत। नहीं तो होता क्या है--आदमी पाखंडी हो जाता है, लौट आता है बीच से; दिखावा कुछ करने लगता है, भीतर कुछ हालत और होती है। बैठ जाए साधु बन कर, लेकिन मन संसार में होता है; मन दुकान में होता है, बाजार में होता है। आंखें बंद करे, राम को याद करना चाहता है, लेकिन राम याद नहीं आते; कुछ और, कुछ और, संसार के ही जाल दिखाई पड़ते हैं।

खुद से रूठे हैं हम लोग
टूटे-फूटे हैं हम लोग
सत्य चुराता नजरें हम से
इतने झूठे हैं हम लोग
इसे साथ लें उसे बांध लें
सचमुच खूंटे हैं हम लोग
क्या कर लेंगी वे तलवारें
जिनकी मूठें हैं हम लोग
मयखारों की हर महफिल में
खाली घूंटें हैं हम लोग
हमें अजायब घर में रख दो
बहुत अनूठे हैं हम लोग
हस्ताक्षर तो बन न सकेंगे
सिर्फ अंगूठे हैं हम लोग।

दूसरों की सुन कर झूठे मत बन जाना। दूसरों की सुन कर अंगूठे मत बन जाना।

जीवन को अपने से जीओ। यह तुम्हारा जीवन है। यह तुम्हें मिला है। यह तुम्हें मिला इसलिए कि तुम जाओ इसके अंत तक, खोजो आखिरी गहराई तक। अगर रस मिल जाए तो सौभाग्य; अगर न मिले तो भी सौभाग्य। क्योंकि रस न मिले तो फिर तुम भीतर की तरफ चल सकोगे, निश्चिंत, असंदिग्ध। फिर कोई शंका न घेरेगी। फिर कोई बाहर का बुलावा-निमंत्रण न आएगा। तुम जानकर ही लौटे। तुम पहचान कर लौटे। इसे तुम मेरी बुनियादी शिक्षा समझो।

इसलिए मैं कहता हूं कि संन्यासी भी बनो तो भी संसार मत छोड़ो--जीओ वहीं! जागो वहीं! अनुभव करो वहीं! भगोड़े का तो मतलब ही यह होता है कि डर है अभी। तुम वहीं से तो भागते हो जहां डर लगता है। डर न लगे तो भागोगे क्यों? जो आदमी दुकान छोड़ कर भाग गया जंगल में, वह दुकान से डरता है। उसे डर है कि अगर वह बैठा तिजोड़ी के पास तो

रुपए में उसे रस आ जाएगा। जो अपनी पत्नी छोड़ कर भाग गया उसे डर है कि अगर पत्नी का हाथ हाथ में लिया तो वासना जग जाएगी। जो अपने बेटे को छोड़ कर भाग गया, वह डरता है कि अगर बेटों की आंखों में झांका तो मोह पैदा हो जाएगा। मगर इसका मतलब इतना ही हुआ कि अभी जीवन का पहला सत्य अनुभव में नहीं आया; अभी "जगत तरैया भोर की,' ऐसा अनुभव नहीं हुआ।

तो मैं तुमसे कहूंगा, जाओ जीवन में। डरो मत। भयभीत मत होओ! यह परमात्मा का आयोजन है। तुम पको अनुभव से। अनुभव ले कर लौटो। अनुभव ले कर लौटे तो हाथ तुम्हारे मोतियों से भरे होंगे। और ऐसे दूसरों की बातें सुन कर लौट आए तो कौड़ियां ले कर लौट आओगे। कौड़ियों से तृप्ति नहीं मिलेगी।

जीवन में कोई रस नहीं है, मैं भी तुमसे कहता हूं। लेकिन मेरी बात मान कर तुम लौट मत पड़ना। जीवन व्यर्थ है, मैं भी तुमसे कहता हूं। लेकिन मेरा जानना मेरा जानना है, तुम्हारा जानना कैसे बन जाएगा? न तुम मेरी आंखों से देख सकते हो, न पैरों से चल सकते हो, न मेरा अनुभव तुम्हारा अनुभव हो सकता है। इसे तुम अपना अनुभव बनाओ। इसे गांठ बांध कर रख लो कि किसी ने कहा है जीवन व्यर्थ है, देखें! हो सकता है मुझसे भूल हो गई हो! हो सकता है बुद्ध भूल कर गए हों। हो सकता है ये थोड़े से संत हुए उंगलियों पर गिनने योग्य, ये गलत हो गए हों! क्योंकि बड़ी संख्या तो उनकी है जो जीवन में हैं। थोड़े से लोग हैं जो कहते हैं: जीवन के पार...। ये थोड़े से लोग गलती भी कर सकते हैं। तुम इनकी बात मान कर मत लौट आना। तुम तो अनुभव से लौटना।

एक दिन, मैं तुमसे कहता हूं, अगर तुम पूरी डुबकी लगा कर तलहटी तक चले जाओ जीवन की, तो वहां तुम कुछ भी न पाओगे। और वहां से तुम लौटोगे खाली हाथ एक अर्थ में और भरे हाथ दूसरे अर्थ में। खाली हाथ इस अर्थ में कि जीवन में कुछ भी नहीं है; भरे हाथ इस अर्थ में कि अब परमात्मा को खोजा जा सकता है--निश्चिंतमना, संदेह-शून्य। अब परमात्मा की खोज में कोई बाधा न रही। अब कोई विकल्प न उठेगा। अब विचार और वासना के कौवे कांव-कांव न करेंगे। अब तुम चल सकते हो। अब तुम्हारी जीवनधारा एकाग्र हो कर परमात्मा के सागर में गिर सकती है।

रास्ते अनेक हैं, मंजिल एक।

चौथा प्रश्न: कुछ दिन पहले आपने अष्टावक्र के साक्षी-भाव की डुंडी पीटी, अब दया की भक्ति का साज छेड़ दिया है। इन दोनों के दरम्यान मियां लीहत्जू ने न कुछ कहा न कुछ सुना, महज सफेद मेघों पर चढ़ कर घूमा किए। क्या यह मुमकिन है कि कोई ताओ के सफेद मेघ पर सवार हो कर आज भक्ति के मार्ग पर, कल साक्षी के, जहां हवा ले जाए, सफर करता रहे?

पूछा है कृष्ण मोहम्मद ने।

रोज तो तुम देखते हो, यही तो यहां हो रहा है। कभी मैं लीहत्जू, कभी अष्टावक्र, कभी कबीर, कभी मीरा, कभी मोहम्मद हूं। जरा भी मुझे अड़चन नहीं है। जरा भी ऐसी दुविधा

नहीं आती कि साक्षी की बात कर रहा था, अब भक्ति की बात कैसे करूं! क्योंकि मेरे देखे रास्ते अनेक हैं, मंजिल एक है।

जैसे कोई पहाड़ पर चढ़ता है न, अलग-अलग दिशाओं से अलग-अलग रास्तों से चढ़ सकता है। लेकिन जो शिखर पर पहुंच कर खड़े हो कर देखेगा, वह तो देखेगा कि सभी यात्री एक ही शिखर की तरफ आ रहे हैं। अगर शिखर पर पहुंच कर भी ऐसा लगे कि सभी यात्री शिखर पर पहुंच कर भी कोई जैन का जैन रह जाए, हिंदू का हिंदू, मुसलमान का मुसलमान, तो समझना शिखर पर पहुंचा ही नहीं। हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई रास्ते की बातें हैं। ठीक है। रास्ते पर चलना होता है तो कोई रास्ता चुनना होता है। पचास रास्ते जाते हैं तो भी तुम तो एक से ही जाओगे न; पचास पर तो नहीं चल सकोगे। पचास पर चलोगे तो पगला जाओगे। पचास पर चलोगे तो पगला जाओगे। पचास पर चलोगे तो कभी नहीं पहुंचोगे। चलोगे ही कैसे? बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे।

मैंने सुना है, एक मोटी महिला एक सिनेमा-घर में गई। उसने दो टिकट, जो आदमी सीट दिखला रहा था, उसको दिए। उसने पूछा: "दूसरे सज्जन कहां हैं?' उसने कहा: "क्षमा करें, मैं जरा मोटी हूं, तो ये दोनों कुर्सियां मेरे लिए ही ली हैं।' तो उसने कहा: "देवी जी, आपकी मर्जी है, लेकिन आप बड़ी झंझट में पड़ेंगी।' उसने कहा कि क्या झंझट? उसने कहा कि एक कुर्सी का नंबर इक्यावन है और दूसरी का इकसठ। अब इन दोनों पर बैठने में आपकी मर्जी...पर बड़ी अड़चन आएगी।

दो कुर्सी पर बैठा नहीं जा सकता।

एक राजनेता मुल्ला नसरुद्दीन को मिलने आए। तो मुल्ला अपना बैठा था, उसने यह भी न कहा कि बैठिए। चुनाव के वक्त में कौन राज-नेताओं को कहता है कि बैठिए! उसने ऐसा देखा बेरुखी से जैसे लोग भिखारियों की तरफ देखते हैं, कि आगे बढ़ो, कहीं और जाओ, समय खराब न करो! पर राजनेता नाराज हो गए। राजनेता ने कहा: आपको मालूम नहीं, मैं एम.पी. हूं! तो मुल्ला ने कहा: ठीक, बैठिए! राजनेता ने कहा: और एम.पी. ही नहीं, इस चुनाव के बाद कैबिनेट में जाने की आशा है, मंत्रिमंडल में पहुंच जाऊंगा। तो मुल्ला ने कहा, "बैठिए-बैठिए, दो कुर्सी पर बैठिए! अब और क्या सेवा कर सकता हूं?'

दो कुर्सी पर बैठना संभव नहीं है, चाहे मिनिस्टर हों आप। न तो रास्तों पर चलना संभव है; न दो घोड़ों पर सवारी हो सकती है; न दो नावों पर कोई यात्रा करता है। दुविधा में पड़ेंगे।

ठीक, रास्ते पर तो रास्ते का चुनाव करना पड़ता है। तो रास्ते पर जब तक हो, चुन लेना। साक्षी की बात ठीक लगे, साक्षी पर चले जाना। भक्ति की बात ठीक लगे, भक्ति पर चले जाना। मोहम्मद तुम्हारे हृदय में गूंज उठा दें तो उन्हीं के पीछे हो लेना; महावीर उठा दे तो उनके पीछे हो लेना। मैंने तुम्हारे सामने सभी द्वार खोल दिए हैं। सब द्वार से निकलने की कोशिश मत करना। द्वार से तो एक ही से निकलना। लेकिन सब द्वार खोल दिए हैं ताकि तुम्हें कोई भी ऐसी अड़चन न रह जाए। जो तुम्हारे मन के अनुकूल आ जाए, जिसके साथ

तुम्हारा रस सिद्ध हो जाए, उससे उतर जाना। निश्चित ही। लेकिन जब तुम मंदिर के अंतर्गृह में पहुंचोगे तो तुम पाओगे, सभी द्वार वहीं ले आते हैं। जब तुम पर्वत के शिखर पर पहुंचोगे तो तुम पाओगे, जो पूरब से चढ़े थे, जो पश्चिम से चढ़े थे, वे भी आ गए; जो दक्षिण से चढ़े थे, वे भी आ गए; जो डोलियों पर निकले थे, वे भी आ गए; जो पैदल चले थे, वे भी आ गए; जो घोड़ों पर चले थे, वे भी आ गए; जो गीत गाते चले थे, वे भी आ गए; जो मौन चुपचाप चले थे, वे भी आ गए। सब आ गए!

मैं जहां हूं, वहां से लीहत्जू और दया और सहजो और अष्टावक्र में कुछ भी भेद नहीं है। वहां लीहत्जू अष्टावक्र में खो जाते हैं; अष्टावक्र दया में खो जाते हैं; दया कबीर में डूब जाती है। वहां सब एक हो जाती हैं। और नदियों का स्वाद भी अलग होता है, रंग-ढंग भी अलग होता है। लेकिन सागर में तो सभी का स्वाद फिर एक हो जाता है।

संन्यास क्रांति है

पांचवां प्रश्न: लोग पीते हैं लड़खड़ाते हैं;

एक हम हैं कि तेरी महफिल में

प्यासे आते हैं और प्यासे जाते हैं।

आपकी मर्जी! अपना-अपना चुनाव। अगर न पीने का तय ही कर रखा हो, कसम ही खा ली हो, तो कोई उपाय नहीं है फिर।

कहावत है: घोड़े को नदी तक ले जाया जा सकता है, लेकिन जबर्दस्ती घोड़े को पानी तो पिलाया नहीं जा सकता। तो हम नदी तक आपको ले आते हैं, फिर आपकी मर्जी। अगर आपको इसमें ही मजा आ रहा हो--आने-जाने में सार क्या है? थोड़ा चाहिए! और बहाने मत खोजिए। क्योंकि आदमी बहुत चालाक है। वह जुम्मेवारियां फेंकता है किसी और पर।

प्रश्न से ऐसा लगता है कि जैसा आपका कोई कसूर नहीं है।

बाजार-ए-मुहब्बत में कभी करती है तकदीर

बन-बन के बिगड़ जाता है सौदा मेरे दिल का।

कभी तकदीर को दोष देने लगे, कभी परिस्थिति को दोष देने लगे; कभी कुछ और कारण खोज लिया। ये सब बहाने-बाजियां हैं। न पीना हो न पीएं, लेकिन बहाने न खोजें। पीने के लिए हिम्मत चाहिए।

कहते हैं: "लोग पीते हैं, लड़खड़ाते हैं'!

आप लड़खड़ाने से डरते होंगे। पीने का तो मन दिखता है, नहीं तो पूछते ही क्यों, नहीं तो आते ही क्यों? लड़खड़ाने से डरते होंगे। पीना भी चाहते हैं और लड़खड़ाना नहीं चाहते। ऐसा तो नहीं होगा। पीएंगे तो लड़खड़ाएंगे। यह हिसाब होगा कहीं मन में भीतर कि कुछ इस तरकीब से पीएं कि लड़खड़ाएं न।

मेरे पास लोग आ जाते हैं। कुछ ही दिन पहले एक सज्जन आए। वे कहने लगे कि आप संन्यास दे दें, मगर भीतरी! मैंने कहा: यह क्या मामला है? भीतरी संन्यास क्या? उन्होंने कहा कि ऐसा कि किसी को पता न चले। बस मेरे और आपके बीच की बात।

कुशलता निकालते हैं। किसी को पता न चले! घर लौट कर जाऊं तो पत्नी को, बच्चों को, किसी को पता न चले।

तो मैंने कहा: "फिर संन्यास की जरूरत भी नहीं है। मेरे साथ तो अगर पीना है तो लड़खड़ाना पड़े। सबको पता चलेगा। जगहंसाई होगी।'

तो कहने लगे: "अच्छा, फिर ऐसा करें कि माला भर पहन लूंगा। अगर भीतर पहनूं तो चलेगा, कि बाहर रखना जरूरी है?'

आदमी ने हिम्मत खो दी है। आदमी अति कमजोर हो गया है। बड़े हिम्मतवर लोग रहे होंगे, जो महावीर के साथ नग्न हो गए। उन्होंने न कहा कि महाराज, अगर कपड़ों के भीतर नग्न रहें तो चलेगा? चल सकता था। कपड़ों के भीतर सभी नग्न हैं, अड़चन ही क्या है? हिम्मतवर लोग रहे होंगे। साहसी लोग रहे होंगे। खूब लड़खड़ाए!

कहानी है जैन शास्त्रों में कि एक युवक महावीर को सुन कर लौटा। स्नानगृह में बैठा; उसकी पत्नी उसे स्नान करा रही है। उबटन लगाया है, उसके शरीर को मल-मल कर धो रही है। दोनों की बात होने लगी। पत्नी ने कहा कि आप भी सुनने गए थे महावीर को, मेरे भाई भी सुनते हैं। सोचते हैं वे भी संन्यास लेने का। उस युवक ने कहा: सोचते हैं! सोचने का मतलब ही है कि नहीं लेना चाहते। सोचना क्या? बात जंच गई, जंच गई। सोचना क्या? सोचने का मतलब क्या? सोचने का मतलब है कल लेंगे, परसों लेंगे।

पत्नी को जरा चोट लगी कि भाई का अपमान हुआ जा रहा है। तो पत्नी ने कहा कि नहीं, जरूर लेंगे, एक वर्ष और। तो पति ने कहा, एक वर्ष में तो मौत भी आ सकती है। और क्या भरोसा, एक वर्ष बाद बदल नहीं जाएंगे? हिम्मत नहीं है। क्षत्रिय हो कर यह बात! एक साल बाद! तो अभी चुप रहो, फिर एक साल बाद ही उठाना।

पत्नी को और भी चोट लगी। पत्नी ने कहा: तो आप भी सुनने जाते हैं, आप क्यों सोचते हैं, आप क्या एकदम से संन्यास ले सकते हैं?

पति उठा और स्नानगृह के बाहर हो गया। पत्नी ने कहा: "कहां जा रहे हैं?' वह बोला: "बात खतम हो गई।' उसने कहा: "अरे कपड़े तो पहनिए!' उसने कहा: "अब कपड़े पहन कर क्या करना, वह महावीर छुड़वा ही देंगे।'

पत्नी रोने लगी, चिल्लाने लगी; घर के लोग इकट्ठे हो गए। वह बाहर द्वार पर जा कर खड़ा हो गया सड़क पर। पिता-मां ने समझाया कि पागल, अरे यह बातचीत है, यह तो...। उसने कहा, "बातचीत नहीं, बात खतम हो गई। अब समझ में आ गई बात कि मैं दूसरे के लिए कह रहा हूं कि सोचने-विचारने में क्या रखा है, भीतर सोच-विचार तो मैं भी रहा था। बात समझ में आ गई, बात खतम हो गई।'

ऐसे हिम्मतवर लोग थे। धीरे-धीरे आदमी बहुत कमजोर हुआ--इतना कमजोर हुआ कि गैरिक वस्त्र पहनने में भी डरता है, कि माला भी ऊपर रखने में डरता है, कि कहीं कोई यह न कह दे कि अरे, तुम्हें यह क्या हो गया! कहीं कोई पागल न समझ ले!

तुम आते हो, रस तो तुम्हारा है। चसका तो लगा होगा। चाहे न पीया हो, लेकिन थोड़ी सी जो शराब यहां ढाली जाती है, हवा में भी तो उसकी वास हो जाती है, हवा में भी उसकी सुवास है। नासापुटों में कहीं से गंध पड़ गई होगी। और यहां जो पी कर मस्त होते हैं उनके आसपास भी तो हवा पैदा होती है, उसने तुम्हें छुआ होगा। पीना तो तुम चाहते हो, अन्यथा आते ही क्यों! लेकिन लड़खड़ाने से डरते हो। लड़खड़ाने की भी हिम्मत करो। पीने का मजा ही क्या अगर लड़खड़ाए न! फिर तो पीया न पीया बराबर हुआ।

संन्यास का अर्थ ही यही है कि पुराना जो जीवन था उजड़ेगा और नया जीवन बसेगा। क्रांति है संन्यास। पुरानी जमीन से उखड़ेंगी जड़ें और नई भूमि की तलाश करनी होगी। बीच में कठिन दिन भी बीतेंगे। संक्रमण का काल अड़चन का भी होगा। लोग हंसेंगे भी, व्यंग्य भी करेंगे। लोग सदा से ही करते रहे हैं। लोगों का करने में कसूर भी नहीं है। वे जब तुम्हारा व्यंग्य करते हैं और हंसते हैं तो वे यह तुम पर हंस रहे हैं, ऐसा मत सोचो, वे अपनी रक्षा कर रहे हैं। वे भी डर गए हैं। तुम जब गैरिक वस्त्र पहन कर और मस्त हुए चले आए नाचते, तो जो आदमी तुम पर हंसता है, वह भी डर गया है। वह यह देख रहा है कि अगर इस आदमी का विरोध न किया तो कहीं भीतर हमको भी यह आकर्षण न पकड़ ले! वह विरोध करता है अपनी रक्षा के लिए। वह कहता है, गलत हो तुम। वह चिल्ला कर कहता है कि गलत हो, कि तुम पागल हो गए। वह असल में यह कह रहा है कि यह पागलपन कहीं मुझे न हो जाए।

जब भी तुम किसी व्यक्ति का विरोध करने लगो तो गौर से भीतर देखना, कहीं तुम्हारे भीतर उस तरफ जाने का आकर्षण होगा। इसलिए विरोध है, नहीं तो विरोध भी नहीं होगा। जो तुम्हारा विरोध करते हैं वे तुम्हारे पीछे चलेंगे, तुम जरा लड़खड़ाओ।

दिल का उजड़ना सहल सही, बसना सहल नहीं जालिम!

बसती बसना खेल नहीं, बसते बसते बसती है।

थोड़ा समय लगता है। फिर लड़खड़ाने में भी एक अनुशासन आ जाता है। फिर मस्ती में भी एक नियम होता है, एक स्वर्ण-नियम होता है। पागलपन की भी एक विधि है। पहले-पहल पागलपन लगता है, फिर धीरे-धीरे सब थिर हो जाता है। और तब तुम पहली बार बुद्धिमान हुए। संसार तुम्हें पागल कहेगा, लेकिन तुम जानोगे कि तुम पागल अब तक थे; अब पहली बार तुम्हें जीवन में किरण उतरी और पागल पन मिटा।

थोड़ा साहस करो। संन्यास साहस है। और यह तो मधुशाला है। इस बार लड़खड़ाते ही जाओ। तुम्हारा साहस हो तो मैं तो आशीर्वाद देने को सदा तैयार हूं।

जाने किस आशंका से डरते हम

जो नहीं चाहते बरबस करते हम

करते हैं सिर्फ बहाना जीने का

जीवन भर कदम-कदम पर मरते हम।

घबरा किस बात से रहे हो? खोने को है क्या? खोने को तुम्हारे पास है क्या? डर क्या है? बचा क्या रहे हो? कुछ भी नहीं है। और वही किए चले जा रहे हो जो तुम नहीं करना चाहते। और जो तुम करना चाहते हो, उसको करने से डरते हो। इसे पहचानो। बहाने मत खोजो। और अगर जरा सा साहस करो तो अपरिचित में यात्रा शुरू हो जाए।

साहस बार-बार मैं दोहराता हूं, क्योंकि परमात्मा भी अपरिचित है; अभी अनजानी मदिरा है, कभी चखी नहीं; अभी अनजाना मार्ग है, कभी गए नहीं। राजपथ नहीं है परमात्मा; जंगल की पगडंडी है। अकेले पड़ जाओगे। भीड़-भाड़ तो राजपथ पर छूट जाएगी। राजनेता, भीड़-भाड़, शोरगुल मचाने वाले, जुलूस, शोभायात्राएं सब राजपथ पर छूट जाएंगी। संन्यास तो एकाकी होने की यात्रा है। ध्यान तो अकेले होने का उपाय है। भक्ति में डूबने का अर्थ है संसार तो भूलने लगेगा; बस सारा ध्यान एक उस दूर के तारे पर टंका रह जाएगा। बस वह एक तारा ही रह जाएगा तुम्हारे भीतर, और सब धीरे-धीरे खो जाएगा। इसलिए डर लगता है: उतने अकेले में जाना! उतने एकांत में जाना! सारे संबंधों के पार अतिक्रमण करना!

इसलिए साहस धार्मिक व्यक्ति का अनिवार्य लक्षण है। हिंसक भी धार्मिक बन सकता है; क्रोधी धार्मिक बन सकता है। कामी धार्मिक बन सकता है; लेकिन कायर धार्मिक नहीं बन सकता। इसे तुम सोचना, इस पर ध्यान करना।

तुम्हारे धर्मशास्त्र यही कहते हैं कि हिंसा छोड़ो, क्रोध छोड़ो, काम छोड़ो। मैं तुमसे कहता हूं, कायरता छोड़ो। क्योंकि कायरता नहीं छोड़ी तो हिंसा कैसे छोड़ोगे? कायरता नहीं छोड़ी तो क्रोध कैसे छोड़ोगे? कायरता नहीं छोड़ी तो धन कैसे छोड़ोगे? कायरता नहीं छोड़ी तो संबंध कैसे छोड़ोगे? कायरता छोड़ी तो पहला कदम उठाया। अब तुम बलशाली हुए; अब तुम कुछ भी छोड़ सकते हो।

कोई कल का निरा अपरिचित
जीवन का आधार बन गया।

तुम असहाय हो जाओ और तुम पाओगे कि परमात्मा का सहारा मिल गया।

कोई कल का निरा अपरिचित
जीवन का आधार बन गया।
बांध रही एकाकी मन को।
यादों की जंजीर सुनहली
निंदियारी पलकों ने खोई
सपनों की जागीर रुपहली
रोम-रोम पर एक अजानी
मीठी सी सिहरन का पहरा
दृष्टि-परिधि में भी न रहा जो
सांसों का आगार बन गया।

जिसकी कभी कोई खबर ही न मिली थी, जिसे कभी देखा भी न था...।

दृष्टि-परिधि में भी न रहा जो
सांसों का आगार बन गया।
वही तुम्हारी सांस-सांस में समा जाएगा।
आश्वासन के शब्द-पखेरू
वचनों की शाखों पर चहके
अभिलाषा के कमल-वनों में
सुरभित धीरज पद-पद महके
उग आए हैं बोल प्यार के
भोले-भाले प्रणय अजिर में
नाम किसी का अनजाने ही
गीतों का आभार बन गया।
जिस नाम से तुम्हारी कोई पहचान नहीं है, जो अब तक अनाम है...।
नाम किसी का अनजाने ही
गीतों का आभार बन गया
अंतर के दर्पण में मैंने
ज्योति विनंदन रूप उतारा
पर असीम को सीमित करना
सहज नहीं, इससे मैं हारा
निर्वसना असफल रेखाएं
हाथ उठा कर गगन निहारें
चित्र किसी का प्राण अजाने
मेरा ही आकार बन गया।
थोड़ा साहस, थोड़ी हिम्मत, थोड़ा अनजान-अपरिचित में जाने की चुनौती को स्वीकार करो। और तुम अकेले नहीं रहोगे। परमात्मा तुम्हारे साथ है। पर इसके पहले कि परमात्मा तुम्हारे साथ हो, तुम्हें अकेले होने का साहस दिखाना पड़ेगा। परमात्मा उन्हीं के साथ है जो अकेले हैं।
खटखटाओ और द्वार खुलेगा
आखिरी प्रश्न: प्रभु को न पाया तो हर्ज क्या है?
हर्ज तो कुछ भी नहीं। क्योंकि हर्ज का तो पता ही तब चलेगा जब प्रभु को पा लोगे। जो मिल जाए उसके ही खोने पर हर्ज होता है। जो मिला नहीं, उसके खोने का हर्ज तो पता कैसे चलेगा? जो तुम्हारे पास अभी नहीं है, उसे पाने से क्या होगा, लाभ होगा कि हानि होगी, अभी तो अनुमान ही नहीं किया जा सकता।
छोटा बच्चा अगर पूछे कि जवान अगर न हुए तो हर्ज क्या है, तो क्या कहोगे? मुश्किल है समझाना कि जवान न हुए तो हर्ज क्या है। अंधा आदमी पूछे कि अगर आंखें न मिलीं तो

हर्ज क्या है? प्रकाश को तो अंधे ने कभी जाना नहीं। तो उसे पता नहीं कि प्रकाश का साम्राज्य, प्रकाश के रंगों का जाल, इंद्रधनुष, सूरज, चांदतारे, फूल, वृक्ष, यह सारा जो प्रकाश का अपूर्व संसार है, इससे वह वंचित है। उसे पता ही नहीं। वह अगर कहे कि अगर आंख ठीक न भी हुई तो हर्ज क्या है, कैसे समझाओगे कि हर्ज क्या है? क्योंकि हर्ज को समझाने का तो एक ही उपाय है कि पास हो और खो जाए तो पता चलता है कि हर्ज हुआ।

तुम पूछते होः "प्रभु को न पाया तो हर्ज क्या है?'

मैं जानता हूं कि हर्ज क्या है। तुम्हारा प्रश्न भी सार्थक है। तुमने प्रभु को जाना नहीं है। तुम कैसे समझोगे कि हर्ज क्या है? दूसरी तरफ से चलें।

अभी तुम जिसे जीवन कह रहे हो, उसमें क्या है? कुछ भी ऐसा है क्या जिसके लिए जीना सार्थक मालूम पड़े? कुछ भी ऐसा है क्या कि तुम चाहो कि दुबारा जीना चाहो? अगर परमात्मा तुमसे पूछे कि दुबारा जीवन देते हैं तो क्या तुम इसी भांति फिर से जीना चाहोगे जैसे तुम अभी जी रहे हो? ठीक ऐसे ही फिर से जीना चाहोगे? सोचना इसे। नहीं जीना चाहोगे। क्योंकि कुछ भी तो नहीं है। खाली-खाली, रूखा-रूखा! कहीं न तो फूल खिलते, न कोई वीणा बजती। हृदय वेणु उठाता ही नहीं; हृदय पर कोई संगीत जगता ही नहीं। कहीं कुछ भी तो नहीं है। चले जा रहे धक्के खाते। चले जा रहे, क्योंकि क्या करो! चले जा रहे, क्योंकि पाया कि जीवन में हो, इसलिए चले जा रहे हो। एक दिन मौत आ जाएगी, समाप्त हो जाओगे। शायद जाने-अनजाने आदमी मौत की प्रतीक्षा भी करता है।

सिग्मंड फ्रायड ने दो वासनाएं आदमी की मूल वासनाएं मानी हैंः एक कामवासना और दूसरी मृत्यु-वासना। बड़ी अनूठी बात है। एक तो कामवासना है जो आदमी को धकाए रखती है। और फ्रायड कहता है कि उससे भी गहरे नहीं अचेतन में एक आशा बनी रहती है कि है तो जीवन व्यर्थ, आज नहीं कल मौत आएगी, सब ठीक हो जाएगा।

तुमने कभी खयाल किया? तुम्हारे जीवन में मौत की प्रतीक्षा के अतिरिक्त और क्या है? यह रूखा-सूखा वृक्ष अगर गिर जाएगा तो हर्ज क्या?

तो मैं इसे दूसरी तरफ से लेता हूं। अगर यही जीवन है तो इसको खोने में हर्ज क्या है, मैं पूछता हूं। यह रोज सुबह उठना, दफ्तर जाना, घर लौट आना, फिर सो जाना, फिर झगड़ा, फिर फसाद--अगर यही जीवन है तो इसे खोने में हर्ज क्या है? यही तो दुनिया के बड़े से बड़े विचारक पूछते हैं।

पश्चिम का बड़ा विचारक है ज्यां पाल सार्त्र। वह पूछता हैः अगर यही जीवन है तो आत्महत्या करने में हर्ज क्या है? यह बात ऐसे ही टाल देने की नहीं है। आत्महत्या बड़े से बड़ा सवाल है। क्योंकि अगर इसी को जीवन कहते हो तो कोई आदमी आत्महत्या कर लेना चाहे तो इसमें आश्चर्य क्या है? कल भी तो तुम यही करोगे न! फिर सुबह उठोगे, फिर चाय पीयोगे, फिर पत्नी से झगड़ोगे, फिर अखबार पढ़ोगे, फिर दफ्तर जाओगे। ऐसे ही जैसे कि ग्रामोफोन रिकार्ड खराब हो जाता है और सूई फंस जाती है एक ही जगह और दुहरती रहती है-- वही लकीर, वही लकीर, वही लकीर! ऐसा तुम्हारा जीवन है टूटा-फूटा ग्रामोफोन रिकार्ड।

तुम पूछते हो: "प्रभु को न पाया तो हर्ज क्या है?'
तुम्हारे जीवन में अभी है ही क्या?
प्रभु को पाने का कुल इतना ही अर्थ है कि तुम्हारे जीवन में अर्थ आ जाए। और तो कुछ अर्थ नहीं है। प्रभु को पाने का इतना ही अर्थ है कि तुम्हारे जीवन में सुरभि आ जाए, सुगंध आ जाए, संगीत आ जाए। तुम्हारे जीवन में उत्सव आ जाए, उमंग आ जाए! तुम्हारा जीवन ऐसा बासा-बासा, उधार-उधार न रह जाए; ताजा हो! सुबह जैसा ताजा हो! सुबह के ओस-कणों जैसा ताजा हो, कुंआरा हो। तुम्हारे जीवन में चांदत्तारों की झलक हो। होनी चाहिए। क्योंकि मनुष्य के पास इस जगत में सबसे अनूठी चीज है: चेतना। इतनी अनूठी संपदा को पा कर तुम पा क्या रहे हो? दौड़-धूप करके थोड़ी तनखाह बढ़ जाएगी, कि थोड़ा तिजोड़ी में और धन इकट्ठा हो जाएगा, कि छोटी गाड़ी की जगह बड़ी गाड़ी आ जाएगी, कि छोटे मकान की जगह बड़ा मकान हो जाएगा।
तुम इस परम चैतन्य को पाकर कर क्या रहे हो? तुम इस परम चैतन्य से उपलब्ध क्या कर रहे हो? इस परम चैतन्य में तो सारे संसार का आनंद आ सकता है--
परमात्मा को पाने का इतना ही अर्थ है कि तुम्हारे द्वार आनंद के लिए खुल जाएं। सारे जीवन का उत्सव तुममें समा जाए। तुम नाच उठो। नहीं तो ऐसा समझो।
आज फूल रही कचनार
श्याम नहीं महलों में
सखी साजे वसंती सिंगार
सिंदूर-भरे अलकों में
चांद के संग हंसें
बात कहते रुकें
बांह छोड़ें-कसें
कामिनी गंध जैसी उम्र न समाए
रेशम चीर सुनहलों में
आज फूल रही कचनार
श्यान नहीं महलों में
जैसे किसी का प्रेमी घर में न हो, फूल खिलें--प्रेयसी को क्या!
आज फूल रही कचनार
आए उड़-उड़ पवन
करे ठंडा बदन
रूखे-फीके नयन
बीती जाए वसंती बहार
रैन बीते पलकों में
आज फूल रही कचनार

श्याम नहीं महलों में।

जैसे प्रेयसी का प्रेमी नहीं है, आकाश में चांद है और कचनार फूला है और ठंडी हवा बहती है और सब तरफ सुगंध है और सब तरफ चांदनी है--लेकिन क्या सार! श्याम नहीं महलों में! ऐसी ही दशा है आदमी की। जब तक परमात्मा, जब तक श्याम तुम्हारे अंतरतम में विराजमान नहीं हो जाए, तब तक यह सारा जीवन सूखा-सूखा है, खाली-खाली है, निर्जीव है, निष्प्राण है।

परमात्मा की खोज का अर्थ है तुम्हारे हृदय के सिंहासन पर विराजमान कर लेना है श्याम को। या नाम कुछ भी रखो। अभी तो तुम्हारा हृदय का सिंहासन खाली है। महल तो है, लेकिन सम्राट पता नहीं कहां है!

मिल गया जनम का तो उपहार मरण से भी
पर तेरे घर मेरी सुनवाई हुई नहीं।
बदला जग, बदला जीवन, बदले सिंहासन,
बदले आकाश-धरा बदले फागुन-सावन
पर जाने तू किस कंगन में कस गया मुझे
अब तक मेरी आजाद कलाई हुई नहीं।
दोहराया तेरा नाम कभी सागरत्तीरे
बादल बन कभी पुकारा रेगिस्तानों में
बन खेल-खिलौना खोजा भीड़त्तमाशों में
आवाज लगाई पहन कफन श्मशानों में
खो गया मुसाफिर स्वयं नापते हुए डगर
थक गए सांस के पांव खतम हो गया सफर
लेकिन अब तक इस पीड़ा के कारागृह से
मेरे तन-मन की तनिक रिहाई हुई नहीं।
जाने तू किस खिड़की से खड़ा झांकता हो
यह सोच झुकाया सिर हर मंदिर के द्वारे
जाने तू कब आ कर घर सांकल खटकाए
जीवन भर सोया नहीं इसी गम के मारे
हरदम ही आंखें रहीं भरी उघरी-उघरी
तिल-तिल घुल छीजी देह हुई रीती गगरी
लेकिन ओ मेरे चांद, बिना तेरे जग में
मेरे जीवन की रात जुन्हाई हुई नहीं।

परमात्मा के बिना मनुष्य एक अंधेरी रात है। परमात्मा के बिना जुन्हाई कभी होती नहीं, चांदनी कभी आती नहीं। परमात्मा के बिना आदमी एक बीज है--बंद, जड़। परमात्मा के साथ ही बीज अंकुरित होता है; फूलती-फलती जीवन-यात्रा शुरू होती है। परमात्मा के बिना

मंदिर है और मूर्ति नहीं। तुम खाली हो, रिक्त! श्याम नहीं महलों में! और इसे तुम जानते हो।

तुम यह मत पूछो कि परमात्मा को न पाया तो क्या खो जाएगा। तुम प्रश्न यहां से पूछो कि अभी तुम्हारे पास है क्या? अगर परमात्मा को न पाया तो क्या पाओगे? प्रश्न ऐसा पूछो--ज्यादा सार्थक होगा, संगत होगा--अगर परमात्मा न मिला तो इस जीवन में मिला क्या? ऐसा पूछो। तो तुमने ठीक दिशा से खोज शुरू की।

परमात्मा का इतना ही अर्थ है कि तुम्हारे जीवन का सत्य प्रगट हो जाए। तुम जिस नियति को अपने भीतर लिए चल रहे हो, वह प्रगटे; तुम्हारा कमल खिले। जब कमल खिलता है तो परम उत्सव है; ऐसा ही परम उत्सव तुम्हारे भीतर घटे। इसलिए तो हमने बुद्ध को कमल पर बिठाया है, विष्णु को कमल पर खड़ा किया है। और योगियों ने मनुष्य के अंतिम ऊर्जा-स्रोत को सहस्रार कहा है, सहस्रदल कमल। जब तुम्हारी चेतना पूरी खिलती है तो जैसे हजार पंखुड़ियों वाला कमल खिल गया! उस दिन ही तुम जानोगे कि अब तक क्या खोया। उस दिन तुम जानोगे कि अब तक क्या खोया। उस दिन तुम जानोगे कि अब तक कितना गंवाया। उस दिन तुम जानोगे कि अरे, अब तक जिसको जीवन कहा था वह जीवन था ही नहीं।

श्री अरविंद ने कहा है कि जब जागा तो जाना कि जिसे जीवन कहा था वह तो मृत्यु से भी बदतर था; जिसे रोशनी समझा था वह तो महा अंधकार था, और जिसको अमृत समझ कर पीता रहा वह तो जगह था।

एक तिब्बती कथा है। एक बौद्ध भिक्षु राह भटक गया है। रात हो गई। थोड़े से टिमटिमाते तारे हैं, आकाश में थोड़ी सी रोशनी है। वह दिन भर का प्यासा है। सब तरफ खोजता है, कहीं कोई एक टिमटिमाता दीया भी दिखाई नहीं पड़ता। प्यास, भूख...। गिर पड़ता है थका-मांदा घुटने के बल और याद करता है बुद्ध की। स्मरण करता है कि प्रभु, अब तुम सहायता करो; मैं मर जाऊंगा। पानी चाहिए इसी वक्त; कंठ सूखा जा रहा है। और जैसे ही वह भूमि पर गिरता है तो देखता है कि एक स्वर्ण-पात्र सामने ही रखा है--जल से भरा। उठा कर जल को पी जाता है। पात्र को वहीं रख कर सो जाता है। बड़ा आनंदित है कि प्रभु की कृपा!

सुबह जब आंख खुलती है तो बड़ा घबराता है। वहां कोई स्वर्ण-पात्र नहीं है। सामने एक आदमी की खोपड़ी पड़ी है। और खोपड़ी भी साधारण नहीं है। आदमी शायद जल्दी ही, कुछ ही दिन पहले मरा होगा। किसी जंगली जानवर ने मार डाला है। लहू अभी तक लगा है। मांस के टुकड़े चिपके हैं। मांस सड़ गया है, कीड़े-मकोड़े पड़ गए हैं। और उसी में थोड़ा पानी है। रात वह इसी को पी गया है। गहरी प्यास के क्षण में, थकान के क्षण में, रात वह इसी को पी गया है। गहरी प्यास के क्षण में, थकान के क्षण में, रात के अंधेरे में स्वर्ण-पात्र मालूम पड़ा था। अब दिन के उजाले में समझ पड़ी कि स्वर्ण-पात्र कहां, आदमी की खोपड़ी है, सड़ी-गली खोपड़ी है! घबरा जाता है। वमन हो जाता है घबराहट में। रात भर मजे से सोया;

न कोई वमन था न कोई बात थी। उलटी हो जाती है। उसे सारी बात समझ में आ जाती है; सारे संसार का राज समझ में आ जाता है।

ऐसी ही मूर्च्छा में जिसको तुमने अभी स्वर्णपात्र समझा है, वह आदमी की खोपड़ी जैसी गंदी चीज है। जिसको तुमने अभी प्रेम समझा है, वह बड़ी कीचड़-भरी बात है। जिसको अभी तुमने जीवन समझा है, वह जरा भी जीवन नहीं है। जिस दिन आंख खुलेगी...परमात्मा का अर्थः आंख का खुलना...जिस दिन आंख खुलेगी, उस दिन तुम चौंक कर देखोगेः अरे, जो अब तक जीवन था, मृत्यु से बदतर था।

लेकिन यह तो बाद में घटेगी बात। अभी? अभी तो तुम्हें यह बात कैसे समझ में आए? इसलिए इसे अभी छोड़ो। अभी तो तुम इस तरह सोचो कि तुम्हारे जीवन में क्या है? अगर तुम पाओगे तुम्हारे जीवन में कुछ भी नहीं है, तो फिर खोज करनी जरूरी है। तो इस समय का, जो तुम्हारे हाथ में है, उपयोग कर लो।

इतना मैं तुमसे कहता हूंः जो खोज करता है, जरूर पाता है। जो खोजता है, मिलता है उसे। जिसने द्वार खटखटाया, उसके लिए द्वार खुलते हैं। खोजी कभी खाली हाथ वापस नहीं लौटता। साहस से खोजो। अभी जीवन में कुछ भी नहीं है। ऐसे उलटे प्रश्न पूछ कर कि ईश्वर को पाने से क्या लाभ, चेष्टा मत करो अपने को समझाने की कि ईश्वर को पाने में कुछ लाभ नहीं है। तो फिर यही करते रहो जो कर रहे हो, क्योंकि ईश्वर को पाने में क्या लाभ है! मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे पूछते हैंः ध्यान करने से क्या लाभ है? मैं उनसे पूछता हूं कि अब तक क्रोध किया, कभी पूछा कि क्रोध करने से क्या लाभ? नहीं पूछा। ध्यान करने के लिए पूछते हो क्या लाभ है! अब तक हिंसा की, द्वेष किया,र् ईष्या की--कभी पूछा क्या लाभ? वे कहते हैं, नहीं, पूछा नहीं अब तक। तो मैं कहता हूंः मेरे सामने ही अब पूछो कि क्रोध अब तक किया, क्या लाभ! वे कहते हैं, कुछ लाभ नहीं। तो मैं उनसे पूछता हूंः अब क्रोध करोगे कि नहीं? घबरा जाते हैं। लाभ तो कुछ भी नहीं, फिर? अगर लाभ से ही जी रहे हो तो क्रोध छोड़ दो, कामवासना छोड़ दो,र् ईष्या छोड़ दो। लाभ तो कुछ पाया नहीं है। और अगर तुम क्रोध, कामवासना,र् ईष्या, लोभ, मोह छोड़ दो तो तुम्हें तत्क्षण ध्यान का लाभ दिखाई पड़ने लगेगा। क्योंकि उनके छोड़ने में ही ध्यान होने लगेगा।

ध्यान का लाभ तो ध्यान में उतर कर ही पता चलेगा; पहले कैसे पता चले? गूंगे केरी सरकरा!--कबीर ने कहा है। जिन्होंने ले लिया है स्वाद, वे भी समझा नहीं सकते। वे यही तुमसे कह सकते हैं कि तुम भी स्वाद ले लो।

यही मैं तुमसे कहता हूं। परमात्मा को पाने के बाद ही पता चलता है कि बस एक ही चीज लाभ की थी संसार में--वह है परमात्मा। और सब व्यर्थ है। लेकिन, यह स्वाद के बाद की बात हुई। अभी तो तुम इतना ही पूछो, बार-बार पूछो कि मेरे जीवन में अभी क्या है? जीवन की हर चीज को उठा कर निरीक्षण करो। हर चीज को खोलो और देखोः क्या है? तुम कुछ भी न पाओगे। सन्नाटा है! कोरा सन्नाटा है! इस कोरेपन से ही तुम्हारे भीतर महत्वाकांक्षा उठ रही है कि धन से भर लो, पद से भर लो, किसी चीज से भर लो। भीतर

सब खाली-खाली है, किसी चीज से भर लो। भीतर का खालीपन काटता है। तुम भरते रहो कितना ही, भर न पाओगे। क्योंकि धन भीतर जा नहीं सकता और पद भी भीतर नहीं जा सकता। बड़ा मकान कितना ही बड़ा हो, भीतर नहीं जा सकता। दुकान कितनी ही बड़ी हो, भीतर नहीं जा सकती। भीतर तो सिर्फ एक ही जा सकता है--वह है परमात्मा। क्योंकि वह भीतर है ही। वही प्रगट हो जाए भीतर तो तुम भीतर भी जाओगे।

भीतर भर जाने का नाम परमात्म-उपलब्धि है। और भीतर जब तुम भरे-पूरे हो, पूरे-पूरे भरे हो, तब तृप्ति है, तब परितोष है, संतोष है, सच्चिदानंद है।

आज इतना ही।

पांचवां प्रवचन

दिनांक १५ मार्च, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

दयाकुंअर या जग्त में, नहीं रह्यो थिर कोय।
जैसो वास सराय को, तैसो यह जग होय।
जैसो मोती ओस को, तैसो यह संसार।
विनसि जाय छिन एक में, दया प्रभु उर धार।।
तात मात तुमरे गए, तुम भी भये तयार।
आज काल्ह में तुम चलौ, दया होहु हुसियार।।
बड़ो पेट है काल को, नेक न कहूं अधाय।
राजा राना छत्रपति, सब कूं लीले जाय।।
बिनसत बादर बात बसि, नभ में नाना भांति।
इमि नर दीसत कालबस, तऊ न उपजै सांति।।

यह जीवन--एक सराय

कार्ल माक्र्स का प्रसिद्ध वचन है कि धर्म अफीम का नशा है। कार्ल माक्र्स को धर्म का कुछ भी पता न होगा, क्योंकि धर्म को छोड़ कर सब अफीम का नशा है। धन की दौड़, पद की दौड़--नशा है। धर्म के एकमात्र नशे से जागने का उपाय।

हम सब जीते हैं सपनों में--और इसलिए उससे अपरिचित रह जाते हैं जो सत्य है। सत्य से परिचय न बने तो सुख, संभव नहीं है। सुख, सत्य से परिचय की सुगंध है। सपने में जीएं तो दुख ही निर्मित होगा, क्योंकि जो नहीं है उससे सुख पैदा नहीं हो सकता। जो नहीं है वह बार-बार पीड़ा देगा। तुम लाख उपाय करो, वह हो न सकेगा। जो नहीं है नहीं है। जो है वही है।

धर्म का अर्थ है: जो है उसकी तलाश। अधर्म का अर्थ है: जो नहीं है उसकी आकांक्षा।

मनुष्य मांगता है बहुत कुछ, जो नहीं है। और कोई उपाय नहीं है उसके होने का। और किसी तरह तुम आयोजन भी कर लो अपने सपनों का तो भी तुम भीतर रिक्त रह जाओगे। क्योंकि सपनों के भोजन से कब किसका पेट भरा! सपने के जल से कब किसकी प्यास मिटी! सपने से भरमा सकते हो, उलझा सकते हो। सपने से तुम जीवन को काटने की व्यवस्था कर ले सकते हो। व्यस्त रहोगे, लेकिन कभी कुछ पा न सकोगे। किनारा कभी भी न मिलेगा। सपने का कोई किनारा होता ही नहीं। सत्य का किनारा होता है। कठिनाई यह है कि जो सपने में दौड़ रहा है वह सत्य के विपरीत चलने लगता है। सपना यानी सत्य के विपरीत। तो जो सपने में दौड़ रहा है वह सत्य से रोज-रोज वंचित होता जाता है। सपना तो कभी पूरा होता नहीं; जो पूरा हो सकता था उससे वंचित होता चला जाता है।
तुम्हारी मांग के कारण तुम जो हो सकते थे, नहीं हो पाते। तुम वही हो सकते हो जो तुम किसी गहरे तल पर हो ही। बीज फूल बनेगा, लेकिन वही फूल बनेगा जो बीज अभी भी है। छिपा है; प्रगट होगा।
परमात्मा का अर्थ है, मनुष्य के भीतर जो छिपा है। कभी किसी भक्त में, कभी किसी संत में, जो छिपा है वह प्रगट होता है। लेकिन प्रत्येक मनुष्य उसी का बीज है। लेकिन हमारी ऊर्जा और हजार दिशाओं में बहती है। इसलिए बीज को ऊर्जा मिलती नहीं। बीज को पोषण नहीं मिलता।
तुमने खयाल किया? तुम जितने लगाव से बाजार जाते हो, उतने लगाव से कभी मंदिर गए? तुमने जितने प्रेम से रुपए गिने हैं, उतने प्रेम से कभी माला फेरी? तुमने जितनी आतुरता से पद मांगा है, उतनी आतुरता से परमात्मा को मांगा? परमात्मा के दरवाजे पर भी तुम संसार ही मांगने जाते हो। तुम्हारी मूढ़ता की कोई सीमा नहीं है। परमात्मा के द्वार पर भी तुम संसार को ही मांगने जाते हो; तभी जाते हो जब तुम्हें कुछ संसार में जरूरत होती है। तुम परमात्मा से भी धन मांगते हो, यश मांगते हो, पद-प्रतिष्ठा मांगते हो। तुम परमात्मा से भी वही मांगते हो जो तुम कर रहे थे और अब नहीं कर पा रहे हो। तुम अपने ही सपनों में परमात्मा का सहारा भी मांगते हो। परमात्मा की तरफ तो तुम्हारी आंख ही तब उठेगी जब तुम्हें एक बात प्रत्यक्ष हो जाए कि हम जो भी मांग रहे हैं, वह व्यर्थ है, कूड़ा-कर्कट है। वह मिल भी जाए तो कुछ न मिलेगा। एक तो मिलने वाला नहीं; फिर मिल भी जाए तो भी कुछ न मिलेगा। तुम सम्राट हो जाओ सारे संसार के, सारी पृथ्वी तुम्हारी हो,

तो भी क्या मिलेगा? तुम भीतर तो वही रहोगे जो अभी हो--ऐसे ही दुखी, ऐसे ही चिंतित, ऐसे ही अशांत, ऐसे ही पीड़ित, ऐसे ही परेशान। शायद तुम्हारी परेशानी थोड़ी और बढ़ जाएगी। क्योंकि सारी दुनिया की परेशानियां और तुम्हारे सिर पर सवार हो जाएंगी। कम तो नहीं होगी परेशानी।

धर्म अफीम का नशा नहीं है; धर्म को छोड़ कर सब अफीम का नशा है। धर्म एकमात्र प्रक्रिया है जिससे हम नशों के बाहर आते हैं। धर्म नशा उतारने की विधि है।

तो पहली बात खयाल लें: सपना क्या और सत्य क्या? कसौटी कहां है? कैसे हम जानेंगे कि जो हम देख रहे हैं वह सपना है? कैसे हम जानेंगे-पहचानेंगे कि जो हम मांग रहे हैं वह सपना है?

पहली बात: सत्य को मांगना ही नहीं होता है। जो भी तुम मांगते हो, सपना ही होगा। मांगना ही असत्य को पड़ता है। सत्य तो है ही। सत्य के लिए तो सिर्फ आंख खोलनी काफी है; मांगने की कोई जरूरत नहीं है।

पश्चिम का बहुत बड़ा चित्रकार पाब्लो पिकासो एक बात बार-बार कहा करता था। लोग समझते थे कि अहंकार की घोषणा है, दर्प है। मैं नहीं समझता। चाहे पिकासो का कहने का ढंग दर्प-भरा रहा हो, लेकिन वह जो उसने कहा है, सच के बहुत अनुकूल है। बड़ा बेबूझ है। अटपटी बात है। कभी-कभी चित्रकार-मूर्तिकार, संगीतज्ञ, कवि ऐसी बात कह देते हैं जो धर्म की अटपटी बात के काफी करीब आ जाती है। काफी करीब आ जाती है! क्योंकि कवि को कभी-कभी झलक मिलती है सत्य की; और कभी-कभी मूर्तिकार और चित्रकार को भी। जब बुद्धि से उसका संबंध टूट जाता है और हृदय में गहन प्रवेश होता है, तो कुछ द्वार खुलते हैं, कुछ झरोखे खुलते हैं। संत को जो सदा के लिए मिल जाता है, कवि को कभी-कभी उसकी झलक आती है, लहर आती है।

पाब्लो पिकासो कहता था: "आइ डू नॉट सीक, आई फाइंड'; मैं खोजता नहीं पाता हूं!

इस वक्तव्य पर लोगों ने टिप्पणी की है कि यह बड़े अहंकार का वक्तव्य है कि "मैं पाता हूं'! लेकिन यह वक्तव्य बड़ा प्यारा है। यह बड़ा महत्वपूर्ण है। सत्य को खोजना नहीं पड़ता--सत्य को पाना पड़ता है।

लाओत्सु का प्रसिद्ध वचन है: खोजा कि खोया, क्योंकि खोज करने का अर्थ ही यह होता है कि तुम कुछ खोजने लगे जो है नहीं। जो है उसने तो तुम्हें सब तरफ से घेरा है। बाहर-भीतर वही है। खोजने वाले में भी वही है। जिसको तुम खोजने चले हो, वह तुम्हारे भीतर बैठा है। वह तुम्हारी आंखों में से देख रहा है। तुम उसे बाहर ही थोड़े देखोगे, वह तुम्हारे रोएं-रोएं में, श्वास-श्वास में समाया हुआ है। जो है, उसे खोजने की क्या जरूरत? जो है उसे तो बस पा लेने की जरूरत है।

मैं भी तुमसे यही कहता हूं: परमात्मा को पा लेने की जरूरत है, खोजने की नहीं। खोजा कि चूके। खोज का मतलब ही यह होगा कि तुम हिंदुओं का परमात्मा खोज रहे हो, मुसलमानों का परमात्मा खोज रहे हो, ईसाइयों का परमात्मा खोज रहे हो। खोज का मतलब होगा,

तुम मनुष्य की धारणा का परमात्मा खोज रहे हो। अगर परमात्मा को पाना हो, सब धारणा छोड़ देना। खोजना भी छोड़ देना। बैठ रहना, खाली हो जाना। खोज से खाली जो मन है उसी में परमात्मा झलक आता है। क्योंकि खोज से खाली मन में कोई तरंगें नहीं होतीं। वासना नहीं तो तरंगों की दौड़ कहां! कुछ पाना ही नहीं है, कहीं जाना नहीं है, तो तनाव कैसा, बेचैनी कैसी! उस विश्राम की परम दशा में परमात्मा तुम्हें सब तरफ से घेर लेता है। उसने घेरा ही हुआ था, उस विश्राम की दशा में तुम जान पाते हो।

लेकिन परमात्मा की खोज तो हम छोड़ें, हम तो परमात्मा के पास भी क्षुद्र चीजों की मांग के लिए जाते हैं। तुमने अगर कभी प्रार्थना की और कुछ मांगा, तो तुमने पाप किया। अच्छा है कि प्रार्थना ही मत करना; मगर मांग वाली प्रार्थना तो कभी न करना। क्योंकि वह तो तुम यह कह रहे हो कि तुम्हें परमात्मा का कोई पता ही नहीं है। तुम उसका भी उपयोग कर लेना चाहते हो अपनी क्षुद्र वासनाओं के लिए। किसी को मुकदमा जीतना है, किसी का धंधा ठीक नहीं चल रहा है, किसी की दुकान का दिवाला निकला जा रहा है, किसी को पत्नी नहीं मिल रही है--इन बातों को मांगने तुम परमात्मा के पास मत जाना।

कल एक छोटी सी व्यंग्य-कविता पढ़ने को मिली:

एक हिप्पी-कट भक्त ने

भगवान की बड़ी पूजा की

उनकी मूर्ति के आगे अड़ा रहा

जब तक भगवान प्रसन्न नहीं हो गए,

एक पैर से खड़ा रहा

भगवान को उसकी भक्ति का कर्जा चुकाना पड़ा

मजबूरन आना पड़ा

बोले: "भक्त, हम प्रसन्न हुए,

तेरे सामने खड़े हैं

इस समय जाग ले

जो तेरी इच्छा हो एक वर मांग ले'

भक्त बोला: "प्रभु, मेरा यह बैलबाटम

और बड़े-बड़े बाल देख कर धोखा मत खाइए

वर तो मैं खुद हूं,

एक कन्या दिलवाइए।'

मगर तुमने जब भी कुछ मांगा है, जो भी तुमने मांगा है, ऐसा ही हास्यास्पद है, ऐसा ही हंसी-योग्य है। प्रभु के सामने मांगने का अर्थ ही नासमझी है। क्या मांगा, इससे फर्क नहीं पड़ता।

विवेकानंद रामकृष्ण के पास रहे। विवेकानंद के पिता चल बसे और हालत बड़ी खराब छोड़ गए। खूब कर्ज, चुकाने का कोई उपाय नहीं। घर में इतना आटा भी नहीं कि दो जून रोटी

बन जाए। विवेकानंद को उदास, परेशान, भूखा देखकर रामकृष्ण ने कहा: "पागल, तुझे तो परेशान होने जरूरत ही नहीं है। जा मां से क्यों नहीं मांग लेता! मंदिर में भीतर जा, मांग ले। जो मांगेगा, मिल जाएगा।

रामकृष्ण ने कहा तो विवेकानंद गए, लेकिन झिझकते-झिझकते गए। अब रामकृष्ण कहते हैं तो ना भी न कर सके; जाना तो पड़ा। कोई घंटे भर बाद लौटे, बड़े आनंदमग्न लौटे। रामकृष्ण ने कहा: तो मांग लिया? विवेकानंद ने कहा: क्या मांग लिया? रामकृष्ण ने कहा: अरे पागल, भेजा था तुझे कि तेरी तकलीफ है, वह दूर करने के लिए कुछ मांग ले। विवेकानंद ने कहा: मैं भूल गया परमहंस देव। तो उन्होंने कहा: फिर से जा। विवेकानंद ने कहा: मैं फिर भूल जाऊंगा। रामकृष्ण ने कहा: ऐसी तेरी स्मृति तो खराब नहीं है, भूल क्यों जाएगा? विवेकानंद ने कहा: पक्का मानिए, मैं भूल जाऊंगा। जैसे ही गया, आंख से आंसू बहने लगे। जैसे ही गया, भीतर ध्यान की घड़ी पकने लगी। डोलने लगा। उस मस्ती में मैं भूखा ही नहीं था। उस मस्ती में मैं गरीब नहीं था, दीन नहीं था, दरिद्र नहीं था। उस मस्ती में कौन था मेरे जैसा सम्राट! परमात्मा बरसने लगा, मांगने की बात छोटी। और पैसे मांगूं! और जब परमात्मा अपने को दे रहा हो, तब मैं बीच में पैसे की बात ले आऊं, मुझसे न हो सकेगा।

नहीं माने रामकृष्ण तो फिर गए, लेकिन फिर खाली हाथ बड़े आनंदमग्न वापस लौटे। तीन बार भेजा, तीन ही बार वापस लौट आए और प्रार्थना न की--वह जो मांग वाली प्रार्थना थी, न की। प्रार्थना तो की, खूब डूबे, गदगद हुए, लेकिन मांग नहीं। रामकृष्ण ने गले से लगा लिया उस क्षण विवेकानंद को और कहा: अगर तू आज मांग लेता तो मुझसे तेरे संबंध सदा के लिए टूट जाते। तेरी परीक्षा हो गई, तेरी कसौटी गई। क्योंकि मांगना यानी प्रार्थना को खराब कर लेना है।

लेकिन हम मांग रहे हैं।

तुमने कभी बिना मांगे प्रार्थना ही नहीं की है। जब मांगना नहीं होता तब तुम प्रार्थना करते ही नहीं, क्योंकि तुम कहते हो, जरूरत क्या, सब तो ठीक चल रहा है। इसलिए सुख में भगवान याद नहीं आते, दुख में आते हैं। मैं तुमसे कहना चाहता हूं, जब सुख में याद आएंगे तभी याद आए। दुख में याद आए भगवान, असली भगवान नहीं हैं। क्योंकि दुख में तो तुम अपने दुख को दूर करने के लिए मांगने लगे; सुख में मांगने को कुछ भी न होगा, कुछ देने को होगा।

प्रार्थना में अपने को उंडेलना, मांगना मत। देना, मांगना मत। प्रार्थना के परम क्षण में भक्त अपने को परमात्मा के चरणों में छोड़ देता है, दे देता है, अर्पित कर देता है।

खोजा कि खोया। यहां तो सब पा लेने को है। लेकिन पा लेने के लिए ऐसा मन चाहिए जो भिखारी का न हो।

प्रार्थना-पूजा, अर्चना-उपासना सब व्यर्थ हो जाती है, क्योंकि तुम्हारा भिखारी का मन पीछा करता रहता है। प्रार्थना में मांगने का अर्थ है: तुमने बीज तो बोया और जहर सींच दिया।

सब उलटा कर डाला। कुछ का कुछ हो गया। इससे बेहतर है मत मांगना, कम से कम बीज तो बचेगा। मत जाना प्रार्थना करने, कम से कम बीज विषाक्त तो न होगा। उसी दिन प्रार्थना करना जिस दिन अहोभाव से प्रार्थना हो; जिस दिन तुम कृतज्ञता से प्रार्थना कर सको; जिस दिन तुम अनुभव करो कि परम है उसकी कृपा: "इतना दिया है! बिन मांगे दिया है! अकारण दिया है! योग्यता कुछ भी न थी, फिर भी दिया है। मुझ अयोग्य को भी दिया है, मुझ अपात्र पर भी वर्षा की है! जीवन दिया है, प्रेम दिया है! आनंद की क्षमता दी है! संवेदना दी है सौंदर्य को देखने की। इतना सब दिया है!' इसके लिए धन्यवाद देने जाना।

जिस दिन तुम्हारी प्रार्थना धन्यवाद बन जाएगी उसी दिन तुम पाओगे प्रार्थना से परमात्मा उतरने लगा। जब तक प्रार्थना मांग रहेगी तब तक तुम संसार में खड़े हो--चाहे मंदिर में जाओ, चाहे मस्जिद में जाओ, चाहे गुरुद्वारा में, कुछ फर्क न पड़ेगा, तुम खड़े बाजार में हो।

और यह जो बाजार है, यह बाजार भी बाहर नहीं है। ऐसा मत सोचना कि यह बाहर है। इससे भी बड़ी भ्रांति हो रही है। यह बाजार तुम्हारे भीतर है। यह जो सपनों के घोड़ों पर सवार हो कर तुम निकले जा रहे हो, अनेक-अनेक दिशाओं में, यह तुम्हारे भीतर है। बाहर का बाजार तो तुम्हारे भीतर के बाजार की छाया है। असली बाजार भीतर है। इसलिए कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि तुम बाहर के बाजार से थक कर जंगल की तरफ भागने लगते हो कि संन्यास ले लेते हो। फिर चूक हो गई। फिर चूक हो गई। बाहर तो बाजार केवल भीतर के बाजार का प्रक्षेपण था। असली बाजार भीतर है। यह भीतर का बाजार छोड़ो। फिर तुम बाहर के भी बाजार में भी पाओगे कि मंदिर है। फिर तुम दुकान पर बैठे भी पाओगे कि मंदिर है।

माक्र्स को यह कहना पड़ा कि धर्म अफीम का नशा है, क्योंकि उसने जिन लोगों को देखा वे सभी गलत धार्मिक थे। और उसका भी कसूर नहीं, क्योंकि हजार में नौ सौ निन्यानबे गलत धार्मिक होते हैं--मांगने वाले, भिखारी की तरह गिड़गिड़ाने वाले, परमात्मा को धन्यवाद देने का तो मन ही नहीं उठता; शिकायत और शिकायत। और फिर उसने देखा होगा, इस तरह के लोग मंदिरों में जा कर इस आशा में वापस लौट आते हैं कि अब मिलेगा! "अब मिलने' की जो आशा है, वही अफीम का मतलब समझना। अफीम का मतलब है: आज तो ठीक नहीं, कल सब ठीक होगा। यह अफीम का सार है, निचोड़, सत्व। इसको जमा लो, अफीम की टिकिया बन जाएगी। अफीम का मतलब है: आज तो दुख है, कल सुख होगा। कल निश्चित होगा। इस जीवन में तो दुख है, अगले जीवन में सुख होगा। शरीर में तो दुख है लेकिन शरीर से जब मुक्त हो जाएंगे, आत्मा विदेह होगी, तब सुख ही सुख। पृथ्वी पर दुख है, लेकिन स्वर्ग में सुख होगा। अफीम का अर्थ है: आशा। अफीम का अर्थ है: कल का आश्वासन। तो कल की आशा में हम आज को ढो लेते हैं। हम कहते हैं, आज का ही दिन तो है, गुजार लो। थोड़ी सी देर और थोड़ी यात्रा और चल लो। थके हो, माना। खींच लो थोड़ा और। कल तो सब ठीक हो जाएगा।'

और कल भी ऐसा ही था, परसों भी ऐसा था--और कभी कुछ ठीक नहीं होता। कल आ जाएगा, फिर भी कुछ ठीक न होगा। कल भी तुम फिर परसों आने वाले कल की याद करोगे कि अब ठीक होगा, अब ठीक होगा। ऐसे बचपन बीत जाता कि जवानी में सब ठीक हो जाएगा। ऐसे ही जवानी बीत जाती है कि बुढ़ापे में सब ठीक हो जाएगा। ऐसा बुढ़ापा बीत जाता कि मरने के बाद सब ठीक हो जाएगा। मगर कभी कुछ ठीक होता नहीं।

ठीक अगर कुछ होगा तो अभी होगा; कल नहीं होगा। कल यानी अफीम। टालने वाला अफीमची है। अफीमची क्या करता है? टाल रहा है। पत्नी बीमार पड़ी है, सहा नहीं जाता; एक अफीम की टिकिया खा ली, भूल गया पत्नी इत्यादि, मजे में हो गया। जब उतरेगा नशा तब याद आएगी, तब देखेंगे। फिर टिकिया खा लेगा। हानि लग गई, नुकसान लग गया, नशा कर लिया, शराब पी ली। कम से कम रात भर तो शराब के नशे में मस्त रहे। सुबह जब होगी तब देखा जाएगा। अभी तो ठीक हुआ, फिर देखेंगे। टाल दिया। दुख है, उसको कल पर टाल दिया। अफीम ने, शराब ने एक बहाना बना लिया भूलने का, विस्मरण का।

नासमझ स्थूल नशे करते हैं; जिनको तुम समझदार कहते हो वे सूक्ष्म नशे करते हैं। पीड़ा थी बहुत, गए मंदिर में, भगवान से प्रार्थना कर आए। इस आशा से भरे लौट आए कि अब सब ठीक हो जाएगा, कह आए उससे। जैसे कि भगवान को पता न था, तुम्हारे कहने की जरूरत थी! जैसे कि तुम न कहते तो उसे पता ही न चलता! और जैसे कि वहां कोई भगवान जैसा व्यक्ति बैठा है जो तुम्हारी सुन रहा है! दीवालों से बातें कर रहे हो तुम।

तो अगर मार्क्स ने कहा तो एक हिसाब से तो ठीक ही कहा। नौ सौ निन्यानबे आदमियों के संबंध में तो सच है कि धर्म अफीम का नशा है। लेकिन उन नौ सौ निन्यानबे आदमियों को धर्म का कोई पता ही नहीं है। इसलिए मैं कहता हूं, मार्क्स गलत है, फिर भी गलत है। उस एक आदमी को ही धर्म का पता है जो हजार में कभी एक है--कोई बुद्ध, कोई मीरा, कोई दया, कोई सहजो, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट। उस एक को ही पता है। उसकी ही जांच करनी चाहिए कि उसका धर्म क्या है। उसका धर्म धन्यवाद है।

अगर तुमने चीजों को उलटा-सीधा रखा तो बहुत अड़चन हो जाती है। प्रार्थना नीचे दब जाती है, मांग ऊपर बैठ जाती है। सच तो यह है कि तुमने इतनी बार मांगा है कि प्रार्थना तक का अर्थ मांगना हो गया है। प्रार्थना शब्द ही मांगने का पर्याय हो गया है। तुमने इतना मांगा है कि प्रार्थना शब्द तक गड़बड़ हो गया है।

जीवन को ठीक-ठीक जमाना जरूरी है। जो जहां है उसे वहां रखो। चीजों को उलटा-सीधा मत करो, अन्यथा बड़ी अड़चन होती है।

एक व्यंग्य-गीत मैं पढ़ रहा था:

हमारे शहर के पिछवाड़े

धूनी रमाते हैं नदी के तीर

एक कलियुगी फकीर

ताबीजों के निर्माता हैं
आधुनिक भाग्य-विधाता हैं
परसों शाम उनके पास एक लड़का आया
उसने रोते-रोते बताया:
"दिमाग का निकल गया है तेल
तीन साल से हो रहा हूं बी.ए. में फेल
आप कोई ताबीज दिलवाइए,
इस साल मुझे बी.ए. में पास करवाइए।'
फकीर ने कहा:
"दिमाग की तेजी के लिए दूध पीया करो
जिंदगी को जरा ढंग से जीया करो।'
लड़के ने कहा:
"दूध! दूध तो घर की खेती है
गाय तो है, पर वह भी
तीन साल से दूध नहीं देती है।'
फकीर ने कहा:
"मेरे अजीज!
ये ले जाओ दो ताबीज
एक अपने गले में
और एक गाय के गले में डालना।'
लड़का चला गया
इत्तफाक की बात
ताबीज अदल-बदल हो गए
लड़के का गाय के गले में
गाय का लड़के के गले में
यही भूल लड़के का सत्यानाश कर गई
गाय तो बी.ए. पास कर गई
लड़का आज तक रो रहा है
मुरादाबाद में हलवाइयों की दुकान पर
दूध ढो रहा है।

चीजों को उनकी जगह रखो, नहीं तो ताबीजों की भूल बड़ी मुश्किल, झंझट खड़ी कर देती है। तुम्हारे मंदिर में तुम्हारी दुकान घुस गई है। तुम्हारे ध्यान में भी तुम्हारी मांग घुस गई है। तुम्हारी प्रार्थना भी दूषित और कलुषित हो गई है। प्रार्थना को शुद्ध करो। परमात्मा की फिक्र न करो, प्रार्थना को शुद्ध करो। परमात्मा है या नहीं, यह भी मत पूछो। प्रार्थना को

शुद्ध करो। जिस दिन प्रार्थना शुद्ध हो जाती है, तुम्हारे पास आंख आ जाती है। उस दिन तुम जानते हो परमात्मा है। न केवल इतना कि परमात्मा है, उस दिन तुम जानते हो परमात्मा है। न केवल इतना कि परमात्मा है, उस दिन तुम जानते हो कि बस परमात्मा ही है, और कुछ भी नहीं। उस दिन हर दिशा से उसी का संदेश आता है। जीवन में तो मिलता ही है परमात्मा, मृत्यु में भी उसी के दर्शन होते हैं। सुख में भी वही, दुख में भी वही। हार में भी, जीत में भी। फूल में भी, कांटे में भी। और जिस दिन परमात्मा सब तरफ दिखाई पड़ने लगता है, उस दिन जीवन पहली बार घटा। उस दिन तुम जन्मे!

इस जन्म को जन्म मत समझ लेना। यह जो मां के पेट से जन्म मिला है, यह तो केवल प्राथमिक शर्त पूरी हुई। अभी असली जन्म होने को है। जिस दिन असली जन्म होता है, उस दिन भारत में हम उस आदमी को कहते हैं द्विज, दुबारा जन्मा। वही असली ब्राह्मण है जो दुबारा जन्मा; जो फिर से जन्मा; जिसने अपने को नया जीवन दिया, नया अर्थ दिया, नई भाव-भंगिमा दी; जिसके जीवन में प्रार्थना का रंग चढ़ा; जिसने प्रभु को याद किया। अकारण! आनंद से! मग्नता से! पुकारा नहीं कि मेरे लिए कुछ काम है, इसलिए आ जाओ। पुकारा कि यह मेरे हृदय का आनंद है कि तुम्हें पुकारूं। पुकारने में ही आनंद पाया। पुकारने के पीछे आनंद नहीं; पुकारने में ही आनंद पाया। प्रार्थना की, उसी में गदगद हुआ। प्रार्थना में ही मिल जाए फल तो प्रार्थना सच्ची है। प्रार्थना के बाद मिलता हो फल तो प्रार्थना झूठी है।

ये सूत्र आज के दया के मीठे हैं, एक-एक समझने जैसे हैं।

"दयाकुंअर या जग्त में, नहीं रह्यो थिर कोय।

जैसो वास सराय को, तैसो यह जग होय।।'

स्वप्न है यह जग। जैसो वास सराय को! जैसे रात रुके धर्मशाला में और सुबह चल पड़े। धर्मशाला को घर मत समझ लेना। वहां खूंटा गाड़ कर मत बैठ जाना। लगाव मत लगा देना। आसक्ति मत बांध लेना। ऐसा न हो कि सुबह धर्मशाला को छोड़ते वक्त रोओ और चीखो-चिल्लाओ और लौट कर पीछे देखो। धर्मशाला घर नहीं है। घर की अभी खोज करनी है। जिसने धर्मशाला को घर समझ लिया वह घर की खोज कैसे करेगा! वह तो कुछ का कुछ मान बैठा। पत्थर को हीरा समझ लिया; सोने की खोज बंद हो गई। पीतल को सोना समझ लिया; सत्य की खोज बंद हो गई। सपने को सत्य समझ लिया; सत्य की खोज बंद हो गई।

तुम्हें दुनिया में करोड़ों-करोड़ों लोग दिखाई पड़ेंगे जिनके जीवन में सत्य की कोई आकांक्षा ही नहीं है, क्या कारण होगा? यह हो कैसे सकता है? यह अनहोनी घटती कैसे है? इतने लोग, और सत्य की कोई आकांक्षा नहीं! कैसे जीते होंगे? बिना सत्य को पुकारे, बिना सत्य का सहारा लिए, बिना सत्य की तरफ आंखें उठाए कैसे जीते होंगे? उनके जीने का राज समझ लो। उनके जीने का राज यह है कि उन्होंने असत्य को सत्य मान लिया है; इसलिए अब सत्य की खोज का कोई कारण नहीं है। जब तुमने कचरे को ही हीरे-जवाहरात

मान लिया और कचरे को ही तिजोड़ी में सम्हाल कर रखने लगे, तो ठीक है, अब तुम हीरे की खदानों की तरफ क्यों जाओ! कौन मेहनत करे! किसलिए परेशान होओ!

तो पहली बात जगाने के लिए जरूरी है:

दयाकुंअर या जग्त में, नहीं रह्यो फिर कोय।

जैसो वास सराय को तैसो यह जग होय।।'

यहां एक बात खयाल में ले लेना, रोज-रोज कसना कसौटी पर कि तुम जो भी कर रहे हो, यह टिकने वाला है, यह टिकेगा? देखा तुमने, सर्राफ की दुकान पर सोने को कसने के लिए पत्थर होता है, कसौटी होती है। जब भी कोई सोना खरीदने आता है, बेचने आता है, तो सर्राफ उसे कसता है कसौटी पर। इसे तुम कसौटी समझो। तुम जो भी कर रहे हो, थिर होगा, ठहरेगा, रुकेगा? अब तुम अगर पानी पर बैठे कविताएं लिख रहे हो, तो तुम रोओगे ही; क्योंकि तुम लिख भी न पाओगे, वे मिट जाएंगी। या रेत पर बैठे कविताएं लिख रहे हो, तो शायद थोड़ी देर टिकेंगी; लिखते रहोगे, तब तक टिकेंगी, फिर हवा का झोंका आएगा और मिट जाएंगी।

जीसस ने अपने शिष्यों को कहा है: जीवन का मकान चट्टान पर बनाना। जो उनका सबसे प्यारा शिष्य था, उसको जीसस ने नाम दिया: पीटर। पीटर का अर्थ होता है: चट्टान। कहा कि पीटर ही मेरे मंदिर की चट्टान बनेगा, इसी पर मेरा मंदिर खड़ा होगा। ठीक नाम दिया। महत्वपूर्ण नाम दिया।

रेत पर मत लिखना। पानी पर मत लिखना। जीवन की कहानी चट्टान पर लिखना। चट्टान यानी शाश्वत, जो टिके, जो रहे। तो तुम जो भी कर रहे हो, अगर क्षणभंगुर हो तो बहुत परेशान मत होना। हुआ तो ठीक, न हुआ तो ठीक; सब बराबर है। हुआ भी अनहुआ हो जाएगा। किया भी अनकिया हो जाएगा। ज्यादा देर लगने वाली नहीं है।

लेकिन हम क्षणभंगुर में ऐसे दीवाने हैं! पानी पर लकीरें खींचते हैं और ऐसे पागल हैं कि प्रतीक्षा करते हैं कि टिकेंगी। किसी की भी नहीं टिकी हैं। सोचते हैं हमारी शायद टिकेंगी।

तुम जीवन में क्या कर रहे हो? पद खोज रहे हो? किसका टिकता है? जो आज पद पर है, कल पद-हीन हो जाता है। पद पर होता है, लोग गुनगान करते हैं। पद से खाली हुआ कि लोग भूल जाते हैं, याद भी नहीं आती कौन है, कहां गया! वे ही जो नमस्कार करते थे, सलाम बजाते थे, राह से ऐसे गुजर जाते हैं जैसे तुम्हें देखा ही नहीं। इस पद के लिए दीवाने हुए जा रहे हो? पूरा जीवन लगाए दे रहे हो? इसमें कुछ सार तो है नहीं; पानी का बबूला है।

बहुत कम लोग प्रौढ़ हो पाते हैं।

तुमने छोटे बच्चों को देखा न! साबुन घोल कर उसके झाग में बबूले उठाते हैं और बड़े आनंदित होते हैं, बड़े पुलकित होते हैं। मगर बूढे भी यही कर रहे हैं। इनकी साबुन का पानी जरा और, जरा सूक्ष्म, बबूले ये भी उठा रहे हैं। मरते दम तक यही फिक्र रहती है कि किसी तरह नाम छूट जाए। और तुम्हीं नहीं बचोगे तो नाम के छूटने का भी क्या अर्थ है?

जब तुम्हीं न बच सके तो नाम कैसे बच सकेगा? कितने लोग इस जमीन पर हुए, तुम्हें पता है? वैज्ञानिक कहते हैं कि जिस जगह तुम बैठे हो, उस जगह कम से कम दस लाशें गढ़ी हैं। सारी जमीन मरघट है। मरघट से डरना वगैरह छोड़ दो, क्योंकि तुम जहां भी हो वहीं मरघट है; सब जगह आदमी दफनाया गया है। करोड़ों वर्ष से आदमी जमीन पर है; जहां बस्तियां हैं अब, कभी मरघट थे; जहां अब मरघट हैं, कभी बस्तियां थीं। ऐसी कोई जमीन का टुकड़ा नहीं, जहां आदमी दफनाया नहीं गया। जहां आज खंडहर हैं, कभी राजधानियां थीं।

एक ध्यान-शिविर मैंने लिया इंदौर के पास मांडू में। एक मित्र मेरे साथ ठहरे थे, उन्हें एक नया मकान बनाना था। वे आए ही इसलिए थे। वे आए इसलिए थे कि मुझे अपने मकान का नक्शा बता दें। उनको ध्यान-शिविर से कुछ लेना-देना नहीं था। मैं वहां मिल जाऊंगा, सुविधा से मुझे बता सकेंगे, और बड़ा मकान बनना है और मेरा आशीर्वाद चाहते थे। मैंने कहा कि मुझे कुछ अड़चन नहीं। आशीर्वाद देने में कुछ लगता ही नहीं। इसलिए तो महात्मा लोग आशीर्वाद देते हैं। और तो बेचारों के पास देने को कुछ है भी नहीं और आशीर्वाद में कुछ लगता नहीं। तुम कहो तो मैं इस पर लिख दूं आशीर्वाद, दस्तखत कर दूं, कोई अड़चन नहीं। लेकिन तुम जरा सोचो तो, जरा बाहर देखो तो! उन्होंने कहा: बाहर क्या है? मैंने कहा कि जरा बाहर जा कर देखो। मांडू कभी बड़ी राजधानी थी। कहते हैं नौ लाख लोग रहते थे। अब रहते हैं नौ सौ लोग। और जरूर नौ लाख लोग रहते रहे होंगे, कितना फैलाव है मांडू का! ऐसे खंडहर हैं! ऐसी मस्जिदें हैं जिन में दस-दस हजार लोग इकट्ठी नमाज पढ़ सकते थे। ऐसी धर्मशालाओं के खंडहर हैं जिनमें दस-दस हजार ऊंट एक साथ ठहर सकते थे। बड़ी राजधानी थी। सारे एशिया के काफिले मांडू से गुजरते थे। मांडू तो अब है उसका नाम, तब उसका नाम था मांडवगढ़ मांडू हो गया। जैसे सेठ चंदूलाल, चंदू हो जाते हैं जब दिवाला निकल जाता है, ऐसा मांडवगढ़, मांडू हो गया। अब उसको मांडवगढ़ कहना ठीक भी नहीं मालूम पड़ता। कहां का गढ़! "मांडव' जरा बड़ा हो जाएगा।

मैंने कहा, जा कर बस स्टैंड पर तखती लगी है, उस पर देखो, नौ सौ लोग रहते हैं, नौ सो कुछ...! कभी नौ लाख रहते थे, अब नौ सौ रह गए। कभी बड़े महल थे; महल अब भी खड़े हैं खंडहर हो कर। मीलों तक फैलाव था। तुम जरा बाहर जा कर देखो, फिर तुम मुझसे आशीर्वाद ले लेना। आशीर्वाद तो मैं दे दूंगा।

वे बाहर देख कर लौटे। उनकी आंखें गीली थीं, आंसू आ गए। उन्होंने कहा कि लाइए वह फाड़ कर फेंक दें, क्या सार! मैंने कहा, यह ज्यादा ठीक आशीर्वाद हुआ। ठीक है मकान बना लो, रह भी लो; मगर ऐसी कल्पनाएं न बांधो। ये बाहर इतने-इतने बड़े महल जिन्होंने बनाए थे, बड़ी कल्पनाएं बांधी होंगी। न बनाने वाले रहे न महल रहे, सब खंडहर हो गए। उल्लू विश्राम कर रहे हैं खंडहरों में। मैं कितना ही आशीर्वाद दूं, किसी न किसी दिन उल्लू विश्राम करेंगे।

एक कसौटी जीवन में रख लेनी चाहिए कि जो भी हम कर रहे हैं, वह कुछ थिर रहने वाला है? धन कमा लेंगे, वह रहेगा? यश, पद, प्रतिष्ठा रहेगी? शरीर, जिसके लिए हम इतने दीवाने रहते हैं, टिकेगा, रहेगा? आज नहीं कल चला जाएगा। जो जाने ही वाला है उसमें बहुत मन को मत उलझाओ। उसमें ऐसे ही टिके रहो जैसे आदमी धर्मशाला में टिकता है। सुबह उठ कर चल पड़ता है, पीछे लौट कर भी नहीं देखता।

दिखावे के हैं सब ये दुनिया के मेले
भरी बज्म में हम रहे हैं अकेले।

भीड़ बहुत है, लेकिन तुम अकेले हो। असलियत में तुम अकेले हो। वस्तुतः तुम अकेले हो।

दिखावे के हैं सब ये दुनिया के मेले
भरी बज्म में हम रहे हैं अकेले।

यह भीड़ में बहुत खो मत जाना। ये दिखावे और ये मेले, इनका कोई मूल्य नहीं है, कोई चिरस्थायी मूल्य नहीं है। और जिसका चिरस्थायी मूल्य नहीं है, उसका कोई मूल्य ही नहीं है।

लेकिन तुम भविष्य की योजनाएं बनाते हो। न केवल भविष्य की, तुम अतीत तक की योजनाएं बनाते हो कि अगर ऐसा किया होता तो कैसा होता।

तुम जरा सोचो आदमी का पागलपन! अतीत तो अब हो चुका, अब कुछ किया नहीं जा सकता। लेकिन कितनी बार नहीं तुमने अपने को नहीं पकड़ा है अतीत को बदलते हुए! जो कि हो चुका, अब कुछ हो ही नहीं सकता--किसी ने गाली दी थी, अब तुम बैठे सोच रहे हो कि उस वक्त याद न आया, इस तरह का जवाब दिया होता।

मार्क ट्वेन पश्चिम का एक बहुत बड़ा लेखक हुआ। एक जगह व्याख्यान करके लौट रहा है। पत्नी उसे लेने आई थी। व्याख्यान पूरा हुआ तो उसे ले कर घर लौट चली। रास्ते में पत्नी ने पूछा कि कैसा रहा व्याख्यान? तो मार्क ट्वेन ने कहा: कौन सा व्याख्या? जो मैंने तैयार किया था, वह? या जो मैंने वस्तुतः दिया, वह? या जो मैं सोच रहा हूं कि मैंने दिया होता, वह? कौन सा व्याख्यान पूछ रही है? क्योंकि कई व्याख्यान हैं। एक तो मैंने तैयार किया था, वह तो सब चौपट हो गया।

जब लोगों की तुम भीड़ देखते हो, सब चौपट हो जाता है। कुछ का कुछ आदमी बोलने लगता है।

"एक मैंने दिया और एक अभी मैं सोच रहा हूं कि दिया होता तो अच्छा होता। कौन सा व्याख्यान?'

तुम अपने को कई बार पाओगे अतीत को बदलते हुए, लीपते-पोतते हुए: "ऐसा कहा होता, ऐसा किया होता! चूक गए।' पागलपन समझते हो? अतीत तो गया। अब कुछ किया नहीं जा सकता; जो हो गया हो गया, अनकिया नहीं हो सकता। अब अतीत में लौटने का कोई उपाय ही नहीं है। यह समय का पक्षी तो तुम्हारे हाथ से उड़ गया। चिड़िया चुग गई खेत, अब पछताए होत का! लेकिन आदमी अतीत के बाबत भी विचार करता रहता है। भविष्य के

बाबत सोचता है, वह भी पागलपन है; क्योंकि जो अभी आया नहीं है, उसके बाबत तुम क्या सोच कर करोगे? जो जा चुका उसके बाबत सोच कर क्या करोगे? जो है, इसको जी लो। यह क्षण जो मिला है, इसको जी लो। और इस क्षण में ऐसे रहो "जैसो वास सराय को'।

नाकाम-एत्तमन्ना दिल इस सोच में रहता है

यूं होता तो क्या होता, यूं होता तो क्या होता।

--बस सोचते रहते हैं इसी तरह की बातें: "यूं होता तो क्या होता, यूं होता तो क्या होता! या ऐसा हो जाए!' कभी-कभी तो तुम ऐसी पागलपन की बातें सोचते हो, चुनाव में खड़े ही नहीं हुए और सोचते रहे हो कि अगर जीत जाएं...। लॉटरी का टिकट खरीदा ही नहीं है और सोच रहे हो कि अगर मिल जाए। न केवल सोच रहे हो कि मिल जाए, बल्कि मान ही लेते हो कभी-कभी कि मिल गई, अब क्या करें? इस धन का क्या करें? मकान खरीद लें, कार खरीद लें, क्या करें इस धन का?

तुम बहुत बार अपने को इस तरह पकड़ोगे। पकड़ना, क्योंकि अगर यह मन की दशा रहे तो तुम कभी जाग न सकोगे। इन्हीं झूठों में, इसी अफीम में आदमी दबा है। इसी अफीम के बाहर आदमी आ नहीं पाता, इसलिए जाग नहीं पाता।

बुद्ध कहते हैं: आत्मस्मृति, सम्यक स्मृति!

कबीर कहते हैं: सुरति।

नानक कहते हैं: सुरति।

जागो, स्मरण करो, क्या कर रहे हो? क्या सोच रहे हो? अगर तुम थोड़े होश से सोचो, तुम्हारे सोचने में से निन्यानबे बातें पागलपन की होंगी, उनको तो काट कर फेंक दो। उसमें समय मत गंवाओ। जो एक बचेगी बात, वह व्यर्थ तो नहीं होगी; लेकिन परम रूप से सार्थक नहीं है। अभी कामचलाऊ है। बस काम उसका ले लो और सराय के बाहर निकल जाओ।

अलख को लख, भुला मत अपने को

सत्य को शोध, सुला मत सपने को।

सपनों को मत बुलाते रहो, मत सजाते रहो। लोरियां मत गाते रहो। बाहर आओ बचपने के। खिलौने लिए हुए छातियों से मत बैठे रहो। छोड़ो ये खिलौने! इन्हीं खिलौनों का नाम संसार है।

"जैसो मोती ओस को, तैसो यह संसार।

विनसि जाय छिन एक में, दया प्रभू उर धार।।'

जैसो मोती ओस को! देखते हैं न सुबह, कैसा चमकता है ओस का मोती! कैसा रंगीन, कैसा इंद्रधनुषी! कभी सूरज की किरण पड़ जाती है आड़ी-तिरछी तो हीरों को मात कर दे। पर "जैसो मोती ओस को'। अभी है अभी गया। सूरज उगा नहीं कि उड़ने लगा। सूरज जागा नहीं कि सब मोती तिरोहित हो गए; सब ओस उड़ गई, भाप हो गई।

"जैसो मोती ओस को'। यह जीवन ऐसा ही है।

महावीर ने भी कहा है: कैसे घास के तिनके पर सम्हला हुआ ओस का बिंदु। जरा सा हवा चलेगी, घास का तिनका कंपेगा, ओस का बिंदु सरक कर मिट्टी में खो जाएगा। ऐसा ही आदमी है। जरा देर तुम, जरा सी देर के लिए घास के तिनके पर टिके हो। हवा चलेगी, घास का तिनका कंपेगा, ओस का बिंदु सरक कर मिट्टी में खो जाएगा। ऐसा ही आदमी है। जरा देर तुम, जरा सी देर के लिए घास के तिनके पर टिके हो। हवा चलेगी, मौत आएगी, खिसक जाओगे, खो जाओगे। कितने लोग तुमसे पहले खो गए! इन खोए हुए लोगों से तुम्हें कोई स्मरण नहीं मिलता?

च्वांगत्सु सदा अपने पास एक मुर्दे की खोपड़ी रखे रहता था। बड़ा ज्ञानी! उसके शिष्य पूछते कि और तो सब ठीक है गुरुदेव, यह खोपड़ी आप क्यों रखे रहते हैं? इसे देख कर मन में बड़ी जुगुप्सा पैदा होती है, बड़ी ग्लानि पैदा होती है। च्वांगत्सु कहता: "इसीलिए!...जब भी मेरी खोपड़ी में गलत-सलत बातें चलने लगती हैं तो मैं इसको देख लेता हूं कि यह हालत होने वाली है। खोपड़ी की बातों में ज्यादा मत पड़ो। बस इसको देखते ही मैं होश में आ जाता हूं। इसको मैं साथ रखता हूं। यह मेरी गुरु है। क्योंकि आज नहीं कल यही हालत हो जाएगी। और आज नहीं कल रास्ते पर ठोकरें खाता हुआ यह सिर पड़ा होगा।

इस खोपड़ी ने मुझे खूब बचाया! एक दिन यह खोपड़ी रखी थी, एक आदमी आया और नाराज हो कर जूता उठा लिया और मुझे मारने को हो गया। मैं भी क्रोध में आने ही आने को था कि तभी संयोगवशात यह खोपड़ी दिख गई, मैं ढीला पड़ गया। मैंने कहा मैं कल मर जाऊंगा और लोग मेरे सिर को अगर जूते मारेंगे तो मैं क्या करूंगा? मैंने उस आदमी से कहा, भाई तू मार ही ले; तेरा मन पूरा कर ले। वह भी चौंका। उसने कहा, क्या मतलब? मैंने कहा, मतलब यह कि यह जो खोपड़ी है, इसने मुझे याद दिला दी कि जूते तो पड़ेंगे ही, कितने दिन तक बचाऊंगा? आज नहीं कल मरघट पर यह खोपड़ी पड़ी होगी, लोगों की लातें खाएगी। सदियों-सदियों तक धूल में पड़ी रहेगी, लोग चलेंगे इस पर। तो यह होने वाला है। तू भाई मार ही ले। इसके पहले कि खोपड़ी गिर जाए, तू भी अपना मन भर ले। तेरी तृप्ति हो जाए, यह भी क्या कम! हमारा कुछ खोएगा नहीं और तेरा मन तृप्त हो जाएगा।

उस आदमी ने जूता भी फेंक दिया, वह च्वांगत्सु के चरणों में गिर पड़ा। उसने कहा: खूब गजब की खोपड़ी रखी है! मुझे भी याद आता है कि बात तो ठीक ही है, क्या मारना, क्या बचाना! मैं भी नाराज होकर आया था। नाराजगी का भी क्या सार है! दो दिन का बसेरा है! यहां किससे झगड़ना और किससे नाराज होना और किसको नाराज करना! बीत जाएगी बात।

होश से कोई गुजरे तो जिंदगी की कालख लग नहीं पाती। होश से कोई गुजरे तो जीवन की पवित्रता बची रह जाती है।

"जैसो मोती ओस को, तैसो यह संसार'।

संसार है खुली आंखों देखा सपना। और सपनों में अपना कुछ भी नहीं है। सपने अपने नहीं हैं। अपने को पाना है तो सपनों के पार देखना पड़े, सपनों के पीछे जो छिपा खड़ा साक्षी है उसको देखना पड़े। सपनों की ही भीड़ में तो छिप गया है साक्षी। और तुम्हें याद ही नहीं कि तुम कौन हो। तुम्हें अपना विस्मरण हो गया है।

"विनसि जाय छिन एक में, दया प्रभू उर धार'।

तो दया कहती है, यह तो एक क्षण में नष्ट हो जाएगा। फिर क्षण अगर सत्तर साल लंबा भी हो तो क्या फर्क पड़ता है! यह तो एक क्षण में नष्ट हो ही जाने वाला है। यह नष्ट होगा, इतना सुनिश्चित है। तो फिर ऐसी हालत में हृदय में उन बातों को रखना जो नष्ट ही हो जाने वाली हैं, हृदय को अपवित्र करना है। और फिर ऐसे जाने वाले मेहमानों के लिए क्यों हृदय को अपवित्र करना? फिर उसी को बसा लें जो सदा रहता है। दया प्रभू उर धार! इसलिए अब परमात्मा को ही बसा लेना उचित है, जो सदा रहेगा।

उसको पकड़ो जो शाश्वत है। उसको पकड़ो जो सनातन है; जो सदा से है; अभी है, फिर भी होगा। तिनकों को मत पकड़ो। तिनकों को पकड़ने से कुछ बचता नहीं। कागज की नावों में मत तैरो। नाव ही बनानी है तो प्रभु की बना लो, प्रभु-नाम की बना लो। अगर पकड़ना ही है तो प्रभु के चरण पकड़ लो। अगर कुछ पकड़ने का ही मोह है तो कुछ ऐसा पकड़ो जो कभी तुमसे छूटेगा नहीं, छुड़ाया न जाएगा।

"दया प्रभू उर धार'। और अगर ऐसी तुम्हारी धारा प्रभु की तरफ बहने लगे, संसार से हटे और प्रभु की तरफ बहने लगे, व्यर्थ से हटे और सार्थक की तरफ बहने लगे--तो चढ़ जाओगे उत्तुंग शिखरों पर।

थाम शिखा का आंचल

कलुष बन गया काजल।

अगर तुम इस शिखा का आंचल थाम लो, स्मरण का, इस बोध का कि अब तो शाश्वत पर ही समर्पित होंगे, क्षणिक पर नहीं...

थाम शिखा का आंचल

कलुष बन गया काजल।

...तो फिर कलुष भी काजल जैसा हो जाता है। फिर जो अशुद्ध है वह भी शुद्ध हो जाता है; जो अपवित्र है, पवित्र हो जाता है। और जहां अभी सिवाय हड्डी, मांस-मज्जा के कुछ भी समझ में नहीं आता, वहीं छिपी हुई अंतर्धारा दिखाई पड़ने लगती है। अपूर्व सौंदर्य का जन्म होता है, अपूर्व आनंद का भी।

आनंद छाया है सत्य की। सुख परिणाम है सत्य का।

"तात मात तुमरे गए, तुम भी भये तयार।

आज काल्ह में तुम चलो, दया होहु हुसियार।।'

मां गई, पिता गए, "तुम भी भये तयार'! जिसको हम जीवन कहते हैं, यह तो मौत के दरवाजे पर लगा क्यू है। क्यू रोज सरक रहा है। क्योंकि कुछ लोग भीतर प्रवेश करते जा रहे

हैं। तुम करीब आते जा रहे हो। जल्दी तुम्हारा नंबर भी आ जाएगा। इसके पहले कि मौत तुम्हें आ कर पकड़ ले, तुम परमात्मा को समर्पित हो जाओ। तो फिर तुम्हारी कोई मौत न होगी। क्योंकि तुमने खुद ही समर्पित कर दिया, मौत के लिए कुछ बचेगा नहीं छीनने को। मौत वही छीनती है जो क्षणभंगुर है। मौत का वश क्षणभंगुर तक है। मौत शाश्वत को छू भी नहीं पाती। तुम्हारे भीतर जो शाश्वत छिपा है उसको मौत छू भी नहीं सकती। तुम्हारी देह ले लेगी। तुम्हारा धन, पद, यश, प्रतिष्ठा सब ले लेगी। लेकिन तुम्हारे भीतर जो चैतन्य की धारा है, वह अछूती निकल जाएगी। मगर तुम्हारी तो कोई उससे पहचान ही नहीं है। तुमने तो उसकी तरफ पीठ कर रखी है। तुम तो मूल को भूल गए हो।

"तात मात तुमरे गए, तुम भये तयार।
आज काल्ह में तुम चलो, दया होहु हुसियार।।'

यह शब्द "होशियार' समझना। तुम तो उन लोगों को होशियार कहते हो जो चालाक हैं। तुम तो उनको होशियार कहते हो जो दुनियादारी में बड़े कुशल हैं; कहते हो, बड़े होशियार लोग हैं! ज्ञानी उनको होशियार नहीं कहता; ज्ञानी तो उनको महामूढ़ कहता है। क्योंकि उनकी सब चालाकी लाएगी क्या? कुछ ठीकरे! उनकी सब चालाकी लाएगी क्या? कुछ पानी के बबूले! उनकी सारी चालाकी का अंतिम परिणाम क्या है? मौत तो उनकी सारी चालाकी की संपदा को छीन लेगी। नहीं, वह होशियारी नहीं है। वे दूसरे को धोखा दे रहे हैं, ऐसा ही नहीं है, वे खुद को भी धोखा दे रहे हैं।

होशियार तो वही है जो उस दिशा में लग जाए जहां वास्तविक संपदा है। तुम उनको होशियार कहते हो जो संपत्ति के नाम पर सिर्फ विपत्ति को बढ़ाए चले जाते हैं। तुम उनको होशियार कहते हो, जिन्होंने संपदा तो जानी ही नहीं; विपदा को ही संपत्ति समझ रहे हैं, संपदा समझ रहे हैं।

"दया होहु हुसियार'। क्या कहती है दया? होशियार होने से क्या इशारा है? एक ही होशियारी है कि मौत के प्रति सजग हो जाओ। जो मौत के प्रति जाग गया, ज्यादा देर नहीं है उसको, वह परमात्मा के प्रति भी जाग ही जाएगा, जागना ही पड़ेगा! अगर दुनिया में मौत न होती तो धर्म न होता। क्योंकि लोग जागते ही नहीं, जगाने का उपाय ही न होता। देखो तो तुम, मौत है तो भी लोग नहीं जागते मौत न होती तब तो कोई भी न जागता। इस जगत में जो थोड़े से जागरण की संभावना है, वह मौत के कारण है। क्योंकि मौत के होते हुए सिर्फ अति मूढ़ आदमी ही अपने को भुलावे में डाल सकता है। जिसको थोड़ी सी भी समझ है, वह भी तो देखेगा यह मौत चली आ रही है, यह किसी भी क्षण बात घट जाएगी। कल सुबह होगी या नहीं, पक्का नहीं है। एक क्षण और मेरे हाथ में होगा या नहीं, पक्का नहीं है। जहां इतना अनिश्चय है, वहां क्या घर बनाना? जहां इतना तीव्रता से, त्वरा से परिवर्तन हो रहा है, जहां एक ही नदी में दुबारा उतरना भी संभव नहीं है, वहां क्या विश्राम हो सकता है, क्या आनंद हो सकता है? वहां ठहरने का कोई उपाय नहीं।

तो होशियार वही है जो मौत का इशारा समझ लेता है और तत्क्षण खोज में लग जाता है शाश्वत की।

तुमने देखा, जितने लोग इस जगत में जागे हैं, उनको जगाने का मौलिक कारण मृत्यु है! बुद्ध ने एक मरे हुए आदमी को देखा और अपने सारथी से पूछाः इसे क्या हो गया है? क्योंकि बुद्ध को उसके पहले तक कभी मरा आदमी देखने को नहीं मिला था। महलों में छिपा कर रखे गए थे। बाप को बचपन में ज्योतिषियों ने कहा था कि इस लड़के को कुछ चीजों से बचाना, नहीं तो यह संन्यासी हो जाएगा। कौन सी चीजें? तो ज्योतिषियों ने कहा था कि इसको एक तो बुढ़ापे से बचाना, कोई बूढ़ा इसके सामने न आए। दूसरा, कोई बीमार इसके सामने न आए। तीसरा, मुर्दा इसके सामने न आए। और चौथा, कोई संन्यासी इसके सामने न आए।

बाप भी थोड़े चौंके थे। उन्होंने कहा, और तो सब मेरी समझ में आया कि बूढ़ा कि बीमार कि मौत इसके सामने न आए, ठीक बात है, क्योंकि ये बातें चौंका देती हैं। और ज्योतिषियों ने कहा था, अगर यह चौंक गया तो यह घर छोड़ देगा। और एक ही बेटा था शुद्धोधन का। और बुढ़ापे में हुआ था। और यही राज्य का मालिक था। तो वे डरे हुए थे। फिर ज्योतिषियों ने यह भी कहा कि अगर यह रुक गया तो यह चक्रवर्ती सम्राट होगा, सारे संसार का सम्राट होगा। अगर चला गया तो यह महा संन्यासी होगा। दो इसकी संभावनाएं हैं। रोक लेना।

तो बाप ने सब इंतजाम किया था। लेकिन बाप ने भी थोड़ा ज्योतिषियों से पूछा था कि और समझ में आया, लेकिन संन्यासी! तो उन्होंने कहा थाः संन्यासी! जिसने मौत को पहचान लिया वही तो संन्यास लेता है! संन्यासी देख कर भी इसके मन में सवाल उठेगा कि इस आदमी को क्या हो गया? यह जिंदगी में और लोगों जैसा नहीं दिखाई पड़ता। न धन जोड़ रहा है, न पद जोड़ रहा है, न प्रतिष्ठा जोड़ रहा है। यह आदमी कुछ और ढंग का आदमी है, इसको क्या हो गया! और संन्यासी को अगर यह समझने जाएगा तो मौत की बात आनी अनिवार्य हो जाएगी। क्योंकि बिना मौत के कारण कोई संन्यासी कभी होता ही नहीं। जिसने मौत को देख लिया वही तो संन्यासी होता है। तुम्हें पता है, पुराने दिनों में संन्यासी को विवाह इत्यादि में निमंत्रित नहीं करते थे! क्योंकि जिसने मौत को देख लिया, अब उसको ऐसे उत्सव में बुलाना खतरनाक है। वह मरा हुआ आदमी है। वह मर चुका; पुरानी दुनिया से मर चुका। इसलिए तो पुराने दिनों में संन्यासी का सिर घोट देते थे, जैसे मुर्दे का घोंटते हैं। उसको वस्तुतः चिता पर लिटा देते थे, आग लगा देते थे। और गुरु मंत्र पढ़ता था और गुरु कहता था कि अब तुम समझो कि तुम्हारा पुराना सब नष्ट हो चुका, राख हो चुका; अब तुम वही नहीं हो जो तुम कल तक थे। न तुम अब किसी के पिता हो, न किसी के पति, न किसी के भाई, न किसी के बेटे। वह जो आदमी अब तक था जा चुका। उसे हमने चढ़ा दिया चिता पर, वह जल चुका। अब तुम बाहर निकल आओ। अब तुम दूसरे आदमी

हो, तुम द्विज हुए। इसलिए उसको गैरिक वस्त्र देते थे। गैरिक वस्त्र अग्नि के प्रतीक हैं, कि यह आदमी अग्नि से गुजर चुका, यह मर चुका। ये लपटें हैं गैरिक वस्त्र--चिता की लपटें!

...तो ज्योतिषियों ने कहा कि संन्यासी को मत देखने देना। क्योंकि संन्यासी तो सबूत ही है इस बात का कि दुनिया में मौत है। नहीं तो कोई संन्यास क्यों ले! संन्यास इस बात का सबूत है कि मौत को देख कर कोई चौंक गया, चौंकना हो गया, होशियार हो गया।

बहुत छिपाया बुद्ध के बाप ने, लेकिन कब तक छिपाते! ये चीजें कुछ छिपाने की तो नहीं। और ऐसा थोड़े ही है कि बुद्ध के बाप ही छिपाते हैं, तुम भी छिपाते हो; सब बाप, सब माताएं छिपाती हैं। अगर दरवाजे के बाहर से अर्थी निकलती है तो मां बेटे को भीतर बुला कर दरवाजा बंद कर लेती है। देखते हो न तुम कि "भीतर आ जा, कोई मर गया'! बेटा कहीं देख न ले! सभी मां-बाप डरते हैं कि कहीं बेटा असमय में मौत को न देख ले, नहीं तो संन्यासी हो जाएगा। सोचा-विचारा कि तुम गए संन्यास की यात्रा पर। सिर्फ बुद्धू ही रह सकते हैं बिना संन्यासी हुए। जिनको थोड़ा बोध है, वे रुक नहीं सकते।

संन्यास का इतना ही अर्थ है कि यह जीवन जीवन नहीं है। यह जीवन तो मौत के हाथों में रखा है। यह तो ऐसे ही है कि जैसे मौत के जबड़े में हम बंद हैं, कभी भी मुंह बंद हो जाएगा और खतम हो जाएंगे; लेकिन थोड़ी देर को मजा ले लें, गीत गुनगुना लें कि नाच लें, थोड़ी देर को भूल जाएं।

बौद्धों की एक बड़ी प्राचीन कथा है। उसके बहुत-बहुत अर्थ हैं; एक अर्थ यह भी है। एक आदमी भाग रहा है, एक शेर उसका पीछा करता है और वह घबड़ा कर एक ऐसी जगह पहुंच जाता है कि आगे जाने का रास्ता नहीं है; खड्ड आ गया, महाखड्ड है! नीचे झांक कर देखता है तो कूद भी नहीं सकता। लेकिन कूदने की भी सोचे, शायद एक आशा है कि बच जाए, लंगड़ा-लूला हो जाएगा, तो नीचे भी दो शेर खड़े हैं। वे ऊपर की तरह देख रहे हैं। और पीछे से शेर हुंकारता चला आ रहा है। तो वह एक वृक्ष की जड़ों को पकड़ कर लटक जाता है। यही उपाय है। ऊपर सिंह आ कर खड़ा हो जाता है, वह दहाड़ता है। नीचे दो सिंह दहाड़ रहे हैं। और वह आदमी वृक्ष की जड़ों को पकड़े हुए लटका है। और वृक्ष की जड़े कमजोर हैं, पुरानी जराजीर्ण हैं; कभी भी टूट सकती हैं। इतना ही नहीं, जब वह गौर से देखता है तो वह पाता है कि दो चूहे जड़ों को काट रहे हैं। एक सफेद और एक काला चूहा--दिन और रात! समय उनको काट रहा है। और ज्यादा देर नहीं है। और उसके हाथ भी जकड़े जा रहे हैं। ठंडी सुबह है और उसके हाथ ठंडे हुए जा रहे हैं। और जल्दी ही उसकी समझ में आ रहा है कि हाथ पकड़ नहीं सकेगा, छूट जाएगा। हाथ सरक रहे हैं। और तभी उसकी नजर ऊपर पड़ती है, मधुमक्खियों ने एक छत्ता लगा रखा और उसमें से एक बूंद टपकने को है। तो वह अपनी जीभ फैला कर उस बूंद को अपनी जीभ पर ले लेता है। जब बूंद उसकी जीभ पर गिरती है तो मीठा स्वाद--"अहा! मीठा स्वाद!' उस क्षण में वह सब भूल जाता है। न तो शेर दहाड़ रहा है उस समय, न नीचे शेर खड़े हैं, न चूहे काट रहे हैं। एक क्षण को

वह बड़ा प्रसन्न है। और फिर दूसरी बूंद की आशा करने लगता है, क्योंकि फिर एक बूंद टपक रही है।

बौद्ध कथा महत्वपूर्ण है। ऐसी दशा है आदमी की। इधर मौत, उधर मौत। सब तरफ मौत। बीच-बीच में एकाध बूंद टपक जाती है मधु के छत्ते से, तुम बड़े प्रसन्न! तुम बड़े आनंदित। और समय के चूहे जड़ों को काटे जा रहे हैं। कोई उपाय बचने का नहीं है। बच सकते ही नहीं, क्योंकि कोई कभी बचा नहीं है। बचना असंभव है। बचना होता ही नहीं। बचना प्रकृति का नियम नहीं है। मरना तो होगा ही।

तो जो नासमझ है वह मौत को ढांके रखता है; वह कहता है जब होगी तब होगी। अभी तो थोड़ी मधु-बूंदें और चख लो! जो समझदार है वह मौत को गौर से देखता है; वह कहता है, ऐसा मधु-बूंदें चख-चख कर समय को बिताना तो नशा है। कुछ कर लो इसके पहले कि मौत आ धमके। कुछ कर लो--कुछ उपाय। बाहर तो भागने का कोई भी उपाय नहीं है, यह बात सच है। वह आदमी लटका है। अब तुम से भी कोई पूछे कि क्या करोगे, ऐसी हालत में, भागने का उपाय क्या है? ऊपर सिंह, नीचे सिंह। चूहे जड़ें काट रहे हैं, जड़ें पुरानी टूटने के करीब और हाथ ठंडे पड़े जा रहे हैं। करोगे क्या? भागोगे कहां?

झेन फकीर जापान में इसको ध्यान की एक विधि की तरह उपयोग करते हैं। गुरु शिष्य को कह देता है, सोचो यह तुम्हारी हालत है। बैठ जाओ ध्यान में, सोचो कि तुम लटके हो, अब रास्ता निकालो। रास्ता तो निकालना ही पड़ेगा। कोई रास्ता तो होगा ही। तो साधक बैठता है आंख बंद करके, सोचता है, सोचता है। रोज आता है उत्तर ले कर कि यह रास्ता है। कभी कोई रास्ता निकालता है कभी कोई रास्ता। मगर गुरु इनकार करता जाता है कि ये रास्ते कोई रास्ते नहीं हैं। क्या रास्ता निकालोगे? कभी कहता है कि और जड़ें पास में हैं, जब ये कट जाएंगी तो उनको पकड़ लेंगे। गुरु कहता है, वह भी ज्यादा देर तो नहीं चलेगा। चूहे उनको भी काट रहे हैं। चूहे कुछ थोड़े-थोड़े ही हैं दुनिया में, आदमियों से कई गुने ज्यादा हैं। चूहे उनको भी काट रहे हैं। समय तो सब जगह काट रहा है।

तुम उपाय खोज कर लाओगे कि हाथों को मल लेंगे किसी तरह से कि थोड़ा हाथों को गरम कर लेंगे, कि पैर के बल लटक जाएंगे, कि जैसा सर्कस में लोग लटक जाते हैं। आखिर तुम यही सब बातें सोचोगे न! महीनों तक शिष्य सोच-सोचकर लाएगा कि ऐसा करेंगे, ऐसा करेंगे। और गुरु कहता है, सब नासमझी है। इससे कुछ नहीं होने वाला। जब हाथ से न बच सके तो पैर से लटक कर कितनी देर बचोगे? और यह कोई सर्कस थोड़े ही है। नीचे कोई जाल थोड़े ही फैला रखा है कि गिरे तो बचा लिए जाओगे। यह कोई सर्कस नहीं है--जिंदगी है।

वह सब तरह के उपाय लाता है खोज-खोज कर, सब उपाय व्यर्थ होते जाते हैं। तब तक गुरु प्रतीक्षा करता है जब तक वह वास्तविक उपाय नहीं खोज लेता। वास्तविक उपाय क्या है? जिस दिन वह कहता है, आंख बंद करके भीतर सरक जाएंगे। बाहर तो भागने का कोई उपाय नहीं है। बाहर तो जाने की कोई जगह नहीं है। मगर भीतर जाने की तो जगह है। मौत

करीब आ रही है, आंख बंद कर लेंगे, ध्यान में उतर जाएंगे। शून्य भाव में प्रवेश कर जाएंगे। चलने लगेंगे भीतर की तरफ। वहां तो कोई सिंह नहीं है। और वहां तो कोई समय के चूहे जड़ें नहीं काट रहे। और वहां तो हाथ-पैर के ठंडे होने का सवाल नहीं है। वहां तो शाश्वत विराजमान है।

प्रभु को पकड़ने का अर्थ है भीतर सरक जाना।

"आज काल्ह में तुम चलो, दया होहु हुसियार।'

होशियार यानी ध्यान, जागरूकता, अवेयरनेस।

ज्ञान की संभूति आधि व्याधि

ध्यान की विभूति चिर समाधि।

समाधि में द्वार है, समाधि में समाधान है। इसलिए तो समाधि को हमने "समाधि' नाम दिया है। समाधि का अर्थ होता है जहां समाधान है; जहां सब समस्याएं तिरोहित हो जाती हैं। ज्ञान से हल न होगी बात। ज्ञान की संभूति आधि-व्याधि! ज्ञान से तो और नए तरह के उपद्रव, नए प्रश्न, नई समस्याएं, नई झंझटें, आधि-व्याधि खड़े होते हैं। ध्यान की विभूति चिर समाधि! ध्यान में उतरोगे तो...। प्रार्थना कहो, प्रभु कहो, परमात्मा कहो--नाम हैं। मगर अंतर्यात्रा पर जाओगे तो सब समाधान उपलब्ध हो जाएंगे, सब समस्याएं गिर जाएंगी।

"बड़ो पेट है काल को, नेक न कहूं अघाय।

राजा राना छत्रपति, सब कूं लीले जाय।।'

"बड़ो पेट है काल को'। यह भी समझना, सिर्फ भारत अकेला देश है जहां मृत्यु को और समय को हमने एक ही नाम दिया है: "काल'। ऐसे ही नहीं दे दिया है। अकेला देश है जहां टाइम और डैथ के लिए एक ही शब्द उपयोग करते हैं: "काल'। समय को भी कहते हैं काल और मृत्यु को भी कहते हैं काल। क्योंकि समय ही मृत्यु है। जो समय में जी रहा है वह मृत्यु के पंजे में जी रहा है। जो समय के बाहर हो गया, वह मृत्यु के बाहर हो गया।

तुमने खयाल किया, जो दिन बीत गया उसको हम कहते हैं: "कल'। और जो दिन आनेवाला है उसको भी कहते हैं: "कल'। सिर्फ इस देश में ही ऐसा है। सारी दुनिया की भाषाओं में दोनों के लिए अलग-अलग शब्द हैं। लोग थोड़े चौंकते भी हैं कि दोनों के लिए एक ही शब्द, तो पता कैसे लगाते होओगे कि किसकी बात कर रहे हो! लेकिन हम जो बीत गया, उसको भी कल कहते हैं; वह भी मौत के हाथ में चला गया; काल का ग्रास हो गया--कल। और जो अभी आया नहीं, वह भी अभी मौत के मुंह में है, वह भी मौत के ही मुंह में है। समय यानी मौत के मुंह में है। तो अभी जो वर्तमान का क्षण है, यही केवल मौत के बाहर है। कल भी मौत के मुंह में चला गया और आने वाला कल भी मौत के मुंह में छिपा है। अतीत भी मौत, भविष्य भी मौत। सिर्फ वर्तमान में मौत नहीं है। यह जो क्षण है अभी इसी वक्त, यह भर मौत के बाहर है। इसी क्षण का अगर कोई ठीक से उपयोग कर ले, कुंजी है यह क्षण, इससे दरवाजा खोल ले तो शाश्वत में प्रवेश हो जाए।

वर्तमान समय का हिस्सा नहीं है। आमतौर से तुम कहते हो कि समय तीन विभागों में बांटा जाता है: वर्तमान, अतीत, भविष्य। गलत है बात। वर्तमान समय का हिस्सा नहीं है; समय के हिस्से हैं अतीत और भविष्य। वर्तमान शाश्वत का हिस्सा है; समय के पार है--समयातीत, कालातीत।

"बड़ो पेट है काल को'। यह जो समय की धारा है, यह क्षणभंगुर है। इसका पेट बड़ा है, यह कितनों को ही समाए जाती है। यह अघाता ही नहीं समय। लीलता चला जाता है। जो भी पैदा हुआ है, मरेगा। जो भी बना है, मिटेगा। जो भी शुरुआत हो गई है, वह अंत को उपलब्ध होगी। सब प्रक्रियाएं शून्य में खो जाएंगी--समय के शून्य में खो जाएंगी। इसलिए समय में बहुत उत्सुकता मत लेना। समय में बहुत ज्यादा रस मत लेना। समय के पार चलना।

तुमने खयाल किया होगा, पश्चिम के देशों में समय का बड़ा बोध है, बड़ी टाइम-कांशसनेस! क्यों? क्योंकि जितना ही कोई देश भौतिकवादी होगा, उतना ही समय का बोध ज्यादा होता है। जितना ही कोई व्यक्ति आध्यात्मिक होगा, उतना ही समय का बोध कम हो जाता है। आध्यात्मिक का तो अर्थ ही है कि हम समय के बाहर जाने लगे, समय के बाहर सरकने लगे।

तुमने कभी कोई ऐसे क्षण जाने हैं जब समय मिट गया हो? तो वही क्षण परमात्मा के क्षण हैं। कभी सूरज को उगते देख कर सुबह तुम ऐसे तिरोहित हो गए ध्यान में, बंध गई रस की धार कि भूल गए समय को, कि याद ही न रहा कि कितना समय बीता! कि कभी चांद को देखते हुए, या कभी संगीत को सुनते हुए, या कभी अपने प्रियजन के पास बैठ कर हाथ में हाथ लिए, भूल गए समय को! या कभी अकेले ही, बिना किसी कारण, खाली बैठे हुए, भूल गए समय को, याद ही न रहा कि समय बीता, कितना बीता! क्षण कब आए, कब गए! तो उन्हीं क्षणों में तुम्हें समाधि का पहला स्वाद मिलेगा।

समय के बाहर अगर तुम थोड़े भी सरक गए तो तुम परमात्मा में सरक गए।

समय यानी संसार। और परमात्मा यानी शाश्वतता।

"बड़ो पेट है काल को, नेक न कहूं अघाय।

राजा राना छत्रपति, सब को लीले जाय।।'

और फिर यह भी मत सोचो। समय की धारा न तो गरीब की फिक्र करती है न अमीर की। मौत बड़ी समाजवादी है। वह यह नहीं देखती कि कौन अमीर, कौन गरीब; कि कौन पदवाला, कौन पद-हीन। वह यह भी नहीं देखती कि कौन नैतिक, कौन अनैतिक। वह यह भी नहीं देखती, कौन साधु कौन असाधु। मौत सबके साथ सम व्यवहार करती है। इसलिए मौत बड़ी समाजवादी है। चाहे राजा हो चाहे रंक, दोनों को उठा ले जाती है। दोनों को एक सा उठा ले जाती है।

"राजा राना छत्रपति, सबको लीले जाय'।

इसलिए तुम यह मत सोचना कि कोई उपाय हो सकता है। सिकंदर के पास सब उपाय था, बचा न सका अपने को। कितने सम्राट इस पृथ्वी पर हुए, सब उनके पास उपाय थे! बड़े फौज-फांटे थे, बड़े किले की दीवालें थीं। फिर भी मौत आई और ले गई।

मैंने सुना है कि एक सम्राट ने अपने को बचाने लिए एक महल बनाया। उस महल में सिर्फ एक दरवाजा रखा। एक दूसरी खिड़की भी नहीं रखी, ताकि कोई दुश्मन घुस न जाए--चोर, लुच्चे-लफंगे, कोई हत्यारा, कोई प्रवेश न कर पाए। सब तरफ से बंद, सीलबंद महल था; सिर्फ एक दरवाजा जिससे खुद का आनाजाना हो सके। उसका पड़ोसी सम्राट उसके महल को देखने आया, सुन कर कि बड़ी अदभुत चीज बनाई है। वह भी प्रभावित हुआ। एक द्वार था, पांच सौ पहरेदार थे--एक के बाद एक, एक के बाद एक। असंभव था किसी का प्रवेश करना। पड़ोसी सम्राट जब महल को देख कर लौटने लगा बाहर, रथ पर सवार होने लगा तो उसने उस मकान के मालिक को कहा कि पसंद तो मुझे भी बहुत पड़ा। खतरे के बिलकुल बाहर है। कोई दुश्मन नहीं आ सकता। कोई बगावती, कोई हत्यारा भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। मैं भी सोचूंगा इसी तरह का महल बनाने के लिए।

जब यह बात चलती थी तो एक भिखारी, जो राह के किनारे बैठा था, खिलखिला कर हंसने लगा। तो मकान के मालिक सम्राट ने पूछा कि पागल, तू क्यों हंस रहा है, क्या हुआ, तेरी हंसी का कारण? जवाब दे, अन्यथा तेरी मौत के लिए तैयार हो जा। सम्राटों के बीच बात में हंसना नहीं चाहिए। तुझे इतना भी पता नहीं है?

उसने कहा कि मौत के कारण ही हंस रहा हूं। चलो और यह मेरी भी आ गई, ठीक ही हुआ।

सम्राट ने कहा कि तू अपनी बात ठीक-ठीक साफ कर। उसने कहा कि मैं भी इसीलिए हंसा कि यह एक दरवाजा खतरनाक है, इससे मौत अंदर आ जाएगी। आप ऐसा करो, भीतर चले जाओ और यह दरवाजा भी चुनवा दो। फिर मौत भी भीतर नहीं जा सकती। अभी यह पूर्ण सुरक्षित नहीं है। अभी थोड़ी असुरक्षा है। ये पहरेदार ठीक हैं। आदमियों को रोक लेंगे, लेकिन मौत को? इनकी तलवारें मौत को तो न रोक सकेंगी। इनकी संगीनें मौत को तो न रोक सकेंगी पांच सौ नहीं, पांच लाख भी खड़े कर लो, मौत तो आ जाएगी, घुस जाएगी। तुम ऐसा करो, भीतर चले जाओ और बाहर से चुनवा दो, दीवाल को बंद करवा दो। फिर तुम बिलकुल सुरक्षित हो।

सम्राट बोला, तू पागल है। फिर तो हम मर ही गए। जब भीतर हम चले गए और बाहर से चुनवा दी दीवाल, तो बचने का भी क्या मतलब? फिर तो मर ही गए, अभी मर गए। मौत जब आएगी, तू हमें अभी मरने का उपाय बता रहा है।

वह फकीर बोला, इसलिए तो मैं हंस रहा हूं कि मर तो तुम गए। निन्यानबे प्रतिशत मर गए, एक ही प्रतिशत बचे, क्योंकि एक ही दरवाजा है। अगर सौ दरवाजे होते तो तुम सौ प्रतिशत जीवित होते। यह तुम्हारा ही गणित है। तुम कहते हो, यह एक दरवाजा और बंद

हो जाए तो तुम बिलकुल मर गए। तो काफी तो तुम मर ही गए हो, एक ही दरवाजा बचा है। एक प्रतिशत तुम जीवित हो। यह कोई मौत से बचने का उपाय है?

उस फकीर ने कहा, कभी मैं भी सम्राट था। यही सोच कर कि धन से तो कुछ मौत को रोका नहीं जा सकता, ध्यान की तलाश कर रहा हूं। शक्ति से तो मौत को रोका नहीं जा सकता, इसलिए शून्य की तलाश कर रहा हूं। जाना मुझे भी मौत के पार है, लेकिन यात्रा मेरी अलग, तुम्हारी अलग।

उस फकीर ने ठीक कहा। किसी को भी मौत से बचने की कोई सुविधा नहीं है। लेकिन कुछ लोग बच गए। साधारण मौत से तो कोई नहीं बचा। लेकिन कुछ लोग मरते क्षण में भी जागरूक थे, जागते रहे। सब मर गया, लेकिन चैतन्य तो कभी मरता नहीं। उनके होश के कारण मौत के द्वार से वे परमात्मा में प्रविष्ट हो गए। मौत का दरवाजा बेहोश आदमी के लिए नए जन्म का दरवाजा बन जाता है और होश वाले आदमी के लिए मोक्ष का द्वार बन जाता है। फिर कोई नया जन्म नहीं। फिर कोई आवागमन नहीं। "दया होहु हुसियार'।

"बिनसत बादर बात बसि, नभ में नाना भांति।

इमि नर दीसत काल बस, तऊ न उपजै सांति।।'

"बिनसत बादर बात बसि'। तुमने कभी देखा, आकाश में बादल घिरे होते हैं और हवाएं उन्हें प्रतिक्षण बदलती रहती हैं! कभी तुमने देखा, आकाश में बादलों का रूप एक क्षण को भी ठहरता नहीं, आकार ठहरता नहीं! हवाएं उनको हिलाए रखती हैं। अभी लगता था कि यह बादल हाथी जैसा, और क्षणभर नहीं बीतता कि सूंड नदारद हो गई, कि पैर खो गए कि अब हाथी जैसा नहीं रहा। गडमड हो गया। थोड़ी देर देखते रहो, बादल बदलता जाता है। धुआं ही तो है बादल। भाप है बादल। हवाएं उसे डुलाती रहती हैं। जैसे सागर की सतह पर लहरें डोलती रहती हैं, हवाएं सागर को डुलाए रखती हैं, ऐसी ही हवाएं बादल को बिखेरती रहती हैं, बनाती रहती हैं।

"बिनसत बादर बात बसि'! और जैसे बादल वायु के कारण बिनसता रहता है, बनता-बिगड़ता रहता है--"नभ में नाना भांति। इमि नर दीसत काल-बस, तऊ न उपजै सांति।।'-- और इसी तरह आदमी मौत के झोंके खा-खा कर बनता-बिगड़ता रहता है। "इमि नर दीसत कालबस'। वह जो काल है, मौत है, उसके धक्के खा-खा कर आदमी बनता-बिगड़ता रहता है। कभी तुम हाथी थे, कभी घोड़े थे; कभी पक्षी हुए, कभी वृक्ष बने; कभी स्त्री कभी पुरुष; कभी सुंदर, कभी कुरूप। न मालूम कितने रूप तुम्हारा बादल ले चुका है। तुम कुछ नए नहीं हो। यही तो पूरी की पूरी भारत की अनूठी खोज है कि आदमी ने न मालूम कितने जन्म ले लिए हैं। सब योनियों में हो आया है। चौरासी करोड़ योनियां, उनमें सबमें आदमी भटकता रहा है। मौत धक्के देती रही और बादल न मालूम कितने रूप लेता रहा।

दया ने बड़ा मीठा प्रतीक चुना है: "बिनसत बादर बात बसि'। और जैसे हवाओं के झोंके बादल को बदलते रहते हैं "नभ में नाना भांति। इमि नर दीसत कालबस, तऊ न उपजै सांति।।' और इसी तरह आदमी धक्के खाखा कर मौत के कभी कुछ बन जाता है, कभी

कुछ बन जाता है। और जब तक यह होता रहेगा, तब तक शांति कैसे संभव है? जब तक तुम थिर नहीं, शांति कैसे संभव है? जब तक ये हवा के झोंके बंद नहीं होते, तब तक तुम कैसे आनंद को उपलब्ध हो सकते हो। तो न मालूम कितने-कितने रूपों में तुमने दुख ही पाया है। कभी घोड़े की तरह दुख पाया, कभी हाथी की तरह दुख पाया; कभी चींटी की तरह दुख पाया, कभी आदमी की तरह; कभी स्त्री की तरह कभी पुरुष की तरह--और तुम दुख ही दुख पाते रहे हो! ये सारी योनियां दुख-योनियां हैं।

मौत के बाहर होने की विधि है: "दया होहु हुसियार'। थोड़ा होश साधो। होश साधने का अर्थ है, जागकर देखो कि मैं शरीर नहीं हूं। होश साधने का अर्थ है, जागकर देखो कि मैं मन नहीं हूं। होश का अर्थ है, जागकर देखो कि मैं केवल साक्षी-भाव हूं। मैं सिर्फ साक्षी-मात्र हूं। जैसे ही यह होश सधने लगेगा, तुम पाओगे कि मौत तुम्हारे शरीर को डांवाडोल कर देती है, तुम्हारे मन को भी डांवाडोल कर देती है; लेकिन तुम्हारे साक्षीभाव को जरा भी डांवाडोल नहीं कर पाती। साक्षी-भाव मौत के बाहर है। वहां मृत्यु नहीं पहुंचती। और जहां मृत्यु नहीं पहुंचती वहां परमात्मा का वास है। जहां मृत्यु नहीं पहुंचती वहीं सत्य का निवास है। जहां मृत्यु नहीं पहुंचती उसी चैतन्यदशा को हमने मोक्ष कहा है।

मोक्ष कोई भूगोल में नहीं है। तो यह मत सोचना कि कहीं भूगोल में मोक्ष है, कि कहीं किसी न किसी दिन वैज्ञानिक पहुंच जाएंगे अपने यानों को लेकर और मोक्ष को खोज लेंगे। मोक्ष तुम्हारी अंतर्दशा का नाम है; भूगोल नहीं, तुम्हारे चैतन्य का आकाश।

जिस दिन तुम जानने लगे, जागने लगे कि तुम शरीर नहीं हो, मन नहीं हो, उसी दिन तुम पार हो गए। फर्क समझो, आकाश में बादल घिरते हैं, बनते-मिटते, कभी आते कभी जाते, वर्षा में घिर जाते, फिर खो जाते, फिर घिर जाते; लेकिन आकाश सदा वहीं का वहीं है। बादल बनते-मिटते हैं, आकाश वहीं का वहीं है। और हवा के झोंके भी बादलों का रूप बदल पाते हैं, आकाश का रूप नहीं बदल पाते। आकाश का क्या रूप बदलेंगे! आकाश पर हवा के झोंकों का कोई असर नहीं है। हवा बहती रहती है, चलती रहती है, आकाश अछूता खड़ा रहता, कुंआरा, अस्पर्शित।

जैसे बाहर आकाश है, ऐसे ही भीतर आत्मा है। आत्मा भीतर के आकाश का नाम है। आकाश बाहर फैली हुई आत्मा का नाम है। जिस दिन बीच में शरीर की धारणा टूट गई कि मैं शरीर नहीं हूं, उसी दिन भीतर और बाहर का आकाश मिल जाता है। उस बाहर-भीतर के आकाश के मिलने की घड़ी समाधि है, या ब्रह्म-मिलन, या ईश्वर-मिलन, या जो भी नाम तुम्हें रुचिकर हो।

एक बात खयाल में रहे, जब तक इस आकाश की प्रतीति न होगी, तुम शांत न हो सकोगे। "तऊ न उपजै सांति'। इसीलिए तो शांति पैदा नहीं हो रही, तुमने बादल से अपने को एक समझ रखा है। और बादल प्रतिक्षण बदल रहा है, तुम रो रहे हो। अभी बदला, फिर बदला, फिर बदला! अभी सोचते थे, सब ठीक जा रहा है, और क्षण भर नहीं लगा और सब गड़बड़ हो गया।

निशि-दिन मन भरमाए है माया का अनुराग।
दुनिया को तजना भला, सीतल हो यह आग।।
यह जो आग है तभी शीतल होगी जब तुम जाग कर यह देख लो कि तुम संसार नहीं हो, शरीर नहीं हो, मन नहीं हो, तुम इनके पार हो।
शांति का एक ही उपाय है कि तुम किसी भांति उसको खोज लो जो सदा से है और जिसका कभी कोई रूपांतरण नहीं होता।
फैले पंख बंद हुए
निबंध अब छंद हुए।
जब तुम्हारी वासना के फैले पंख बंद हो जाएंगे, तुम और वासना के जगत में उड़ना न चाहोगे। जब तुम्हारे विचार के कौवों की कांव-कांव शांत हो जाएगी, जब तुम जान लोगे कि यह मैं नहीं हूं, मैं सिर्फ द्रष्टामात्र, साक्षीमात्र, तब तुम अचानक पाओगेः निबंध अब छंद हुए! तुम्हारे भीतर एक धारा बहेगी आनंद की, गीत की संगीत की, उत्सव की। रोआं-रोआं तुम्हारे अस्तित्व का पुलकित हो आएगा। और ऐसा ही नहीं है कि जब यह आनंद तुम्हारे भीतर उठेगा तो सिर्फ आत्मा में रहेगा, यह तुम्हारे मन पर भी फैल जाएगा। यह मन को भी रंग डालेगा। यह तुम्हारे शरीर पर भी फैल जाएगा। यह तुम्हारे शरीर को भी रंग डालेगा। यह तुम्हारे शरीर के बाहर उछल-उछल कर दूसरों को भी रंगने लगेगा। इसलिए तो बुद्ध के पास इतने लोग रंग गए, महावीर के पास इतने लोग रंग गए! उनके पास जो आया, रंग गया। एक बार इसका पता चल जाए तो यह तो अपूर्व संपदा है, अनंत स्रोत है।
टूट गया पैमाना
अंजुलि भर पीऊंगा
जीवन-जल मनमाना।
अभी तुम इस तरह पी रहे हो जीवन के जल को एक छोटे से पैमाने में। शरीर, मन की छोटी सी पात्रता है। इससे जीवन के विराट सागर को पीने की कोशिश कर रहे हो। भर नहीं पाता मन। जिस दिन शरीर और मन छूट गया, पैमाना टूट गया, उस दिन तुम सागर में हो।
मैंने सुना है, यूनान के फकीर डायोजनीज ने सब छोड़ दिया, वस्त्र भी छोड़ दिए, महावीर जैसा नग्न हो गया। पश्चिम में महावीर के मुकाबले एक ही आदमी हुआ हैः डायोजनीज। लेकिन एक छोटा सा पात्र उसने पास बचा लिया था जल इत्यादि पीने को। एक दिन प्यासा नदी की तरफ जा रहा है अपने पात्र को लेकर। पहुंचा है तट पर, अपने पात्र को साफ कर रहा है कि पानी पीए, तभी एक कुत्ता भागता हुआ आया। प्यासा। छलांग लगाई उसने पानी में, झटपट पानी पिया और चल पड़ा। ये अभी अपना बर्तन ही साफ कर रहे थे। इन्हें बड़ी हैरानी हुई कि कुत्ते ने मुझे हरा दिया! मैं भी क्या पात्र में उलझा बैठा हूं! फेंक दिया पात्र डायोजनीज ने। उसने कहा, जब कुत्ता बिना पात्र के मजे से गुजार रहा है, तो मैं क्यों पात्र से बंधा हूं! इसको साफ करो, यह करो वह करो, पंचायत। चोरी का भी डर रहता है। रात

सोओ तो एक-दो दफे देख लेना पड़ता है टटोल कर कि कोई ले तो नहीं गया! उसने पात्र उसी वक्त फेंक दिया और कुत्ते को साष्टांग दंडवत किया और कहा कि तू मेरा गुरु है। एक मोह रह गया था।

टूट गया पैमाना

अंजुलि भर पीऊंगा

जीवन-जल मनमाना।

अब कोई रुकावट न रही। जहां मन और शरीर के पात्र के तुम बाहर हो गए, तुम जीवन के सागर में उतर गए।

शून्य के धनुष पर

समय का सर धर

बेध दिया क्षर को

मुक्त हुआ अक्षर।

शून्य के धनुष पर

समय का सर धर

बेध दिया क्षर को

मुक्त हुआ अक्षर।

शून्य के धनुष को साधना है। और समय का तीर शून्य के धनुष पर रख कर छोड़ देना है, ताकि तुम समय से मुक्त हो जाओ और समय तुमसे मुक्त हो जाए।

वेध दिया क्षर को

मुक्त हुआ अक्षर।

और जैसे ही तुम्हारा बोध क्षर को वेध देता है, वैसे ही तुम्हारे भीतर जो अक्षर है, आकाश है, उसकी प्रतीति हो जाती है, उसका साक्षात्कार हो जाता है। यह भीतर छिपा आकाश जिसने जान लिया, उसने ही जीवन जाना। जिसने यह न जाना, वह व्यर्थ ही जीया।

मिलना किस काम का अगर दिल न मिले

क्या लुत्फ सफर से हो जो मंजिल न मिले?

वस्त-ए-दरिया में गर्क होना अच्छा

इससे कि करीब आ के साहिल न मिले।

जो लोग बिना इस अंतर-आकाश को जाने जी रहे हैं, बेहतर हो वे डूब जाएं। क्योंकि किनारे के पास आ कर भी उनको किनारा मिलने वाला नहीं है।

मिलना किस काम का अगर दिल न मिले?

अगर भीतर का अंतरतम, अगर भीतर की आत्मा न मिले...क्या लुत्फ सफर से हो जो मंजिल न मिले? चल तो तुम रहे हो बहुत दिनों से, यात्रा तो बड़ी पुरानी हो गई है। मंजिल की कभी झलक भी नहीं मिलती।

क्या लुत्फ सफर से हो जो मंजिल न मिले?

वस्त-ए-दरिया में गर्क होना अच्छा
इससे कि करीब आ के साहिल न मिले।
जो लोग बिना इस अंतर-आकाश को जाने जी रहे हैं, बेहतर हो वे डूब जाएं। क्योंकि किनारे के पास आ कर भी उनको किनारा मिलने वाला नहीं है।
मिलना किस काम का अगर दिल न मिले?
अगर भीतर का अंतरतम, अगर भीतर की आत्मा न मिले...क्या लुत्फ सफर से हो जो मंजिल न मिले? चल तो तुम रहे हो बहुत दिनों से, यात्रा तो बड़ी पुरानी हो गई है। मंजिल की कभी झलक भी नहीं मिलती।
क्या लुत्फ सफर से हो जो मंजिल न मिले?
वस्त-ए-दरिया में गर्क होना अच्छा
इससे कि करीब आ के साहिल न मिले।
रोज-रोज तुम्हें लगता है कि आ गए करीब, आ गए करीब; और जैसे ही करीब आते हो, पता चलता है: कोई साहिल नहीं, कोई किनारा नहीं। जैसे क्षितिज हटता चला जाता है, तुम पास आते हो और हट जाता है दूर, ऐसी ही मृगमरीचिका जैसा है जीवन। तो बेहतर डूब जाना है।
मगर, अगर डूबने की हिम्मत हो तो मिलना भी हो जाता है। डूबने का साहस हो, तुम्हें कोई परमात्मा को पाने से रोक नहीं सकता। क्योंकि जो डूबने को तत्पर है, उसका अर्थ हुआ, उसने मौत को अंगीकार कर लिया; वह कहता है, मैं मरने को राजी हूं। संन्यास का यही अर्थ है। संन्यास का इतना ही अर्थ है कि जो मरेगा, उसे मैं स्वयं ही छोड़ता हूं; जो मिटेगा, उससे मैं स्वयं ही अपने को अलग जानने लगा हूं। क्षणभंगुर से मैंने अपने नाते अलग कर लिए। अब मैं रहूंगा इस संसार में, लेकिन सराय से ज्यादा इसे न समझूंगा।
मुझसे लोग पूछते हैं, संन्यास का क्या अर्थ है? मैं उनसे कहता हूं, संसार को सराय की भांति मानना, सराय की भांति जानना। रहोगे तो यहीं, रहना तो यहीं है, जाओगे भी कहां! लेकिन एक ढंग है ऐसा रहने का कि यहां रह कर भी यहां से मुक्ति हो जाती है। सराय की भांति! होशपूर्वक! "दया होहु हुसियार'।
कीर्ति बिना खोज भी मिलती है
मगर पहले कोई काम तो करो
नाम करने से पहले
एकांत में आराम तो करो।
हर खाली वक्त पर मुलाकात
और हर खाली कोने में गमले मत धरो
कोई घड़ी ऐसी भी होनी चाहिए जब तुम
अपने देवता से बात करो।
देवता नीरवता में आते हैं

और मन जब शोर करता है,
वे चुपके से लौट जाते हैं।
नीरव बनो। थोड़े शांति के क्षण खोजो। थोड़े निर्विचार में उतरो। कभी-कभी शांत बैठे-बैठे, कुछ न करते हुए अचानक तुम पाओगे कि धन्य हो उठे! प्रसाद बरसेगा। परमात्मा तुम्हें सब तरफ से घेर लेगा। यह कुछ तुम्हारे करने की बात नहीं है, कुछ ऐसा नहीं है कि तुम बड़ा व्यायाम करोगे तब होगा। तुम जब कुछ करोगे तब तो यह होगा ही नहीं, क्योंकि तुम करने में बने रहोगे। करना यानी अहंकार, मैं।
परमात्मा प्रयास से नहीं मिलता--प्रसाद से। तुम कभी बैठे-बैठे चुपचाप ऐसी घड़ियां खोजो जब कुछ करने को न हो। बैठ गए बगीचे में वृक्ष के तले कि नदी के तट पर, कि रात खुले आकाश के नीचे, चांदत्तारों के पास, बैठ गए, कुछ न किए, खाली बैठे रहें, नीरव! विचार आएंगे, जाएंगे, आने-जाने दिए। उन में ज्यादा रस न लिए, न पक्ष में न विपक्ष में, आए तो ठीक, न आए तो ठीक। जैसे राह चलती है, शोरगुल भी होता है, ऐसा होने दिया; तुम अपने दूर तटस्थ भाव में रहें। खाली बैठे रहें। कभी-कभी ऐसा होने लगेगा। एक क्षण को विचार ठहरे होंगे, उसी क्षण तुम पाओगे, उतरी किरण। अंधेरे को कोई तोड़ गया, झकझोर गया। उसी क्षण तुम पाओगे, एक बूंद टपकी अमृत की; मौत के पार का दर्शन हुआ। फिर धीरे-धीरे ये क्षण बढ़ते जाते हैं। फिर धीरे-धीरे जैसे-जैसे स्वाद लगता जाता है, तुम्हारे भीतर की यात्रा सघन होने लगती है, सुगम होने लगती है। फिर एक दिन ऐसा होता है कि तुम जहां चाहो तहां, जब चाहो तब, आंख भी बंद न करो, तो भी परमात्मा तुम्हें घेरे रहता है। तब हर चीज उसी की मौजूदगी बन जाती है। और जब तक ऐसा न हो जाए तब तक जानना कि अभी मंजिल नहीं मिली। और मंजिल पानी है। मंजिल का अर्थ: इस भांति परमात्मा को पाना है कि छूटने का उपाय न रह जाए।
इस संसार को तो क्षण में विनसने वाला जानना। "विनसि जाय छिन एक में, दया प्रभू उर धार'। इस संसार को तो मृत्यु के द्वार पर लगा हुआ क्यू जानना।
"तात मात तुमरे गए, तुम भी भये तयार।
आज काल्ह में तुम चलो, दया होहु हुसियार।।'
आज इतना ही।

छठवां प्रवचन
दिनांक १६ मार्च, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

जिज्ञासाएं
शिविर में पहुंचकर भी भेद क्यों दीखता है? संन्यस्त होते ही क्या फासला मिट जाता है? क्या आशीर्वाद केवल संन्यासियों के लिए ही है?

परमपद की प्राप्ति के लिए गैरिक वस्त्र और माला और गुरु कहां तक सहयोगी हैं?
कितने ढंग से आप वही-वही बात कहे जा रहे हैं! क्या सत्य को इतने शब्दों की आवश्यकता है?
चरित्र और व्यक्तित्व में क्या भेद है?
मैं शंकालु हूं और श्रद्धा सधती नहीं। कृपया मार्ग बताएं।
यह न सोचा था तेरी महफिल में दिल रह जाएगा

हम यह समझे थे चले आएंगे दम भर देख कर।

वादक, मैं हूं मुरली तेरी
पहला प्रश्नः शिविर में पहुंच कर भी भेद क्यों दीखता है? संन्यस्त होते ही क्या फासला मिट जाता है? क्या आशीर्वाद केवल संन्यासियों के लिए ही है? क्या आशीर्वाद जीवनमात्र के लिए नहीं है?
आशीर्वाद तो सबके लिए है। लेकिन आशीर्वाद मेरे देने से ही तुम्हें मिल जाएगा, ऐसा नहीं है; तुम लोगे तो ही मिलेगा। नदी तो बह रही है, सबके लिए बह रही है। वृक्ष भी पी लेंगे पानी, पशु-पक्षी भी, मनुष्य भी। पर जो भी पीएगा वही पी सकेगा। तुम अगर किनारे पर अकड़ कर खड़े रहे तो नदी तुम्हारी अंजुली में न आ जाएगी। झुकना पड़ेगा, अंजुली भरनी पड़ेगी, तो ही पी सकोगे। न पी नदी, न पीया जल, तो नदी की शिकायत मत करना। नदी तो बह रही थी।
लेकिन आदमी बड़ा उलटा है। आशीर्वाद न मिले तो सोचता है आशीर्वाद दिया न गया होगा। लेकिन आशीर्वाद लेने की क्षमता है? आशीर्वाद स्वीकार करोगे? आशीर्वाद सस्ता मामला तो नहीं। शायद तुम सोचते होओ, मुफ्त मामला है। आशीर्वाद तो आग है--जलाएगा, बदलेगा, रूपांतरित करेगा। हिम्मत चाहिए!
संन्यास का और क्या अर्थ है? इतना ही अर्थ है कि कोई झुका, उसने अंजुली बनाई, वह नदी के साथ संबंध बनाने को राजी हुआ। संन्यास का इतना ही अर्थ है कि तुम आशीर्वाद लेने को तत्पर हुए, तुमने अपना पात्र आगे बढ़ाया, कि तुमने अपनी झोली आगे बढ़ाई। आशीर्वाद तो बरस ही रहा है, लेकिन तुम झोली ही न बनाओगे तो आशीर्वाद तुम्हारे हाथ न पड़ेगा।
वर्षा होती है, पहाड़ों पर भी होती है, लेकिन पहाड़ खाली के खाली रह जाते हैं। अपने से ही इतने भरे हैं। पहाड़ों पर वर्षा होती है, दौड़ता है पानी खाई खड्डों की तरफ, दौड़ कर खाई-खड्डों में भर जाता है, झील बन जाती है। क्या तुम कहोगे जल झीलों के लिए ही बरसा था, पहाड़ों के लिए नहीं? जल तो सब पर बरसा था; लेकिन पहाड़ बहुत अपने से भरे थे, जल के लिए जगह न थी; उतना स्थान न था। झीलें खाली थीं, जगह थी। आतुरता से उन्होंने अपने द्वार खोल दिए। द्वार खुले ही थे, जल भर गया।

आशीर्वाद तो निरंतर बरस रहा है--तुम पर भी, संन्यासी पर भी, इन वृक्षों पर भी। लेकिन कौन कितना लेगा, यह उस पर ही निर्भर है।

संन्यास का अर्थ इतना ही है, कुछ और अर्थ नहीं है, कि तुम मेरे साथ चलने को राजी हो। तुम मुफ्त में ही आशीर्वाद लेना चाहते हो। तुम रत्ती भर अपनी जगह से हिलना नहीं चाहते। और तुम रत्ती भर खाली नहीं होना चाहते हो, और झील बनना चाहते हो। मानसरोवर बनने की आकांक्षा है और खाली होने की जरा भी हिम्मत नहीं।

संन्यास साहस का नाम है। तुम डरे क्यों हो? तुम्हें रोक कौन रहा है संन्यास लेने से? भय क्या है? छोटे-मोटे भय हैं। लेकिन आदमी चालाक है। अपने भय को भी लीप-पोत लेता है होशियारी में। भय को भी स्वीकार करना कि भय है, कठिन मालूम होता है। क्योंकि भय को स्वीकार करना--अहंकार को चोट लगती है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात मधुशाला से जल्दी ही उठ खड़ा हुआ। मित्रों ने कहा: "कहां चले? अभी तो सांझ ही हुई है।' मुल्ला ने कहा, आज ज्यादा न रुक सकूंगा; पत्नी ने कहा है दस बजे के पहले ही घर वापस आ जाना। तो मित्र हंसने लगे। उन्होंने कहा: "मुल्ला, तुम आदमी हो कि चूहे। पत्नियां हमारी भी हैं। इतना क्या भय?' मुल्ला छाती फैला कर खड़ा हो गया। छाती ठोंक कर उसने कहा: "मर्द बच्चा हूं, मर्द बच्चा! भूल कर इस तरह की बात मत कहना।' तो किसी मित्र ने पूछा: "तो प्रमाण दो न! अगर मर्द बच्चे हो तो प्रमाण दो।' तो मुल्ला ने कहा: "प्रमाण! स्वतः प्रमाण है कि मेरी पत्नी चूहों से डरती है और मुझसे नहीं डरती।'

आदमी अपनी भयभीत अवस्था को भी स्वीकार नहीं करना चाहता।

तुम पूछ रहे हो: "शिविर में पहुंच कर भी भेद क्यों दीखता है?'

क्योंकि भेद है। और भेद तुम्हारी तरफ से है। तुम्हीं को दिख रहा है। वह जो भी गैर संन्यस्त है, वह खुद ही सिकुड़ा-सिकुड़ा है, वह खुद ही डरा-डरा है। वह फैल नहीं पाता, मिल नहीं पाता। वह डरता है। भय उसका यह है कि कहीं ज्यादा मिले-जुले, ज्यादा डूबे, कहीं सीमा के बाहर चले गए और कहीं संन्यासी हो बैठे, फिर घर, फिर पत्नी, फिर बाजार, फिर दुकान, फिर समाज...! वह खुद ही सम्हाल कर अपने को चलता है। चालाकी रखता है, गणित रखता है--इतने दूर तक जाना, इससे आगे नहीं जाना। और ये जो गैरिक रंग में मस्त हुए लोग हैं, इनके साथ भी वह दूरी रखता है, जरा किनारे-किनारे खड़ा रहता है। इनके साथ भी पास आना खतरे से खाली नहीं है। क्योंकि यह बीमारी संक्रामक है। यह छूत की बीमारी है। अगर तुम गैरिक लोगों के साथ ज्यादा देर रहे तो तुम्हारे मन में भी गैरिक के सपने उठने लगेंगे।

तो भेद तुम्हारे कारण है। तुम डरे हो, इसलिए भेद है। भय के कारण भेद है। फिर तुम्हें लगता है कि तुम पर आशीर्वाद नहीं बरस रहा। तुम्हें ऐसा क्यों लगता है? तुम्हें इसलिए ऐसा लगता है कि तुम दूसरों को देखते हो बड़े आनंदित, मग्न; तुम आनंदित नहीं, तुम

मग्न नहीं--तो उन्हें आशीर्वाद मिल रहा होगा, तुम्हें नहीं मिल रहा है। उन्हें कुछ विशेष मिल रहा है जो तुम्हें नहीं मिल रहा है।

जो उन्हें मिल रहा है वही तुम्हें मिल रहा है। लेकिन वे पीए जा रहे हैं और तुम अपने कंठ को अवरुद्ध किए बैठे हो। वे झुके हैं और अपनी झोली भरे जा रहे हैं और तुम डरे हो। तुम्हारे डर के कारण ही भेद है, भय के कारण ही भेद है।

पूछते हो: "संन्यस्त होते ही क्या सारा फासला मिट जाता है?'

संन्यस्त होते ही सारा फासला नहीं मिट जाता, लेकिन फासले के मिटने की शुरुआत जरूर होती है। सारा फासला तो मिटते-मिटते मिटेगा। जन्मों-जन्मों में बनाए हैं फासले, एक क्षण में न मिट जाएंगे। समय लगेगा। धैर्य रखना पड़ेगा। लेकिन फासला मिटने की शुरुआत हो जाती है।

एक आदमी बैठा है, एक आदमी खड़ा है, एक आदमी चल रहा है। तीनों एक ही जगह हैं अभी। एक आदमी बैठा, एक आदमी खड़ा, एक आदमी ने पहला कदम उठाया। तीनों अभी एक ही जगह हैं, एक ही लकीर पर हैं; लेकिन तीनों में बड़ा फर्क है। जो बैठा है, उसने फासला मिटाने की शुरुआत ही नहीं की। जो खड़ा है, कम से कम बीच में है, शायद चल पड़े। जो बैठा है, उसे तो खड़ा होना होगा, तब चलेगा न, बैठे-बैठे तो नहीं चल देगा! जो खड़ा है, वह चलने वाले के थोड़े करीब है बैठने वाले की बजाय, क्योंकि अगर चलना चाहे तो सीधा चल सकता है। और जिसने पैर उठा लिया वह कोई मंजिल पर नहीं पहुंच गया; वह भी अभी वहीं है जहां दोनों हैं, लेकिन उसका फासला मिटना शुरू हो गया। अगर एक कदम भी उठा लिया तो एक कदम का फासला तो कम हुआ न!

संन्यास पहला कदम है; फासले के मिटने की शुरुआत है। और पहला कदम ही सबसे कठिन कदम है। फिर तो उठते जाते हैं कदम पर कदम। पहला कदम ही सबसे कठिन कदम है। इसलिए पहले कदम को तुम आधी यात्रा समझना।

महावीर का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि जो चल पड़ा वह पहुंच गया। यह बात सच नहीं है; क्योंकि चल पड़ा, इससे पहुंच गया, जरूरी नहीं है; बीच से लौट आए, बीच में रुक जाए, दिल बदल जाए, धारणा बदल जाए। जो चल पड़ा वह पहुंच गया, यह बात बिलकुल सच नहीं है। लेकिन इसमें बड़ा अर्थ तो है ही। इसमें सचाई कहीं छिपी तो है। महावीर इसको इतना जोर दे कर इसलिए कह रहे हैं कि जो चल पड़ा उसकी आधी यात्रा तो पूरी हो ही गई, क्योंकि आधी यात्रा पहले कदम पर ही पूरी हो जाती है। पहला कदम ही सबसे कठिन कदम है।

तुमने अगर ओंठ से लगा लिया प्याला, जो मैं तुम्हें दे रहा हूं कि पी लो, तो करीब-करीब बात पूरी हो गई। ओंठ से कंठ की दूरी कितनी है? ओंठ से लग गया प्याला तो कंठ तक पहुंच ही गया। लेकिन अगर ओंठ से ही न लगा, तुमने हाथों में ही न लिया, तो कंठ तक तो कैसे पहुंचेगा?

पूछते हो: "क्या आशीर्वाद केवल संन्यासियों के लिए ही है?'

आशीर्वाद सबके लिए है, लेकिन मिल केवल संन्यासियों को पाता है। इसे तुम ठीक से समझ ही लो। तुम्हारे सिर पर से बह जाता है।

बुद्ध के पास एक सम्राट मिलने आया। और उसने बुद्ध से कुछ प्रश्न पूछे। बुद्ध ने कहाः "वर्ष दो वर्ष बाद आना। यह ध्यान की प्रक्रिया देता हूं, यह करो।' सम्राट थोड़ा दुखी हुआ। उसने कहाः "मैं इतनी दूर से आया हूं। मैं कोई साधारण आदमी भी नहीं हूं। और मैंने प्रश्न पूछे। और मैं प्रश्नों को बड़े दिन से सोच कर आया हूं। और मैंने अनेक से पूछे हैं, सबने जवाब दिए हैं। आपने जवाब भी देने की चिंता नहीं की। और आप कहते हैं, ध्यान करके आओ, दो साल बाद आना। यह बात तो अशिष्ट है। क्या आप मेरा अपमान करना चाहते हैं?'

बुद्ध ने कहा, नहीं। बुद्ध ने कहा कि ऐसा समझो कि वर्षा होती है, एक घड़ा उलटा रखा है--तो वर्षा होती रहेगी, घड़े में एक बूंद जल भी न पड़ेगा। फिर ऐसा समझो कि दूसरा घड़ा सीधा रखा है, लेकिन छेद-भरा है; वर्षा होती रहेगी, घड़ा भरता भी रहेगा और खाली भी होता रहेगा। इधर वर्षा बंद हुई कि उधर घड़ा खाली हुआ। भरा हुआ दिखाई पड़ेगा, लेकिन भरेगा कभी नहीं, क्योंकि छिद्रवाला है, सब बह जाएगा। और फिर एक तीसरा घड़ा है, न तो छिद्रवाला है न उलटा रखा है, लेकिन गंदगी से भरा है; वर्षा तो हो जाएगी, लेकिन शुद्ध जो जल बरसेगा वह अपवित्र हो जाएगा, वह जहरीला हो जाएगा। उसको भूल कर पी मत लेना। नहीं तो जीवन तो मिलेगा नहीं, मौत हाथ लगेगी। और तुम तीनों घड़े एक साथ हो, बुद्ध ने कहा। तुम विषाक्त, अपवित्र, जन्मों-जन्मों का न मालूम कितना कूड़ा-कर्कट भरे बैठे हो! उलटे रखे और छेद वाले भी। दो साल के लिए ध्यान दिया है ताकि घड़े को थोड़ा साफ कर लाओ। छिद्रों को थोड़ा भरो, घड़े को सीधा रखो। मैं तो बरसने को तैयार हूं। लेकिन अभी वर्षा से कुछ प्रयोजन न होगा। तुम्हारे प्रश्न के पूछ लिए जाने से ही उत्तर मिलना चाहिए, यह आवश्यक नहीं है। क्योंकि तुम उत्तर लेने की पात्रता में भी हो या नहीं...।

तुम्हें भी कठोर लगेगा, बुद्ध की बात कठोर मालूम होगी। लेकिन अत्यंत करुणा से कही है कि थोड़े तैयार हो कर आ जाओ। संन्यास तैयारी है।

यहां भी इतने लोग सुनते हैं, इसमें भी तीन ही तरह के घड़े होते हैं। कुछ उलटे रखे हैं; वे यहां से खाली हाथ ही जाएंगे। और अगर तुम उन्हें अपना खजाना बताओगे, तुम पर हंसेंगे। क्योंकि वे तो खाली आए हैं, "तुम कैसे भर सकते हो! कुछ धोखे में पड़े गए हो। अंध श्रद्धालु हो, भावुक हो, समझ नहीं है।' वे तो समझदार हैं। उनके हाथ कुछ लगा नहीं है। तुम्हें कैसे समझदार मान लेंगे? समझेंगे कि भोला-भाला है, श्रद्धालु है; विचार की कला नहीं आती, सोच-विचार नहीं है।

दूसरे हैं जो सीधे रखे हैं, भरते हैं बहुत बार। ऐसा लगने लगता है सुनते-सुनते उनको कि भर गए। मगर द्वार के बाहर भी नहीं निकल पाते कि खाली हो जाते हैं; सब भूल-भाल जाता है। फिर वही के वही हो जाते हैं छिद्रवाले। फिर तीसरे हैं कुछ, जो भर भी लेते हैं, छिद्र वाले भी नहीं हैं, सीधे भी रखे हैं; लेकिन जो भी उनमें पड़ता है, मेरा नहीं रह जाता।

उनका मन उसे विकृत कर डालता है। वे अपनी व्याख्या जोड़ देते हैं। वे अपने अर्थ डाल देते हैं। यहां से कुछ ले जाते हैं, लेकिन जो मैंने दिया था वे नहीं ले जाते। जो वे ले कर आए थे, उसी को थोड़ा और साज-संवार कर ले जाते हैं। मैं, उनका जो कचरा था, उसी में पड़ जाता हूं।

तुम पर निर्भर है।

संन्यास का तो इतना ही अर्थ है कि तुम तैयार हो मांजने को अपने घड़े को; तुम तैयार हो मेरे रंग में अपने घड़े को रंगने को; तुम तैयार हो घड़े के छिद्र बंद करने को; तुम तैयार हो घड़े को सीधा रखने को। तुम भय छोड़ते हो।

संन्यास एक पुनर्जन्म है; एक नया जीवन। एक ढंग से तुम अब तक जीए हो। उस ढंग से तुमने कुछ पाया नहीं। पा लिया होता तो फिर मेरे पास आने की भी कोई जरूरत नहीं, कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं। तुम्हारे प्रश्न से ही लगता है कि जीवन में कुछ मिला तो नहीं है। यहां तुम कुछ पाने की तलाश में आए हो। लेकिन तुम इस भांति पाना चाहते हो कि कुछ चुकाना न पड़े। तुम इस भांति पाना चाहते हो कि तुम्हें कुछ खर्च न करना पड़े और मिल जाए। तुम इस भांति पाना चाहते हो, किसी को पता भी न चले कानोंकान कि तुम्हें कुछ मिल गया है और मिल जाए। तुम हीरों के मालिक होना चाहते हो, लेकिन उस मालकियत के लिए जो साहस चाहिए, जो दुस्साहस चाहिए, वह तुममें नहीं है।

जन्म ले कर दुबारा न जन्मो
तो भीतर की कोठरी काली रहती है
कागज चाहे कितना भी चिकना लगाओ
जिंदगी कि किताब खाली की खाली रहती है।

चिकने कागज लगाने से कुछ भी नहीं होता, जब तक कि सत्य न उतरे। और दुबारा जन्म लिए बिना...दुबारा जन्म का मेरा अर्थ है, एक जन्म तो तुम्हारे मां-बाप ने दिया है, एक जन्म है जो गुरु से मिलता है। इसलिए तो हम गुरु को मां-बाप से भी ऊपर श्रद्धा देते हैं। क्योंकि मां-बाप से जो देह मिली है, जन्म मिला है, जीवन मिला है, वह तो पार्थिव है, पौद्गलिक है, स्थूल है। गुरु से जो जीवन की दिशा मिलती है वह सूक्ष्म है, चैतन्य की है। गुरु से आत्मा मिलती है; मां-बाप से देह मिली है। तो एक जन्म मां-बाप ने दिया है; दूसरा जन्म गुरु से मिलता है।

संन्यास किसी के चरणों में झुक जाने के साहस का नाम है। और इस जगत में झुकने से बड़ा कोई साहस नहीं है। अकड़ने को बड़ी बात मत समझ लेना। सभी बुद्धू अकड़े खड़े हैं। अकड़ने में कोई बड़ा गौरव नहीं है। कला झुकने में है।

लाओत्सु ने कहा है कि अकड़े खड़े रहते हैं बड़े वृक्ष, तूफान आता है और उखड़ जाते हैं। छोटे-छोटे घास के तिनके, छोटे-छोटे पौधे, झाड़ियां, तूफान आता है, झुक जाते हैं; तूफान चला जाता है, फिर खड़े हो जाते हैं। घास को तूफान उखाड़ नहीं पाता, क्योंकि घास में लोचपूर्णता है। बड़े वृक्षों को उखाड़ देता है, क्योंकि बड़े वृक्ष अहंकारी हैं।

यहां एक तूफान बह रहा है। ये बातें नहीं हैं जो मैं तुमसे कह रहा हूं। यह तुम्हारी जड़ों को हिला डालने वाला तूफान है, यह एक आंधी है। अगर तुम अकड़ कर खड़े रहे तो लाभ तो होना मुश्किल है, हानि ही हो सकती है। टूट भी सकते हो। अगर तुम झुके तो हानि होनी असंभव है, लाभ ही लाभ है। यह आंधी तुम्हें तरोताजा कर जाएगी, नया कर जाएगी, तुम्हारी धूल-धवांस झाड़ जाएगी। तुम फिर खड़े हो जाओगे लहलहाते। यह आंधी संजीवनी हो जाएगी, आशीर्वाद हो जाएगी।

संन्यास का अर्थ है, कहते हो तुम प्रभु से--और अभी प्रभु तो दूर, कहते हो गुरु से...। गुरु तो केवल गुरुद्वार है। उसके माध्यम से तुम प्रभु के प्रति निवेदन करते हो। तुम कहते हो, तुम्हें तो देखा नहीं, तुमसे तो कुछ जान-पहचान नहीं, तुम्हारा कुछ पता-ठिकाना नहीं। लेकिन कोई है जिसे तुम्हारा पता-ठिकाना है। तो हम अपना संदेश उसी के द्वारा तुम्हारे पास तक पहुंचा देते हैं। हम अपनी प्रार्थनाएं उसी के द्वारा तुम तक पहुंचा देते हैं।

गुरु का अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो तुम जैसा है और तुम जैसा नहीं भी; जो कुछ-कुछ तुम जैसा है और कुछ-कुछ तुमसे पार। गुरु का अर्थ है ऐसा व्यक्ति जिसका एक हाथ तुम्हारे हाथ में है और एक हाथ अदृश्य के हाथ में है। अब अगर तुमने प्रेम से देखा तो गुरु का अदृश्य हाथ भी तुम्हारी समझ में आना शुरू हो जाएगा, कि गुरु में कहीं-कहीं परमात्मा झांक रहा है। अगर तुमने प्रेम से न देखा, समर्पण से न देखा तो तुम्हें गुरु का भी वही स्थूल रूप दिखाई पड़ेगा जो आंखों को दिखाई पड़ता है। तो गुरु को देखने के लिए शिष्य हुए बिना कोई उपाय नहीं है, क्योंकि शिष्य हो कर ही तुम इस योग्य बनते हो, झुकते हो, सहानुभूति से देखते हो, प्रेम से, लगाव से, कि तुम्हें दूसरी तरफ जो अदृश्य जगत है वह भी गुरु में से दिखाई पड़ने लगता है। गुरु तो एक झरोखा है।

वादक, मैं हूं मुरली तेरी
सांसें दे कर मुझे बजाओ
मेरे तन में स्वर सोए हैं
स्वयं न जगते, यह कमजोरी
अधर-परस की संजीवनी दे
मन में मधु घोलो बरजोरी
जड़ता हरो अहिल्या को छू
आत्म चेतना आज लगाओ
वादक, मैं हूं मुरली तेरी
सांसें दे कर मुझे बजाओ।

तुम्हें तो पता नहीं कि कौन सी वीणा तुम्हारे भीतर सोई पड़ी है। तुम किसी संगीतज्ञ के पास जाते हो, कहते हो जरा छेड़ो मेरी वीणा को, ताकि मैं भी सुन लूं मेरे भीतर कौन सोया है, ताकि मैं भी थोड़ा जाग कर जान लूं मेरी संभावना क्या है।

गुरु के सान्निध्य में तुम्हें तुम्हारी संभावना की पहली झलक मिलती है।

मुखर हो उठे पीड़ा मेरी
गूंज उठे फिर सूना मधुवन
दर्द-पगी ऐसी धुन छेड़ो
सुध-बुध खो दे सुन कर त्रिभुवन
घावों पर उंगलियां बदल कर
सरगम नया उठाते जाओ
वादक, मैं हूं मुरली तेरी
सांसें दे कर मुझे बजाओ।
मौन रहूं तो सांसें घुटतीं
बिना स्वरों के रहा न जाए
तुमसे ही संबंध स्वरों का
तुम न बजाओ, कौन बजाए?
इतने तो निष्ठुर न बनो अब
सहा न जाए, मत तरसाओ
वादक, मैं हूं मुरली तेरी
सांसें दे कर मुझे बजाओ
मूक पड़ी मंदिर में कब से
छोड़ो अब तो मान बचा लो
एक आस पर सांस टिकी है
जाने किस दिन मुझे उठा लो
देह बने शव उसके पहले
एक बार बस अधर लगाओ
वादक, मैं हूं मुरली तेरी
सांसें दे कर मुझे बजाओ।

संन्यास का अर्थ है, तुम गुरु से निवेदन कर रहे हो कि मुझे तो पता नहीं कि मैं कौन हूं, तुम थोड़ा मुझे सुध-बुध में लाओ; मुझे तो पता नहीं कौन मेरे भीतर पड़ा है, तुम जरा हिलाओ-डुलाओ! तुम्हें तो पता है! मुझे तो पता नहीं है कि मेरी संपदा कहां है। तुम्हें तो पता है, तुम थोड़ा मेरी संपदा का मार्ग मुझे सुझाओ।

गुरु के हाथ में हाथ दे देने का नाम है संन्यास। यह अपूर्व क्रांति है और केवल दुस्साहसी कर पाते हैं। क्योंकि यह बड़ी कठिन बात है कि किसी के हाथ में हम अपने को पूरा छोड़ दें। और पूरा छोड़ो तो ही छोड़ते हो। ऐसा थोड़ा-बहुत छोड़ा, हिसाब से छोड़ा कि हिसाब से छोड़ेंगे और देखेंगे कुछ हो रहा है कि नहीं हो रहा, नहीं होगा तो वापस लौट जाएंगे--तो तुमने छोड़ा ही नहीं। तो तुम संन्यासी भी हो जाओगे तो भी भेद जारी रहेगा। भेद तुम्हारी तरफ से आएगा। ऐसे भी कुछ संन्यासी हैं जिन्होंने इस आशा में छोड़ दिया है कि देख लें,

अगर कुछ हो तो ठीक है रुक जाएंगे, नहीं हुआ तो कौन रोक सता है। ट्रेन में कपड़े बदल लेंगे, माल-वाला छिपा कर रख देंगे, अपने घर पहुंच जाएंगे, जैसे थे वैसे ही घर पहुंच जाएंगे। ऐसे लोग भी हैं। अब मैं कोई पुलिस ले कर तुम्हारा पीछा करूंगा नहीं। यहां तो ठीक है; अमृतसर में क्या करते हो, मैं क्या जानूं!

इस तरह अगर संन्यास लिया तो भी भेद बना रहेगा। क्योंकि तुम चालाकी कर रहे हो। किससे चालाकी कर रहे हो? कम से कम कोई तो जगह हो जहां तुम चालाकी न करो। कोई तो स्थान हो जहां तुम परिपूर्ण भाव से सिर झुका दो; जहां तुम्हारी बेईमानी न हो, धोखा-धड़ी न हो।

तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम संन्यास ले ही लो। मैं तुमसे कह रहा हूं, लो तो सोच कर लेना, समझ कर लेना, पूरा साहस हो तो लेना। और लो तो फिर यह मत हिसाब रखना कि अब लौट जाएंगे। क्योंकि लौटने का मन बना रहा तो तुम मेरे साथ चल ही न सकोगे। जिसे लौटना है वह चलेगा कैसे? वह कहेगा, इतने कदम चले, फिर लौटना पड़ेगा, यहीं अटके रहो। बातें करते रहो कि चलूंगा, जरूर चलूंगा; मगर रुके रहो यहीं क्योंकि लौटना तो है।

लौटने का मन रहा तो तुम इस यात्रा पर जा ही न सकोगे। एक ऐसी यात्रा है संन्यास जहां तुम्हें लौटना नहीं है; गए तो गए। तो जरूर घटेगा। तो परम से मिलन होगा। तो तुम मेरे आशीर्वाद की किरणों को तत्क्षण पकड़ लोगे।

समर्पण के प्रतीक

दूसरा प्रश्न भी पहले प्रश्न जैसा ही है। कुछ संबंधित है, इसलिए उसे भी समझ लेना जरूरी है।

परमपद की प्राप्ति के लिए गैरिक वस्त्र और माला और गुरु कहां तक सहयोगी हैं? और परमपद की प्राप्ति के बाद भी इनकी क्या आवश्यकता रहती है?

अभी परम प्राप्ति हुई नहीं, लेकिन गैरिक और माला और गुरु से इतना डर है कि यह भी बात दिल को बड़ी सांत्वना देती है कि कोई फिक्र नहीं, थोड़े-बहुत दिन के लिए पहन लो, ओढ़ लो; फिर तो परम प्राप्ति नहीं होती। यह तो चित्त यात्रा पर गया ही नहीं। यह तो चलने के पहले ही रुकने की बातें सोच रहा है। यह तो मंजिल पर पहुंचने के पहले ही मंजिल का हिसाब लगा रहा है। यह बहुत हिसाब-किताबी चित्त है; ज्यादा दूर तक नहीं ले जा सकता।

पहली बात, "परमपद की प्राप्ति के लिए...'।

पहली तो बात यह है कि परमपद इत्यादि की प्राप्ति जो है, सब लोभी मन की बातें हैं। ये कोई संन्यस्त होने की बातें ही नहीं हैं। परमपद की प्राप्ति! यहां के पद नहीं मिल रहे हैं तो परमपद की प्राप्ति! इधर चुनाव में कुछ आशा नहीं दिखती तो परमपद की प्राप्ति! दिल्ली दूर मालूम होती है तो चलो परमपद! मगर परमपद चाहिए!

तुम कभी अहंकार की ये आकांक्षाएं देखते हो? यह अहंकार नए-नए रूपों में फिर-फिर खड़ा हो जाता है। इधर कहता था धन चाहिए, यश चाहिए, पद चाहिए; जब यहां से किसी तरह से हटता है तो भी मौलिक स्वर नहीं बदलता। मौलिक स्वर वही का वही है।

तुम क्या खोज रहे हो धर्म में? अहंकार ही खोज रहे हो? तो पहले से ही यात्रा गलत हो गई। धर्म का तो अर्थ ही यह है कि पदों में कुछ भी नहीं रखा है, परमपद में भी कुछ नहीं रखा है। यह पद की दौड़ ही व्यर्थ है। यह पद की दौड़ अहंकार की ही यात्रा है। और अहंकार में कुछ भी नहीं रखा है। अभी यहां अकड़ कर चल रहे थे, अगर तुम्हें मौका मिल जाए तुम मोक्ष में भी अकड़ कर चलोगे।

तुम जरा सोचो कभी बैठ कर शांति से कि मोक्ष पहुंच गए, तो तुम वहां भी अकड़ कर चलोगे। वहां भी तुम आसन जरा ऊपर लगाओगे। वहां भी तुम यही खेल जारी रखोगे।

धर्म की खोज का अर्थ ही इतना होता है कि हम अहंकार से थक गए हैं; अब अहंकार का कोई रस नहीं रहा। अहंकार गिर जाए तो संन्यास। अहंकार नया-नया रूप रख ले तो संन्यास का अर्थ ही इतना होता है कि हमने पूरी तरह से देख लिया, न पद में कुछ है...। जब पद में ही कुछ नहीं तो परमपद में क्या होगा? क्योंकि परमपद तो पद का ही बड़ा रूप होगा। धन में ही कुछ नहीं तो परमधन में क्या होगा? यहां कुछ नहीं तो वहां भी कुछ नहीं।

तुम्हारा स्वर्ग यहीं का विस्तार है। तुम जो यहां मांगते हो वही स्वर्ग में मांगते चले जाते हो। और थोड़ा साज-संवार कर मांगते हो, मगर मांगते वही हो। जब तक मांग है, लोभ है, काम है, अहंकार है, तब तक जैसा परमपद? परमपद का अर्थ ही तुम्हारी समझ में नहीं आया।

अक्सर ऐसा हो जाता है कि संत कुछ कहते हैं, तुम कुछ समझ लेते हो। संत कहते हैं, उस दशा का नाम परमपद है जहां अहंकार नहीं, लोभ नहीं, माया नहीं, मोह नहीं। उस स्थिति का नाम परमपद है। और तुम्हारा लोभ इसको सुनता है: तुम कहते हो अब बढ़िया है, चलो तो परमपद ही पा लें; तो छोटे-मोटे पद में क्यों समय गंवाएं। और यह तुम खयाल रखना, तुम्हारा लोभ ही कह रहा है। तुम बिलकुल उलटी बात समझे। तुम चूक ही गए।

तो पहली तो बात, परमपद की प्राप्ति की बात ही छोड़ो। प्राप्ति की बात ही छोड़ो। जब तक प्राप्ति का नशा है तब तक परमात्मा न मिलेगा। क्योंकि परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है, उसे प्राप्त नहीं करना है। तुम प्राप्ति में दौड़ते रहे, इसलिए तो उसे चूकते चले गए। खोजा, इसलिए खोया। जो है, उसे पाना थोड़े ही है। जब सब खोज छूट जाती है, सब दौड़ छूट जाती है, तुम बैठ रहे शांत हो कर निर्वासना से भरे, बंद हो गई हवाएं और मेघ अब नहीं बनते-बिगड़ते, उस घड़ी तत्क्षण तुम पाते हो कि अरे, जिसे मैं खोजता था, यह रहा!

बुद्ध को ज्ञान हुआ। किसी ने पूछा, क्या मिला आपको? तो उन्होंने कहा: मिला कुछ भी नहीं; जो मिला ही हुआ था, उसकी समझ आई। बस समझ आई, बस समझ आई, मिला कुछ भी नहीं।

परमपद पर तुम बैठे ही हो। तुम जहां हो वही परमपद है। तुम्हारी आत्मा जहां विराजमान है वहीं परमपद है। जरा तुम भीतर झांक कर तो देखो, किस विराट सिंहासन पर तुम बैठे हो! मगर तुम भिखारी बने घूम रहे हो! तुम घर कभी आते ही नहीं। तुम अपने में कभी लौटते ही नहीं। कभी धन के पीछे, कभी पद के पीछे दौड़ रहे। और फिर अभी अगर इनसे थक भी गए, उदास भी हो गए तो फिर तुम नई दौड़ शुरू कर लेते हो कि अब स्वर्ग पाना है, अब समाधि पानी है, अब मोक्ष पाना है।

तो न तो परमपद की आकांक्षा करो, न प्राप्ति की दृष्टि से संन्यास लो। नहीं तो संन्यास होगा ही नहीं। संन्यास का अर्थ ही इतना है कि लोभ व्यर्थ हो कर गिर गया; अब तो जो है उसमें मजा लेंगे। पाने का तो मतलब है कल होगा, भविष्य में होगा। परमात्मा अभी है। परमात्मा कल नहीं होगा। परमात्मा अभी है, यहीं है। मोक्ष तुम्हारी आत्यंतिक दशा है; अभी है, यहीं है। तुम शांत हो जाओ, यह तुम्हारे आसपास जो वासनाओं का धुआं है, यह हट जाए, तो ज्योति अभी प्रगट हो जाए। ज्योति सदा से है। सूरज बादलों में ढंग गया है।

तो पहली बात तो यह..."परमपद की प्राप्ति के लिए गैरिक वस्त्र, माला और गुरु कहां तक सहयोगी हैं?' तुम तो गुरु का, गैरिक वस्त्र का, माला का, सबका साधन की तरह उपयोग करना चाहते हो। वहीं भूल हो गई। गुरु का और साधन की तरह उपयोग करना, तो एक तरह का शोषण हो गया। मालिक तो तुम रहे, गुरु नौकर हो गया। तुम उपयोग करने वाले रहे, तुमको मोक्ष जाना है, तो गुरु की सीढ़ी पर पैर रख कर चढ़ गए। और पीछे तुम धन्यवाद देने तक का भी विचार नहीं रखते हो। क्योंकि पीछे तुम कहते हो: "और परमपद की प्राप्ति के बाद भी क्या इनकी आवश्यकता रहती है?' बड़ी आपकी कृपा कि चढ़े सीढ़ी पर, सीढ़ी धन्यभागी कि आपने कृपा की; न चढ़ते तो सीढ़ी का क्या होता! अपने चरण-कमल ले आए, चढ़ गए सीढ़ी पर। न, सीढ़ी युगों-युगों तक आपका गुणगान करेगी।

गुरु से संबंध प्रेम का है, शोषण का नहीं। गुरु के साथ साधना का संबंध बनाओगे तो तुम मालिक रहे; तुम ऊपर रहे, गुरु का उपयोग कर लेना है। तो यह अनैतिक बात हो गई। यह तो बात ही भद्दी हो गई। गुरु के साथ तो एक प्रेम का संबंध है। यह संबंध कुछ ऐसा है कि जब गुरु को छोड़ने का वक्त आता है...जरूर आता है वक्त। क्योंकि गुरु चाहता है कि जैसे एक दिन गुरु ने चाहा था कि मुझे पकड़ो, एक दिन चाहता है अब मुझे छोड़ो। क्योंकि अब तुम स्वयं ही योग्य हो गए।

मां अपने बेटे को हाथ पकड़ कर चलना सिखाती है। सदा हाथ थोड़े ही पकड़े रहेगी। क्योंकि सदा हाथ पकड़े रहेगी तो यह तो बेटे का अहित हो जाएगा। एक दिन खुद हाथ छुड़ाती है, बेटा नहीं छोड़ना चाहता। बेटा उसका पल्लू पकड़ कर उसके पीछे-पीछे घूमता है चौके से घर भर में। वह कहती है, छोड़ भी, अब तू चलने योग्य हो गया है, खुद अब तू पल्लू क्यों पकड़ कर घूमता है?

एक दिन गुरु स्वयं छुड़ाना चाहता है। और तब शिष्य छोड़ना नहीं चाहता। तब शिष्य कहता है, कैसे छोड़ूं? जिससे इतना मिला, उसे कैसे छोड़ूं? जिसके सामने गुरु और परमात्मा

दोनों खड़े हों तो शिष्य इतना पाया, उसे छोड़ कर अब कहां जाना है? ऐसी घड़ी आ जाती है कि शिष्य कहता है: परमात्मा को छोड़ सकते हैं, गुरु को नहीं छोड़ सकते। क्योंकि यह परमात्मा से तो कोई पहचान ही न थी। इनसे तो कोई नाता-रिश्ता ही न था। नाता-रिश्ता तो गुरु ने बनाया। तो अगर छोड़ना ही होगा तो परमात्मा को छोड़ देंगे, गुरु रहा तो फिर संबंध बना देगा। गुरु रहा तो ठीक है, द्वार है, तो मंदिर में कभी भी प्रवेश कर जाएंगे।

तो आखिरी समय में जो झंझट होती है, वह झंझट शिष्य की तरफ से नहीं होती कि वह छोड़ना चाहता है और गुरु पकड़ना चाहता है। आखिरी समय जो झंझट होती है वह यह होती है, गुरु कहता है छोड़ भी; और शिष्य नहीं छोड़ना चाहता। शिष्य का अर्थ ही यह होता है कि जिसने इतने समग्र भाव से प्रेम किया, वह कैसे छोड़ देगा! बड़ी पीड़ा होती है। वह इसके लिए भी राजी है कि मोक्ष पड़ा रहे तो पड़ा रहे चाहे; बस गुरु के चरणों में पड़ा रहूं, इतना काफी है। उसने गुरु के चरणों में इतना पाया कि मोक्ष और ज्यादा कुछ दे सकेगा, इसकी बात ही नहीं उठती; और दे भी सके तो भी शिष्य इतना अकृतज्ञ नहीं हो सकता कि एकदम छोड़ने को राजी हो जाए। जैसे पहले-पहले गुरु को शिष्य का हाथ पकड़ने में कठिनाई होती, क्योंकि शिष्य हाथ छुड़ाता है...अब ये ही सज्जन हैं, अब ये हाथ छुड़ा रहे हैं। अब मैं चाहूंगा कि इनका हाथ पकड़ लूं। नाम तो इनका बड़ा प्यारा है: श्याम कन्हैया! मगर नाम ही मालूम होता है। अभी न तो श्याम की तरफ जाने की कोई आकांक्षा जगी मालूम होती है, न हिम्मत होती है। मैं तो चाहूंगा कि इनका हाथ पकड़ लूं, मगर वे अभी से तैयारी कर रहे हैं; वे कह रहे हैं, कि छोड़ देंगे न पीछे? जल्दी छूट जाएगा न, जब परमपद की प्राप्ति हो जाएगी!

इस मन से पकड़ा तो तुम मेरा हाथ पकड़ ही न पाओगे, तुम छुड़ाने में रहोगे। तुम कहोगे कि अब जल्दी से जल्दी छूट जाए। तो परमपद तो मिल ही न पाएगा, क्योंकि इतनी जल्दबाजी में ये घटनाएं नहीं घटतीं। ये तो बड़े धीरज के काम हैं। यह तो बड़ी शांति में घटती है। अनंत धैर्य चाहिए।

तो पहले तो "श्याम कन्हैया' का हाथ पकड़ने में मुश्किल होगी। यह पहली झंझट। बामुश्किल अगर किसी तरह पकड़ में आ गए तो दूसरी झंझट इससे भी बड़ी है। वह तब होगी जब मैं देखूंगा कि अब समय आ गया कि वे मुझे छोड़ दें और छलांग लगा जाएं। तब और बड़ी झंझट होगी। क्योंकि अभी तो अहंकार के कारण रुकावट पड़ रही है, अहंकार कोई बड़ी झंझट नहीं है। क्योंकि अहंकार की कोई सामर्थ्य क्या! अहंकार तो शून्य जैसा है; नकार है; छाया है। उसकी कोई वास्तविकता तो नहीं; अंधेरे जैसा है। तो अभी तो अंधेरे को छोड़ने के कारण इतनी झंझट हो रही है। अंधेरे को छोड़ने को कह रहा हूं कि छोड़ दो, रोशनी लिए सामने खड़ा हूं कि यह रहा दीया, पकड़ो यह हाथ। अभी तुम अंधेरे को पकड़ रहे हो, रोशनी पकड़ने में मुश्किल हो रही है। जरा सोचो उस दिन की जिस दिन रोशनी को तुम पकड़ लोगे और मैं तुमसे कहूंगा छोड़ दो यह रोशनी और उतर जाओ परमात्मा के विराट में। उस वक्त तुम कहोगे, नहीं। अंधेरा छोड़ने में इतनी झंझट कर रहे हो तो रोशनी छोड़ने में तो बहुत

झंझट करोगे। और रोशनी का रस और रोशनी का उत्सव, संगीत, रोशनी की उमंग, रोशनी का आनंद, कैसे छोड़ोगे? गुरु छुड़ाता है।

अब यह बड़े मजे की बात है। गुरु पकड़ता है एक दिन और एक दिन गुरु छुड़ाता भी है। और दूसरा संघर्ष ज्यादा बड़ा संघर्ष है। और गुरु जब छुड़ा भी लेता है, तब भी शिष्य की कृतज्ञता का अंत नहीं। सच तो यह है, गुरु के हाथ में हाथ रख कर शिष्य जितना कृतज्ञ होता है, जिस दिन गुरु हाथ छुड़ाता है, उस दिन कितना ही तड़पे, लेकिन जब हाथ छूट जाता है तो भी महा कृतज्ञ होता है। क्योंकि गुरु के हाथ में तो दीया था, जब दीए को भी शिष्य छोड़ देता है तो महासूर्य का प्रकाश उपलब्ध होता है। गुरु के हाथ में तो बूंद थी अमृत की, बूंद को छोड़ कर सागर उपलब्ध होता है।

तो शिष्य तब तो और भी कृतज्ञ हो जाता है कि गुरु ने हाथ पकड़ा, वह तो उसकी महाकृपा थी; हाथ छुड़ाया, वह तो उसकी और भी महाकृपा।

तुम पूछते हो: "और परमपद की प्राप्ति के बाद भी इनकी क्या आवश्यकता रहती है?' आवश्यकता जरा भी नहीं रह जाती। लेकिन सिर्फ गुरु की कृतज्ञता, गुरु के प्रति कृतज्ञ भाव के कारण शिष्य उन्हें सम्हाल कर रखता है।

बुद्ध का एक शिष्य सारिपुत्त ज्ञान को उपलब्ध हो गया। और बुद्ध ने उसे भेजा कि "अब तू जा, अब यहां मेरे पास रहने की कोई जरूरत न रही। दूसरों के लिए जगह खाली कर। तू जा और गांव-गांव संदेश दे; जो मैंने तुझे दिया, दूसरों को बांट।' वह बहुत रोने लगा। उसने कहा, ऐसा तो न करें। बुद्ध ने कहा: "शर्म नहीं आती बुद्ध हो कर और रोता है? तू खुद ही अब बुद्ध हो गया, अब यह रोना वगैरह क्या?' पर सारिपुत्त रो रहा है छोटे बच्चे की तरह। वह कहता है कि मत भेजें। मैं इस बात के लिए भी राजी हूं मानने को कि बुद्ध नहीं हुआ, मगर भेजें मत। चलो यही सही।

बुद्ध ने कहा, तू मुझे थोड़े ही धोखा दे सकता है कि तू बुद्ध नहीं हुआ। ये बातें न चलेंगी। तू हो गया है। अब तू रो कि सिर पीट, कुछ भी सार नहीं। तू जा। अब यह जाना जरूरी है। तू जा और दूसरों को जगा। अब तू मुझे पकड़ कर कब तक घूमता रहेगा।

सारिपुत्त को जाना पड़ा। रोता हुआ गया। अदभुत व्यक्ति रहा होगा। क्योंकि बुद्धत्व पाने के बाद रोना, बड़ी अपूर्व बात है। कितनी कृतज्ञता का भाव रहा होगा! चला तो गया, लेकिन रोज सुबह-सांझ जहां भी होता, जिस तरफ बुद्ध होते, उस तरफ साष्टांग दंडवत करता। उसके शिष्यों ने कहा कि आप स्वयं बुद्ध हो गए, स्वयं बुद्ध ने कह दिया कि आप बुद्ध हो गए, अब आप किसके चरणों में सिर झुकाते हैं? अब यह क्या करते हैं आप? रोज सुबह-शाम जिस तरफ बुद्ध हैं...अगर बुद्ध गया में हैं तो उस तरफ, अगर बुद्ध कहीं और हैं तो उस तरफ! लेकिन सारिपुत्त कहता, उनकी ही कृपा से हुआ हूं। जो कुछ भी हुआ, उनकी कृपा से हुआ। इसलिए उनकी अनुकंपा को तो कभी भी विस्मरण नहीं कर सकता हूं।

तुम कहोगे, अब क्या आवश्यकता? तुम्हें पता ही नहीं है। तुम बड़े दुकानदार हो। तुम कहते हो, जब जरूरत थी तब पैर पड़ लिए; अब जरूरत नहीं, अब क्यों पैर पड़ें? तुम जरा

सोचते हो, तुम क्या कह रहे हो? ये सब संबंध जरूरत के हैं? तो तुम्हें पता ही नहीं कि प्रेम क्या है। प्रेम गैर-जरूरत का संबंध है। और प्रेम में ही फूल खिलते हैं परमपद के। प्रेम में ही खिलते हैं फूल। यह दुकानदारी नहीं है कि जब मतलब था तो जयरामजी कर ली और जब मतलब न रहा तो भूल गए कि अब क्या मतलब?

तुम तो ऐसे ही करते हो न, रास्ते पर जयराम जी भी करते हो किसी से तो मतलब से ही करते हो! तुम्हारी तो जयरामजी भी झूठी है। तुम तो राम की जय भी बिना मतलब के नहीं बोल सकते। तुम तो कहते हो, इस आदमी से जरा काम है, यह आदमी बैंक का मैनेजर है कि यह आदमी डिप्टी कलेक्टर है कि कमिश्नर है कि इससे जरा काम है जरा काम निकल जाए, फिर इसको बताएंगे! अभी तो नमस्कार करनी पड़ेगी।

क्या गुरु को भी तुम ऐसे ही नमस्कार करते हो? तो फिर तुम न शिष्य हो, और न जिसको तुमने गुरु जाना उसको तुमने गुरु जाना है।

गैरिक वस्त्र और माला और गुरु..."सहयोगी' शब्द ठीक नहीं है, कि सहयोगी हैं। ये तो केवल प्रतीक हैं तुम्हारे समर्पण के। बिना गैरिक वस्त्रों के भी लोग ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं, इसलिए इनको सहयोगी कहना ठीक नहीं है। क्राइस्ट ज्ञान को उपलब्ध हुए, महावीर बिना ही वस्त्रों के ज्ञान को उपलब्ध हुए। बुद्ध पीले वस्त्र पहने रहे। तो कोई वस्त्र से किसी चीज का सहयोगी होने न होने का संबंध नहीं है। ये तो केवल तुम्हारे समर्पण के प्रतीक हैं। तुम कहते हो, अब गुरु जैसा रखेगा वैसे रहेंगे। अब गुरु का जो रंग होगा वही हमारा रंग होगा। अब अगर गुरु कहता है गैरिक, तो गैरिक। यह तो केवल एक इंगित है, इशारा है तुम्हारी तरफ से कि हम भीतर भी अपने को रंगने को तैयार हैं। बाहर से हम खबर दे रहे हैं कि हम रंगने को तैयार हैं। भीतर की तो खबर कैसे दें, बाहर से हम खबर दे रहे हैं।

जब तुम किसी आदमी को गले लगाते हो तो तुम क्या कहते हो? क्या तुम यह कह रहे हो कि हड्डियों से हड्डियों को लगा रहे हैं? लगती तो हड्डियां ही हड्डियां हैं। दोनों की छातियां लग गईं तो अस्थि-पंजर मिल गए, चमड़ी से चमड़ी लग गई--क्या यही तुम कहना चाहते हो? नहीं, तुम कह रहे हो कि हड्डियां तो ठीक, यह तो बाहर है, लेकिन भीतर हृदय से हृदय को मिलाना चाह रहे हैं, आत्मा से आत्मा को मिलाना चाह रहे हैं। बाहर तो केवल संकेत है।

किसी का हाथ तुम हाथ में ले लेते हो, तो हाथ को हाथ में लेने से कुछ भी प्रेम प्रगट नहीं होता, पसीना ही प्रगट होगा थोड़ा-बहुत। लेकिन तुम खबर दे रहे हो कि यह बाह्य तो प्रतीक है; भीतर हम एक-दूसरे से मिलना चाहते हैं जैसे बाहर हाथ मिल गए। बाहर तो प्रतीक है।

ये गैरिक, माला, ये तो खबर हैं इस बात की कि तुम झुक गए; तुमने घोषणा कर दी मेरे प्रति और जगत के प्रति कि अब तुम झोली फैलाए खड़े हो अगर आशीर्वाद बरसेगा तो तुम झोली भरोगे। तुम उसका स्वागत करने को तैयार हो। तुमने द्वार खोल दिए; अगर मेहमान आएगा तो द्वार से वापस नहीं लौटेगा। तुम आतिथेय बन गए, अतिथि के आने की प्रतीक्षा है। इतनी भर खबर है।

इस खबर के परिणाम होते हैं, गहरे परिणाम होते हैं। किसी न किसी रूप में हमें जो भीतर है उसे बाहर प्रगट करना होता है, क्योंकि भीतर को प्रगट करने की तो कोई भाषा नहीं है।
तुमने देखा, तुम किसी के प्रति समर्पण से भरे तो झुक कर उसके चरणों में सिर रख देते हो! अब सिर तो बाहर है और चरण भी बाहर है। क्या कर रहे हो? लेकिन यह बाह्य प्रतीक भीतर की खबर लाता है कि मैं भीतर झुक रहा हूं। जब तुम किसी पर नाराज होते हो तब तुम इससे उलटा करना चाहते हो; तुम चाहते हो कि इसका सिर अपने पैरों में रख दें। अब यह जरा उलटा मामला है, क्योंकि छलको, उचको, इसके सिर पर चढ़ो, गिर-गिरा जाओ--तो तुम अपना जूता निकाल कर उसके सिर पर मार देते हो। यह भी प्रतीक है; यह उलटा प्रतीक है। तुम कहते हो कि अब तुम्हारी दो कौड़ी की इज्जत कर दी। अब जूता किसी के सिर पर रख देना या मार देना, क्या फर्क पड़ता है! जूता क्या किसी का अपमान करेगा! लेकिन प्रतीक हैं और भीतर की खबर लाते हैं।

गैरिक वस्त्र भी प्रतीक हैं; सिर्फ भीतर की खबर लाते हैं। यह कोई वैज्ञानिक कारण नहीं है। ऐसा नहीं है कि इनको पहनने से ही ज्ञान उपलब्ध होगा और इनको न पहनने से नहीं उपलब्ध होगा। ये कारण नहीं; ये सिर्फ काव्य-प्रतीक हैं। और यहां मैं तुम्हें विज्ञान नहीं सिखा रहा हूं; जीवन का काव्य सिखा रहा हूं।

अमर अविनाशी नयन मन के समर्पण
कब मिलोगे?
सांस की पहचान की मीठी कुरेदन
तुम अनहोने
मैं बौने हाथों का उठाव
तुम परम शक्ति
मैं शक्ति-भावना भरा चाव
तुम अमर
कि मैं बस सहस्र बार चढ़ता क्षण हूं
तुम श्रम-विज्ञान
मैं नितनव आत्म-समर्पण हूं।

यह तो सिर्फ खबर है इस बात की कि मेरा आत्म-समर्पण हुआ।

बोध अंगार है

तीसरा प्रश्नः कितने प्रकार से, कितने ढंग से आप वही-वही बातें कह चले जा रहे हैं! क्या सत्य को भी इतने शब्दों की आवश्यकता है?

सत्य को तो एक शब्द की भी आवश्यकता नहीं है। सत्य तो शब्द से कभी प्रगट होता ही नहीं। सत्य तो शब्दातीत है। इसीलिए इतने शब्दों से कहने की कोशिश चल रही है। इस तरह न समझो, शायद उस तरह समझ जाओ इस दिशा से न समझो तो शायद उस दिशा से समझ जाओ। इस बहाने नहीं तो कोई और बहाना सही। कभी सहजो के बहाने, कभी

दया के बहाने, कभी महावीर कभी बुद्ध, कभी क्राइस्ट के बहाने--कोई भी बहाने तुम्हें समझाने की कोशिश कर रहा हूं। इस बार चूके तो फिर कोई और बहाना खोज लूंगा। कहना मुझे वही है जो नहीं कहा जा सकता है। बताना वही है जिसे बताने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन, अगर मैं चुप रह जाऊं तो तुम कभी न समझ पाओगे।

शब्दों में सत्य तो नहीं समाता, लेकिन शब्दों की चोट निरंतर पड़ती रहे तो तुम्हारे भीतर कोई जाग्रत होने लगता है, जो जाग कर सत्य को समझ पाएगा। शब्द तो चोट है।

ऐसा समझो, घड़ी में अलार्म भर कर तुम सो जाते हो। सुबह अलार्म बजा। अलार्म ही उठाने में समर्थ नहीं है। क्योंकि जो बहुत कुशल हैं वे अलार्म भी सुनते रहते हैं और उठते भी नहीं। कुशल जो लोग हैं वे तरकीब निकाल लेंगे। वे एक सपना देखने लगेंगे कि मंदिर में गए हैं और घंटी बज रही है मंदिर की। बस अब मंदिर की घंटी बज रही है तो अलार्म को उन्होंने झुठला दिया। वह अलार्म सुनाई पड़ रहा है, वे समझ रहे हैं कि मंदिर की घंटी बज रही है। सुबह जब उठेंगे, नौ बजे फिर उनकी नींद खुलेगी; तब वे चौंक कर कहेंगे क्या हुआ, अलार्म का क्या हुआ! अलार्म जब चल रहा था तब उन्होंने एक व्याख्या कर ली, एक सपना खड़ा कर लिया, अलार्म को ढांक दिया। अलार्म अपने-आप में नहीं जगा सकता है; लेकिन, अगर तुम जागना चाहो तो अलार्म काफी सहयोगी हो सकता है। चोट पड़ती है।

नई घड़ियां जो अलार्म की हैं, देखा? पुरानी घड़ियों और नई घड़ियों में थोड़ा फर्क है। पुरानी घड़ियों में अलार्म बजता ही रहता था, पांच मिनट, दस मिनट बजता ही रहता था; वह बदलना पड़ा। क्योंकि मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि जब अलार्म बजता ही रहता है दस मिनट तक, तो अगर पहली चोट पड़ी और आदमी जग गया तो जग गया, अगर पहली चोट नहीं पड़ी तो फिर दस मिनट बजाने में भी कुछ सार नहीं है। अगर एक मिनट सुन लिया उसने और कोई सपना बना लिया तो उस दस मिनट तक सपने में रहा आएगा। अब नई जो घड़ियां हैं उनमें अलार्म बजता, फिर रुकता, फिर बजता, फिर रुकता, फिर बजता; ताकि अगर एक बार चूक गए तो दुबारा, फिर बजता, फिर रुकता, फिर बजता; ताकि अगर एक बार चूक गए तो दुबारा, अगर दुबारा चूक गए तो तिबारा। दस मिनट ही बजता है लेकिन दो-दो मिनट करके बजता है। इसका ज्यादा परिणाम है। इस पर मनोवैज्ञानिक प्रयोग हुए तो पाया गया कि यह ज्यादा लोगों को उठाता है, क्योंकि एक सपना दे कर धोखा दे दिया, फिर जरा विश्राम कर रहे थे कि वह फिर बजा; अब फिर सपना खोजो। किसी तरह फिर समझा-बुझा लिया। मगर ऐसा कितनी बार करोगे? थोड़ी देर में तुम्हारी सपना बनाने की क्षमता भी चुक जाती है। अब बार-बार मंदिर थोड़े ही जाओगे; वह भी नहीं जंचेगा बार-बार कि फिर मंदिर पहुंच गए, फिर घंटी बजने लगी। तुम्हें भी शक होने लगेगा कितनी बार मंदिर जा रहे, कितनी बार घंटी बज रही, मामला क्या है! थोड़ा संदेह पैदा होने लगेगा।

इसलिए मैं भक्ति पर इकट्ठा नहीं बोलता रहता, नहीं तो तुम सो जाओगे; ध्यान पर इकट्ठा नहीं बोलता, साक्षी पर इकट्ठा नहीं बोलता। इधर लीहत्जू पर बोला, जिन पर कर गया काम कर गया, जो जग गए जग गए; जो नहीं जगे, बात खतम हो गई, उनके

लिए अब ज्यादा देर बोलने से कोई मतलब नहीं है। तो दया पर बोलो, अष्टावक्र पर बोलो, कृष्ण पर बोलो।

इतना जो बोल रहा हूं, अलग-अलग ढंग से...पूछा ठीक ही है कि जो मैं कह रहा हूं वह तो एक ही बात है। निश्चित एक ही बात है; मेरे पास दूसरी बात कहने को है नहीं। लेकिन तुम इतने गहरे सोए हो कि मुझे बार-बार पुकारना पड़ेगा। मैं चुप भी रह जा सकता हूं, लेकिन बोल कर जब तुम न समझे तो शून्य को तो तुम क्या समझोगे?

सत्य शब्द में तो नहीं समाता; लेकिन अगर कोई समझने को राजी हो तो शब्द में से भी प्रवेश कर जाता है। सत्य तो मौन में ही प्रगट होता है, लेकिन अगर कोई समझने को राजी न हो तो मौन तो बिलकुल ही शून्य मालूम पड़ेगा; वहां से तो कोई संदेश न मिलेगा। बहुत ज्ञानी मौन भी रह गए, लेकिन उनके मौन को किसने समझा? कुछ ज्ञानी बोले। सौ से बोले तो निन्यानबे ने नहीं समझा। लेकिन एक ने समझा तो भी काफी। एक जग जाए तो भी काफी। तब एक शृंखला पैदा होती है, एक जग गया तो वह किसी और को जगाएगा।

जब तुम जगो तो यह सोच कर बैठ मत जाना कि ये शब्द तो कुछ काम के नहीं हैं। नहीं, इतनी करुणा रखना कि अगर सौ के साथ मेहनत की और एक भी जग गया तो भी बहुत है। इस पृथ्वी पर एक आदमी का जागरण भी बड़ी अनूठी घटना है। क्योंकि उस एक आदमी के जागरण का मतलब होता है, एक आदमी परमात्मा का मंदिर बन गया; अब उसके आसपास हवा फैलेगी, तरंगें उठेंगी, रोशनी झरेगी, सुगंध उठेगी, दूर-दूर तक उसका संगीत गूंजेगा। उस संगीत में शायद फिर कोई जग जाए। एक शृंखला पैदा होती है।

फिर शब्द भी तो परमात्मा के हैं, जैसा सब कुछ उसका है। सत्य भी उसका, शब्द भी उसके, शून्य भी उसका।

जैसी मेंहदी रची,
जैसे बेंदी रची
शब्द तुमने रचे
प्रेम--अक्षर थे ये दो अनर्थ के
अर्थ तुमने दिया
मैं--यह जो ध्वनि थी
अंध बर्बर गुफाओं की
अपने को भर कर
उसे नूतन अस्तित्व दिया
बाहों के घेरे ज्यों मंडप के फेरे
ममता के स्वर जैसे वेदी के
मंत्र-गुंजरित मुंह अंधेरे
शब्द तुमने रचे
जैसे प्रलयंकर लहरों पर

अक्षय-वट का एक पत्ता बचे
शब्द तुमने रचे।

शब्द भी परमात्मा का है, जैसे निःशब्द परमात्मा का है। तो जागना हो तो शब्द भी जगाएगा। न जागना हो, कसम खा ली हो, जिद कर रखी हो कि जागना नहीं है, तो फिर कुछ भी नहीं जगा सकेगा। निश्चित ही तुम जागने के लिए आतुर हो, अन्यथा क्यों आओ इतनी दूर, क्यों इतनी यात्रा करो? कहीं कोई प्यास है। अंतरतम में कुछ खाली है, कोई पुकार रहा है। जिस दिन तुम शून्य को समझने लगोगे उस दिन मैं चुप बैठ जाऊंगा। तब भी चुप्पी से यही कहूंगा जो अभी बोल कर कह रहा हूं। कहूंगा तो यही। कहने को तो कुछ और नहीं है। लेकिन अभी तो तुम शब्द भी नहीं समझ पा रहे। शब्द है स्थूल, शून्य है सूक्ष्म। शब्द है आकार, मौन है निराकार। अभी तो तुम आकार को भी नहीं बांध पा रहे, अभी तो आकार पर भी तुम्हारी आंख नहीं टिकती। तुम निराकार में तो बिलकुल भटक जाओगे।

जिसने पूछा है उसकी तकलीफ भी मैं समझता हूं। तकलीफ यह है कि तुम जगते तो हो नहीं, मैं जो बोलता हूं उसे इकट्ठा करने लगते हो। तब तुम्हारी बुद्धि पर बोझ बढ़ता है। तब तुम्हारा पांडित्य बढ़ता है। जानकारी बढ़ती है। ज्ञान तो होता दिखता नहीं और जानकारी बढ़ती है। धीरे-धीरे तुम विवादी हो जाते हो; दूसरों को समझाने लगते हो, खुद अभी समझे नहीं। धीरे-धीरे तुम बड़े सिद्धांतवादी हो जाते हो, बड़े शास्त्रवादी हो जाते हो। और सत्य से कुछ पहचान नहीं बनी। यही तकलीफ है।

खयाल रखना, मेरे शब्दों से शास्त्र मत बनाना और मेरे शब्दों को पांडित्य में रूपांतरित मत करना। अन्यथा तुम जागे तो नहीं, उलटे तुमने सोने का और आयोजन कर लिया। जैसे अलार्म ने तुम्हें उठाया तो नहीं, उलटे और सुला दिया। ऐसे अलार्म भी बनाए जा सकते हैं, ऐसे अलार्म हैं भी।

एक मेरे मित्र मेरे लिए एक रेडियो ले आए। वह अलार्म-घड़ी का भी काम करता है। उसमें छह बजे का अलार्म भर दो तो छह बजे का संगीत, वीणा बजेगी। तुम तो कर्कश अलार्म से भी नहीं जगते; अगर वीणा बजने लगेगी, तुम समझोगे, माता लौरी गा रही है। तुम और करवट ले कर और कंबल में दब कर और दुबक जाओगे। तुम कहोगे, यह अच्छा हुआ। नींद शायद टूटी-टूटी भी हुई जा रही थी, वह फिर जुड़ जाएगी।

मैं यहां लौरी नहीं गा रहा हूं। यहां तुम्हें जगाने की चेष्टा है। इसलिए कभी तुम्हें चोट भी करता हूं; कभी तुम्हें धक्के भी देता हूं। कभी तुम्हें बुरा भी लग जाता है; तुम तिलमिला भी जाते हो; कभी तुम नाराज भी हो जाते हो। स्वाभाविक है। जब जगाना हो किसी को तो उसकी नाराजगी भी लेनी पड़ती है।

तुमने किसी को जगाने की कभी कोशिश की है? चाहे वह खुद ही तुमसे कह कर सोया हो कि पांच बजे सुबह जगा देना; फिर भी वह ऐसा उठेगा जैसे तुम दुश्मन हो। कहा उसी ने था। लेकिन नींद को तोड़ा जाना कोई भी अच्छा नहीं समझता।

और यह एक नींद है--एक आध्यात्मिक नींद जिसमें तुम हो। मेरे शब्दों को सुनो। उनकी चोट को पकड़ो। उसकी चोट से जगने की चेष्टा करो। अगर जागरण न हो तो मेरे शब्दों को संगृहीत मत करना; उससे पंडित मत बनना; उसे भूल जाना। वह बेकार गया। फिर बोलूंगा। फिर दुबारा शब्द की चोट को सुनना। मेरे पास आ कर पंडित मत बनना। क्योंकि पापी तो शायद पहुंच भी जाएं, पंडित कभी नहीं पहुंचते।

एक चम्मच धूप अथवा एक चुटकी गंध
कर सको कर लो इन्हें तुम मुट्ठियों में बंद
स्वर नहीं हों, किंतु अक्षर बोलते तो हैं
बंद अर्थों को समय पर खोलते तो हैं
एक कलछुल चांदनी या आचमन भर छंद
कर सको कर लो इन्हें तुम मुट्ठियों में बंद।
दूब उगती है अगर, ऊपर उठेगी ही
क्या लपट हो कर अधोमुख ही घुटेगी ही?
एक पंचम टेर फागुन बौर के संबंध
कर सको कर लो इन्हें तुम मुट्ठियों में बंद।

मैं तुम्हें जो दे रहा हूं, ये अंगारे हैं। इन्हें अगर तुमने मुट्ठियों में बंद किया तो ये तुम्हें जगा देंगे; ये तुम्हें सुलाएंगे नहीं।

एक चम्मच धूप अथवा एक चुटकी गंध
कर सको कर लो इन्हें तुम मुट्ठियों में बंद।

मगर इनसे ज्ञान मत बनाना, अन्यथा अंगारा राख हो गया। ज्ञान तो राख है; बोध अंगार है। मैं जब कुछ तुमसे कहता हूं, तब मेरी तरफ तो वह अंगारा होता है; अब यह तुम पर निर्भर है कि तुम उस अंगारे को अंगारे की तरह झेलोगे अपने हृदय पर, पड़ने दोगे चोट, लगने दोगे घाव, जगोगे चौंक कर या बना लोगे राख उसकी, भर लोगे अपनी तिजोरी में, हो जाओगे थोड़े और ज्यादा ज्ञानी और खींचोगे बोझ, ढोओगे बोझ। तुम पर निर्भर करता है। मैंने तो जो कह दिया, कहते ही मेरे हाथ के बाहर हो गया; फिर तुम मालिक हो। तुम क्या करोगे? तुम कैसे उपयोग करोगे?

जिन्होंने पूछा है, जरूर उनके भीतर पांडित्य इकट्ठा हो रहा होगा, इसलिए घबराहट आई है। उसे इकट्ठा मत करो। या तो मुझे सुनो तो जागो। अगर जागना न हो पाए तो मैंने जो कहा है उसे भूल जाओ। उसकी स्मृति मत बांधो। उसकी गठरी मत ढोओ। क्योंकि अगर तुमने गठरी ढोनी शुरू की तो बड़ी मुश्किल है। तब मैं तुमसे कल फिर बोलूंगा। और तुम्हारी पुरानी गठरी इतनी भारी होगी; गठरी की दीवाल इतनी बड़ी होगी कि मैं जो बोलूंगा तुम तक पहुंच न पाएगा। वह तो चीन की दीवाल जैसी बीच में खड़ी रहेगी।

इसलिए ज्ञान जिसके पास बहुत ज्यादा इकट्ठा हो गया हो वह सुन ही नहीं पाता, उसकी श्रवण की क्षमता खो जाती है। क्योंकि सुनते वक्त वह कहता है, अरे यह तो मैंने जाना;

अरे यह तो मैंने सुना; यह तो मुझे पहले से पता है; यह तो उपनिषद में लिखा है, कुरान में लिखा है, बाइबिल में भी तो यही कहा है। जब मैं बोल रहा हूं, तब वह भीतर यह हिसाब बिठाता रहता है कि कहां लिखा, कहां पढ़ा, कहां सुना!

जब मैं बोलता हूं, तब तुम कोई हिसाब न बनाओ। क्योंकि उसी हिसाब में तुम चूक जाओगे।

चरित्र और व्यक्तिगत में भेद

चौथा प्रश्नः चरित्र और व्यक्तित्व में क्या भेद है?

चरित्र तो है ऊपर से आयोजित; तुमने आयोजन कर लिया, ऊपर से सम्हाल लिया। व्यक्तित्व है भीतर से स्फुरित; तुमने आयोजन नहीं किया, सम्हाला नहीं, प्रगट होने दिया। चरित्र तो ऐसा है जैसे प्लास्टिक के फूल और व्यक्तित्व ऐसा है जैसे गुलाब की झाड़ी पर लगा गुलाब। व्यक्तित्व जीवंत होता है; चरित्र मुर्दा। चाहे कितना ही पवित्र और पावन मालूम पड़े--और मालूम पड़ सकता है--लेकिन चरित्र मुर्दा होता है, ऊपर-ऊपर होता है, आरोपित होता है, झूठा होता है। व्यक्तित्व में एक सचाई होती है, निजता होती है। वह तुम्हारे प्राणों से आता है। उसकी जड़ें तुममें होती हैं।

मेरी सारी शिक्षा व्यक्तित्व के लिए है--चरित्र के लिए जरा भी नहीं। इसलिए मेरा सारा जोर ध्यान पर है, नीति पर नहीं। क्योंकि ध्यान से तुम्हारे भीतर जो सोया है, जगेगा। उसके जागरण से तुम्हारा चरित्र भी बदलेगा, लेकिन वह बदलाहट ऊपर-ऊपर नहीं होगी, वह बदलाहट भीतर से आएगी। अगर कुछ छूटेगा तो इसलिए छूटेगा कि तुम्हारे भीतर समझ की किरण उतरी है।

आमतौर से हम उलटा करते हैं; कुछ छोड़ना होता है तो हम छोड़ने का अभ्यास करते हैं।

एक मित्र आए। सिगरेट पीने की आदत है। वे कई वर्षों से छोड़ना चाहते हैं। फिर किसी ने उनको बता दिया कि ऐसा करो, तुमसे छूटती नहीं तो तुम कुछ और दूसरी आदत बना लो तो यह छूट जाएगी। तो वे नास सूंघने लगे। सिगरेट तो छूट गई, अब वे डिबिया लिए नास की बैठे रहते हैं। मैंने उनसे पूछाः इसमें सार क्या हुआ? पहले मुंह के साथ बदतमीजी करते थे, अब नाक के साथ करने लगे! बदतमीजी जारी रही। इसमें फर्क क्या हुआ?' तो वे कहने लगे, अब इसको कैसे छोड़ें? मैंने कहा, फिर कोई दूसरी पकड़ लो। तंबाकू खाने लगो, तो यह छूट जाएगी।

मगर यह कोई छूटना हुआ? समझ नहीं है। लोग कहते हैं कि सिगरेट पीने से हानि होती है तो छोड़ दो। मगर समझ नहीं है कि सिगरेट का जो इतना प्रभाव है तुम्हारे ऊपर, क्यों है? तुमने कभी खयाल किया, कब तुम सिगरेट पीते हो? जब भी तुम उदास होते हो, जब भी तुम बेचैन होते हो, जब भी तुम्हारे भीतर चैन नहीं होता, जब तुम्हें कुछ सूझता नहीं अब क्या करें क्या न करें--तो सिगरेट पीने लगे, धुआं बाहर-भीतर करने लगे। कुछ तो करने को मिला! जब तुम चिंतित होते हो तब तुम ज्यादा सिगरेट पीते हो। जब तुम निश्चिंत होते हो तब तुम कम सिगरेट पीते हो। तो असली सवाल सिगरेट नहीं है; असली सवाल यह सीखने

का है कि कैसे निश्चिंतता आए, कैसे चिंता जाए। सिगरेट तो ऊपर-ऊपर है। अगर चिंता चली जाए तो आदमी को तुम लाख समझाओ कि पी लो सिगरेट, सौ रुपए देते हैं एक सिगरेट के साथ, तो भी वह कहेगा, तुमने मुझे पागल समझा है? क्यों पी लूं? यह धुआं बाहर-भीतर ले जाना--किसलिए?

लेकिन जो आदमी पी रहा है, उसको तुम समझने की कोशिश करो। या तुम अगर पीते हो खुद तो तुम खुद ही देखना, जिस दिन चिंता थी उस दिन तुमने ज्यादा सिगरेट पी है, जिस दिन चिंता नहीं थी, उस दिन कम पी है। जिस दिन मन मस्त था, उस दिन भूल भी गए। जिस दिन मन मस्त नहीं था, पत्नी से झगड़कर चले, दफ्तर में मालिक से नाराजगी हो गई, रास्ते पर किसी ने धक्का दे दिया, कुछ उलटा-सीधा हो गया--तो उस दिन तुम खूब पीते हो, ज्यादा पीते हो; उस दिन तुम्हें चैन ही नहीं मिलता जब तक तुम न पीयो। तो इसका अर्थ केवल इतना हुआ कि यह आदत चिंता को छिपाने का उपाय है। अब अगर तुमने सिगरेट छोड़ दी और चिंता की आदत कायम रही तो नास नाक में डालने लगोगे, या कुछ और करोगे। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि तुम क्या करते हो।

तुमने देखा, छोटे बच्चे भी यही कर रहे हैं; थोड़े भेद से करते हैं। अगर मां नाराज हो गई तो बच्चा जल्दी से अंगूठा अपने मुंह में डाल लेता है--सिगरेट पी रहे हैं, वह शुरू कर दी उन्होंने सिगरेट पीना। अभी सिगरेट तो उनको कोई देगा नहीं और अभी सिगरेट लेने जा भी नहीं सकते, अभी अपने झूलने में पड़े हैं। मगर सिगरेट पीना शुरू कर दी उन्होंने। यही सज्जन सिगरेट पीएंगे कल। ये अंगूठा पी रहे हैं। असल में क्या मामला है? मां नाराज हो गई है, बच्चा घबरा गया है, चिंता पकड़ गई है कि पता नहीं अब दुबारा मां का स्तन मिलेगा कि नहीं मिलेगा। तो अब वह झूठा स्तन पैदा कर रहा है। वह अपना ही अंगूठा पी रहा है। वह कह रहा है: "कोई फिक्र की बात नहीं, अंगूठा तो अपने पास है! इसको ही पीएंगे।' वह उसको ही चूसने लगा। अंगूठा चूसते-चूसते सो जाता है। तुमने अक्सर देखा होगा, बच्चे जब भी अंगूठा चूसेंगे, थोड़ी देर में सो जाएंगे। तो जब भी बच्चे को नींद नहीं आती, अंगूठा चूसने लगता है।

तुमने देखा, छोटे बच्चे अपने कंबल का कोना मुंह में दबा लेंगे या अपने खिलौने को छाती से लगा लेंगे! तब उनको नींद आ जाएगी। ये सब आदतें पड़ रही हैं--खतरनाक आदतें हैं! फिर ये आदतें नए-नए रूप लेंगी। जैसे-जैसे उम्र बदलेगी, ये नए-नए ढंग पकड़ेंगी। लेकिन इन आदतों के पीछे जो मूल आधार है वह है चिंता! अगर मां बच्चे को सच में प्रेम करती हो तो बच्चे को ये आदतें न पड़ेंगी। और जब बच्चा अंगूठा मुंह में डालता है तो मां उसका अंगूठा खींच कर बाहर करती है--और उसको चिंतित कर देती है; और उसको घबरा देती है। वह और जल्दी अंगूठा डालता है। क्योंकि अब यह भी हद हो गई। मां तो राजी है नहीं उससे, अपना अंगूठा पीने की भी स्वतंत्रता नहीं है। और बच्चे में अपराधभाव भी पैदा हो जाता है। तो वह देखता रहता है, जब मां आ रही हो तो जल्दी से अंगूठा बाहर कर लेता

है, अपना हाथ छिपा लेता है। इधर मां गई कि उसने अंगूठा पीना शुरू किया। उसके जीवन में पाप की भी शुरुआत हो गई। वह सोचने लगा कि मैं कुछ गलती कर रहा हूं।

लोग सिगरेट भी पीते हैं तो अपराधभाव से पीते हैं। पी भी रहे हैं और डरे भी हुए हैं कि कहीं कोई माता कोई पिता आसपास तो मौजूद नहीं है।

चिंता को समझना जरूरी है। और चिंता का विसर्जन जरूरी है। चिंता विसर्जित हो जाए तो व्यक्तित्व में एक निखार आता है। तो कुछ चीजें अपने से गिर जाती हैं!

चरित्र का अर्थ होता है एक आदत को दूसरी आदत से बदल दो। चरित्र का अर्थ होता है एक झूठ को दूसरे झूठ से स्थापित कर लो। चरित्र का अर्थ होता है चमड़ी को रंगते जाओ; भीतर उतरो मत; अंतःकरण में झांको मत।

व्यक्तित्व का अर्थ होता है जो तुम्हारे भीतर है उसकी खोज करो। अगर चिंता है तो उसमें उतरो और गहरे जाओ। अगर क्रोध है तो उतरो और गहरे जाओ। अगर वासना है तो उसको पहचानो; ब्रह्मचर्य की कसमें मत खाओ। क्योंकि ब्रह्मचर्य की कसमों से कुछ भी न होगा; वासना न बदलेगी, और उपद्रव बढ़ जाएगा। वासना भीतर रहेगी, अब यह ब्रह्मचर्य भी ऊपर खड़ा हो जाएगा। अब तुम और बटे, और कटे, और द्वंद्व हुआ, और तुम्हारे भीतर दुविधा और चिंता के ज्वार आए। नहीं, वासना को समझो।

फर्क समझना। अगर तुम मंदिर में जा कर ब्रह्मचर्य का व्रत ले लो तो यह चरित्र होगा। क्योंकि अगर तुम समझ गए थे कि वासना व्यर्थ है तो मंदिर में जा कर व्रत लेने की कोई जरूरत न थी। बात खतम हो गई। अगर तुम समझ गए कि वासना व्यर्थ है; यह तुम्हारे अनुभव में आ गया कि वासना व्यर्थ है; एक दिन तुमने अचानक पाया कि इसमें कुछ भी सार नहीं है--महावीर कहते हैं इसलिए नहीं, बुद्ध कहते हैं इसलिए नहीं; तुमने जाना कि कुछ भी सार नहीं है--उसी दिन तुम्हारे जीवन में एक ब्रह्मचर्य का आविर्भाव होगा। यह ब्रह्मचर्य तो असली फूल है। यह व्यक्तित्व है। यह गुलाब है खिला हुआ झाड़ी पर।

मंदिर में जा कर कसम ले आए--किसी महात्मा के सामने, समाज के सामने, कसम खा ली कि अब ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करते हैं। यह प्लास्टिक का फूल है। भीतर वासना के कांटे चुभे रहेंगे।

जीवन समुद्र नहीं, सरिता या सोता है
लेकिन वह दो प्रकार का होता है
एक धारा वह है जो बर्फ को पा कर जम गई है
बहुत दूर चल लेने के बाद
अब एक जगह आ कर थम गई है।
यह धारा चाहे पावन हो चाहे पवित्र हो।
लेकिन वह जीवन का व्यक्तित्व नहीं, चरित्र है।
और दूसरी धारा वह है जिसमें आग बहती है
उल्लास यहां हिलोरे लेता है

वीरता कड़क कर बोलती है
इस धारा से प्रेम का तूफान उठता है
किनारे पर जो भी वृक्ष खड़े हैं
उसकी डाल-डाल डोलती है
जिनको धुओं के धब्बे लग गए
आग अपनी तरलता से उन्हें भी धोती और नहलाती है
यह धारा व्यक्तित्व कहलाती है।

एक तो चरित्र है--थोथा-थोथा, आरोपित, चमड़ी से ज्यादा गहरा नहीं। कुरेदो चरित्र को और जल्दी ही तुम पाओगे सब कुछ गड़बड़ हो गया। जरा सा कुरेदो और सब गड़बड़ हो जाता है। व्यक्तित्व कितना ही खोदते चले जाओ, तुम वही स्वाद पाओगे। चमड़ी से ले कर आत्मा तक व्यक्तित्व का एक ही स्वाद होता है--निर्द्वंद्व, अद्वैत। एक ही स्वाद होता है। अगर प्रेम है तो तुम कितना ही खोदते जाओ व्यक्तित्व वाले व्यक्ति में, प्रेम ही पाओगे, अंत तक प्रेम पाओगे। चरित्र वाले व्यक्ति के साथ ऐसी झंझट में मत पड़ना। अंत तक प्रेम पाओगे। चरित्र वाले व्यक्ति के साथ ऐसी झंझट में मत पड़ना। प्रेम ऊपर-ऊपर होगा और जरा तुमने खरोंच दी उसकी चमड़ी तो क्रोध निकल आएगा, घृणा निकल आएगी, वैमनस्य निकल आएगा।

चरित्र वाले आदमी से जरा दूर-दूर रहना। चरित्र वाला आदमी भरोसे का नहीं है। चरित्र वाला आदमी झूठा आदमी है। ऐसे ही जैसे कच्चे रंग के कपड़े, बाहर निकलो तो डर लगता है कि कहीं पानी न गिर जाए, नहीं तो सब गड़बड़ हो जाए; कहीं धूप न पड़ जाए, नहीं तो रंग उड़ जाए! कच्चे रंग का नाम है चरित्र। और पक्के रंग का नाम है व्यक्तित्व। लेकिन पक्का रंग तभी होता है जब भीतर से आता है, प्राणों से आता है।

मेरी सारी चेष्टा तुम्हें व्यक्तित्व देने की है--चरित्र देने की नहीं। व्यक्तित्व आत्मा है।

शंका वातायन है

पांचवां प्रश्नः मैं शंकालु हूं; श्रद्धा चाहता हूं, पर सधती नहीं। संदेह ही संदेह उठे जाते हैं। मुझे मार्ग बताएं!

चिंता न करो। शंकालु होना स्वाभाविक है। शंका मनुष्य का स्वभाव है। उसकी निंदा भी न करो। परमात्मा ने जो भी दिया है उसका कुछ न कुछ उपयोग है। उपयोग सीखो। निंदा तो छोड़ ही दो। मेरे साथ जो चलने को तैयार हुए हैं वे निंदा को तो छोड़ ही दें। मेरे पास निंदा तो किसी बात की नहीं है। अगर शंका है तो शंका का ही उपयोग करेंगे। अगर जहर है तो जहर की दवा बनाएंगे। जहर भी औषधि बन जाता है--समझदार चाहिए आदमी।

शंका का क्या अर्थ है? शंका का इतना ही अर्थ है कि तुम विचारपूर्ण हो, कि तुम अंधे नहीं हो, कि तुम हर कुछ नहीं मान लेते हो। बिलकुल ठीक है। इसमें बुरा क्या है? इसमें परेशान होने की बात क्या है? हर कुछ मान लेने की जरूरत भी नहीं है।

मैं तुमसे कहता भी नहीं कि तुम परमात्मा को मान लो। मैं तो तुमसे कहता हूं, तुम जीवन को गौर से देखो। तुम पाओगे यहां कुछ भी नहीं है। तुम जीवन के भीतर जरा झांको और

तुम पाओगे राख ही राख है। तब क्या तुम्हारे मन में यह प्रश्न न उठेगा कि कोई और भी जीवन हो सकता है या नहीं? अगर तुम वस्तुतः शंकालु हो तो जीवन पर शंका को लगा दो। अब तक तुमने जो प्रेम किया है उस में अपनी शंका को लगा दो कि यह प्रेम है या नहीं? अब तक तुमने धन कमाया है, अपनी शंका को धन पर लगा दो। खोजो कि धन धन है या सिर्फ ठीकरे इकट्ठे कर रहे हो, कल मौत आएगी और सब समाप्त हो जाएगा। अब तक तुमने जिस दिशा में अपने जीवन को लगाया है, उसी दिशा में अपने संदेह, अपनी शंका को भी नियोजित कर दो। और तुम चकित हो जाओगे, संसार में अगर संदेह लगा दिया जाए तो तुम संसार में ज्यादा दिन तक गृहस्थ नहीं रह सकते।

अब तुमने क्या किया है? तुमने उलटा काम कर लिया है: आस्था को तो लगा दिया है संसार में और संदेह लगा दिया है परमात्मा में। जरा बदलो। संदेह को लगा दो संसार में। और तब तुम अचानक पाओगे: जो आस्था संसार में लगी थी उसने नया स्रोत खोजना शुरू कर दिया। क्योंकि आस्था कहीं तो लगेगी।

मैंने अब तक ऐसा आदमी नहीं देखा जिसमें आस्था न हो और ऐसा आदमी भी नहीं देखा जिसमें संदेह न हो। दोनों साथ-साथ मिलते हैं--मिलने ही चाहिए। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जैसे दिन और रात हैं, ऐसे ही शंका और श्रद्धा हैं। मगर फर्क क्या है? धार्मिक आदमी संसार के प्रति तो संदेह को लगा देता है और परमात्मा के प्रति श्रद्धा को। और अधार्मिक आदमी परमात्मा के प्रति संदेह को लगा देता है और संसार के प्रति श्रद्धा को। बस इतना फर्क है। इससे ज्यादा कोई फर्क नहीं है। दोनों के पास दोनों संपदाएं हैं। अब यह तुम्हारे हाथ में है।

मैं तुमसे अभी श्रद्धा की बात न करूंगा क्योंकि तुम कहते हो श्रद्धा बैठती नहीं। छोड़ो। संदेह तो बैठता है! संदेह में तो मजा आता है! तो संसार के प्रति संदेह करो। अपने पूरे जीवन को फिर से संदेह से भरो। तुम चकित हो जाओगे, यहां संसार के साथ संदेह बैठा, चीजें झूठ होने लगीं, व्यर्थ होने लगीं, पद, मान-मर्यादा सब व्यर्थ होने लगा। अचानक तुम पाओगे एक नई दिशा खुलने लगी श्रद्धा की।

शंकाएं वातायन हैं
जिनसे बुद्धि सीमा के पार झांकती है
और जो सत्य वह ठीक से नहीं बोल सकती
उसे तुतलाहट में आंकती है।
शंकाएं सोपान हैं
विश्वास सबसे ऊपरी मंजिल है
एक समय शंकाएं पाप समझी जाती थीं
पर अब हम शंका से घृणा नहीं, प्यार करते हैं।
धर्म बार-बार अंधियारे में लुप्त हो जाता है
और शंकाओं के जरिए हम बार-बार

उसका नया आविष्कार करते हैं।

शंकाएं सोपान हैं; विश्वास सबसे ऊपरी मंजिल है। शंकाओं को सीढ़ियां बनाओ। धन पर शंका करो और ध्यान पर श्रद्धा आनी शुरू हो जाएगी।

कल एक युवक ने संन्यास लिया। उसका नाम था धनेश। मैंने उसे नाम दियाः ध्यानेश। हूं...अब हो गया खतम। धन से हटे, अब ध्यान पर लगे।

शरीर में बड़ी श्रद्धा है; संदेह करो। शरीर पर संदेह आया कि आत्मा पर संदेह करने से कैसे बचोगे?

तो मैं तुमसे नहीं कहता जैसे तुम्हारे साधारण महात्मा तुमसे कहते हैं कि संदेह करो ही मत, शंका करो ही मत। उनको कुछ पता नहीं है। मैं तो तुमसे कहता हूं, संदेह का ठीक-ठीक उपयोग करो। जिंदगी में बहुत जगहें हैं जहां संदेह करना जरूरी है। पूरी जिंदगी संदेह के योग्य है। एक-एक पर्त को उघाड़ो और देखो--और तब तुम पाओगे कि इन्हीं संदेहों के सहारे सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते तुम उस परमात्मा के विश्वास पर, श्रद्धा पर पहुंच गए हो।

"नहीं' कहना सीखा, "हां' भी आएगा। जब तुम्हारी "नहीं' में बल होगा तो तुम पाओगे "हां' भी आ रहा है।

इसलिए भयभीत मत होओ, चिंतातुर भी मत होओ। मैं तो नास्तिक को भी संन्यास देने को तैयार हूं। क्योंकि मैं मानता हूं कि अक्सर नास्तिक आस्तिक से ज्यादा ईमानदार होते हैं। आस्तिक तो अक्सर पाखंडी होते हैं। नास्तिक भी पाखंडी हो सकते हैं, लेकिन कम से कम हिंदुस्तान में तो नहीं; रूस में होते हैं। हिंदुस्तान में तो नास्तिक होना जरा कठिन बात है। यहां तो जो नास्तिक हो भी वह भी आस्तिक दिखलाता है, क्योंकि उसी में सुविधा है। सब आस्तिकों की भीड़ है चारों तरफ, कौन नास्तिक होने की झंझट ले! यहां तो नास्तिक केवल वही हो सकता है जिसमें सच में हिम्मत हो।

अगर तुम शंकालु हो, नास्तिक हो, संदेह से भरे हो--मेरे संन्यास का द्वार तुम्हारे लिए खुला है। तुम्हें और कोई संन्यास देने वाला दुनिया में नहीं मिलेगा, यह मैं तुम्हें बताए देता हूं। क्योंकि इतने हिम्मतवर आस्तिक ही दुनिया से खो गए जो नास्तिक को भी भीतर ले लें। पर यह मंदिर सबके लिए खुला है। तुम आओ। तुम्हारी शंकाओं की सीढ़ियां बना लेंगे। उन्हीं सीढ़ियों से तुम मंदिर में पहुंच जाओगे। एक बात सदा स्मरण रखो कि परमात्मा ने जो भी दिया है, वह व्यर्थ तो नहीं हो सकता, चाहे हमें उसका उपयोग पता न हो। तो उपयोग खोजो। मगर जो भी है, उसका कुछ न कुछ उपयोग होगा।

मैंने सुना है, एक घर में सदियों से एक अपूर्व ढंग का वाद्य रखा था। सितार जैसा लगता था, लेकिन बहुत तार थे उसमें और बहुत बड़ा था। और घर के लोगों को किसी को भी याद न थी कि इसको कैसे बजाया जाए। और वह घर में जगह भी घेर रहा था। बैठकखाना आधा उसने घेर रखा था। और उस पर कचरा-कूड़ा भी इकट्ठा होता था। और बच्चे कभी उसको छेड़ देते तो घर के लोगों को विघ्न-बाधा भी पड़ती थी। कभी रात में कोई चूहा कूद जाता तो नींद भी टूट जाती थी। आखिर उन्होंने एक दिन तय किया कि इससे हम छुटकारा पाएं,

इसको रखे-रखे क्या सार है! तो उन्होंने उसे उठा कर सड़क के बाहर कचरे-घर पर डाल दिया। वे लौट कर भी नहीं आ पाए थे घर कि अपूर्व संगीत उठना शुरू हुआ। ठगे से खड़े रह गए। लौट कर भागे। भीड़ लग गई। एक भिखारी जो राह के किनारे से गुजर रहा था, वह उस वाद्य को उठा कर बजाने लगा। घंटे भर तक लोग मंत्रमुग्ध रहे। जब भिखारी बजा चुका तो उस वाद्य के मालिकों ने, जो उसे फेंक गए थे कचरे-घर में, वाद्य को छीनना चाहा और भिखारी से कहा, यह वाद्य हमारा है। क्योंकि उनको पहली दफे पता चला कि यह तो अपूर्व है। ऐसा संगीत तो कभी सुना न था।

लेकिन भिखारी ने कहा, वाद्य उसी का हो सकता है जो बजाना जानता है। तुम तो इसे फेंक चुके, अब तुम्हारी इस पर कोई मालकियत नहीं है। और तुम्हारी मालकियत का मतलब भी क्या, तुम करोगे क्या? फिर जा कर यह तुम्हारे घर में जगह घेरेगा। वाद्य तो उसका है जो बजाना जानता है।

मैं तुमसे कहता हूं, जीवन भी उसका है जो बजाना जानता है। और यहां कोई भी चीज व्यर्थ नहीं है। संदेह भी व्यर्थ नहीं है, इसे भी फेंकना मत, इसकी सीढ़ियां बना लेंगे। और यही सीढ़ियां एक दिन तुम्हें सत्य तक पहुंचा देती हैं।

हृदय से चलो

आखिरी प्रश्नः यह न सोचा था तेरी महफिल में दिल रह जाएगा

हम यह समझे थे चले आएंगे दम भर देख कर।

अच्छा हुआ दिल रह गया। क्योंकि दम भर देख कर चले जाते तो उसका इतना ही अर्थ होता कि देखा ही नहीं। दम भर भी देख लिया तो दिल रह ही जाएगा। एक श्वास भी मेरे साथ ले जी तो दिल रह ही जाएगा। एक बार भी मेरी आंख में आंख डाल कर देखा, तो दिल रह ही जाएगा--रह ही जाना चाहिए। इसीलिए सारा प्रयोजन है यहां कि किसी तरह दिल रह जाए।

कौन नया परदेसी आया फिर सपनों के गांव में
किसने किया बसेरा फिर से इन पलकों की छांव में
मंदिर कौन उठाता है मेरे मन के वीरान में
कौन मनाता है जन्मोत्सव साधों के शमशान में
भावों का धन कौन लुटाता मुझ पर यहां अभाव में
मेरे नभ पर छाए फिर से कौन बदरवा सावनी
मेरे आंगन में गाता है कौन प्रणय की लावनी
किसका आकुल आमंत्रण है घन की घुमड़ घिराव में
कौन मुझे जो शह देता है अपनी गोटें मार कर
कौन छली जो जीत रहा है मुझको मुझसे हार कर
मन का हीरा हार गई हूं मैं पहले ही दांव में
चौंक उठा मेरा सूनापन यह किसकी पदचाप से
मेरे मन की जड़ता जैसे छूट रही अभिशाप से

जगत तरैया भोर की

यह वरदानी परस छिपा था कौन राम के पांव में
कौन नया परदेसी आया फिर सपनों के गांव में
किसने किया बसेरा फिर से इन पलकों की छांव में।

तुम्हारे हृदय बहुत दिन से वीरान था। तुम्हारा दिल बहुत दिन से सोया था। तुम्हारे दिल की वीणा बहुत दिन से बजी नहीं। अच्छा हुआ तुम आ गए। यही सोचकर आए थे कि दम भर में लौट आएंगे देख कर, चलो इस बहाने ही आ गए।

इस जीवन में चमत्कार घटते हैं। आस्तिक भी कभी-कभी पदार्पण हो जाता है किसी किरण का। बिना बुलाए भी कभी-कभी परमात्मा द्वार पर दस्तक देता है। अनजाने, तुम प्रतीक्षा भी न करते थे कि कभी-कभी उसके हाथ में हाथ पड़ जाता है। उस समय हिम्मत करना। उस समय भयभीत मत होना। उस दिन अनजान अपरिचित के साथ चल पड़ना।

अब हृदय को ले कर भाग मत जाना। बुद्धि तो कहेगी भाग चलो। बुद्धि तो बड़ी कायर है। बुद्धि तो कहेगी, "कहां उलझे जाते हो, भाग चलो!' भाग मत जाना। क्योंकि भाग्य के खुलने का क्षण चूक जाओगे, अगर भाग गए। भाग्यवान हो कि हृदय यहां अटका।

जब से तुम प्राण मिले मुझको
यह जीवन जीवन लगता है।

थोड़ी हिम्मत रखी तो जीवन में एक नया प्रकाश, एक नया आलोक, एक नया छंद पैदा होगा।

जब से तुम प्राण मिले मुझको
यह जीवन जीवन लगता है
जब से तुम करुणा बन बरसे
हर मौसम सावन लगता है।
इसका पहले जीवन क्या था
जीने भर का एक बहाना
उम्र बोझ थी, सांस कर्ज थी
जैसेतैसे सभी चुकाना
लेकिन जब से तुम मिले मुझे
सब उत्सव पावन लगता है।

रुक जाना, भाग मत जाना। जीवन उत्सव बन सकता है। जीवन पावन बन सकता है।

तुम बिन यह मेला जगती का
मुझको था मरघट-सा सूना
जब तक न मिले थे तुम मुझको
हर दुख बनता था दूना-दूना
लेकिन तुम जब से मुझे मिले
मेला मनभावन लगता है।

यही मैं चाहता हूं कि संसार से तुम भागो भी न। बाजार की भीड़ तुम छोड़ो भी न। भीड़ मनभावन हो जाए। भीड़ में भी भगवान दिखाई पड़ने लगे। जीवन के छोटे-छोटे कृत्य भी पूजा और अर्चना बन जाएं।

पहले था सांप बना जीवन
मन पत्थर दुखी अहिल्या-सा
मुझको लगता था यह जीवन
खंडित हो गई तपस्या-सा
पाया क्या स्पर्श तुम्हारा, यह
मन-पाहन चेतन लगता है।
जीवन पहले मातम ही था
जब तुम आए, त्योहार हुआ
मेरा जीवन था तम ही तम
जब तुम आए उजियार हुआ
राधा के हित फिर गोकुल से
ज्यों लौटा मोहन लगता है।

हृदय रह जाए तो रह जाने देना। उसे यहीं छोड़ जाना। बुद्धि अपने साथ ले जाना। क्योंकि मुझे तुम्हारी बुद्धि से कुछ लेना-देना नहीं है। तुम्हारा प्रेम यहां रह जाए तो तुम्हारे प्राणों का धागा मेरे हाथ में रह गया; तो मैं तुम्हें रूपांतरित कर लूंगा; तो तुम्हें बदलने में कोई कठिनाई न आएगी। बदलाहट सुनिश्चित है। आश्वस्त हो सकते हो कि बदलाहट होगी। क्योंकि सारी बदलाहट हृदय से आती है, दिल से आती है; और सारी रुकावट बुद्धि से आती है। तो बुद्धि तो तुम अपनी ले जाओ और दुबारा जब आओ तो बुद्धि ले कर आना भी मत, बुद्धि घर ही छोड़ आना। और हृदय तुम यहां छोड़ जाओ।

तो अभी तुम्हारे कपड़े रंग डाले हैं, अब तुम्हारा हृदय भी रंग डालेंगे। मैं तो रंगरेज हूं; तुम अगर तैयार हो तो हृदय को भी प्रभु के रंग में रंग लेंगे। और रंग जाए हृदय, तभी तुम पाओगे कि जो पत्थर जैसा जीवन था वह पहली बार जीवंत हुआ, चैतन्य जगा; जो अब तक मिट्टी का दीया था खाली-खाली, उसमें ज्योति उतरी।

यह जीवन एक परम मंदिर बनने की संभावना है। इससे कम पर राजी मत होना। छोटी-छोटी बात से राजी मत होना। असंतोष को जगाए रखना। जब तक कि परमात्मा ही भीतर प्रवेश न कर जाए, तब तक असंतुष्ट रहना। संसार से हो जाना संतुष्ट और परमात्मा के प्रति बने रहना असंतुष्ट। यह प्यास जलाएगी भी, जगाएगी भी, रूपांतरित भी करेगी।

आज इतना ही।

सातवां प्रवचन

दिनांक १७ मार्च, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

दया कह्यो गुरुदेव ने, कूरम को व्रत लेहि।
सब इंद्रिन कूं रोकि करि; सुरति स्वांस में देहि।।
बिन रसना बिन माल कर, अंतर सुमिरन होय।
दया दया गुरुदेव की, बिरला जानै कोय।।
हृदय कमल में सुरति धरि, अजप जपै जो कोय।
तिमल ज्ञान प्रगटै वहां, कलमख डारै खोय।।
जहां काल अरु ज्वाल नहिं, सीत उस्न नहिं बीर।
दया परसि निज धाम कूं, पायो भेद गंभीर।।
पिय को रूप अनूप लखि, कोटि भान उंजियार।
दया सकल दुख मिटि गयो, प्रगट भयो सुखसार।।
अनंत भान उंजियार तहं, प्रगटी अदभुत जोत।
चकचौंधी सी लगति है, मनसा सीतल होत।।
बिन दामिन उंजियार अति, बिन घन परत फुहार।
मगन भयो मनुवां तहां, दया निहार-निहार।।
जग परिनामो है मृषा, तनरूपी भ्रम कूप।
तू चेतन सरूप है, अदभुत आनंद-रूप।।

धर्म है कछुआ बनने की कला
इसने भी मन को दुखा दिया
उसने भी मन को दुखा दिया
कोई न मिला ऐसा लेकिन
जो दुखते मन को मरहम दे
मर गए दीए सब स्नेह बिना
बाती न कहीं जल पाती है
है ज्योति-परि तो कैद
तमिस्रा के निर्जन कारागृह में
सब के घर तम का शासन है
किरण न कहीं मुसकाती है
फिर कहां आरती सुलगेगी
फिर कौन करेगा रश्मि-तिलक

फिर कौन मुझे भेंटे प्रकाश,

मेरी मावस को पूनम दे!

जो तुम्हारी मावस को पूनम दे, वही गुरु। जो तुम्हारे अंधेरे को उजियार से भर दे, वही गुरु। जो तुम्हारे जीवन में, तुम्हारी पहचान कैसे हो, इसका सूत्र दे दे, वही गुरु।

आज के सूत्रों में दया ने अपने गुरु की कृपा की बात कही है और उस गुरु-कृपा से जो उसे अनुभव हुए हैं उनकी बात कही है। सूत्र बहुत अनूठे हैं, क्योंकि सूत्र ध्यान का सार हैं। समझे तो तुम्हारे जीवन में भी खूब उजियारा हो सकता है। समझे तो तुम भी परम आनंद में मग्न हो सकते हो। जैसे दया कहती है:

"बिन दामिन उंजियार अति, बिन धन परत फुहार।

मगन भयो मनुवां तहां, दया निहार-निहार।।'

ऐसा बीज तुम भी ले कर चले हो। ऐसी संभावना तुम्हारी भी है। इसी बीज को ठीक भूमि न मिली होगी, कि ठीक माली नहीं मिला, कि ठीक ऋतु में तुमने बोया नहीं, कि ठीक सूरज की रोशनी नहीं मिली, इसलिए बीज बीज रह गया है; फूट जाए तो तुम्हारे भीतर भी अनंत उजियारा होगा; फूट जाए तो तुम भी मगन हो रहोगे। जो दिखाई पड़ेगा..."दया निहार-निहार'...जो अनुभव में आएगा, जो अमृत तुम पर बरसेगा, तभी तुम जानोगे कि अब तक जो जीवन में दुख मिले..."इसने भी मन को दुखा दिया, उसने भी मन को दुखा दिया'। जहां गए, मन दुखा ही। अब तक मनवा मगन कहां हुआ? जिन-जिन से लगाव लगाया, उन-उन से भी कांटे ही मिले। अब तक मनवा मगर कहां हुआ? कभी धन ने दुखाया, कभी पद ने दुखाया, कभी संबंधियों ने दुखाया, प्रियजनों ने दुखाया, अपनों ने, परायों ने, इसने उसने, सभी ने मन को दुखाया है। घाव लिए घूमते हो छाती पर। इसलिए तो भीतर देखते भी नहीं, क्योंकि भीतर घावों के अतिरिक्त और कुछ है भी नहीं। लाख कहें संतपुरुष कि झांको भीतर, तुम नहीं झांकते। क्योंकि तुम जानते हो कि वहां न तो कोई उजियारा है, न वहां कोई अनंत-अनंत सूर्यों का प्रकाश है, न वहां कोई चांद है न तारे हैं; वहां तो गहन अंधकार है; मवाद है घावों की और पीड़ा के रिसते नासूर हैं, जन्मों-जन्मों में जो तुमने इकट्ठे किए हैं।

जब तक तुम सोचते हो कि दूसरे से सुख मिलेगा, तब तक बार-बार यह होगा: "इसने भी मन को दुखा दिया, उसने भी मन को दुखा दिया। कोई न मिला ऐसा लेकिन, जो दुखते मन को मरहम दे।' तुम जब तक सोचते हो दूसरे से सुख मिल सकता है, तब तक तुम दुख पाओगे। सुख तुम्हारा स्वभाव है; दूसरे से मिल सकता तो मिल गया होता। कितने जन्मों से तो तुमने दूसरों के सामने भिक्षा-पात्र फैला कर भीख मांगी है। और कभी तुमने यह भी न देखा, वे तुमसे भीख मांग रहे हैं! तुम उनसे भीख मांग रहे हो। भिखमंगे भिखमंगों के सामने खड़े हैं। तुम पत्नी से भीख मांग रहे हो कि सुख दे दे; पत्नी तुमसे भीख मांग रही है कि सुख दे दे। अंधापन बड़ गहरा है। अगर पत्नी के पास ही सुख होता तुम्हें देने को तो तुमसे सुख मांगती? या तुम्हारे पास सुख देने को होता तो तुम पत्नी से सुख मांगते? हम

मांगते वही हैं जो हमारे पास नहीं है। जो हमारे पास है उसे तो हम देते हैं। जो हमारे पास नहीं उसे हम मांगते हैं।

तुम अगर कौर से आंख खोल कर देखोगे तो संसार में सभी को सुख मांगते पाओगे; प्रेम मांगते पाओगे। लेकिन न तो प्रेम है लोगों के पास, न सुख है। मांगने में ही भूल हुई जा रही है। और चूंकि तुम बाहर ही बाहर मांगते चले जाते हो, तुम्हें याद भी नहीं रह गई कि जिसे तुम मांग रहे हो वह तुम्हारा स्वभाव है। धर्म इसी क्रांति का नाम है। जिस दिन तुम्हें याद आता है, "अब मांगना बंद करूं, एक बार अपने भीतर भी तो देख लूं, पूरा-पूरा देख लूं कि मैं कौन हूं, हो सकता है कि जो बाहर नहीं मिला वहां हो'...वहां होना ही चाहिए। अगर वहां न होता तो तुम मांगते भी नहीं। क्योंकि हम वही मांग सकते हैं जिसका कोई अनुभव गहरे में हमें हो रहा हो। सारा जगत आनंद की तलाश कर रहा है। अगर आनंद को तुमने जाना ही न होता, पहचाना ही न होता, आनंद से कुछ तुम्हारे संबंध ही न होते, तो अपरिचित की खोज कोई कर थोड़े ही सकता है। अनजान को तो खोजोगे भी कैसे? जिसका तुम्हें कोई पता-ठिकाना नहीं, उसकी तुम खोज में कैसे निकलोगे? कहीं कुछ गहरे में भनक है। कहीं दूर मन के अंधेरे में भी कोई दीया जल रहा है, कभी-कभी जाने-अनजाने शायद उसकी झलक तुम्हारी आंखों में पड़ जाती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि तुम सोचते हो कि दूसरे से मिल रहा है, तब भी उसी की झलक के धोखे में पड़ते हो। कभी संगीत सुनते-सुनते लगता है सुख मिला। लेकिन नहीं, संगीत से क्या सुख मिलेगा? संगीत सुनते-सुनते कुछ और हो गया। संगीत सुनते-सुनते तुम रस में डूब गए अपने; संगीत बहाना हो गया। संगीत के कारण भूल गईं चिंताएं जगत की, भूल गए घरद्वार, भूल गए आपाधापी, भूल गए रोज के चक्कर। संगीत के कारण इतना हुआ कि संसार का विस्मरण हुआ। और जैसे ही संसार का विस्मरण होता है, स्वयं का स्मरण आना शुरू होता है। उस स्मरण के कारण ही तुम्हें लगता है सुख मिला।

संगीत से कभी किसी को सुख नहीं मिला। सुख तो आता है भीतर से। संगीत तो बहाना है। ऐसा ही कभी संभोग में सुख मिलता है। वह सुख भी भीतर से आता है; संभोग तो बहाना है। तुम्हें जब भी कभी सुख मिला है, अगर थोड़ी सी किरण तुम्हारे जीवन में कभी आई, थोड़ी सी झलक आई और गई, तो सदा भीतर से आई है। लेकिन तुम्हारी आंखें बाहर पर लगी हैं। तो जब भीतर से आती है किरण, तब भी तुम सोचते हो बाहर से आई है। तब भी तुम धोखा खा जाते हो।

देखा तुमने, कुत्ता सूखी हड्डी को चबाता है! सूखी हड्डी में कुछ भी नहीं है, कोई रस नहीं है; लेकिन कुत्ता बड़ा मगन हो कर चबाता है। तुम सूखी हड्डी कुत्ते से छीनना चाहो तो कुत्ता नाराज हो जाएगा। कुत्ता झपटेगा, हमला कर देगा। सूखी हड्डी में रस तो है नहीं, फिर कुत्ते को क्या रस मिलता होगा? जब कुत्ता सूखी हड्डी चबाता है तो उसके मुंह में घाव हो जाते हैं सूखी हड्डी के कारण। चोट लगती है। मुंह के भीतर की कोमल चमड़ी छिल जाती है। खून बहने लगता है। वह उसी खून को चूसता है। वह सोचता है हड्डी से आ रहा है। स्वभावतः,

क्योंकि जब तक हड्डी मुंह में नहीं ली थी, तब तक नहीं आ रहा था। तो तर्क तो साफ है। तर्क तो वही जो तुम्हारा है। अगर कुत्ता भी अपनी बात स्पष्ट कर सके तो कहेगाः जब तक हड्डी मुंह में न ली थी तब तक तो रस आया नहीं था; हड्डी मुंह में ली, तब रस आया है। निश्चित ही हड्डी से आया, इसलिए हड्डी छोड़ने को राजी नहीं। हड्डी से केवल घाव बन रहे हैं मुंह में; अपना ही खून बह रहा है; अपने ही खून को फिर गटक रहा है।

ठीक यही हालत है। जब तुम्हें संगीत से सुख मिलता है तब भी सुख भीतर से आया। तुमने अपना ही रस पीया। जब संभोग से मिलता है, तब भी तुम्हारे भीतर से ही आया; तुमने अपना ही रस पीया।

जब भी तुम्हें कहीं सुख मिला है--हिमालय गए, देखे उत्तुंग शिखर, हिमाच्छादित, और क्षण भर को ठगे रह गए, अवाक, अहा का एक भाव मन में उठा--उस क्षण जो सुख बहा, वह तुम्हारे भीतर से बहा। हिमालय ने निमित्त का काम किया। हिमालय की शांति ने, हिमालय के मौन ने, हिमालय की अपूर्व सौंदर्य की उपस्थिति ने क्षण भर को तुम्हें तुम्हारी आपाधापी से तोड़ दिया। इधर टूटी आपाधापी, इधर मन का व्यापार बंद हुआ क्षण भर को--बहा रस।

मन रोके है रस के बहाव को। मन का अर्थ होता है दूसरे में उत्सुकता। जहां मन ठहर गया, दूसरे में उत्सुकता खो गई, वहीं तुम अपने स्रोत में गिर जाते हो। और वहां है रस की धार। रसो वै सः!

उपनिषद कहते हैंः परमात्मा रसरूप है। तुम परमात्मा से बने। सारा जगत परमात्मा से बना। कंकड़-पत्थर से ले कर आकाश के चांदत्तारों तक, देह से लेकर आत्मा तक सब परमात्मा से बना है।

उपनिषद कहते हैंः परमात्मा रसरूप है। तो हम सब रस से ही निर्मित हैं। रस हमारा स्वभाव है। एक बार हम अपने को पहचानना शुरू कर दें, तो सुख ही सुख है। धर्म है अपने से पहचान। संसार है दूसरे में सुख की खोज। धर्म है अपने में सुख की खोज। संसार में किसी को कभी सुख नहीं मिला। जिनको कभी सुख मिला, वे वे ही लोग थे जो अपने में गए--किसी बुद्ध को, किसी कबीर को, किसी कृष्ण को, किसी क्राइस्ट को। जब भी कभी किसी को सुख मिला है इस पृथ्वी पर तो निरपवाद रूप से एक ही कारण से मिला है कि वह अपने में गया। किस ढंग से गया--ढंग अलग-अलग होंगे। कोई नाच कर गया। कोई संगीत से गया। कोई मंत्र से गया। कोई तंत्र से गया। कोई भक्ति से गया। कोई ध्यान से गया। लेकिन जो भी उपाय किया--उपाय तो सिर्फ उपाय है।

तुम यहां तक आए, कोई रेलगाड़ी से आया, कोई हवाई जहाज से आया, कोई मोटरगाड़ी से आया, कोई पैदल ही चला आया होगा। कोई घोड़े पर चढ़ कर आ गया होगा। कोई बैलगाड़ी पर सवार हो कर आया हो। इसमें कुछ फर्क नहीं पड़ता कि तुम कैसे आए--आ गए! आते ही, तुम कैसे आए, इसका कोई मूल्य नहीं है। तुम भक्ति पर सवार हो कर आए, भाव की

यात्रा की, कि ज्ञान पर सवार हो कर आए, ध्यान की यात्रा की, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। ये सब बहाने हैं। ये सब बहाने हैं तुम्हारे भीतर आत्मस्मृति जगा देने को।

सूखी शाखें, सूखे पत्ते, कैसा है यह पेड़

मन तरसे है, ढूंढ न पाए प्यार-पवन की छेड़!

तुम्हारा जीवन ऐसा है--

सूखी शाखें, सूखे पत्ते, कैसा है यह पेड़!

सब सूखा है। क्योंकि तुम रस के लिए कहीं और आंखें उठा कर देख रहे हो। रस आता है तुम्हारी जड़ों से। रस बहता है तुम्हारे ही स्रोत से। और तुम अपने स्रोत को बिलकुल विस्मरण कर गए हो, इसलिए सूखे हो।

यहां तुम कुछ भी खोजते रहो, कुछ भी न मिलेगा। यहां एक के मिल जाने से सब मिल जाता है--अपने स्रोत की पहचान।

"दया कह्यो गुरुदेव ने, कूरम को व्रत लेहि।

सब इंद्रिन कूं रोकि करि, सुरति स्वांस में देहि।।'

--अपूर्व मंत्र है ध्यान का! समझना।

"दया कह्यो गुरुदेव ने, कूरम को व्रत लेहि।'

गुरु ने कहा कि दया, तू ऐसी हो जा जैसे कछुआ। कछुए की एक खूबी है: अपनी सारी इंद्रियों को भीतर सिकोड़ लेता है। इंद्रियां यानी बाहर जाने के द्वार। इंद्रियों से तुम बाहर जाते हो। आंख उठाई तो बाहर देखोगे न! कान खोले तो बाहर सुनोगे न! हाथ फैलाए तो बाहर छुओगे न! इंद्रियां तो बाहर जाती हैं। हाथ भीतर तो नहीं जा सकता। आंख भीतर तो नहीं देख सकती। और जो आंख भीतर देखती है वह और ही आंख है। इन आंखों से उस आंख का कोई संबंध नहीं है। इसलिए तो ज्ञानी तृतीय नेत्र की बात करते हैं--अलग ही नेत्र की बात करते हैं, क्योंकि इनसे उसका कोई संबंध नहीं।

और खयाल रखना, बाहर देखने वाली आंखें दो हैं और ज्ञानी कहते हैं, भीतर देखने वाली आंख एक है। वह भी बड़ा प्रतीकात्मक है। बाहर द्वंद्व है, द्वैत है। भीतर अद्वैत है, एक है। भीतर देखने के लिए दो आंखें नहीं चाहिए; दो आंखें होंगी तो द्वैत पैदा हो जाएगा, द्वंद्व पैदा हो जाएगा, संसार पैदा हो जाएगा। बाहर देखने वाली आंखें दो, भीतर देखने वाली आंख एक। बाहर सुनने वाले कान दो, भीतर सुनने वाला कान एक।

तृतीय नेत्र की जैसी बात हुई है वैसे तृतीय कर्ण की बात नहीं हुई है, लेकिन होनी चाहिए। जैसे बाहर फैलने वाले हाथ दो, भीतर फैलने वाला हाथ एक। झेन फकीरों ने बात की है एक हाथ की; वे कहते हैं, एक हाथ की ताली बजाओ। अपने साधकों से कहते हैं, बैठो और उस ध्वनि को सुनो जो एक हाथ के बजने से बजती है। अब एक हाथ कहीं बज सकता है। दो हाथ बजते हैं। लेकिन वे कहते हैं, खोजो उस ध्वनि को जो एक हाथ के बजने से बजती है। वह एक हाथ भीतर का हाथ है।

भीतर जाने का द्वार एक है; बाहर जाने के द्वार दो हैं। फिर बाहर जाने की इंद्रियां बहुत हैं--आंख है, कान है, नाक है, हाथ है, पंच-इंद्रियां हैं। भीतर जाने पर दो आंखें एक आंख हो जाती हैं और आंख और कान भी मिल कर एक हो जाते हैं और हाथ और नाक भी मिल कर एक हो जाते हैं, सब एक हो जाता है।

कबीर ने कहीं कहा है कि जब भीतर गया तो बड़ी हैरानी हुईः आंख से सुनाई पड़ने लगा। कान से दिखाई पड़ने लगा! हाथ से गंध आने लगी! नाक से स्पर्श होने लगा! लोग समझते हैं, ये साधुओं की अटपटी बातें हैं। अटपटी नहीं हैं। ऐसा ही है। क्योंकि भीतर तो एक ही बचता है। सारी इंद्रियां एक में ही लीन हो जाती हैं। उस एक की तरफ यह सूत्र बड़ा अदभुत है।

गुरु ने कहाः "दया, कूरम को व्रत लेहि...तू अब कछुए का व्रत ले ले।' यह प्रतीक रहा होगा। चरणदास, दया के जो गुरु थे, उनका यह प्रतीक रहा होगा कि कछुए का व्रत ले ले अब। संक्षिप्त में बात कह दी कि अब इंद्रियों को सिकोड़ना शुरू कर दे। अब इंद्रियों को बिलकुल सिकोड़ ले। बाहर जाती इंद्रियों को लौटा ले। घर की तरफ लौट पड़। क्योंकि जब तक इंद्रियां बाहर जा रही हैं, तब तक ऊर्जा बाहर बहती रहेगी। अंतर्मिलन कैसे होगा? तुम जाते हो पूरब को, तो जो दक्षिण में बसा है, उससे मिलना कैसे होगा? तुम जाते हो पश्चिम को, तो जो पूरब में बसा है उससे मिलना कैसे होगा? तुम जाते हो बाहर को, तो जो भीतर बसा है, उससे मिलना कैसे होगा? फिर धीरे-धीरे बाहर जाने का अभ्यास इतना हो जाता है कि हम भूल ही जाते हैं कि भीतर का भी कोई लोक है।

तुम देखते न, लोग कहते हैं दस दिशाएं हैं! दिशाएं ग्यारह हैं, मगर ग्यारहवीं को कोई गिनता ही नहीं। दस दिशाएं हैं--ऊपर-नीचे, और आठ दिशाएं चारों तरफ। ग्यारहवीं दिशा, असली दिशा को कोई गिनता ही नहीं। भीतर की तरफ जो दिशा है, उसकी तो गिनती नहीं होती। उसको हम विस्मरण कर बैठे।

"कूरम को व्रत लेहि' का अर्थ होता हैः ग्यारहवीं दिशा में चलः अब यह दसों दिशाओं में जो फैलाव था, इस ऊर्जा को अब बाहर न जाने दे; इस ऊर्जा को भीतर अब संगृहीत होने दे।

इस संबंध में कछुआ अनूठा है। किसी और पशु की ऐसी क्षमता नहीं। इसलिए कछुआ बहुत महत्वपूर्ण हो गया। भगवान का भी एक अवतार कछुआ। और हिंदुओं ने बड़ी मीठी कहानियां लिखी हैं। वे कहते हैं, सारी पृथ्वी कछुए पर टिकी है। अगर इनको तुम ऊपर-ऊपर से लो तो बचकानी बातें मालूम पड़ती हैं--कछुए पर टिकी है! लेकिन अगर भीतर से लो तो बड़े गहरे अर्थ खुलते हैं। हिंदू कहते हैं, पृथ्वी कछुए पर टिकी है। हिंदू यह कह रहे हैं कि पृथ्वी उन थोड़े से लोगों पर टिकी है जो कछुए जैसे हो गए हैं, नहीं तो यह कभी की नष्ट हो जाए। कभी कोई एक बुद्ध हो जाता है, कभी कोई एक महावीर हो जाता है--उस पर टिकी है। उस एक के कारण तुम भी जीते हो। उस एक से चाहे तुम्हारा संबंध भी न हो, तुम चाहे उसके चरणों में कभी सिर झुकाने भी न गए होओ; लेकिन उस एक की मौजूदगी के कारण पृथ्वी जीती है। घसिटते हो तुम, लेकिन किसी तरह जीते हो।

जरा सोचो, आदमी के इतिहास में से हम बुद्ध, महावीर, कृष्ण, कबीर, ऐसे दस-पांच नामों को निकाल दें, तुम कहां रहोगे? तुम क्या रहोगे? तुम्हारी क्या अवस्था होगी? तुम कुछ भी न रह जाओगे। तुम्हारे भीतर जो भी थोड़ा-बहुत मनुष्यत्व दिखाई पड़ता है, वह इनका दान है। जो तुम्हारे भीतर थोड़ी-बहुत चमक और रोशनी दिखाई पड़ती है, वह इनकी कृपा है। इन थोड़े से लोगों के कारण आदमी आदमी है, अन्यथा आदमी जानवर होगा।

तो जब हिंदू कहते हैं कि पृथ्वी कछुए पर टिकी है तो यह तो प्रतीक है। अब दो तरह के नासमझ हैं दुनिया में। एक हैं जो कहते हैं, अच्छा तो सिद्ध करो, कहां है कछुआ? और कुछ मूढ ऐसे हैं कि सिद्ध करना चाहते हैं कि हां कछुआ है। दोनों मूढ हैं। कछुए से कुछ लेना-देना नहीं है।...उन पर टिकी है जो कछुए की भांति हो रहे। उन थोड़े से लोगों ने तुम्हारे जीवन का सारा बोझ उठाया हुआ है। तुम्हारे जीवन में अगर फूल खिलने की कोई भी संभावना है तो उन थोड़े से लोगों के कारण है जिन्होंने अपनी इंद्रियों को सिकोड़ लिया है, जो अतीन्द्रिय हो गए हैं।

तो गुरु ने दया को कहा कि तू भी अब कछुआ हो जा दया।

"सब इंद्रिन कूं रोकि कर, सुरति स्वांस में देहि'।

--सब इंद्रियों को रोक ले। सारी इंद्रियों को रोकने का अर्थ यह नहीं होता कि तुम आंख मूंद कर बैठ जाओ। सारी इंद्रियों को रोकने का यह अर्थ नहीं होता कि तुम हाथ काट दो कि आंखें फोड़ लो। सारी इंद्रियों को रोकने का अर्थ होता है: आंख अगर देखे भी तो देखने में रस न रह जाए। आंख तो देखेगी; वह उसका स्वभाव है। आखिर दया भी तो चलेगी, उठेगी, तो दरवाजा और दीवाल का फर्क तो करेगी। भोजन करेगी तो फर्क तो करेगी कि क्या खाना, क्या नहीं खाना। थाली-गिलास को तो नहीं खा जाएगी। आंख तो देखेगी, लेकिन अब देखने के रस न रहा। रूप का रस चला जाए तो आंख भीतर मुड़ गई। रूप का रस असली आंख है। ये जो आंखें दिखाई पड़ती हैं, इन आंखों का तो उपयोग है। ठीक है, इतना उपयोग कर लेना है। उठते-बैठते, चलते खाते-पीते इनका जो उपयोग है, कर लेना है। लेकिन इन आंखों के पीछे एक वासना छिपी है--देखने की वासना। उस देखने की वासना से मुक्त हो जाना है। क्या मिला देख-देख कर? रूप को देख भी लिया तो क्या मिला? सुंदरतम व्यक्ति को देख लिया तो क्या मिला? सपने से ज्यादा नहीं है। चाहे सपना देखो, चाहे सुंदर व्यक्ति को वस्तुतः मौजूद देखो, क्या फर्क है! तुम्हारे भीतर तो एक चित्र ही बनता है। सुंदरतम स्त्री तुम्हारे सामने खड़ी हो या सुंदरतम पुरुष, तुम्हारे भीतर क्या है? तुम्हारी आंख तो कैमरे का काम करती है, एक चित्र को बना देती है। तुम सुंदर स्त्री को थोड़े ही देख पाते हो। सुंदर स्त्री तो बाहर है। बाहर तुम कैसे जाओगे? तुम भीतर हो, सुंदर स्त्री बाहर है। बीच में आंख तस्वीर को ले जाती है। छोटा सा चित्र बनता है सुंदर स्त्री का। वह चित्र तुम्हारी आंख के भीतर, तुम्हारे मस्तिष्क के पर्दे पर फैलता है। जैसे फिल्म देखने जाते हो पर्दे पर, ऐसा ही तुम्हारे भीतर चित्त का पर्दा है, उस पर सुंदर चित्र बन जाता है। बस इसी चित्र में तुम मगन हो रहे हो। इस चित्र में कुछ भी नहीं है।

यह वैसा ही पागलपन है जैसा कि फिल्म में हो रहा है। कैसे तुम मगन हो जाते हो तस्वीरों को देख-देखकर? कुछ भी नहीं है वहां। फिल्म की बात तो छोड़ दो, लोग तो नग्न तस्वीरें कागज पर छपी देख कर भी बड़े प्रफुल्लित हो जाते हैं। उनसे कोई पूछे, क्या कर रहे हो, होश में हो? इस कागज पर कुछ भी नहीं है; कुछ रंग फैले हैं; एक तरकीब में जमा दिए गए रंग हैं, कुछ भी नहीं है। फिल्म के पर्दे पर कुछ भी नहीं है; सिर्फ रोशनी और अंधेरे का जोड़ है। पर्दा खाली है; वहां कोई भी नहीं है। लेकिन तुम कितने आतुर हो जाते हो! इस आतुरता के पीछे भी राज है, क्योंकि तुम जिंदगी भर इसी तरह के पर्दे पर तो खेल को देखते रहे हो--आंख के द्वारा चित्त के पर्दे पर इसी तरह का खेल तो चलता रहा है। तुमने और देखा क्या है? फिल्म जो है, वह आदमी के ही मन के द्वारा ईजाद की गई एक तरकीब है। वह आदमी के मन की जो प्रक्रिया है, उसी प्रक्रिया का फैलाव है। इसलिए फिल्म का बड़ा प्रभाव है आदमी पर, क्योंकि मन से उसका बड़ा तालमेल है।

तुमको कभी यह खयाल नहीं आता कि बैठे सिनेमागृह में, तुम जो देख रहे हो वह है नहीं? नहीं, तुम बड़े उत्सुक हो जाते हो, आंदोलित हो जाते हो। कभी रोते हो, कभी हंसते हो, कभी दुखी हो जाते हो, कभी प्रसन्न हो जाते हो। तस्वीरें तुम्हें नचा देती हैं। मगर फिल्म के पर्दे पर ऐसा हो पाता है और तुम इसमें उलझ जाते हो, क्योंकि तुम जिंदगी भर इसी तरह भीतर के पर्दे पर भी उलझे रहे हो। यह उसी का विस्तार है।

आंख को भीतर मोड़ लेने का अर्थ होता है, आंख सिर्फ देखने का यंत्र रह जाए, आंख में रूप को देखने की वासना न रहे। क्योंकि रूप तो सिर्फ तस्वीरें हैं। कान सुने, लेकिन सुनने में रस न रह जाए। हाथ छुएं, लेकिन छूने का पागलपन न रह जाए। ऐसा अगर तुम्हारा पागलपन विसर्जित हो जाए तो धीरे-धीरे तुम पाओगेः जो ऊर्जा तुम्हारी इंद्रियों से बाहर जाती थी, उसका मानसरोवर भीतर भरने लगा।

अभी तुम भीतर खाली-खाली हो। अभी तुम्हारी हालत ऐसे हैः

कात रहे हम दिन कपास-से

लिए पुस्तिका परिवादों की

जिल्द बंधी है अवसादों की

कटे हुए हैं आसपास से।

नाच रहे हम तकली जैसे

बज उठते हम ढपली जैसे

हंसते हैं पर हैं उदास से।

मित्रों ने उपकार किया है

नागफनी सा प्यार दिया है

सब खाली बोतल गिलास से।

भीतर कुछ भी नहीं है--"सब खाली बोतल गिलास से'! भीतर बिलकुल खाली हो तुम। जहां रस का सागर लहराना था वहां बिलकुल मरुस्थल है। क्योंकि जिस ऊर्जा से रस का सागर

निर्मित होता है, वह तुम्हारी इंद्रियों से बही जा रही है। इंद्रियां तुम्हारे छेद हैं, जिनके कारण तुम्हारी गागर नहीं भर पाती। कल ही तो हम बात कर रहे थे कि अगर छिद्रवाला पात्र हो तो उसमें कभी कुछ भी न भर पाएगा। ये इंद्रियां तुम्हारे छेद हैं। ठीक-ठीक संतों ने इनको छेद ही कहा है। इन छेदों से तुम्हारी ऊर्जा बाहर जा रही है। इन छेदों से ऊर्जा को बाहर अगर विसर्जित होने दिया तो तुम खाली के खाली रहोगे, रिक्त के रिक्त रहोगे।

"सब इंद्रिन कूं रोकि करि, सुरति स्वांस में देहि'।

और जब सारी इंद्रियों को तुम बाहर की यात्रा से मुक्त कर लो तो तुम्हारा ध्यान मुक्त हो गया, क्योंकि इन्हीं सारी इंद्रियों में तुम्हारा ध्यान अटका है।

समझो, तुम ध्यान करने बैठे और पास से एक सुंदर स्त्री निकल गई, ध्यान खंडित हो गया। या पास में आ कर किसी ने रुपया बजा दिया, ध्यान खंडित हो गया। कि कोई पास गीत गाने लगा कि ध्यान खंडित हो गया। कि कोई कुछ बात करने लगा जो तुम्हारे मतलब की है कि व्यवसाय की है कि दुकान की है कि बाजार की है, कि किसी ने पास खड़े हो कर कह दिया कि बाजार में फलां चीज के भाव एकदम बढ़े जा रहे हैं--ध्वनि तुम्हारे भीतर पड़ी कि ध्यान विचलित हो गया। ध्यान इन बातों से विचलित क्यों हो जाता है? क्योंकि इन बातों का अर्थ है कि तुम्हारी वासना तो भीतर है ही, वासना पर चोट पड़ गई, वासना सजग हो गई।

खयाल रखना, ऊर्जा तुम्हारे पास एक ही है; या तो वासना में डाल दो या ध्यान में डाल दो। अगर वासना में पड़ गई तो ध्यान टूट जाता है; अगर ध्यान में पड़ गई तो वासना टूट जाती है। और ऊर्जा एक ही है। तुम्हारे पास दो ऊर्जाएं नहीं हैं। तुम्हारी संपत्ति एक ही ऊर्जा की है। उस ऊर्जा को कहां लगाओगे, इस पर सब कुछ निर्भर करता है।

सांसारिक आदमी ऐसा आदमी है जिसकी सारी ऊर्जा वासनाओं की तरफ जा रही है। धार्मिक व्यक्ति ऐसा व्यक्ति है जिसकी ऊर्जा ने वासना के विपरीत यात्रा शुरू कर दी; गंगा गंगोत्री की तरफ लौटने लगी, अपने स्रोत की तरफ वापस जाने लगी। ध्यान का इतना ही अर्थ है।

ध्यान का अर्थ है: वासना में गई ऊर्जा अपने घर की तरफ वापस लौट रही है।

तो जब तुम्हारी सारी इंद्रियां शिथिल पड़ी होंगी और सिकुड़ गई होंगी, जैसे कि कछुआ अपनी इंद्रियों को सिकोड़ कर बैठ जाता है, ऐसे जब तुम कछुए की भांति...ध्यानी कछुए की भांति हो जाता है।

देखते हो बुद्ध को बैठे हुए, किस ढंग से बैठे हैं! बिलकुल पत्थर की मूर्ति बने बैठे हैं। हाथ पर हाथ हैं, पैर पर पैर हैं, सब तरफ से द्वार-दरवाजे बंद, आंख बंद--भीतर लीन हैं। भीतर क्या करते होंगे?

तुम्हें तो यही अड़चन होती है। मेरे पास लोग आते हैं, उनसे मैं कहता हूं, कभी-कभी शांत बैठ जाया करो। वे कहते हैं, शांत बैठे कर क्या करें? कुछ मंत्र इत्यादि दे दें।' मंत्र इत्यादि का मतलब कि कुछ खटपट वे करते रहेंगे। राम-राम राम-राम राम-राम...चलो। मगर खटपट के बिना वे नहीं बैठे रह सकते। राम-राम का मतलब यह हुआ कि चलो कुछ तो कर रहे हैं।

वह जो बकवास भीतर चल रही वह अब भी जारी है नए ढंग से। मगर अगर उनसे कहो कुछ भी न करो, थोड़ी देर करने को छोड़ कर विश्राम करो...ध्यान यानी विश्राम।

ध्यान का अर्थ ही यह होता है कि थोड़ी देर को कुछ भी न करेंगे, सारी ऊर्जा को ऐसा ही पड़े रहने देंगे। उस तरफ जाने का जो पहला कदम है, वह है: "सुरति स्वांस में देहि'। इसको बुद्ध ने विपस्सना कहा है, अनापानसतीयोग कहा है। यह मनुष्य जाति के इतिहास में खोजी गई सबसे बड़ी कीमिया है। जब इंद्रियों से वासना भीतर आ गई--वासना यानी ऊर्जा; अब आंखें देखने में उत्सुक नहीं, कान सुनने में उत्सुक नहीं, हाथ छूने में उत्सुक नहीं, सारी उत्सुकता वापस लौट आई, कछुआ बन कर बैठ गए--अब इस ऊर्जा को श्वास पर लगा दो। "सुरति स्वांस में देहि'। सुरति का अर्थ होता है स्मृति, ध्यान, बोध। अब इस सारे बोध को, इस अवेयरनेस को, इस होश को, श्वास पर लगा दो। श्वास बाहर गई, श्वास भीतर गई--यह श्वास की जो माला चल रही है, इस पर लगा दो। हाथ में माला ले कर बैठने की कोई जरूरत नहीं। जब इतनी सुंदर श्वास की माला चल ही रही है स्वभाव से, तब तुम और हाथ में माला ले कर क्या करोगे? इतनी प्राकृतिक माला चल रही है, श्वास का मनका चल ही रहा है--बाहर-भीतर, बाहर-भीतर। इस बाहर-भीतर होती श्वास को देखते रहो, कुछ करो मत। श्वास बाहर गई तो होश रहे कि श्वास बाहर गई। श्वास भीतर आई तो होश रहे कि श्वास भीतर आई। चूको मत। भूल न जाओ। भूल-भूल जाओगे शुरू में; बार-बार पकड़ कर ले आओ अपने होश को, फिर श्वास पर लगा दो।

खयाल रखना, न तो श्वास जोर से लेनी है, न धीमी लेनी है; श्वास को बदलना ही नहीं है। श्वास जैसी चल रही है वैसी की वैसी चलने देना है और सारे ध्यान को श्वास पर लगा देना है। यह प्राणायाम की प्रक्रिया नहीं है। इसमें श्वास को तेज करना या गहरा लेना या खूब फेफड़े में भरना और खाली करना, कुछ भी नहीं है। क्योंकि अगर तुम उस काम में लग गए तो फिर तुमने काम शुरू कर दिया, फिर विश्राम खो गया। फिर तुम उपद्रव में पड़ गए। अब तुमने एक नया उपद्रव बना दिया: प्राणायाम! अब तुम गिनती करोगे कि कितनी देर तक श्वास को बाहर रहने देना है, कितनी देर तक भीतर रहने देना है, कितनी देर रोकना बाहर, कितनी देर भीतर रोकना--पड़ गए तुम दुकानदारी में, हिसाब-किताब शुरू हो गया, मन उलझ गया, मन को काम मिल गया। मन काम चाहता है। इससे सावधान रहना। मन काम चाहता है। मन कहता है: कोई भी काम दे दो, हम राजी हैं। क्योंकि बिना काम के मन मर जाता है। और मन मरे तो तुम जीओ। मन मिटे तो तुम पैदा हो जाओ, तुम्हारा जन्म हो।

मन कहता है, कोई भी काम दे दो, हम किसी भी तरह जी लेंगे। कोई भी काम हो, मन कहता है हम जी लेंगे, क्योंकि मन का अर्थ होता है कर्ता-भाव। चलो प्राणायाम करेंगे! दुकान नहीं करने देते, कोई हर्जा नहीं। सिनेमा नहीं ले चलते, कोई बात नहीं। तो प्राणायाम तो करने दोगे, यह तो अच्छी बात है! यह तो पतंजलि ने कही है। यह तो योगी सदा से करते रहे हैं, यही करो। मंत्र तो बुरी बात नहीं है। गाली-गलौज न बकेंगे, व्यर्थ के विचार न करेंगे; राम-राम, यह तो प्यारा मन है, इसको तो दोहराने दो!

मन कहता है, कोई भी काम मुझे दे दो तो मैं उसी के सहारे जी लूंगा, क्योंकि कर्ता हो जाऊंगा।

मन यानी कर्ता। तुम यानी साक्षी। तो साक्षी-भाव तो तभी पैदा होता है जब कर्ता-भाव पूरा विसर्जित हो जाता है। तो इतना भी मत करना कि श्वास को तेज, धीमा, ऐसा-वैसा, तरकीब से लेना--कुछ भी नहीं करना। सब तरकीबें पागलपन की हैं। लेकिन, अगर उनको परंपरा का सहारा हो तो वे पागलपन की नहीं मालूम पड़तीं। अब एक आदमी माला लिए बैठा है, गुरिए सरका रहा है, तो हम उसको पागल नहीं कहते। लेकिन, अगर यही आदमी रूस में बैठ कर गुरिए सरकाए, फौरन पागलखाने भेज दिया जाएगा: "तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है? तुम यह कर क्या रहे हो?'

एक स्त्री मुल्ला नसरुद्दीन के साथ बस में सफर कर रही थी। अपरिचित। संयोग की बात कि दोनों एक ही सीट पर बैठे थे। वह स्त्री थोड़ी बेचैन होने लगी, क्योंकि मुल्ला बाएं-दाएं सिर हिला रहा था। एक तो बस, वैसे ही पहाड़ का चढ़ाव, स्त्री को वैसे ही मितली आ रही है, और यह बगल में बैठा सिर हिला रहा है। इसके सिर हिलाने को वह चाहे भी कि न देखे तो भी मुश्किल है, क्योंकि वह बगल में ही बैठा सिर हिला रहा है। बार-बार उस पर नजर पड़ जाए। आखिर उससे न रहा गया। भली सज्जन महिला, किसी के बीच क्यों पड़ना! उसने बहुत देर तक अपनी उत्सुकता को रोका, लेकिन फिर नहीं रहा गया। उसने कह: "महानुभाव, आप यह क्या कर रहे हैं? कोई धार्मिक प्रक्रिया कर रहे हैं? ऐसा बाएं-दाएं सिर हिलाते हैं...।'

मुल्ला ने कहा: "नहीं, धार्मिक प्रक्रिया इत्यादि कुछ भी नहीं।' लेकिन सिर उसने हिलाना जारी रखा--जब वह बोल रहा था, तब भी।

उस महिला ने कहा: "फिर आप क्या कर रहे हैं?'

मुल्ला ने कहा: "इस तरह से मैं समय का खयाल रखता हूं। एक सैकंड इस तरफ, एक सैकंड उस तरफ। इससे घड़ी भी पास रखने की जरूरत नहीं है।'

और सिर हिला रहा है वह। "सस्ता भी है, सुविधापूर्ण भी है। किसी से पूछने की भी जरूरत नहीं।'

तो महिला उत्सुक हुई। उसने कहा कि अच्छा तो बताइए, इस वक्त कितने बजे हैं? तो मुल्ला ने सिर हिलाते कहा कि साढ़े चार। महिला ने अपनी घड़ी देखी। उसने कहा कि गलत, पौने पांच बज रहे हैं। तो मुल्ला ने जोर से सिर हिलाना शुरू कर दिया। उसने कहा कि मालूम होता है कि घड़ी सुस्त चल रही है।

इसको तुम पागल कहोगे। लेकिन, अगर यह मुल्ला कह देता कि हम राम-राम जप रहे हैं--एक राम इस तरफ, एक राम इस तरफ--तो फिर बात पागलपन की नहीं रह जाती। धर्म के नाम पर बहुत से पागलपन सुरक्षित हो जाते हैं। इसलिए धार्मिक देशों में कम लोग पागल होते हैं, क्योंकि उनको धार्मिक होने की सुविधा है। पागल होने की सुविधा नहीं है, कोई जरूरत नहीं है पागल होने की--इतना महंगा धंधा क्यों करें? अधार्मिक मुल्कों में ज्यादा लोग

पागल होते हैं। उसका कारण कुल इतना है कि वहां वे कुछ भी करेंगे इस तरह का काम तो पागल समझे जाएंगे। धार्मिक देश में उपाय हैं। तुम कोई ऐसी प्रक्रिया पकड़ ले सकते हो जो धार्मिक मालूम होती है, फिर तुम्हें कोई पागल न कहेगा।

यह जो सूत्र है, यह सूत्र बड़ा बहुमूल्य है। श्वास पर ध्यान, बिना कुछ किए, जैसी श्वास है वैसी छोड़ देनी है।

और श्वास पर ध्यान देने का उपयोग बड़ा है। पहला तो यह कि श्वास के द्वारा ही तुम शरीर से जुड़े हो। श्वास सेतु है। श्वास का धागा ही तुम्हें शरीर से बांधे हुए है। अगर तुम श्वास के प्रति जाग जाओ तो तुम्हें तत्क्षण मालूम पड़ेगा, तुम शरीर नहीं हो। श्वास के प्रति जागते ही तुम्हें पता चल जाएगा कि तुम शरीर नहीं हो, तुम शरीर से अलग हो। एक बात।

दूसरी बात: श्वास को ही साधारणतः हमने जीवन समझा है। इसलिए जब किसी की श्वास बंद हो जाती है तो हम समझते हैं कि आदमी मर गया। आखिर डाक्टर भी और तो कुछ जानता नहीं; इतना ही तो उसका भी परीक्षण है कि श्वास बंद हो गई, आदमी खतम हो गया।

मृत्यु का तुम, क्या लक्षण है, मानते हो? इतना ही तो न कि जीवन अब समाप्त हुआ, क्योंकि श्वास चलनी बंद हो गई। श्वास चली तो जीवन शुरू हुआ, श्वास गई तो जीवन गया। तो श्वास और जीवन पर्यायवाची हो गए हैं। साधारणतः हैं भी। जब तुम श्वास के प्रति जागोगे तो तुम पाओगे कि मैं श्वास भी नहीं हूं। जो जागा हुआ है वह श्वास से बिलकुल अलग है, बिलकुल पृथक है। श्वास तो उसके सामने चल रही है। श्वास तो उसके लिए दृश्य है। और द्रष्टा तो दृश्य से अलग हो जाता है।

तो पहली क्रांति तो घटती है इस सूत्र से कि लगता है कि मैं शरीर नहीं हूं, साफ हो जाता है कि मैं शरीर नहीं हूं। और दूसरी और भी गहरी क्रांति घटती है कि मैं श्वास भी नहीं हूं। तो श्वास और देह दोनों के पार जो मैं हूं, उस स्रोत से संबंध जुड़ने शुरू हो जाते हैं।

यह छोटा सा सूत्र बड़ा बहुमूल्य है:

लेकिन इसके पहले कि तुम सुरति को श्वास में लगाओ, कछुआ बन जाना जरूरी है। नहीं तो सुरति श्वास में लग ही न सकेगी। क्योंकि सुरति होगी ही नहीं तुम्हारे पास। सुरति बड़ी सूक्ष्म शक्ति है। या तो इंद्रियों से बहती रहती है, तो तुम्हारे हाथ में ही नहीं होती; और इंद्रियां तुम्हारी सुरति को न मालूम कहां-कहां भटकाए ले जाती हैं। तुम्हारी सुरति तुम्हारे हाथ में नहीं है; इंद्रियों के द्वारा उड़ गया है सुरति का पक्षी, दूर-दूर भटक रहा है। और एक-एक इंद्रिय के द्वारा अलग-अलग दिशाओं में चला गया है। इसलिए तुम्हारी सुरति खंडित भी हो गई है। फिर प्रत्येक इंद्रियां तुम्हें जो जगत के संबंध में बता रही हैं, वही तुम सोचते हो जीवन है, वही तुम सोचते हो सत्य है। इंद्रियों के पास सत्य को जानने का कोई भी उपाय नहीं है। इंद्रियां तो बड़ी अंधी हैं। सत्य को जानने का उपाय तो तुम्हारे भीतर के साक्षी के पास है, और किसी के पास नहीं है। अगर तुमने इंद्रियों की बात सुनी, कछुआ न बने, तो इंद्रियां तुम्हें भटकाती रहेंगी।

तुमने देखा नहीं, कभी रात के अंधेरे में रास्ते पर पड़ी रस्सी सांप मालूम पड़ जाती है! तुम भाग खड़े हुए, छाती धड़कने लगी, घबड़ा गए। तुम्हारी आंख ने देखा। तुम कहते हो, अपनी आंख से देखा सांप था। जरा रोशनी ले कर जाओ तो पता चलता है रस्सी पड़ी है। आंख तो बड़ी आसानी से धोखा खा जाती है। जरा धुंधला हुआ कि आंख धोखा खा जाती है। रात तुमने देखा, अपने ही घर में अपना ही कुर्ता टंगा देख कर तुम समझते हो कोई चोर खड़ा है! रोशनी जलाई, अपना ही कुर्ता टंगा है। आंख का तो कोई बड़ा भरोसा नहीं है। रोशनी चाहिए। बाहर भी भरोसा नहीं है--बाहर भी रोशनी चाहिए--तो भीतर तो क्या भरोसा! भीतर भी रोशनी चाहिए। वैसी रोशनी साक्षी-भाव, सुरति से पैदा होती है। भीतर का दीया सुरति से जलता है।

इंद्रियां तुम्हें जो बता रही हैं, वह तो सिर्फ उनकी आदत है। तुमने जो देखने की आदत बना ली है, वह तुम्हें दिखाई पड़ता रहता है।

तुमने खयाल नहीं किया, अगर इस बगीचे में एक लकड़हारा आए तो उसे फूल दिखाई पड़ेंगे ही नहीं! वह लकड़ियां देखेगा। वह सोचने लगेगा कौन सा वृक्ष काट कर बाजार में बेच लूं। अगर कोई माली आ जाए, फूलों का पारखी आ जाए तो उसको लकड़ियां नहीं दिखाई पड़ेंगी; उसे फूल दिखाई पड़ेंगे। वह सोचने लगेगाः "अहा, कितने सुंदर फूल!' अगर कोई कवि आ जाए तो उसे फूल भी सीधे-सीधे नहीं दिखाई पड़ेंगे; उसे फूलों का सौंदर्य दिखाई पड़ेगा। सौंदर्य पर उसकी नजर होगी। अगर कोई चित्रकार आ जाए तो उसे रंग दिखाई पड़ेंगे--अनूठे रंग दिखाई पड़ेंगे, जो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ते! आमतौर से तुम सोचते हो जब तुम बगीचे में आते हो तो तुम्हें भी वही दिखाई पड़ता है जो तुम्हारे साथी को दिखाई पड़ रहा है। इस गलती में मत पड़ना। क्योंकि साथी ने अपनी आंखें अगर और किसी बात के लिए अभ्यस्त की हैं तो उसे कुछ और दिखाई पड़ेगा। तुम्हें कुछ और दिखाई पड़ेगा।

इंद्रियां तो अभ्यास हैं। इनसे तो हम जो देखने का अभ्यास कर लेते हैं वही दिखाई पड़ने लगता है। कान भी अभ्यास है। इससे हम जो सुनने का अभ्यास कर लेते हैं वही सुनाई पड़ने लगता है। स्वाद भी अभ्यास है। तुमने खयाल नहीं किया? अगर पहली दफे कॉफी पीओ तो अच्छी थोड़े ही लगती है। कॉफी का भी अभ्यास करना पड़ता है। पहली दफे शराब पी हो तो अच्छी थोड़े ही लगती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उसके पीछे सदा पड़ी रहती थी कि तुम शराब बंद करो, बंद करो। नहीं सुना, नहीं सुना, एक दिन वह पहुंच गई शराब-घर। मुल्ला थोड़ा डरा भी, क्योंकि वह कभी शराब-घर नहीं आई थी और यह बात ठीक भी नहीं कि भले घर की स्त्री और शराब-घर आए। लेकिन अब कुछ कर भी न सका। वह आ कर उसके पास बैठ गई। उसने कहाः "आज मैं भी पीऊंगी। जब तुम सुनते नहीं तो जरूर शराब में कुछ होगा; मैं भी पीऊंगी।' अब मुल्ला यह भी न कह सका कि मत पीओ, शराब अच्छी चीज नहीं। और यही तो पत्नी सदा कहती रही। यह हद हो गई। अब इससे क्या कहे? तो उसने कहा, ठीक। डाल दी शराब, डाल दी एक प्याली में और कहा, पी ले। उसने पी तो एकदम थूक दी। कड़वी, तिक्त! उसने

कहा, ऐसी सड़ी-गली चीज तुम पीते हो! और मुल्ला ने कहा, सुनो, और तू सोचती थी हम यहां मजा कर रहे हैं?

अभ्यास करना होता है। अभ्यास करने पर कड़वा भी मीठा लगने लगता है। अभ्यास अभ्यास की बात है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन मुझसे कहा कि ट्रेन में आ रहा था, एक लड़की मेरे सामने वाली सीट पर बैठी थी, रेडियो अनाउंसर थी।

तो मैंने उससे पूछाः तुमने कैसे जाना? पूछा था?

उसने कहाः नहीं, पूछा नहीं।

"फिर तुमने कैसे जाना कि रेडियो अनाउंसर थी?'

तो उसने कहा कि जब मैंने उससे समय पूछा था तो बोली, नौ बज कर पंद्रह मिनट हुए हैं, हमेशा गोदरेज ताला लगाइए और चैन की नींद सोइए। इससे मैं समझा कि रेडियो अनाउंसर है।

अभ्यास हो जाता है।

तुम अपने जीवन में अगर गौर से देखोगे तो तुम जो देखते हो, तुम जो सुनते हो, जो तुम समझते हो, वह सब अभ्यास है; सत्य से उनका कोई संबंध नहीं। फिर जब एक तरह का अभ्यास इंद्रियों को हो जाता है तो उन अभ्यास के घेरों के बाहर आना बहुत मुश्किल हो जाता है।

छोटे बच्चे एक तरह से देखते हैं दुनिया को, तुम सब जानते हो, क्योंकि तुम भी छोटे बच्चे थे कभी। तुम्हारे घर छोटे बच्चे हैं। उनके देखने का एक ढंग है। जवान दूसरे ढंग से देखते हैं। बूढ़े तीसरे ढंग से देखते हैं। अगर तुम बूढ़े हो गए तो तुम्हें भलीभांति याद होगी। अगर तुम बेईमान नहीं हो तो भूल नहीं होओगे कि बच्चे थे तब तुम एक तरह से दुनिया को देखते थे; जवान थे तब दूसरी तरह से दुनिया को देखते थे। दुनिया वही है। फिर बूढ़े हुए तो तुम तीसरी तरह से दुनिया देखने लगे।

तो इंद्रियों का भरोसा कम है। जैसी वासना होती है वैसा ही दर्शन हो जाता है। जब बच्चे थे तो तुम्हें सुंदर स्त्रियों में कोई रस न था या सुंदर पुरुषों में कोई रस न था; तुम्हें धन में भी कोई रस न था। तुम खेल-खिलौनों में लवलीन थे। वही तुम्हारी दुनिया थी। जवान हुए, खेल-खिलौने छूट गए। तुम सौंदर्य में, देह में, धन में, पद में उत्सुक हो गए। फिर बुढ़ापा आया, वे खिलौने भी छूट गए। इसलिए तो बूढ़े आदमी और जवान आदमी की बात नहीं हो पाती, बड़ी मुश्किल हो जाती है। बाप-बेटे की बात थोड़े ही हो पाती है। बात हो ही नहीं सकती, क्योंकि वे दोनों अलग भाषाएं बोलते हैं। उनका जीवन को देखने का ढंग अलग है। मां-बेटे की बात थोड़े ही हो पाती है, बहुत मुश्किल है। न बेटा बाप को समझता है न बाप बेटे को समझता है। समझ ही नहीं सकते। क्योंकि बाप जहां से देख रहा है वहीं से बेटा देख नहीं सकता कभी। और जहां से बेटे देख रहा है, वहां से बाप ने कभी देखा था और पाया सब गलत था। अब बड़ी मुश्किल है कि वह उसको फिर उस भांति देखे।

तुम अगर गौर से देखोगे तो तुम पाओगे कि जो हमारा अनुभव है वह रोज बदल रहा है। और जब अनुभव बदल जाता है तो हमारी आंखें हमें कुछ और खबर देने लगती हैं। जब तुम जवान हो तब तुम्हें शरीर दिखाई पड़ते हैं। जब तुम बूढे हो जाते हो, जब तुम्हारा शरीर जर्जर-जीर्ण हो जाता है, तो तुम्हें हर शरीर में मौत दिखाई पड़ने लगती है। जवान से जवान शरीर में भी तुम्हें मौत की झलक दिखाई पड़ती है कि मौत आनेवाली है। सुंदर से सुंदर शरीर में भी तुम्हें कब्र, चिताओं की लपटें दिखाई पड़ने लगती हैं।

एक स्त्री अपने दो बच्चों को ले कर एक सहेली से मिलने गई। छोटे बच्चे को देखकर उसकी सहेली ने कहा, इसकी आंखें बिलकुल मां की तरह हैं, तुम्हारी तरह हैं। मां बोली, और माथा बाप का है। और पाजामा बड़े भाई का है, उसके बड़े बच्चे ने कहा।

अब जब सभी चीजें बंटी जा रही हैं कि आंखें मां जैसी और माथा बाप जैसा, तो वह भी क्यों चुप रहे--"पाजामा उसका है, जो यह छोटा भाई पहने हुए है।' अपनी-अपनी दृष्टि अपनी-अपनी जगह पर ठीक है। उसको न अभी रस है माथे में और न रस है आंखों में, अभी पाजामा उसका यह पहने हुए है। यह बात जंच नहीं रही है।

रोज-रोज अगर तुम इसका थोड़ा स्मरण रखोगे तो तुम पाओगे इस अभ्यास से मुक्त हुआ जा सकता है। और तुम्हारी आत्मा न तो बचपन में है, न जवानी में, न बुढ़ापे में, क्योंकि आत्मा की कोई आयु नहीं है। और तुम्हारी आत्मा का कोई अभ्यास नहीं है। आत्मा तो सिर्फ बोधस्वरूप है।

तो इंद्रियों को कछुए की तरह सिकोड़ लेने का अर्थ है, पुराने सब अभ्यास-जाल को बंद कर देना, फिर देखना। पुराने अभ्यास से देखोगे, गलत दिखाई पड़ेगा। जो अभ्यास किया है, वही दिखाई पड़ेगा। दृष्टि शुद्ध न होगी। आंख पर चश्मा होगा, चश्मे रंगीन होंगे, तो दुनिया भी तुम्हें रंगीन मालूम पड़ेगी।

"सब इंद्रिन कूं रोकि करि, सुरति स्वांस में देहि'।

तो धीरे-धीरे हटा लो इंद्रियों से अपनी ऊर्जा को। अगर चौबीस घंटे न कर सको तो कभी घड़ी भर तो चौबीस घंटे में करो। और मैं तो तुम्हें सलाह दूंगा कि अगर तुम बैठ भी जाओ कछुए की तरह तो भी लाभ होगा। ठीक कछुए की तरह। गद्दा बिछा लो, कछुए की तरह बैठ जाओ हाथ-पैर सिकोड़ कर। जैसा मां के गर्भ में बच्चा होता है गर्भासन--ठीक वैसे बैठ जाओ। ठीक ऐसा ही खयाल करो कि तुम कछुए हो, सारी इंद्रियों को सिकोड़ लिया, सिर को भी ढाल कर बैठ जाओ। चाहो तो एक चादर ऊपर ओढ़ लो। बंद हो गए। और अब श्वास पर अपनी सुरति को लगा दो। तुम बहुत रस पाओगे और बहुत क्रोध जगेगा। बड़ी प्रगाढ़ चेतना पैदा होगी। और पहले दिन ही प्रतीक्षा मत करना कि यह सब हो जाए। थोड़ा धैर्य रखना।

तो इसको मैं कूर्मासन कहता हूं। तुम बना लो इस आसन को। क्योंकि शरीर की जो अवस्था तुम बनाते हो, उसके द्वारा तुम्हें सहारा मिलता है भीतर की अवस्था बनाने का भी। अगर तुम शरीर को ठीक कछुए की तरह सिकोड़ कर बैठ गए चादर ओढ़ ली, कछुए की ढाल बन गई, ऊपर से चादर और तुम भीतर सिकुड़ गए, आंखें बंद कर लीं और अब श्वास जैसी चल

रही है धीमी, उसको देखते रहे। कुछ मत करो। श्वास बाहर गई, देखो, श्वास भीतर आई, देखो। ऐसा कहना भी नहीं है कि श्वास बाहर गई है, श्वास भीतर आई। बस देखते रहो। कभी-कभी चूक जाओगे। कभी-कभी भूल जाओगे पुरानी आदतवश। जब याद आ जाए तो रोने-चीखने की जरूरत नहीं कि मैं पापी, कि मेरा मन भटक गया। जब याद आ जाए, फिर मन को वहीं वापस ले आओ, बिना पछताए। कुछ पछतावे की जरूरत नहीं। भटक गया तो भटक गया। उसको भी स्वीकार कर लो। फिर चुपचाप अपने ध्यान पर आ जाओ। नहीं तो होता क्या है? पहले मन भटका, फिर तुम पश्चात्ताप करने लगे तो पश्चात्ताप में भटका। यह दोहरा उपद्रव हो गया। शुरू-शुरू में भटकेगा ही मन। जल्दी ही यह बात होने वाली नहीं है। जन्मों-जन्मों के अभ्यास के विपरीत तुम जा रहे हो। थोड़ा समय लगेगा। स्वाभाविक है, ऐसा मान कर, जब भटक गया भटक गया, जब याद आ गई, फिर अपनी श्वास पर ध्यान को लगा लिया--बिना पश्चात्ताप के, बिना किसी अपराध-भाव के, कि बड़ी चूक हो गई, कि बड़ा पाप हो गया। कुछ नहीं हुआ। स्वाभाविक है।

"बिन रसना बिन माल कर, अंतर सुमिरन होय।
दया दया गुरुदेव की विरला जानै कोय।।'

"बिन रसना बिन माल कर'...। और दया कहती है, हाथ में माला लेने की कोई जरूरत नहीं। और जीभ से भी शब्दोच्चार की कोई जरूरत नहीं। "बिन रसना बिन माल कर, अंतर सुमिरन होय'। बस अंतर में ही होश रखो। और सुमिरन शब्द से गलती मत पकड़ लेना, क्योंकि सुमिरन का तुमने यही अर्थ समझ रखा है कि बैठे जप रहे राम-राम, राम-राम, राम-राम। यह तो जीभ का हो जाएगा। जिसको नानक ने अजपा जाप कहा है, उसकी ही बात हो रही है।

"बिन रसना बिन माल कर, अंतर सुमिरन होय'।

बस याद बनी रहे, होश बना रहे। शब्दों के साथ थोड़ी झंझट है। जब हम कहते हैं याद बनी रहे तो मन में सवाल उठता है: "किसकी याद?' अपनी याद। अपना होश। अगर किसी और की याद बनी रही तो मन जारी रहा। बोध बना रहे कि हूं। यह तुम हो, यह होने का बोध बना रहे। यह खो न जाए। इस पर कोई परदा न पड़े। इस पर कोई दूसरा शब्द आ कर इसे आच्छादित न कर ले।

"दया दया गुरुदेव की, बिरला जानै कोय'।

और दया कहती है कि जो ऐसी दशा में अनुभव हुआ है, कोई विरले कभी उस अनुभव को उपलब्ध होते हैं। सच कहती है। बहुत करीब है यह अनुभव, तुम्हारे हाथ के पास है। जरा हाथ बढ़ाओ, तुम्हारा हो जाए। लेकिन तुमने हाथ ही नहीं बढ़ाया। संपदा तुम्हारी है; तुमने कभी अपनी मालकियत की घोषणा नहीं की।

"दया दया गुरुदेव की'...। और एक बात और दया कहती है कि मेरे किए तो यह नहीं हो सकता था; यह गुरु के प्रसाद से हो गया है, गुरु की कृपा से हो गया है। इस बात को भी खयाल में लेना जरूरी है। क्योंकि तुम्हारा कर्ता-भाव सब तरह से छोड़ना है। अगर तुम्हें यही

खयाल बना रहा कि हम ध्यान कर रहे हैं तो भी कर्ता-भाव आ गया, पीछे के दरवाजे से आ गया। तुम बैठ गए कूर्मासन लगा कर और एक अकड़ भीतर बनी रही कि देखो ध्यान कर रहे हैं, अब देखे को कि कैसे ध्यान में लगे हैं। कि ध्यान से उठे तो तुमने चारों तरफ देखो कि किसी ने देखा कि नहीं, लोगों को पता है कि नहीं!

ध्यान का भी अगर कहीं भीतर तुमने थोड़ा सा कर्ता-भाव बना लिया तो फिर चूक गए, फिर अहंकार आ गया, फिर मन आ गया। इसलिए शिष्य तो यह कहता है कि जो होगा वह गुरु की कृपा से होगा; मेरे किए क्या होने वाला है! मेरे किए कुछ नहीं हो सकता; मेरे किए तो संसार हो गया था। मेरे किए तो दुख ही दुख का जाल फैल गया था। यह सुख की किरण मेरे किए नहीं हो सकती।

तो वह कहता है, गुरु के किए, गुरु-प्रसाद से!

"दया दया गुरुदेव की' . . .।

खयाल रखना, इसका यह मतलब नहीं है कि गुरु की कृपा से यह होता है। यह शिष्य का भाव है और शिष्य के लिए बड़ा सहयोगी है। क्योंकि गुरु की कृपा तो सब पर एक जैसी है। जिसको हुआ उसके ऊपर भी है और जिसको नहीं हुआ उसके ऊपर भी है। अगर गुरु की कृपा से ही होता होता तो सभी को एक सा हो जाता। यह गुरु-कृपा का भाव तो शिष्य के मार्ग पर एक उपाय है। यह भाव उसके अहंकार को निर्मित नहीं होने देता। और यह अहंकार निर्मित नहीं होता तो बाधा खड़ी नहीं होती। घटना घट जाती है। गुरु की कृपा से होता है, इसका केवल इतना ही अर्थ है: मेरे किए नहीं होता। मेरे किए कुछ भी नहीं हुआ है। मेरे करने से तो "मैं' ही निर्मित होता है। इस "मैं' को गिरा देना है। इस "मैं' को विसर्जित कर देना है।

अब यह कठिन है। अगर तुम बिना गुरु के काम करोगे तो कुछ अगर होने लगेगा तो स्वभावतः यह भाव उठेगा कि मैंने किया। कोई और तो है नहीं। अकड़ आएगी। अगर तुम गुरु के चरणों में झुक कर रहे हो तो जब भी कुछ होगा तब गुरु की याद आएगी कि उनकी कृपा से। तुम्हारा अहंकार अकड़ेगा नहीं। जल न मिलेगा तुम्हारे अहंकार को। थोड़े दिन में अहंकार सूख जाएगा, विसर्जित हो जाएगा।

"हृदय कमल में सुरति धरि, अजप जपै जो कोय।

विमल ज्ञान प्रगटै तहां, कलमख डारै खोय।।'

"हृदय कमल में सुरति धरि...' तो पहले तो श्वास पर सुरति को लगाना है। जब श्वास पर सुरति सध जाए और तुम साक्षी-भाव से श्वास का आना और जाना देखने लगो, श्वास की माला तुम्हारे सामने घूमने लगे, तब फिर सुरति को श्वास से भी हटा लेना है और हृदय-कमल में संभाल लेना है।

जैसे तुमने कभी कमल का फूल देखा! कमल का फूल बंद होता है, खोलो तो तुम उसके भीतर छोटा सा स्थान पाओगे रिक्त। वह हृदय-कमल भी वैसा ही है। अगर हृदय को खोला जाए तो हृदय के भीतर एक शून्य स्थान है। जैसे कमल के भीतर एक शून्य स्थान है, उसी

शून्य स्थान में तो भंवरा कभी-कभी बंद हो जाता कमल में। क्योंकि रात कमल बंद होता है और भंवरा दिन भर बैठा रहता है। रसमग्न, उड़ने का मन नहीं होता वहां से, हटने का मन नहीं होता। और रात कमल बंद होने लगता है तो भी बैठा रहता है। उस शून्य में जहां भंवरा बंद हो जाता है कमल में, ठीक वैसा ही शून्य तुम्हारे हृदय में भी है। और उस शून्य हृदय में ही बोध के भंवरे को बंद कर लेना है। पहले श्वास पर रखना ध्यान, श्वास से दो बातें अनुभव में आ जाएंगी कि मैं देह नहीं हूं और मैं श्वास नहीं हूं। यह नकारात्मक अनुभव हुआ। मैं क्या नहीं हूं, यह पता चल गया। अब दूसरा काम यह है पता करने का कि मैं क्या हूं। इतना तो पता चला कि मैं देह नहीं हूं, यह बड़ी बात हो गई। इतना पता चला कि मैं श्वास भी नहीं हूं, यह और बड़ी बात हो गई। यह नकारात्मक काम तो पूरा हो गया। अब मुझे पता चलना चाहिए कि मैं कौन हूं।

तो हृदय को कमल समझो। यह तो प्रतीक है; सिर्फ तुम्हें समझ में आ जाए बात। अब सारे बोध को हृदय में ले जाना है, जहां धक-धक हो रही है; जहां श्वास जा कर हृदय को गतिमान कर रही है; जहां श्वास का धागा अटका है। श्वास को देख लिया, अब श्वास से पीछे उतरे, और गहरे उतरे; हृदय की धक-धक में उतरे।

हृदय को समझो एक कमल। कमल के भीतर जैसे थोड़ी सी शून्य जगह होती है जहां कभी भंवरा बंद हो जाता है, उसी शून्य जगह में आसन मार कर बैठ जाओ। वहीं रखो अपनी सुधि को, वहीं रखो अपने बोध को, सुरति को।

"हृदय कमल में सुरति धरि, अजप जपै जो कोय।'

इसी को नानक ने अजपा जाप कहा है। अब कोई जाप नहीं हो रहा है और कोई जपने वाला भी नहीं है। और तभी असली जाप होता है। अब तुम पहली दफा सुनते हो अस्तित्व की ध्वनि। उसी को ओंकार कहते हैं। ओंकार का नाद अब तुम्हें सुनाई पड़ता है, तुम कर नहीं रहे हो। और यह नाद बाहर से नहीं आ रहा है, क्योंकि कान इत्यादि, तुम कछुए का आसन मार कर बैठ गए, वहीं छूट गए, बहुत दूर छूट गए। अब तो भीतर ही तुम्हारे जो नाद हो रहा है, जो सदा से हो रहा था, लेकिन बाहर के कोलाहल से कारण सुनाई न पड़ता था...।

जैसे घर में कोई वीणा बज रही हो धीमी-धीमी और बाहर शोरगुल मचा हो और तुम्हें वीणा सुनाई न पड़े; कोई धीमे से बांसुरी बजाता हो और बाजार के कोलाहल में सुनाई न पड़े--ऐसा भीतर का नाद है, अनाहत नाद जिसको योगी कहते हैं। वह नाद तुम्हारे भीतर हो ही रहा है। वह तुम्हारे हृदय का संगीत है। उस संगीत का सुनाई पड़ना शुरू होता है। उसको अजपा जाप कहा है। तुम करने वाले नहीं हो उसके; तुम सिर्फ साक्षी-मात्र हों। तुम सिर्फ सुनते हो। तुम सिर्फ अनुभव करते हो।

क्या मुफ्त का जाहिदों ने इलजाम लिया
तस्बीह के दानों से अबस काम लिया
यह नाम तो वो है जिसे बेगिनती लें

भगवान का नाम भी लोग गिन-गिन कर ले रहे हैं, ऐसे कंजूस हैं!

मैं एक घर में मेहमान था। वे अपनी खाता-बही ले आए। मैंने कहा, यह किसलिए लाए? उन्होंने कहा, जरा देखिए, यह खाता-बही नहीं है, इसमें राम-राम लिखा है। एक करोड़ बार लिख चुका हूं अब तक।

अब यह आदमी खतरनाक है। अगर कभी भगवान से इसका मिलना हो जाए, हो नहीं सकता इसका मिलना, क्योंकि भगवान भी इससे डरेंगे कि यह खाता-बही ले कर आने वाला है। तो मैंने उन सज्जन को एक कहानी कही। मैंने कहा, मैंने सुना है, एक भक्त मरा। और उसी दिन उस भक्त के सामने रहने वाला एक पापी मरा। और देवदूत भक्त को तो ले जाने लगे नर्क की तरफ और पापी को ले जाने लगे स्वर्ग की तरफ। तो वह बहुत नाराज हुआ। कहीं कुछ भूल हो गई है। तो उस भक्त ने कहा, जाओ पहले पता लगाओ, कुछ भूल हो गई है। मालूम होता है जो सरकारी दफ्तर में यहां चलता है वह वहां भी चलता है। यह क्या गड़बड़ कर रहे हो? मैं जिंदगी भर नाम लेता रहा। सुबह-शाम कीर्तन-भजन, कीर्तन, क्या नहीं किया! क्या छोड़ा? रात-दिन जपता रहा राम-राम। देखते नहीं मेरी राम-नाम की चदरिया, ओढ़े बैठा हूं! और मुझे तुम नर्क ले जा रहे हो! और इस पापी को मैंने कभी राम-नाम लेते नहीं देखा।

लेकिन देवदूतों ने कहा, भूल नहीं हुई है; फिर भी आपकी मर्जी हो तो आप चल सकते हैं। अपनी शिकायत कर सकते हैं। तो वह गया। बड़ी अकड़ से उसने जा कर भगवान को कहा, यह मामला क्या है? यह किस तरह का न्याय है? यह अन्याय हो रहा है। मैंने इतना भजन-कीर्तन किया, सुबह तीन बजे से उठ कर करता था और पूरा गांव मेरा गवाह है, क्योंकि लाउडस्पीकर लगवा कर करता था। कोई अकेला ही मैं नहीं हूं, पूरा गांव मेरा गवाह है। और तुमने भी सुना होगा। और मुझे नर्क भेजा रहा है। इस आदमी ने कभी भजन-कीर्तन नहीं किया; बल्कि कभी-कभी यह आदमी आ जाता था मेरे वहां कि भई, सोने दो, तीन बजे से तो मत उपद्रव करो; कम से कम माइक तो न लगाओ, तुम्हें अपने घर में करना है तो करते रहो। यह आदमी बाधा डालता था। इसको स्वर्ग ले जाया जा रहा है!

भगवान ने कहा: इसीलिए कि यह मेरे पक्ष में था। और तुम मेरी खोपड़ी खा गए। और मैं तुम्हें स्वर्ग में नहीं बसा सकता। अगर तुमको यहां बसना है तो मुझे नर्क जाना पड़े। तुम मेरी जान खा जाओगे। तुमने एक क्षण मुझे चैन न लेने दिया। तीन बजे रात मैं भी सोता हूं और तुम माइक लगा कर उपद्रव मचाते रहे।

अब यह आदमी जो एक करोड़ बार लिख चुका है नाम, यह खतरनाक है। भगवान के साथ भी गिनती है।

क्या मुफ्त का जाहिदों ने इलजाम लिया
तस्बीह के दानों से अबस काम लिया
यह नाम तो वो है जिसे बेगिनती लें
क्या लुत्फ जो गिन-गिन के तेरा नाम लिया।

यह नाम तो सच में ऐसा है, जिसे तुम लोगे तो चूक हो जाएगी। तुम लेना ही मत। यह तो जब तुम्हारे भीतर बहेगी धारा अपने-आप नैसर्गिक, अहर्निश उठेगा ओंकार का नाद--तब, तभी असली जाप शुरू हुआ। अजपा ही असली जाप है।

"हृदय कमल में सुरति धरि, अजप जपै जो कोय।

विमल ज्ञान प्रगटै तहां, कलमख डारै खोय।।'

वहां विमल ज्ञान पैदा होता है। यह विमल ज्ञान शास्त्रों से, पांडित्य से नहीं उपलब्ध होता। यह विमल ज्ञान तब होता है जब तुम इंद्रियों से, देह से, श्वास से, सब से छूट गए और अपने हृदय-कमल में अपनी सुधि को विराज कर बैठ कर गए। वहां, "विमल ज्ञान प्रगटै तहां'। वहां वह शुद्ध ज्ञान पैदा होता है, बोध पैदा होता है; अनुभव, समाधि, सतोरी, या जो भी नाम तुम देना चाहो। वहां वह शुद्ध ज्ञान पैदा होता है, जिसमें सब बंधन कट जाते हैं, सब पाप गिर जाते हैं। ...."कलमख डारै खोय'। जहां सब मैल धुल जाते हैं, इसलिए उसको विमल ज्ञान कहा है, जहां सब मल विसर्जित हो जाते हैं।

मुझसे लोग पूछते हैं कि हम अपने कर्मों के मैल को कैसे धोएं? यह बड़ी कठिन बात है। तुम न धो पाओगे। तुम तो धोओगे तो और गंदा कर लोगे। यह तुम्हारे ही करने की वजह से ही तो कर्म-मैल इकट्ठा हुआ है। यह तुम्हारे धोए न धुलेगा। वह कर्म-मल इकट्ठा ही तुम्हारे करने से हुआ है। अब तुम और करना चाहते हो, कुछ और करना चाहते हो। यह तो धुलेगा तब जब तुम अकर्ता हो जाओगे। कर्म का मैल तभी जाएगा जब तुम अकर्म में डूब जाओगे, अकर्ता हो जाओगे। यह परमात्मा धोएगा, तुम नहीं धो सकते। तुम्हारा काम बिगाड़ने का था, वह तुमने कर दिया। अब तुम सुधारने में और मत बिगाड़ लेना।

तुम कृपा करके अपने कर्म-जाल को सुधारने की कोशिश मत करो। तुम तो बोध में उतर जाओ। उस बोध की वर्षा में सब मैल बह जाते हैं। एक क्षण में तुम ऐसे पवित्र हो जाते हो जैसे तुम होने चाहिए और जैसा तुम जनम-जनम कोशिश करके कभी नहीं हो सकते हो। तुम्हारी कोशिश तुमसे बड़ी थोड़े ही होगी। तुम्हारी कोशिश तुम्हारी ही तो होगी न। तुम जो करोगे, उस पर तुम्हारी ही छाप रहेगी, तुम्हारा ही हस्ताक्षर रहेगा। इसलिए यहां, मैं तुम्हें जो सिखा रहा हूं, वह कुछ कृत्य नहीं सिखा रहा हूं--सिर्फ ध्यान। तुम ध्यान में डूबो।

ध्यान का अर्थ है: तुम परमात्मा के सामने खड़े हो जाओ जैसे मैले-कुचैले हो। जैसे छोटा बच्चा बाहर धूल-धवांस में खेल-खाल कर कीचड़ इत्यादि से भरा हुआ, कपड़े-लत्ते फटे हुए अपनी मां के सामने आ कर खड़ा हो जाता है, ऐसे तुम खड़े हो जाओ वहां। तुम धो दिए जाओगे तुम्हारे खड़े होते ही। तुम्हारे ठहरते ही वर्षा हो जाएगी।

"विमल ज्ञान प्रगटै तहां, कमलख डारै खोय'।

इसलिए तुम इस हिसाब में भी मत पड़ना, जैसा कि कई लोग पड़े हैं। कहते हैं कि जनम-जनम में किए कर्म हैं, अब एक दिन में थोड़े ही ज्ञान हो जाएगा, एक क्षण में थोड़े ही ज्ञान हो जाएगा। इतने जन्मों तक कर्म किए हैं तो अब उनको धोएंगे, काटेंगे, जनम-जनम लगेंगे। तब तो तुम कभी भी मुक्त न हो पाओगे। तो, तो मुक्ति हो ही नहीं सकती। फिर

मुक्ति असंभव है। क्योंकि इतने जन्म लगेंगे कर्मों को धोने में और इतने जन्म तुम खाली थोड़े ही बैठे रहोगे, और कर्म करते रहोगे। तो कर्म तो बढ़ते ही चले जाएंगे।

नहीं, तुम्हारे कृत्य से मुक्ति का कोई संबंध नहीं है--तुम्हारे समर्पण से संबंध है। तुम झुको और कह दो परमात्मा कि तुझे धुलाना हो तो धो दे और तुझे मैला रखना हो तो मैला रख, जैसी तेरी मर्जी! मगर यह बात तुम कह सकोगे तभी जब तुम हृदय-कमल में पहुंच जाओ। उसके पहले तुम न कह सकोगे। उसके पहले परमात्मा का तुम्हें कोई पता ही नहीं है। तब तक तुम मंदिर की मूर्तियों के सामने कहोगे, वे तुम्हारी बनाई हुई हैं। वे तुम्हारे कृत्य हैं। वे तुम्हारे कर्म हैं। तब तुम कहां परमात्मा को पाओगे? परमात्मा तो हृदय-कमल में विराजमान है। वह जो शून्य जगत है, उसी में उसका सिंहासन है।

"जहां काल अरु ज्वाल नहीं, सीत उस्न नहीं वीर'।

और दया कहती है: हे भाई, उस हृदय-कमल में ऐसी घटना घटती है कि "जहां काल अरु ज्वाल नहीं'। वहां न तो मौत है न पीड़ा है, न समय है। ..."सीत उस्न नहीं बीर'। न वहां ठंडा है कुछ और न गर्म। वहां सब द्वंद्व शांत हो गए हैं। वहां सब द्वैत गिर गया। वहां दो आंख एक हो गई है।

"दया परसि निज धामकूं, पायो भेद गंभीर।'

और उस स्वयं की परमदशा को देख कर जीवन का रहस्य हाथ में लगा कि अब तक नाहक परेशान हो रहे थे कि बुरे को छोड़ें कि पाप को छोड़ें कि सज्जन हो जाएं, साधु हो जाएं, ऐसा करें वैसा करें, इस मंदिर जाएं उस मंदिर जाएं, किस शास्त्र को पकड़ें, किस धर्म का अनुगमन करें! भटकते थे व्यर्थ ही।

"दया परसि निज धामकूं, पायो भेद गंभीर'।

सब शास्त्रों का शास्त्र, वेदों का वेद, जो गंभीरतम भेद है, जो रहस्यों का रहस्य है, वह मिल गया। वह रहस्य क्या है? वह रहस्य यह है कि मनुष्य अपने ही कृत्य से बंधा है और कृत्य के कारण ही मुक्त नहीं हो पाता है। अकर्ता हो जाए, साक्षी हो जाए, तो अभी मुक्त है, यहीं मुक्त है।

"पिय को रूप अनूप लखि, कोटि भान उंजियार'।

और जब उस हृदय-कमल के शून्य में देखा प्रीतम का रूप..."पिय को रूप अनूप लखि'...अद्वितीय रूप देखा प्रिय का, प्रियतम का, "कोटि भान उंजियार', जैसे हजारों सूरज, करोड़ों सूरज एक साथ उगे।

"दया सकल दुख मिटि गयो, प्रगट भयो सुखसार'।

सब दुख मिट गए और सुख का सार, सुख की कुंजी प्रगट हुई। कुंजी कि सुख हमारा स्वभाव है। हम दूसरे से मांगते फिरे, इसलिए दरिद्र और दीन रहे। हम भिखारी बने, इसलिए भिखारी रहे। सम्राट होना हमारा स्वभाव था। हमने अपने भीतर कभी देखा नहीं, इसलिए खूब भटके।

"दया सकल दुख मिटि गयो, प्रगट भयो सुखसार'।

"अनंत भान उंजियार तहं, प्रगटी अदभुत जोत।
चकचौंधी सी लगति है, मनसा सीतल होत।।'

"अनंत भान उंजियार तहं'...। और कितने-कितने सूरज एक साथ उग आए! और जनम-जनम तक अंधेरा ही अंधेरा था। और लाख दीए जलाए, सब बुझ गए। और लाख दीयों पर भरोसा किया, कोई काम न आए। कितनों को अपना माना, सब पराए सिद्ध हुए। सब नावें कागज की साबित हुईं। "अनंत भान उंजियार तहं'...। और अब अचानक अनंत-अनंत सूर्यों का उजियाला हुआ है। "प्रगटी अदभुत जोत'। और ज्योति बड़ी अदभुत है। क्या अदभुत है ज्योति में? "चकचौंधी सी लगति है, मनसा सीतल होत'। अदभुत यह है: है तो ज्योति ही, है तो अग्नि। और एक तरफ आंखें चकाचौंध में भर गई हैं और दूसरी तरफ मन शीतल हुआ जा रहा है। ठंडी आग, इसलिए अदभुत। परमात्मा ठंडी आग है।

यहूदियों के पास इसकी सबसे मीठी कथा है। मोजिज को जब परमात्मा का दर्शन हुआ, सिनाई के पहाड़ पर, तो मोजिज को समझ में न आया क्या हो रहा है! क्योंकि परमात्मा एक अग्नि की लपट की भांति प्रगट हुए एक हरी झाड़ी में। और झाड़ी जली नहीं। और ज्योति प्रगट हुई। और लपट उठने लगी आकाश की तरफ। और झाड़ी हरी की हरी रही। पत्ते कुम्हलाए नहीं, फूल सूखे नहीं, कुछ भी जला नहीं। मोजिज समझ ही न पाए कि क्या हुआ! आग और ठंडी! आग कभी ठंडी देखी!

यह जो यहूदियों की कथा है, इसका अर्थ यहूदियों के पास नहीं है। क्योंकि मोजिज के जीवन में घटी होगी, फिर यहूदियों ने इसकी बहुत खोजबीन नहीं की कि यह बात क्या है! यह सिनाई का पहाड़ कहीं और नहीं है, मनुष्य के भीतर चैतन्य की अंतिम ऊंचाई का नाम है। इसलिए सभी धर्मों ने अपने तीर्थ बड़े ऊंचे पहाड़ों पर बनाए हैं। वे प्रतीक हैं। हिमालय के उत्तुंग शिखरों पर बद्री और केदार। और कैलाश की धारणा है कि कैलाश पर शिव का वास है, कि परमात्मा का घर कैलाश पर। ये तो प्रतीक हैं। ये आत्मा की ऊंचाइयों के प्रतीक हैं। तुम्हारा चैतन्य जब अपनी परम ऊंचाई पर पहुंचता है, अपने परम शिखर पर, तो कैलाश। और वहीं शिव का वास। यह कोई हिमालय में खोजने से कहीं मिलेगा नहीं; यह तुम्हारे भीतर की बात है। सिनाई भी भीतर के पर्वत की बात है। और जिस झाड़ी की बात कर रहे हैं मोजिज, वह झाड़ी तुम हो। परमात्मा की आग उठेगी तुम्हारे भीतर और तुम चकित हो कर रह जाओगे: "अनंत भान उंजियार तहं'...जैसे हजारों सूरज एक साथ आ गए भीतर। "...प्रगटो अदभुत जोत। चकचौंधी सी लगति है, मनसा सीतल होत।' और चमत्कार यह है कि आंखें तो झंपी जाती हैं इतनी रोशनी में और मन ठंडा हुआ जाता है और मन शीतल हुआ जाता है।

"बिन दामिन उंजियार अति'...। और भी चमत्कार की बात है कि बिजली तो कहीं चमकती दिखाई नहीं पड़ती और उजियाला बहुत है। सूरज तो कहीं दिखाई नहीं पड़ता और ऐसा लगता है हजारों सूरज उगे हैं।

"बिन दामिन उंजियार अति'...। स्रोत तो दिखाई नहीं पड़ता और रोशनी बहुत है। तो बिना स्रोत की रोशनी। पहली बात: रोशनी ठंडी है। दूसरी बात: स्रोत नहीं है। जिसका स्रोत हो वह रोशनी चुक जाती है। यह न चुकने वाली ज्योति है। तुमने दीया भरा तेल से, जलाया--तेल चुकेगा, ज्योति बुझ जाएगी। रात भर लगेगा तेल को चुकने में तो रात भर दीया जलेगा। महीना भर लगेगा तो महीना भर लगेगा।

वैज्ञानिक कहते हैं कि सूरज करोड़ों वर्ष से जल रहा है, लेकिन सदा नहीं जलता रहेगा; चार-पांच हजार साल और। क्योंकि रोज-रोज ठंडा होता जा रहा है। उसकी रोशनी चुकती जा रही है, उसका तेल चुक रहा है। उसकी ऊर्जा क्षीण हो रही है। तो सूरज भी एक न एक दिन चुक जाएगा, ठंडा हो जाएगा।

परमात्मा एकमात्र रोशनी है जो कभी न चुकेगा। शाश्वत। क्योंकि स्रोत नहीं है कहीं। कोई तेल नहीं है, कोई ईंधन नहीं है, जिस पर निर्भर हो--अकारण है।

"बिन दामिन उंजियार अति, बिन घन परत फुहार'।

और दया कहती है, ऐसा हो रहा है, मेघ तो कहीं दिखाई नहीं पड़ते और फुहार पड़ रही है। कहां से हो रहा है यह आनंद का बरसन! यह वर्षा कहां से हो रही है, कोई मेघ दिखाई नहीं पड़ता! कोई दामिनी चमकती मालूम नहीं पड़ती और रोशनी बहुत है।

यह बड़ा प्रतीकात्मक वचन है।

"मगन भयो मनुवां तहां, दया निहार निहार'।

और दया कहती है, अब मगन हो गई! नाच उठा मन! निहार निहार! यह जो है, यह जो दिखाई पड़ रहा है भीतर, यह जो अनुभव हो रहा है, यह जो प्रतीति और साक्षात्कार हो रहा है, बस काफी है कि अनंत कालों तक निहारते रहो। इसका आनंद कभी चुकता नहीं। इसका रस कभी समाप्त नहीं होता।

"बिन दामिन उंजियार अति, बिन घन परत फुहार।

मगन भयो मनुवां तहां, दया निहार निहार।।'

"जग परिनामी है मृषा, तन-रूपी भ्रमकूप।

तू चेतन सरूप है, अदभुत आनंद-रूप।।'

"जग परिनामी है मृषा'...! इस जगत में तो जो भी दिखाई पड़ता है सब परिवर्तनशील है, क्षणभंगुर; अभी है अभी नहीं; ओस की बूंद जैसा। "जग परिनामी है मृषा'...। यह तो ऐसा है जैसे मरुस्थल में प्यासे को अपनी प्यास के कारण जलस्रोत दिखाई पड़ता है। अपनी प्यास के कारण प्रक्षेपण हो जाता है। इतना प्यासा है कि मान लेता है कि जल होना ही चाहिए। जब तुम बहुत प्यासे होते हो, तुम बातें मान लेते हो। तुम्हारा जो वासना, कामना, अभीप्सा का अंतरतम रूप है, वही बाहर तुम खोजने लगते हो। मान लेते हो कि होगा, होना चाहिए, क्योंकि तुम्हें चाह है। तुम्हारी चाह ही बाहर के पर्दे पर रूप लेती है।

तो दया कहती है: "जग परिनामी है मृषा'...। यहां तो जग में सब बदला जा रहा है, कुछ पकड़ने जैसा नहीं है। और तुम जो भी देख रहे हो, वे तुम्हारे ही सपने हैं; वस्तुतः उनका

कोई अस्तित्व नहीं है। मृषा की भ्रांति हैं। मरुस्थल में दिखाई पड़ा मरूद्यान। "तन-रूपी भ्रमकूप'। और इस तन के कुएं में तुम्हें जो जल दिखाई पड़ रहा है वह भी तुम्हारी मान्यता के कारण है। है नहीं। इस शरीर में कोई भी जल नहीं है जो तृप्ति दे दे। इस शरीर में कोई भी जल नहीं है जो तुम्हारी प्यास को बुझा दे।

जीसस के जीवन में एक उल्लेख है कि एक कुएं पर वे आए, थके-मांदे राह से। और एक स्त्री पानी भरती थी, अछूत रही होगी। तो उन्होंने उस स्त्री से कहा कि मैं प्यासा हूं, मुझे पानी दे दे। उस स्त्री ने कहा, क्षमा करें, आप कुलीन परिवार के मालूम होते हैं; मैं अछूत दीन-दरिद्र हूं, मेरा पानी कोई पीएगा नहीं। आप प्रतीक्षा करें, कोई और आता होगा पानी भरेगा, आप उससे पानी ले लेना।

जीसस ने कहा, तू फिक्र मत कर। और अगर तू मुझे पानी देगी तो याद रख, मैं तुझे ऐसा पानी दे सकता हूं कि जिसे तू पी ले तो तेरी प्यास सदा-सदा के लिए बुझ जाए। तेरा पानी तो तू जो देगी, थोड़ी देर मेरी प्यास को बुझाएगा। इस प्यास को सदा के लिए बुझाया नहीं जा सकता। लेकिन मेरे पास भी एक पानी है। मैं तुझे उस पानी को दूंगा। उसके पीते ही भीतर की प्यास बुझ जाती है।

"जग परिनामी है मृषा, तन-रूपी भ्रमकूप।'

यह जो शरीर का कुआं है, खाली है, रूखा है, सूखा है; इसमें कहीं कोई जल नहीं है। जल तुम देख लेते हो क्योंकि तुम प्यासे हो। प्यासा जल देख लेता है। प्यासा मान लेता है जल होगा।

तुमने कभी खयाल नहीं किया? तुम उन्हीं चीजों को मान लेते हो जो तुम चाहते हो। तुम अगर किसी के पत्र की प्रतीक्षा कर रहे हो तो पोस्टमैन को आते ही देख कर तुम दरवाजे पर खड़े हो जाते हो कि आ गई चिट्ठी! पत्र आ गया! अगर तुम किसी की प्रतीक्षा कर रहे हो तो दरवाजे पर हवा का झोंका भी लगता है तो तुम भाग कर आ जाते हो कि शायद मेहमान आ गया। तुम जिस बात को मान कर चलते हो उसके देख लेते हो। अगर तुम्हें कोई बता दे कि तुम जहां से जा रहे हो, रास्ते में मरघट है, तो तुम्हें भूत-प्रेत दिखाई पड़ जाएंगे। और इसी जगह से तुम कई बार निकल गए पहले और कभी भूत-प्रेत नहीं दिखाई पड़े, क्योंकि तुम्हें खयाल में नहीं था कि मरघट है। तो तुमने प्रक्षेपण नहीं किया। एक बार तुम्हें पता चल जाए कि मरघट है तो मुश्किल हो गई। फिर तुम न निकल पाओगे। फिर तुम्हें झंझटें आएंगी। झंझट तुम्हीं खड़ी कर लोगे। तुम्हारी धारणा तुम्हारा भय ही भूत बन जाएगा।

"जग परिनामी है मृषा, तन-रूपी भ्रमकूप।

तू चेतन सरूप है, अदभुत आनंद-रूप।।'

दया कहती है: और तू चेतन-सरूप है, अदभुत आनंद-रूप! चैतन्य तेरा स्वभाव है, परमात्मा तेरा स्वभाव है। अदभुत आनंद रूप! रसो वै सः। सच्चिदानंद!

लेकिन अपने में जाओ तो पता चले। एक ही तीर्थ है जाने योग्य और एक ही मंदिर है प्रवेश करने योग्य, एक ही शिखर है छूने योग्य और एक ही गहराई है स्पर्श करने योग्य--वह तुम्हीं हो।

उपनिषद कहते हैं: तत्वमसि श्वेतकेतु! श्वेतकेतु, वह तू ही है।

लेकिन तुम्हारी कठिनाई भी मैं समझता हूं। सभी की कठिनाई है वह। जब तक अनुभव नहीं हुआ तब तक ये बातें बड़ी दूर की मालूम पड़ती हैं। तब तक तो हमें एक ही अनुभव है जीवन का: दुख, पीड़ा, नर्क। स्वर्ग की तो हम भाषा भूल गए हैं। उत्सव का तो हमें ढंग ही याद नहीं रहा।

और धर्म के नाम पर जो चल रहा है, वह बिलकुल पाखंड है। धर्म के नाम पर जो चल रहा है, वह पंडित-पुरोहितों का जाल है। संसार में कुछ मिलता है न मंदिर में कुछ मिलता है। आदमी की बड़ी फांसी है।

इधर मैं तुम्हें कोई बाहर का मंदिर बताने को नहीं हूं; बाहर के मंदिर काम नहीं पड़े। और इधर मैं तुम्हें बाहर का कोई शास्त्र भी बताने को नहीं हूं; बाहर के शास्त्र भी काम नहीं पड़े। यहां तो एक ही बात करने जैसी है: अपने भीतर खोदो। यहां तो एक ही बात सीखने जैसी है: अपने को सीखो। सब कूड़ा-कर्कट हटा कर अपने भीतर जाओ। अड़चन होगी, बाधा होगी, जन्म-जन्म के अभ्यास बीच में खड़े होंगे; लेकिन सब तोड़े जा सकते हैं, क्योंकि सब तुम्हारे प्रतिकूल हैं, स्वभाव के अनुकूल नहीं हैं। जो स्वभाव के अनुकूल है उसे पाना कठिन भला हो, असंभव नहीं है। तुमने अगर चाहा तो निश्चित ही तुम पहुंच जाओगे। क्योंकि तीर्थ दूर नहीं है; तीर्थ बिलकुल पास से भी पास है, तुम्हारे हृदय में बसा है।

"हृदय कमल में सुरति धरि, अजप जपै जो कोय।

विमल ज्ञान प्रगटै तहां, कलमख डारै खोय।।'

तीन बातें पुनः दोहरा दूं, ताकि तुम्हें याद रहें। एक: कछुआ बनना सीखो। बड़ा राज है कछुआ बनने में। चौबीस घंटे में कम से कम एक घंटा तो कछुआ बन ही जाओ। उस कछुआ बनने में ही तुम पाओगे कि परमात्मा का तुम में अवतरण होने लगा। वही परमात्मा के कछुआ-रूप अवतार का अर्थ है।

दूसरी बात: कछुआ बन कर सारी सुधि, सारी सुरति श्वास पर लगा दो। और जब धीरे-धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता तुम्हें यह अनुभव में आने लगे कि तुम शरीर नहीं, तुम श्वास नहीं...। और खयाल रखना, इसे तुम दोहराना मत अपनी तरफ से कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं श्वास नहीं हूं; अन्यथा तुम झूठी प्रतीति कर लोगे। तुम प्रतीक्षा करना, होने देना इस घटना को। जल्दी कुछ है भी नहीं।

नहीं तो खतरा क्या है कि हम दोहराना सीख गए हैं, हम तोते हो गए हैं, हम दोहराते हैं। तुम बैठोगे कछुआ बन कर, श्वास पर थोड़ा सा ध्यान लगाया घड़ी आधा घड़ी और दोहराने लगे कि मैं देह नहीं, मैं श्वास नहीं। तुम झुठला लोगे सारी बात। तुम मत दोहराना। तुम तो बैठे रहना। तुम तो इसे होने देना, आने देना अनुभव में। एक दिन यह आएगी, उस दिन

द्वार खुल जाएंगे। जिस दिन यह बात अनुभव में आ जाएगी--मैं शरीर नहीं, मैं श्वास नहीं--उस दिन सुधि को हृदय-कमल के शून्य में विराजमान कर लेना। उस दिन सोच लेना कि मैं एक कमल हूं; कमल के मध्य में सुधि को, अपने भान को, अपनी सुरति को भौंरा बना कर बिठा दिया। फिर वहां सब अपने-आप घट जाता है।

पिय को रूप अनूप लखि, कोटि भाग उंजियार।
दया सकल दुख मिटि गयो, प्रगट भयो सुखसार।।
बिन दामिन उंजियार अति, बिन घन परत फुहार।
मग भयो मनुवां तहां, दया निहार-निहार।।

आज इतना ही।

आठवां प्रवचन

दिनांक १८ मार्च, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

जिज्ञासाएं

कल आपने कहा कि जिन्होंने खोजा वे खो देंगे। और आपकी एक प्रसिद्ध पुस्तक है: "जिन खोजा तिन पाइयां'। क्या सच है?

मन को सहारा न देना और जीवन के प्रति सहज होना--क्या दोनों एक साथ संभव हैं।

भोग, प्रेम, ध्यान, समझ, समर्पण, कुछ भी तो मेरे लिए सहयोगी नहीं हो रहा। अब आप ही जानें!

अकेला हूं, मैं हमसफर ढूंढता हूं...।

ध्यान में मुझे नाचना है या मेरे शरीर को?

क्या आप अपने शिष्यों के लिए ही हैं कि मुझे आपसे मिलने नहीं दिया जाता?

भगवान, क्या से क्या हो गई, कुछ न सकी जान।

करने से न करने की दशा

पहला प्रश्न: कल आपने कहा, जिन्होंने खोजा वे खो देंगे। और आपकी एक प्रसिद्ध पुस्तक कहती है, जिन खोजा तिन पाइयां। क्या सच है? कृपया समझाएं।

एक रास्ते पर मुल्ला नसरुद्दीन और उसका मित्र घर की तरफ वापस लौटते थे, अचानक मित्र ने नसरुद्दीन की बांह पकड़ी और कहा, जल्दी भाग निकलो, बचो! और उसे ले कर जल्दी ही पास की होटल में प्रवेश कर गया। मुल्ला भी घबराया हुआ अंदर गया, हांफने

लगा। अंदर जा कर पूछा, "मामला क्या है? नसबंदी करने वाले लोग आ रहे हैं? इतनी घबराहट क्या है?' उस मित्र ने कहा, "नसबंदी से भी बड़ा खतरा है। देखते नहीं, उस तरफ रास्ते के मेरी पत्नी मेरी प्रेयसी से खड़ी बातें कर रही है।' मुल्ला ने गौर से देखा और कहा कि शुक्र अल्लाह का, खूब बचाया! पर मित्र ने कहा कि तुम यह क्यों कहते हो कि खूब बचाया? मुल्ला ने कहा, एक जगह तुम भूल कर रहे हो। तुम्हारी पत्नी तुम्हारी प्रेयसी से बातें नहीं कर रही, मेरी पत्नी मेरी प्रेयसी से बातें कर रही है।

पर दोनों बातें साथ-साथ सच हो सकती हैं, इसमें कुछ विरोधाभास नहीं है। "जिन खोजा तिन पाइयां' और "जिन खोजा तिन गंवाइयां' दोनों एक साथ सच हो सकते हैं। विरोध नहीं है। समझने की कोशिश करें। जो खोजेगा ही नहीं वह तो कभी पाएगा नहीं। जो खोजता ही रहेगा वह भी कभी न पाएगा। एक दिन खोज पर जाना पड़ता है और फिर एक दिन खोज छोड़ कर बैठ भी जाना पड़ता है। "जिन खोजा तिन पाइयां' पहला कदम है। आधी यात्रा खोज से होती है। फिर आधी यात्रा खोज छोड़ कर होती है।

बुद्ध ने छह वर्ष तक खोजा, अथक श्रम किया; जो भी कर सकते थे किया। गुरुओं ने जो कहा वही किया। योग किया और जप किया, तप किया, उपवास किए, भक्ति, ध्यान, सब किया। अपने को पूरी तरह डुबा दिया करने में। लेकिन परिणाम न हुआ। एक दिन सब करके थक गए और लगा, करने में कुछ भी सार नहीं। क्योंकि करने में कर्ता तो बना ही रहता है। खोज में खोजी तो बना ही रहता है। तुम कुछ करो, योग करो कि तप करो कि ध्यान करो, अहंकार तो उससे भी निर्मित होता ही है कि मैं ध्यान कर रहा हूं, ध्यानी हूं; कि मैं भक्ति कर रहा हूं, भक्त हूं, एक सूक्ष्म अस्मिता निर्मित होती चली जाती है। और समस्त धर्मों का सार इस एक बात में है कि जब तक अहंकार है, तब तक तुम प्रभु को न पा सकोगे, क्योंकि वही अहंकार बाधा है। जब तक तुम हो तब तक उसे पा न सकोगे। तुम मिटोगे तो ही उसका आगमन संभव है। तुम हटोगे तुम्हारे और उसके बीच से, तो ही मिलन होगा। तुम ही अड़े हो चट्टान की तरह। तो कभी तुम धन कमाते थे, धनी थे; अब भक्ति कमाने लगे, भक्त हो गए। लेकिन तुम तो रहे। माना कि पहले से थोड़े बेहतर। यह अहंकार थोड़ा सोने जैसा, पहले का अहंकार लक्कड़-पत्थर का था, कूड़ा-कर्कट का था। यह दूसरा अहंकार बहुमूल्य है। पहला अहंकार साधारण, यह असाधारण। पहला अहंकार सांसारिक का, यह दूसरा धार्मिक का। लेकिन अहंकार तो अहंकार ही है।

तो छह वर्ष की निरंतर खोज पर सब तो थक गया, लेकिन अहंकार न थका। करने से अहंकार कभी थकता ही नहीं। दौड़ने से अहंकार कभी थकता नहीं। एक दिन छह वर्ष की अथक तपश्चर्या के बाद बुद्ध को दिखा, सब व्यर्थ है। न तो संसार में कुछ मिला, न संन्यास में कुछ मिला। उस रात उन्होंने संन्यास भी मन से गिरा दिया। बैठ गए वृक्ष के नीचे। न ध्यान किया न भक्ति की, न तप किया न जप किया। उस रात सोए। वह नींद बड़ी अनूठी थी। इसके पहले कभी सोए ही न थे, क्योंकि मन में कोई न कोई वासना थी--कभी धन को पाने की, कभी भगवान को पाने की, कभी सत्य पाने की। और वासना थी तो सपने थे।

और सपने थे तो तनाव था। और तनाव था तो नींद कहां, विश्राम कहां! उस रात पहली दफे विश्राम हुआ। उसी विश्राम में सत्य का अवतरण हो गया। सुबह जब आंख खुली...बौद्ध शास्त्र बड़ी अदभुत कहते हैं! वे कहते हैं, सुबह आंख खुली। आंख खोली, ऐसा भी नहीं कहते, क्योंकि अब कहां खोलने वाला! जब नींद पूरी हो गई तो आंख खुल गई। जैसे सुबह फूल खिलता है, ऐसे आंख खुली। और बुद्ध की खुलती आंख ने आखिरी तारे को डूबते हुए देखा। जगत तरैया भोर की! आखिरी तारा डूबता था। उधर तारा झिलमिलाता-झिलमिलाता खोने लगा और यहां आखिरी अस्मिता, आखिरी अहंकार भी झलक-झलक कर विलीन हो गया। उसी क्षण घटना घट गई।

जब बुद्ध से लोग पूछते बाद में कि कैसे पाया, तो वे कहते, बड़ी झंझट का प्रश्न है। क्योंकि जो मैंने किया उससे तो पाया नहीं। जिस दिन मैंने कुछ भी नहीं किया था उन दिन पाया। लेकिन यह भी सच है कि जो मैंने किया था, अगर न करता तो यह अनकरने की दशा भी नहीं आ सकती थी।

इस बात को समझो। वह जो छह वर्ष तपश्चर्या की उससे सीधा सत्य नहीं मिला। लेकिन वह छह वर्ष तपश्चर्या किए बिना अगर बुद्ध वृक्ष के नीचे बैठ गए होते तो यह विश्राम की घड़ी भी नहीं आ सकती थी। तुम जाओ, बैठ जाओ, अभी भी वृक्ष मौजूद है, बोधगया में। तुम सोचो कि छह वर्ष की मेहनत तो छोड़ें, सार क्या, उससे तो कुछ मिला नहीं; बैठने से मिला। बैठ गए। तो ऊपर से तुम भी बुद्ध जैसे बैठ जाओगे, टिक जाओगे; लेकिन भीतर? वह जो अनुभव छह वर्ष की तपश्चर्या से हुआ था कि कुछ भी नहीं मिलता, करने से कुछ भी नहीं मिलता, करना व्यर्थ है--वह जो छह वर्ष निरंतर सिर पर हथौड़ी की तरह चोट पड़ती रही थी कि करना व्यर्थ है, वह तो तुम्हारे भीतर नहीं पड़ेगी। उससे तो तुम वंचित रहोगे। तो तुम लेट जाओ बोधिवृक्ष के नीचे, वह वृक्ष तुम्हारे लिए बोधिवृक्ष नहीं होगा, वह बुद्ध के लिए हुआ।

तो अब क्या कहें? बुद्ध को करने से मिला कि न करने से मिला? दोनों बातें साथ ही कहनी पड़ेंगी। करने और न करने से मिला। करने से न करने की दशा मिली और न करने से सत्य मिला। इसलिए "जिन खोजा तिन पाइयां' पहला कदम है। वह बुद्ध के छह वर्ष। फिर जब मैं कभी-कभी कहता हूं, "खोजना मत, नहीं तो खो दोगे', वह आखिरी बात कह रहा हूं। कहीं ऐसा न हो कि तुम खोजते ही रहो। छह वर्ष को साठ वर्ष बना लो कि छह जन्म बना लो--और खोजते ही रहो तो तुम खोजते ही रहोगे और कभी न पहुंच पाओगे।

दौड़ना भी जरूरी है मंजिल पाने के लिए, फिर रुकना भी जरूरी है। कहीं ऐसा हो कि दौड़ने की आदत ही बन गई तो मंजिल भी पास आ जाएगी, तुम दौड़ते ही निकल जाओगे। मंजिल पर जा कर रुकोगे न! रुकोगे, तभी तो मंजिल मिलेगी न! तुम अगर दौड़ने के कुशल अभ्यासी हो गए और रुकना ही भूल गए, दौड़ते रहे, दौड़ते रहे जन्मों-जन्मों तक, फिर मंजिल भी आ गई, अब रुकें कैसे! तुम दौड़ते ही चले गए। मंजिल तो रुकने से मिलेगी।

लेकिन रुकने की कला उसके हाथ में आती है जो पूरी तरह दौड़ लिया है, पूरे मन से दौड़ लिया है, समग्ररूपेण!

ये दोनों बातें एक साथ सच हैं। मेरी बातों में तुम्हें कई बार विरोधाभास लगेंगे; जब भी विरोधाभास लगें तो समझना कि कहीं तुमसे भूल हो रही है। मेरे वक्तव्य कितने ही विरोधाभासी दिखाई पड़ें, विरोधाभासी हो नहीं सकते। उनमें कहीं न कहीं कोई तार जुड़ा होगा। कहीं न कहीं कोई सेतु होगा जो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा है। दोनों को जोड़ने वाली कोई शृंखला होगी जो तुम्हारे लिए अदृश्य है। जब भी तुम्हें मेरे दो विरोधाभासी वचन मिलें--और मेरे वचनों में तुम्हें हजारों विरोधाभासी वचन मिलेंगे--लेकिन जब भी तुम गौर से खोजोगे, तुम सदा ही पा लोगे कि उनमें विरोध दिखाई पड़ता है, विरोध है नहीं। दोनों बातें साथ हो सकती हैं। और मैं तुमसे यह भी कहना चाहता हूं कि दोनों साथ होंगी, तभी कुछ होगा।

मन है असहजता

दूसरा प्रश्नः आपने कहा कि मन को सहारा न देना और जीवन के प्रति सहज होना चाहिए। क्या दोनों एक साथ संभव हैं या वे अलग-अलग आचार हैं? समझाने की अनुकंपा करें!

पूछते हैं: "क्या दोनों एक साथ संभव है?' बस दोनों एक साथ ही संभव हैं! अलग-अलग तो कभी संभव न हो सकेंगे। क्योंकि दो तो बातें ही नहीं हैं इसमें, एक ही बात है। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक बार इस पहलू की तरफ से कहा है, दूसरी बार उस पहलू की तरफ से कहा है।

समझो। "आपने कहा कि मन को सहारा न देना और जीवन के प्रति सहज होना।' ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मन है असहजता। मन का अर्थ क्या है? जब भी तुम स्वभाव के विपरीत जाते हो, तब मन पैदा होता है। मन तो चेष्टा से बनता है। जानवर के पास इसीलिए तो मन नहीं है, क्योंकि वह स्वभाव के प्रतिकूल जाता ही नहीं है, भटकता ही नहीं कभी। प्रकृति ने जैसा बनाया है बस वैसा है। इसलिए मन की कोई जरूरत नहीं है। आदमी के पास मन है। यह आदमी का गौरव भी है और आदमी का उपद्रव भी। एक गरिमा भी है कि आदमी के पास मन है। और यही उसकी उलझन भी है, समस्या भी है।

मन का अर्थ ही होता है कि आदमी चाहे तो स्वभाव के प्रतिकूल जा सकता है। यह मनुष्य की स्वतंत्रता है।

तुमने किसी जानवर को शीर्षासन करते देखा? सर्कस की बात नहीं कर रहा हूं, क्योंकि सर्कस के जानवर आदमियों के द्वारा विकृत किए गए जानवर हैं, उनकी बात छोड़ दो। जंगल में कभी तुमने किसी जानवर को शीर्षासन करते देखा? जानवर को सोच ही नहीं आएगा कि शीर्षासन भी किया जा सकता है। और जानवर अगर तुम्हें शीर्षासन करते देखते होंगे तो जरूर हंसते होंगे कि इनको हो क्या गया है, भले-चंगे पैर खड़े थे, अब सिर पर खड़े हैं!

आदमी उपाय खोजता है--प्रकृति के पार जाने के; प्रकृति से ऊपर उठने के, भिन्न होने के। कामवासना उठती है तो आदमी ब्रह्मचर्य का आरोपण करना चाहता है। क्रोध उठता है तो

आदमी क्रोध को दबा कर भी मुस्कराना चाहता है। यह मनुष्य की गरिमा भी है। यही उसकी खूबी है। क्योंकि जहां-जहां वह प्रकृति के प्रतिकूल जाता है, वहीं-वहीं जीवन में दुख, खिंचाव, बेचैनी पैदा हो जाती है। जहां तुम प्रकृति के अनुकूल होते हो, वहीं जीवन में विराम होता है, विश्राम होता है।

तो मन का तो अर्थ ही है, जो तुम्हारा पैदा किया हुआ है। इसलिए छोटे बच्चों के पास भी मन नहीं होता। मन पैदा होने में समय लगता है। मन को समाज पैदा करता है, परिवार पैदा करता है। शिक्षण से, सामूहिक संस्कार से, संस्कृति-सभ्यता से मन पैदा होता है।

तुमने कभी सोचा? अगर तुम पीछे की याद करो तो तुम्हें एक समय तक याद आती है जब तुम चार साल के थे या तीन साल के थे, उसके बाद याद नहीं आती। क्यों? क्योंकि याद करने के लिए मन ही नहीं था। इसलिए वहां जा कर अटक जाती है। याद करने वाला मन तो चाहिए न! तो जिस दिन तुम्हारा मन पैदा होना शुरू हुआ उसी दिन तक की तुम्हें याद आती है। पीछे लौट कर देखो तो बचपन की याद आती है, जब चार साल के थे या पांच साल के थे। बस उसके बाद सब अंधेरा हो जाता है। कागज कोरा हो जाता है। तब तक मन ठीक से निर्मित न हुआ था, यंत्र निर्मित न हुआ था।

तो चार या पांच साल की उम्र में मन ठीक-ठीक सक्रिय होता है। फिर उसके बाद मन कुशल होता जाता है। बूढ़े आदमी के पास ज्यादा मन होता है। इसलिए बच्चों को हम माफ कर देते हैं। अगर बच्चे गलती भी करते हैं तो हम कहते हैं, बच्चे हैं। क्यों? हम यह कहते हैं कि अभी बेचारों के पास मन नहीं है, अभी बच्चे हैं। अभी संस्करण हुआ नहीं ठीक से, समय लगेगा; अभी साफ किए जा सकते हैं। पागल को भी हम माफ कर देते हैं, कहते हैं पागल है। अगर शराबी कुछ उपद्रव करे तो उसको भी माफ कर देते हैं, कहते हैं कि यह शराबी है, शराब पीए है। क्या कारण होगा? जब शराब पीए है तो उसका मतलब, इसका मन बेहोश है। तो जो यंत्र नियंत्रण रखता है, वह अभी बेहोशी में पड़ा है। तो यह अभी बच्चे जैसा है।

अकबर को एक शराबी ने गालियां दे दीं। अकबर निकलता था अपने हाथी पर बैठ कर। शराबी अपने छप्पर पर चढ़ा था, वहीं से गालियां देने लगा। दिल खोलकर गालियां दीं। अकबर भी हैरान हुआ, दुबला-पतला कमजोर सा आदमी, इतनी हिम्मत की बातें कर रहा है! पकड़वा बुलाया। रात भर तो बंद रहा, सुबह उसे बुलाया, पूछा कि तुमने गालियां क्यों दीं। वह आदमी चरणों में गिर पड़ा! उसने कहा, "मैंने दीं ही नहीं। और जिसने दीं वह मैं नहीं हूं।' तो अकबर ने कहा, तू मुझे झूठा सिद्ध कर रहा है। मेरी आंख से मैं खुद गवाह हूं, किसी और गवाह की जरूरत नहीं है। तू ही है। तूने ही गालियां दी थीं। उसने कहा, "यह मैं कह भी नहीं रहा कि यह मैं नहीं हूं। मैं शराब पीए हुए था, इसलिए गालियां शराब ने दी हैं। मुझे आप क्षमा करें। मेरा इसमें कोई दोष ही नहीं है। अगर दोष है तो शराब पीने का कोई दंड हो तो दे दें, मगर गालियां देने का दंड मुझे न दें।'

अकबर को भी बात जंची। शराब पीए हुए आदमी को क्या दंड देना! शराबी क्षमा किया जा सकता है। पागल क्षमा किया जा सकता है। अगर पागल हत्या भी कर दे तो भी अदालत में

अगर सिद्ध हो जाए कि पागल है, तो बात खतम हो गई। क्योंकि जिसके पास मन नहीं है, उसके ऊपर क्या उत्तरदायित्व थोपना! तो बच्चा, पागल, शराबी क्षमा-योग्य हैं, क्योंकि उनके पास मन नहीं है या स्थगित हो गया है या बेहोश हो गया है या मन विकृत हो गया है।

मनुष्य की पूरी सभ्यता, पूरी संस्कृति मन पर खड़ी है। मन ही आधार है मनुष्य होने का। अब इसको समझना। पशुओं के पास मन नहीं है और संतों के पास भी मन नहीं होता। दोनों में थोड़ा सा तालमेल है--थोड़ा सा तालमेल! भेद बड़ा है, तालमेल थोड़ा सा है। संत मन के पार निकल गए और पशुओं में अभी मन पैदा नहीं हुआ है। इसलिए संत छोटे बच्चों जैसे होते हैं। छोटे बच्चे के पास मन अभी पैदा नहीं हुआ है और संत ने मन को उठा कर रख दिया है। यह और बड़ी क्रांति है: मन को उठा कर रख देना। क्योंकि मन के द्वारा अगर तुम सज्जन हो तो यह भी कोई सज्जनता है! यह तो जरा सी शराब पी लोगे, उतर जाएगी। मन के द्वार अगर तुम सज्जन हो तो सज्जनता बहुत गहरी नहीं है। सज्जनता स्वाभाविक होनी चाहिए। सज्जन और संत में यही फर्क है। सज्जन वह है जो चेष्टा कर-करके सज्जन है। संत वह है जो निश्चेष्टता से, स्वभाव से सज्जन है। सज्जन को दुर्जन बनाया जा सकता है, संत को दुर्जन नहीं बनाया जा सकता। कोई उपाय नहीं है। सज्जन एक सीमा पर दुर्जन हो सकता है।

समझो कि एक आदमी सज्जन है और कहता है कि मैंने कभी चोरी नहीं की। तुम उससे पूछो कि रास्ते पर अगर एक लाख रुपए पड़े मिल जाएं तो उठाओगे कि नहीं? कोई भय न हो, न कोई देखने वाला है, न कोई पुलिस है, तो उठाओगे कि नहीं? वह आदमी कहेगा, कभी नहीं, मैं चोर नहीं हूं। तुम कहो, और एक करोड़ रुपए पड़े हों तो? तो वह आदमी भी सोचने लगेगा। एक सीमा है। एक लाख तक शायद उसका बस था। उसका मन एक लाख तक अपने को समझा लेता था कि नहीं, एक लाख से तो अचोर रहना ज्यादा मूल्यवान है; लेकिन एक करोड़, तो फिर बात डगमगाने लगती है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन एक मकान में लिफ्ट से ऊपर जा रहा है और एक महिला अकेली मिल गई। तो उसने मौका न छोड़ा। उसने कहा, अगर एक हजार रुपया दूं तो आज रात मेरे साथ सो सकोगी? वह महिला नाराज हो गई। उसने कहा, तुमने मुझे समझा क्या है? नसरुद्दीन ने कहा, और अगर दस हजार दूं? तो महिला ने उसका हाथ पकड़ लिया। और कहा कि ठीक। तो नसरुद्दीन ने कहा, और अगर दस रुपए दूं? तो उसने कहा, तुमने मुझे समझा क्या है? वह बोला कि मैंने वह तो समझ लिया, अब तो मोल-भाव कर रहे हैं। दस हजार में तू अगर राजी है तो अब तो मोल-भाव की बात है। क्योंकि बात तो समझ में आ गई कि तेरी हैसियत क्या है। तू कौन है, यह तो हम समझ गए। तेरा सतीत्व कितना दूर तक जा सकता है, वह हम समझ गए, अब हम मोल-भाव की बात कर रहे हैं। क्योंकि हमारी भी हैसियत की बात है न; दस हजार हमारे पास है कहां!

सज्जन की सीमा है, संत की कोई सीमा नहीं है। क्योंकि मन की सीमा है, ध्यान की कोई सीमा नहीं है। सज्जन मन से सज्जन है; संत ध्यान से, स्वभाव से, सहजता से। यही आचरण और आत्मा का भेद है। आचरण होता है मन पर निर्भर और आत्मा होती है मुक्ति, परम मुक्ति। अंतस से जो जीएगा वह आदमी धार्मिक और आचरण से जो जीएगा वह आदमी नैतिक।

अब तुम्हारे प्रश्न को समझो।

"आपने कहा कि मन को सहारा न देना और जीवन के प्रति सहज होना चाहिए।'

सहज होने का अर्थ है: जो-जो तुम मन के द्वारा करते रहे हो...समझो, जैसे तुम क्रोधी हो और मन के द्वारा तुमने किसी तरह क्रोध को दबा रखा है; करुणा असली नहीं है, ऊपर से थोपी, ऊपर-ऊपर है, रंगी-पुती; ऊपर से करुणा दिखाते हो, भीतर से क्रोधी हो--इससे तुम्हारे जीवन जीवन में क्रांति न घटित होगी। इससे तुम थोथे के थोथे, पाखंडी के पाखंडी बने रहोगे। मैं तुमसे कहता हूं, क्रोध को दबाओ मत, क्रोध को समझो। क्योंकि समझ के द्वारा एक ऐसा मौका आता है, एक ऐसा क्षण आता है कि क्रोध से तुम मुक्त हो जाते हो तो तुम्हारे भीतर करुणा का आविर्भाव होता है। उसको मैं सहजता कह रहा हूं। अक्सर तुम मेरी सहजता से अपने अर्थ लगा लेते हो। वह भी मैं जानता हूं। इसलिए ये बातें बड़ी खतरनाक हैं कि जब मैं कहता हूं सहज हो जाओ तो तुम्हारे मन में यही उठता है, तो फिर हो जाओ जानवर! तुम्हारी तकलीफ भी मैं समझता हूं। क्योंकि तुमने सहज होने का और तो कोई ढंग जाना नहीं। सहज होने का तुम्हारे लिए एक ही मतलब होता है कि मन को हटाया कि गए नर्क, कि हुआ कुछ उपद्रव। किसी तरह अपने को सम्हाले हैं, नहीं तो कभी का पड़ोसी की पत्नी को ले भागे होते। अब ये कह रहे हैं, सहज हो जाओ।

तुमने सुनी है कहानी? एक आदमी ने, बड़े धनपति ने, एक मनोवैज्ञानिक से सलाह ली कि बड़ी मुश्किल में हूं, दफ्तर में कोई काम ही नहीं करता, लोग अपनी-अपनी टेबलों पर पैर फैलाए बैठे रहते हैं, कोई अखबार पढ़ता है, गपशप हांकते हैं। मैं अगर पहुंच भी जाता हूं तो वे जल्दी से दिखाने लगते हैं कि काम कर रहे हैं, लेकिन काम-वाम होता नहीं। मैंने एक दिन उनसे पूछा भी कि "भाई, मैं जब आता हूं तब तुम एकदम चौंक कर काम करने लगते हो; जब मैं चला जाता हूं, सब काम बंद हो जाता है। ऐसे काम कैसे चलेगा? क्या मैं चौबीस घंटा यहां तुम्हारे सिर पर बैठा रहूं? किस-किसके सिर पर बैठा रहूं? बड़ा दफ्तर है।' तो क्या करूं?

मनोवैज्ञानिक ने कहा, आप एक काम करें, एक तख्ती टांग दें सारे दफ्तर में जगह-जगह, उसका बड़ा परिणाम होगा। तख्ती में लिख दें कि "जो कल करना हो वह आज करो, अभी करो; क्योंकि कल कभी आता नहीं।'

तख्ती टांग दी। दूसरे दिन मनोवैज्ञानिक पहुंचा मिलने कि कहो कि तख्ती का कुछ परिणाम हुआ? वह धनपति अपना सिर ठोक रहा था। उसने कहा, परिणाम! परिणाम बहुत हुआ। कैशियर सब पैसे लेकर नदारद हो गया। सैक्रेटरी टाइपिस्ट को ले भागा। और ऑफिस बॉय ने

धमकी दी है कि बाहर निकलो तो जूतों से पूजा करूंगा; सदा से करना चाहता था, लेकिन यह सोच कर कि कल करेंगे, कल करेंगे। तो अब बाहर निकलने तक मैं घबरा रहा हूं। खूब तख्ती दी, खूब परिणाम हो रहा है!

मैं भी जानता हूं, जब तुम सुनते हो कि सहज हो जाओ, तब तुम्हारे सामने सवाल उठता है: "तो फिर क्या करना? कैशियर हैं कहीं, ले भागे?' किसी को मारने की कई दिन से योजना बनाते थे, मारते थे नहीं कि यह बात अच्छी नहीं, अब सहज हो गए--"हत्या कर दें? चोरी कर लें, बेईमानी कर लें? क्या कर लें?'

जैसे ही मैं कहता हूं सहज हो जाओ, तुम्हारे मन में जो बातें उठती हैं, उन बातों को ठीक से समझना। उन बातों को ही तुमने दबा रखा है मन के द्वारा।

जब मैं तुमसे कहता हूं सहज हो जाओ, तब घंटे भर बैठ जाना और इस बात पर ध्यान करना कि अगर मैं सहज हो जाऊं तो मैं क्या-क्या करूंगा। लिख लेना फेहरिश्त बना कर। उससे तुम्हारे मन के संबंध में बड़ी अदभुत बातें तुम्हें समझ आएंगी कि ये सब बातें जो तुम करना चाहते हो सहज हो कर, ये तुम्हारे भीतर दबी पड़ी हैं, यह तुम्हारा मवाद है, ये तुम्हारे घाव हैं।

मैं तुम्हें पशु होने को नहीं कह रहा हूं। जब मैं तुमसे कह रहा हूं, सहज हो जाओ, तो मैं यह कह रहा हूं: दबाओ मत, समझो। अगर क्रोध दबा पड़ा है भीतर तो समझो कि क्रोध क्या है! क्रोध पर ध्यान करो। क्रोध को ऐसा भीतर-भीतर हटा कर अंधेरे में मत सरकाओ। उसे तलघरे में मत डालो, रोशनी में लाओ। क्योंकि रोशनी पड़ेगी क्रोध पर तो क्रोध विसर्जित हो जाएगा। और क्रोध जब विसर्जित होता है तो जो ऊर्जा क्रोध में संलग्न थी वही ऊर्जा करुणा बनती है और तब करुणा सहज होती है।

जैसे पशु के लिए पशुता सहज है, वैसा ही संत के लिए संतत्व सहज है। लेकिन संतत्व आता है ध्यान से और संतत्व दमन से कभी नहीं आता। दमन से तुम सज्जन हो सकते हो, लेकिन तुम सब रोग अपने भीतर लिए बैठे रहोगे। तुम्हारे भीतर पूरा नर्क बना रहेगा। ऊपर-ऊपर मुस्काओ-हंसो, मगर भीतर आंसू भरे रहेंगे। इससे कुछ फर्क नहीं हो रहा है। हो सकता है तुम ज्यादा अच्छे नागरिक हो, समाज तुम्हें प्रतिष्ठा देगा; मगर ये सब बाहर की बातें हैं, भीतर तुम्हारी अपने ही मन में अपनी कोई प्रतिष्ठा नहीं होगी, अपना ही सम्मान नहीं होगा। तुम अपने को ही तिरस्कार करोगे, अपने को ही घृणा करोगे, निंदा करोगे, क्योंकि तुम दुनिया को तो धोखा दे दो, अपने को तो कैसे धोखा दोगे?

मैं समझता हूं कि तुम वही समझ लेते हो जो तुम समझ सकते हो।

एक धोबी का गधा ट्रक के नीचे आ गया और ट्रक के नीचे आने से मर गया। ड्राइवर उसे समझाने और सांत्वना देने लगा। सांत्वना देने के खयाल से बोला, चिंता न करो भाई; विश्वास करो, मैं उसकी पूर्ति कर दूंगा। नहीं-नहीं, धोबी ने कहा, तुम उसकी पूर्ति न कर सकोगे। धोबी की आंख में आंसू आ गए। उस आदमी ने कहा, क्यों न कर सकूंगा पूर्ति? तो

धोबी ने कहा, देखो तुम उसके बराबर के मोटेत्तगड़े भी नहीं हो कि इतना भारी कपड़ों का गट्ठर लाद कर घाट से घर तक, घर से घाट तक आ-जा सको।

अब धोबी का गधा मर गया तो उसके सामने तो एक बात है: गधा। उस गधे के बिना तो कुछ हो नहीं सकता। अब यह आदमी कहता है, मैं पूर्ति कर दूंगा। धोबी ने देखा होगा गौर से कि यह आदमी, यह क्या खाक पूर्ति करेगा, यह उतना मोटात्तगड़ा ही नहीं है। धोबी के समझने का अपना तल है। और धोबी की अपनी वासना है। अब गधा जिसका मर गया हो, वह उसका सब सहारा था।

एक ग्रामीण ने, मैंने सुना है कि घड़ी खरीदी। एक दिन उसकी घड़ी बंद हो गई। तो ग्रामीण ने घड़ी खाली, घड़ी में एक मच्छर मरा हुआ पड़ा था। तो वह जोर-जोर से रोने लगा। एक आदमी ने पूछा, "भाई क्यों रो रहे हो, ऐसा क्या, क्या कोई मर गया है? ऐसी दहाड़ मार कर रो रहे हो!' तो उसने कहा कि हां भाई, कोई मर गया है। मेरी घड़ी का ड्राइवर मर गया है।

अब ग्रामीण को यह तो अंदाज ही नहीं हो सकता कि घड़ी कैसे चलती है। बेचारे ने घड़ी खोली, देखा कि एक मच्छर मरा पड़ा है। उसने कहा, हद हो गई, इसीलिए घड़ी बंद हो गई है।

एक तल है प्रत्येक व्यक्ति की समझ का। उस तल के बाहर कुछ कहा जाए तो भी तुम उसका अनुवाद कर लेते हो। मैं यहां कुछ कहता हूं, तुम कुछ अनुवाद कर लेते हो। मैं कहता हूं, सहज हो जाओ। तुम सोचते हो, यह तो बड़ी झंझट की बात है। सहज होने का मतलब होता है: "दुराचारी हो जाएं, पापी हो जाएं, अपराधी हो जाएं?' क्योंकि तुमने पाप, अपराध और दुराचार की वासनाओं को दबा रखा है, इसलिए। उन पर तुम पालथी मार कर बैठे हो। जैसे ही तुम जरा हिले की वे फन उठाने लगती हैं। उनसे तुम हिल नहीं सकते। मगर यह कोई जिंदगी हुई? यह जिंदगी दुख की जिंदगी रहेगी। और जिसको तुमने दबाया है उसे रोज-रोज दबाना होगा। और जिसको तुमने दबाया है वह बदला लेने की प्रतीक्षा करेगा। और जिसको तुमने दबाया है, किसी कमजोर क्षण में विस्फोट होगा।

इसलिए तो तुम देखते हो, एक भला आदमी, कभी तुमने सोचा नहीं था और अचानक किसी की हत्या कर दी उसने! तुम कभी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि यह आदमी और हत्या कर देगा! भला, सीधा-साधा अच्छा आदमी। मगर चेहरे तो असली आदमी नहीं हैं। भीतर कुछ और है।

तुमने कई बार देखा नहीं कि जिससे इतनी मित्रता थी वह धोखा दे गया। कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि धोखा देगा, कि बेईमान सिद्ध होगा।

आदमी भीतर कुछ है, बाहर कुछ है। मन के कारण तुम बाहर कुछ दिखाई पड़ते हो और भीतर तुम कुछ हो। जब मैं कहता हूं सहज हो जाओ तो मैं यह कह रहा हूं: जो दबाया है उसका पुनरावलोकन करो। दबाने से कोई छुटकारा नहीं है, न कोई रूपांतरण है, न कोई क्रांति है। अगर जीवन में क्रांति चाहते हो तो जो-जो दबाया है, एक-एक का निरीक्षण करो

और निरीक्षण करते-करते देखते-देखते, क्रोध को पहचान लेना ही क्रोध से मुक्त हो जाना है। लोभ को पहचान लेना ही लोभ से मुक्त हो जाना है। काम को पहचान लेना ही काम से मुक्त हो जाना है।

मैं तुमसे ब्रह्मचर्य लेने की जरा भी बात नहीं करता, क्योंकि वह झूठ होगा। तुम जाओ, साधु-महात्मा तुमसे कहते हैं, कुछ व्रत ले लो, ब्रह्मचर्य का व्रत ले लो। मैं तुमसे ब्रह्मचर्य के व्रत की बात नहीं करता। मैं तुमसे कहता हूं, कामवासना में आंखें गड़ा कर देखो, कामवासना में पूरा ध्यान दो। ठीक से पहचान लो। उसी पहचान में तुम छूट जाओगे। ज्ञान मुक्ति है और अज्ञान बंधन है। तुमने अगर कामवासना में ठीक-ठीक आंखें गड़ा कर देख लिया तो तुम मुक्त हो जाओगे। और उस मुक्ति में जो फंसेगा वही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का व्रत नहीं लेना होता। व्रत वाला ब्रह्मचर्य तो झूठा है, थोथा है, आरोपित है। और व्रतवाला ब्रह्मचारी सदा डरेगा, घबराया रहेगा: "कहीं स्त्री न दिखाई पड़ जाए!' अब कहां भागोगे? स्त्रियां सब जगह हैं। और कैसे भागोगे? क्योंकि स्त्री तुम्हारे भीतर भी है। आधे तो तुम स्त्री से बने हो, भागोगे कहां? आधा तुम्हारे पिता, आधा तुम्हारी मां ने तुम्हें निर्मित किया है--आधे तुम पुरुष, आधे तुम स्त्री हो। तुम्हारे भीतर स्त्री पड़ी है। उससे भागोगे कहां? जंगल में चले जाओगे, गुफा में बैठ जाओगे, भीतर जो आधी स्त्री पड़ी है, सपना बन कर उठेगी।

ऋषि-मुनियों की तुम कहानियां पढ़ते हो, उन्हें अप्सराओं ने घेर लिया! कहां अप्सराएं हैं? किसको पड़ी है? और अप्सराओं का इन ऋषि-मुनियों में रस क्या होगा? तुम थोड़ा सोचो भी। अप्सराओं को और कोई भले-चंगे आदमी नहीं मिलते? सूखे-साखे ऋषि-मुनि, मरे-मराए, मरने की प्रतीक्षा कर रहे, किसी तरह माला फेरने लायक हैं, बस और तो कोई ताकत नहीं है। ये बैठे हैं अपनी गुफा में, इन बेचारों पर कौन अप्सरा ध्यान देगी? तुम जरा जा कर बैठ कर देख लो। तुम सोचते हो कि हिमालय की गुफा में जा कर बैठ जाओगे तो "हेमामालिनी' आने वाली है? कोई नहीं आने वाली। बैठे रहो, करो प्रतीक्षा कि आती होगी कोई अप्सरा। कोई नहीं आने वाली। मैं तुमसे कहता हूं कि ऋषि-मुनि अप्सराओं के घर पर जा कर दस्तक भी मारें तो दरवाजा भी नहीं खुलने वाला। पुलिस पकड़ ले जाएगी।

मगन कहानियां सच कहती हैं, कहानियां झूठ नहीं कह सकतीं, क्योंकि कहानियां सदियों के अनुभव से बनी हैं। ये अप्सराएं बाहर से नहीं आतीं, यह भीतर की ही स्त्री है जो कल्पना में प्रगाढ़ हो जाती है। यह कोई बाहर से नहीं आ रहा है, यह तुम्हारी कल्पना है। और जब आदमी बहुत दिन क्षुधित होता है तो कल्पना बहुत प्रगाढ़ हो जाती है। जैसे भूखा आदमी अगर कई दिन भूखा आदमी अगर कई दिन भूखा बैठा रहे तो फिर जहां भी देखता है, उसको भोजन ही दिखाई पड़ता है।

मैंने सुना है, हेनरिख हेन ने लिखा है कि वह जंगल में भटक गया। जर्मनी का प्रसिद्ध कवि था और तीन दिन तक उसे रोटी नहीं मिली खाने को और भटकता रहा, भटकता रहा। फिर पूर्णिमा का चांद निकला, तो उसने अपनी डायरी में लिखा है कि मैं चकित हो गया, मुझे ऐसा लगा कि एक रोटी तैर रही है आकाश में। पहले मुझे ऐसा कभी नहीं लगा था। जीवन

भर कविता लिखते हो गया, सदा सुंदर मुख दिखाई पड़ते थे, सुंदरियां दिखाई पड़ती थीं; चांद में उस दिन रोटी दिखाई पड़ी। मैं बहुत हैरान हुआ। मैंने अपनी आंखें मीड़ीं कि हो क्या गया मुझे!

लेकिन जब पेट भूखा हो तो चांद भी रोटी बन जाता है। पेट भूखा हो तो हर चीज में भोजन दिखाई पड़ता है। कामवासना दबा कर बैठ गए हो, कितनी देर गुफा में बैठे रहोगे? कामवासना फन उठाएगी। और कामवासना इतनी प्रगाढ़ता से उठ सकती है कि तुम्हें बिलकुल मालूम पड़े कि स्त्री सामने खड़ी है। छू सको, स्पर्श कर सको, ऐसी स्त्री सामने खड़ी है। ऋषि-मुनियों को धोखा नहीं हुआ; स्त्री बहुत स्पष्ट सामने खड़ी थी। लेकिन यह उनकी ही कल्पना का प्रगाढ़ रूप था। यह प्रक्षेपण था।

तो तुम ब्रह्मचर्य का व्रत ले कर ब्रह्मचारी न हो जाओगे। और दान का व्रत ले कर दानी न हो जाओगे। क्रोध न करने की कसम खाने से अक्रोधी न हो जाओगे। इससे मन निर्मित होगा।

तो जब मैं तुमसे कहता हूं, मन से मुक्त होना है तो मेरा मतलब यह है कि एक एक प्रक्रिया को, जो तुम्हारे जीवन को डावांडोल करती है--काम है, लोभ है, मोह है, मत्सर है--इनको एक-एक को ध्यान करो। समझो। पहचानो। गहरे उतरो। गहराई से इनका अनुभव हो जाए, इनकी पकड़ तुम पर से छूट जाएगी, तुम्हारी पकड़ इन पर से छूट जाएगी। क्योंकि गौर से देखने पर पता चलेगा कि कुछ भी नहीं है, असार है। "असार का बोध' छुटकारे का सूत्र है। क्रोध तो बहुत बार किया है, लेकिन क्रोध से सार क्या है, पाया क्या है? यह मैं तुमसे कह रहा हूं, लेकिन इससे कुछ हल नहीं होगा। तुमको अपने क्रोध की प्रक्रिया में पूरी तरह उतर कर देखना होगा कि सार है या नहीं? मेरे कहने से मान लोगे, फिर दमन हो जाएगा। तुम तो अपनी प्रक्रिया को ही जानो।

तुम तो ऐसा समझो कि तुमसे पहले कोई आदमी पैदा ही नहीं हुआ, तुम पहले आदमी हो, तुम आदम हो। आदम के पास कोई शास्त्र नहीं थे, कोई महात्मा नहीं थे। आदम का बड़ा सौभाग्य था। कोई परंपरा नहीं थी। पीछे कोई कह नहीं गया था। आदम ने जो भी जाना होगा, खुद ही जाना होगा। क्रोध उठा होगा तो क्रोध को जाना होगा, पहचाना होगा। कोई बताने वाला नहीं था कि क्रोध बुरा है, बंद करो, रोको। कोई कहने वाला नहीं था। तुम फिर से अपने को ऐसा ही समझो कि तुम पहली दफे पृथ्वी पर अकेले आए हो; न कोई महात्मा पहले हुआ, न कोई साधु-संत तुम्हें कुछ समझा गए हैं। अपने को प्रथम मान कर चलो, ताकि तुम अपनी जीवन-प्रक्रियाओं को पूरा-पूरा पहचान लो। पहले से ही पक्षपात निर्मित कर लेने से पहचान नहीं हो पाती। तुम पहले से ही मान कर चलते हो कि कामवासना बुरी है। यह तो तुमने मान ही लिया।

मेरे पास लोग आते हैं। मैं उनसे कहता हूं कि अभी तुमने जाना नहीं तो मानते क्यों हो कि कामवासना बुरी है? वे कहते हैं, कि साधु-संत कहते हैं। साधु-संत कहते रहें, इससे क्या होता है? साधु-संत गलत भी हो सकते हैं। साधु-संत आखिर हैं ही कितने? असाधु और असंत ज्यादा हैं। लोकतंत्र में भरोसा करते हो कि नहीं? तो तुम वोट डलवा कर देख लो।

ज्यादा वोट तो काम के पक्ष में पड़ेंगे। सौ में निन्यानवे वोट तो कामवासना के पक्ष में पड़ेंगे। तो यह एक आदमी बहका भी हुआ हो सकता है, इसकी बात मानने की इतनी जरूरत क्या है? जब निन्यानवे लोग कहते हैं कामवासना ही जीवन है, तो जरूर कामवासना की कुछ गहराई है, कुछ बड़ी पकड़ है, कुछ अदम्य पकड़ है। इस अदम्य पकड़ से तुम व्रत-नियम ले कर छुटकारा न पा सकोगे। इसमें तो अतल तक गहरे उतरना होगा। इसमें तो ध्यान की ऊर्जा को लगाना होगा। इसमें तो निष्पक्ष भाव से जाना होगा। न अच्छा न बुरा, कोई पक्षपात मत बनाना। जानना-पहचानना। और जानने-पहचानने की प्रक्रिया से निर्णय आने देना, वही निर्णय छुटकारा बन जाता है।

जब मैं तुमसे कहता हूं सहज हो जाओ तो मेरा इतना ही अर्थ है कि तुम अपनी जीवन-प्रक्रियाओं को दबाओ मत, दुश्मनी मत साधो। वे सब सीढ़ियां हैं। उन सीढ़ियों पर चढ़-चढ़ कर ही आदमी परमात्मा तक पहुंचता है। उन सीढ़ियों को तुम पत्थर भी बना ले सकते हो। और सीढ़ियां भी बना सकते हो। तुम पर सब निर्भर है।

अक्सर ऐसा हो जाता है। इसको खयाल में लेना। सभी लोगों की बीमारियां एक जैसी नहीं हैं। समझो, एक आदमी के जीवन में बहुत कामवासना है। जिस व्यक्ति के जीवन में बहुत कामवासना होगी उसके जीवन में लोभ उतना ज्यादा नहीं होगा। हो नहीं सकता, क्योंकि ऊर्जा सारी की सारी कामवासना ले लेती है। तो यह आदमी लोभ पर जल्दी विजय पा लेना, इसको दिक्कत नहीं आएगी। और यह दूसरों को भी समझाने लगेगा कि लोभ में रखा ही क्या है, मैंने यूं छोड़ दिया! व्रत ले लिया और बात खतम हो गई। तुम इस झूठ में मत पड़ना, क्योंकि इसकी जीवन-स्थिति तुमसे भिन्न है। हर आदमी की जीवन-स्थिति इतनी भिन्न है जैसे तुम्हारे अंगूठों के चिह्न भिन्न होते हैं।

गुरजिएफ के पास जब कोई जाता था तो वह कहता था, तुम सबसे पहले यह खोजो कि तुम्हारे जीवन में सबसे बड़ा विकार क्या है, सबसे बड़ी बीमारी क्या है? उस पर ही सब निर्भर करेगा। क्योंकि अक्सर ऐसा हो जाता है कि आदमी छोटी-छोटी बीमारियों से लड़ता रहता है और जीतने का मजा लेता रहता है। और वे असली बातें नहीं हैं। असली बात देखनी जरूरी है। तो किसी के जीवन में काम हो सकता है सबसे दुर्दम्य, सबसे शक्तिशाली वासना हो। ऐसा आदमी धन को छोड़ सकता है आसानी से, पद को छोड़ सकता है आसानी से। ऐसा आदमी क्रोध को छोड़ सकता है आसानी से। लेकिन इससे तुम यह मत समझ लेना कि क्रोध को छोड़ना सभी को आसान होगा। अगर तुम्हारे जीवन में क्रोध ही मूल है तो तुम कामवासना आसानी से छोड़ सकते हो। तुम्हें अपनी ही जीवनस्थिति खोजनी पड़ेगी।

मैंने सुना है, एक खिलौनों की दुकान पर एक महिला खिलौने खरीद रही है। दुकानदार भी एक महिला है। दुकानदार महिला ने कहा, बच्चों के खिलौने, यह गुड़िया देखिए। गुड़िया ग्राहक-महिला के हाथ में थमाते ही उसने कहा, इसे आप ज्यों बिस्तर पर लिटाएंगी, यह सचमुच की गुड़िया की तरह आंखें मूंद कर सो जाएगी। प्रौढ़ा हंसी। उसने कहा, बिट्टो, लगता है तुमने कभी सचमुच की गुड़िया को सुलाया नहीं।

सचमुच की गुड़िया इतनी आसानी से सोती भी नहीं। सुलाओ तो और आंखें खोलती है। सुलाओ तो और चीखती-चिल्लाती है। उस महिला ने बात ठीक कही कि बिट्टो, मालूम होता है तुमने सचमुच की गुड़िया कभी सुलाई नहीं।

अक्सर ऐसा हो जाता है कि जिन्होंने झूठ-मूठ की गुड़ियाएं सुला ली हैं, वे दूसरों को भी सलाह देने लगते हैं कि "तुम भी सुला लो, इसमें रखा क्या है? इसमें कुछ है नहीं। बड़ा सरल है।' लेकिन जो दूसरे के लिए सरल था वह तुम्हें भी सरल होगा, इस भ्रांति में मत पड़ना। जो तुम्हें कठिन है, वह दूसरे को कठिन होगा, इस भ्रांति में भी मत पड़ना। इसलिए एक-दूसरे की सलाहें बहुत काम नहीं आतीं। अक्सर एक-दूसरे की सलाह जीवन में नुकसान करती है, लाभ नहीं पहुंचाती।

इसलिए मेरी बातों में तुम्हें बहुत विरोधाभास मिलेंगे, क्योंकि मैं अलग-अलग लोगों को अलग-अलग तरह की सलाह देता हूं। मैं लोगों पर ध्यान रखता हूं, सलाह पर नहीं। किसी आदमी को मैं कुछ कहता हूं, किसी और को कुछ कहता हूं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि विरोध साफ दिखाई पड़े, ऐसी बात कहता हूं। लेकिन मेरी नजर तुम पर है, मेरी नजर सलाह पर नहीं है। मैं किसी सिद्धांत के पीछे दीवाना नहीं हूं। सिद्धांत मूल्यवान नहीं हैं, सिद्धांतों के लिए आदमी नहीं बने हैं। आदमी के लिए सब सिद्धांत बने हैं। शास्त्रों के लिए आदमी नहीं बने हैं, आदमी के लिए सब शास्त्र बने हैं।

तुम पर मेरा ध्यान है। तुम्हें जब मैं देखता हूं और लगता है कि तुम्हारे लिए क्या जरूरी होगा, वही कहता हूं। वह जरूरी नहीं है कि दूसरे के लिए भी ठीक हो। तुम उसे पकड़ कर दूसरे को समझाना शुरू मत कर देना। तुम यह मत सोचना कि मैंने तुमसे कहा तो बात हो गई; अब तुम्हें मालूम हो गया कि सत्य क्या है। सत्य भी एक-एक व्यक्ति के लिए अलग ढंग से अवतरित होता है।

मुल्ला नसरुद्दीन जोर से बोला। पत्नी चौके में काम कर रही है। उसने जोर से चिल्ला कर कहा कि अरे, रसोई में कुछ जल रहा है, क्या जल रहा है? बैठक से मुल्ला चिल्लाया।

"मेरा सिर', पत्नी ने झल्ला कर उत्तर दिया

मुल्ला ने कहा, तब तो ठीक है। मैं सब्जी वगैरह कुछ समझा था।

अपने-अपने मूल्य हैं। सब्जी वगैरह ज्यादा मूल्यवान मालूम होती है। पत्नी का सिर जल जाए, यह कोई बात चिंता की नहीं है।

खयाल रखना, तुम्हारे लिए जो मूल्यवान है उस पर ही ध्यान करो। तो सबसे पहले तो यह जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, षट् रिपु कहे हैं शास्त्रों ने, इन छह शत्रुओं में तुम खोज करो कि तुम्हारा शत्रु कौन है? उससे शुरू करो। उससे निपटारा हो गया तो बाकी पांच शत्रुओं से यूं छुटकारा हो जाता है जिसका कोई हिसाब नहीं है। मूल से छुटकारा हो जाए, प्रमुख से तुम जीत गए, तो बाकी सब उसके पीछे चल पड़ते हैं। तुम्हारा जो मूल शत्रु हो उस पर ध्यान करो। और जल्दी मत करना। रोज-रोज ध्यान करना। छूटने की चेष्टा भी

नहीं करना, सहज होने की चेष्टा करना। अगर ऐसा लगे कि बाहर सहज होने में खतरा है, महंगा हो जाएगा...।

समझ लो कि क्रोध तुम्हारा शत्रु है तो तुम बाहर ऐसा अगर हर किसी पर क्रोध करने लगे तो नौकरी जाए हाथ से, पत्नी चालाक दे दे, मां-बाप घर से निकाल दें, झंझटें खड़ी हो जाएं, तो एकांत में, कमरे में बैठ कर क्रोध करना। द्वार-दरवाजे बंद कर लेना। दिल खोल कर क्रोध करना। प्रतीक रख लेना। जैसे भगवान का प्रतीक रखते न, मूर्ति बना दी, ऐसे अगर तुमने दफ्तर के मालिक पर नाराजगी है, एक कागज पर चित्र बना लिया, ले कर जूता बैठ गए। दिल खोल कर मारो। पहले तो तुम थोड़ा हैरान होओगे कि यह क्या पागलपन कर रहा हूं, लेकिन तुम थोड़े ही दो-चार मिनट के बाद पाओगे कि जोश आने लगा, मजा आने लगा।

जापान में तो उन्होंने इस तरह का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया है। जापान की कुछ बड़ी कंपनियों ने तो अपनी कंपनी के मालिक की मूर्तियां बनवा दी हैं। मनोवैज्ञानिकों की सलाह पर हुआ है कि मजदूरों को नाराजगी है। और स्वाभाविक है कि नाराजगी हो जाती है। क्लर्क नाराज हो गया तो वह चला जाता है। वह एक अलग कमरा बना दिया है, वहां मालिक की मूर्ति रखी है, मैनेजर की मूर्ति रखी है, फोरमैन की मूर्ति रखी है--लगाओ! और यह अनुभव में आया है कि जब आदमी जा कर सबको लगा कर लौटता है तो बड़ा प्रसन्न और हलका हो कर लौटता है। काम में गति बढ़ जाती है, रस बढ़ जाता है और धीरे-धीरे दया भी आने लगती है कि अरे, बेचारे को नाहक मारा! सदभाव भी पैदा होता है।

तुम जरा कोशिश करके देखो। पश्चिम में इस संबंध में बहुत प्रयोग चल रहे हैं और प्रयोग बड़े कारगर हो गए हैं। बजाय अपनी पत्नी को पीटने के तुम तकिया रख सकते हो। तकिया पर पत्नी का नाम लिख लो, चाहो तस्वीर लगा लो, पीटो। इससे किसी की हिंसा भी नहीं होती और तुम्हारा पूरा क्रोध उभर कर आएगा। तुम थोड़ी देर में पाओगे कि तुम कंप रहे हो क्रोध से; हाथ-पैर कंप रहे हैं, आंखें लाल हो गई हैं, दांत भिंच रहे हैं। और जब ऊष्ण अवस्था आ जाए क्रोध की और तुम जलने लगो लपटों से, तब आंख बंद करके बैठ जाना, इस जलन को देखना। क्योंकि इस घड़ी में ही देखना संभव हो सकता है। बीज में तो तुम क्या खाक देखोगे, जब फूल बन जाए कोई चीज तभी देख सकते हो। इस अवस्था में क्रोध पर ध्यान करना।

महावीर पहले भारतीय मनीषी हैं जिन्होंने ध्यान के चार रूपों में दो रूप रौद्र औरर् आत्त ध्यान कहे हैं। जो अभी पश्चिम में हो रहा है, महावीर ने उसके लिए नाम भी दिए हैं। क्रोध के ध्यान को वे कहते हैं रौद्र ध्यान और दुख के ध्यान को कहते हैंर् आत्त ध्यान। अगर तुम दुखी हो तो दबाए मत रखो इसे; कमरा बंद करके रो लो, छाती पीट लो, लोट लो, दुख को पूरा का पूरा जी लो। और जब दुख के बादल तुम्हें सब तरफ से घेरे हों तब शांति से उनके बीच बैठ कर साक्षी हो जाओ। तुम चकित हो जाओगे, तुम्हारे हाथ में कुंजी आ गई।

और इस तरह धीरे-धीरे-धीरे एक दिन तुम पाओगे तुम सहज हो गए--पशु वाली सहजता नहीं, संत वाली सहजता। तब तुम मन के पार हो गए।

मोहन, डूब जाओ।

तीसरा प्रश्नः भोग, प्रेम ध्यान, समझ समर्पण कुछ भी तो मेरे लिए सहयोगी नहीं हो रहा है। फिर भी आपने मुझे स्वीकार किया, यही अनुग्रह बहुत बड़ा है। अब आप ही जानें!

इतना भी तुम कर पाओ तो सब हो जाओ। छोड़ ही दो तो भी सब हो जाए। इतना भरोसा भी कर लो, इतनी श्रद्धा भी कर लो तो सब हो जाए। क्योंकि श्रद्धा बड़ी कीमिया है, बड़ी क्रांति है।

मत कहानी खतम कर दे प्यार पा कर
कुछ कथानक को बढ़ा दे ज्वार ला कर
प्यार की कश्ती तिरा कर डूब जा
उम्र यादों की बढ़ा कर डूब जा
यदि प्रथम ही अभियान में मंजिल मिली तो क्या मिला
यदि ठोकरें खाईं न भटका तो बता तू क्या चला?
इस तरह से चल कि तुझ पर लक्ष्य को अभिमान हो
पदचिह्न का फिर बाद तेरे दीप सा सम्मान हो
तूफान का तो बहुत कायल हो चुका
खा कर थपेड़े बहुत घायल हो चुका
धार को पायल पहना कर डूब जा
आखिरी आंधी उठा कर डूब जा
क्या बताऊं मैं कि तेरा डूबना है पार जाना
जीत है तेरी किसी के वास्ते यूं हार जाना
हृदय रखने को किसी का हृदय अपना दफन कर दे
यज्ञ पूरा हो किसी का, जिंदगानी हवन कर दे।

सुनो--फिर से सुनो!

क्या बताऊं मैं कि तेरा डूबना है पार जाना!

अगर तुम मुझ में डूबने की क्षमता जुटा लो, इतना भी कर सको कि चलो छोड़ दें, चलो पूरा छोड़ दें! राई-राई रत्ती-रत्ती छोड़ देना, तो उसी समर्पण में तुम पाओगे एक क्रांति घट गई। उसी समर्पण में तुम समग्र हो गए, क्योंकि राई-रत्ती छोड़ दिया, पूरा छोड़ दिया। पूरा छोड़ने का अर्थ है कि तुम समग्र हो गए, इकट्ठे हो गए। कम से कम एक काम करने में तो तुम इकट्ठे हो गए, तुम्हारे खंड-खंड अखंड हो गए। उस अखंड में ही पहला रस तुम्हें अपनी आत्मा का मिलेगा। इसलिए समर्पण एक सूत्र है। और श्रद्धा एक अपूर्व सूत्र है।

बलिदान चाहेगा लहर का देवता
तू संजो कर अपने सपन की संपदा

अर्घ्य आंसू का चढ़ा कर डूब जा
वासनाएं तू डुबा कर डूब जा
तट की न चिंता कर कि पहले हर भंवर में घूम ले
तू धार कर बाहुओं में हर लहर को चूम ले
तू जहां डूबे वहां आलोक का तीरथ बनेगा।
तू जहां भी दफन हो वह स्थान मंदिरवत बनेगा
दर्द हो पर आंख से टपके न पानी
इस तरह से मित्र जी ले जिंदगानी
आदमी मन का जगा कर डूब जा
तू नया सूरज उगा कर डूब जा।
व्यर्थ ही यह हठ न कर, डेरा उठाना ही पड़ेगा
तू भले चाहे न चाहे, डूब जाना ही पड़ेगा
प्राण का पाहुन न ठहरेगा, विदा गानी पड़ेगी
सांस की शतरंज है यह, मात तो खानी पड़ेगी
अमर होगा पी कर गरल को, देख तो
इन्सानियत का आज काजल देख तो
काल का मस्तक झुका कर डूब जा
गीत गा सेहरा सजा कर डूब जा।
आदमी मन का जगा कर डूब जा
तू नया सूरज उगा कर डूब जा।

समर्पण का अर्थ होता है: अपनी तरफ से चेष्टा कर ली, सब तरफ हाथ-पैर मार लिए...। वही तो अभी मैं बुद्ध की तुमसे कहानी कह रहा था। छह साल सब तरह की चेष्टा करके देख ली, फिर न हुआ तो छोड़ कर बैठ गए। श्रद्धा का भी यही अर्थ है। समर्पण का भी यही अर्थ है। अपने से नहीं हुआ, ठीक है, अब क्या कर सकते हैं? सब कर लिया, छोड़ दो। मगर फिर लौट-लौट कर करना मत। फिर छोड़ दिया तो छोड़ दिया। फिर जैसी प्रभु की मर्जी। फिर जैसा प्रभु रखे, रहना। जैसा चलाए, चलना। भला तो भला, बुरा तो बुरा। सज्जन बनाए तो सज्जन। संत बनाए तो संत। दुर्जन बनाए तो दुर्जन। फिर बेशर्त छोड़ देना। फिर यह मत रखना भीतर से जांच कि अच्छा बनाए तो ठीक, बुरा बनाए तो रुकावट डालेंगे। फिर तो बात नहीं हुई।

समर्पण का तो अर्थ होता है: जो होगा, शुभ होगा शुभ, अशुभ होगा अशुभ।

आदमी मन का जगा कर डूब जा
तू नया सूरज उगा कर डूब जा।

और यहां डूबने में कुछ खोता नहीं।

व्यर्थ ही यह हठ न कर, डेरा उठाना ही पड़ेगा

तू भले चाहे न चाहे, डूब जाना ही पड़ेगा।

एक न एक दिन मौत आएगी और डूब ही जाएंगे हम।

शिष्यत्व का अर्थ है कि मौत के पहले गुरु में डूब गए। पुराने शास्त्र तो कहते हैं: गुरु यानी मृत्यु। पुराने शास्त्रों में कभी-कभी अदभुत वचन हैं! गुरु यानी मृत्यु। गुरु का अर्थ ही यह है कि तुम मर गए गुरु में, डूब गए गुरु में। अब जो होगा होगा। अब तुम तो रहे नहीं। अब तुम्हारे हाथ में तो कुछ हिसाब न रहा।

पूछा है स्वामी मोहन भारती ने। तो यही मैं कहता हूं: मोहन, डूब जाओ!

मैं अकेला तो नहीं हूं

चौथा प्रश्न: अकेला हूं मैं हमसफर ढूंढता हूं

तुझी को मैं शाम और सहर ढूंढता हूं

मेरे दिल में आ जा, निगाहों में छा जा

मुहब्बत की रंगीन रातों में आ जा

यह महकी हुई रात कितनी हंसीं है

मगर मेरे पहलू में तू ही नहीं है।

अकेला हूं, मैं हमसफर ढूंढता हूं

तुझी को मैं शाम और सहर ढूंढता हूं।

महत्वपूर्ण है बात, समझने जैसी है। जब तक तुम समझते हो कि तुम अकेले हो, तो ढूंढते रहोगे, पा न सकोगे। क्योंकि अकेलेपन के कारण ढूंढ रहे हो, इसलिए तुम गलत को ढूंढोगे। तुम्हें रस परमात्मा में नहीं है, अपना अकेलापन भरना है। तुम्हें रस परमात्मा की खोज में नहीं है; तुम अकेले हो, तुम्हें साथी चाहिए, हमसफर चाहिए। तुम महत्वपूर्ण हो। तुम परमात्मा के हमसफर नहीं बनना चाहते, तुम परमात्मा को हमसफर बनाना चाहते हो।

मैं निरंतर कहता हूं, दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे, जो सत्य के साथ जाने को तैयार हैं और दूसरे वे, जो सत्य को अपने साथ लाने को तैयार हैं। दोनों में बड़ा फर्क है। तुम परमात्मा के साथी होना चाहते हो कि परमात्मा को अपना बनाना चाहते हो?

बड़ा फर्क है। ऐसा मत सोचना कि जरा शब्द यहां के वहां हैं, फर्क क्या है! अगर तुम परमात्मा को साथी बनाना चाहते हो तो तुम परमात्मा का उपयोग करना चाहते हो। तुम अकेले हो। कभी तुमने चाहा कि पत्नी से मन को भर लेंगे, न भरा। कभी तुमने चाहा मित्रों से भर लेंगे, न भरा। कभी तुमने चाहा पद से, प्रतिष्ठा से भर लेंगे, न भरा। क्लब-घरों में, भीड़ में, बाजार में, दुकान में, हजार तरह से भरने की कोशिश की, सब तरफ हार गए, तुम्हारा मन न भरा; अब तुम कहते हो, परमात्मा से भरेंगे। "...मैं अकेला हूं, हमसफर खोजता हूं!'

लेकिन यह भक्त का भाव नहीं है। भक्त का भाव बड़ा और है। और अकेले पन और अकेलेपन में बड़ा फर्क है। एक तो अकेलापन है जब तुम आनंद से भरा हो। अकेलापन अर्थात तुम अपनी मौजूदगी से भरे हो। तुम अपने ध्यान में मस्त हो, अकेले। उसको हम एकांत कहते

हैं। और एक अकेलापन है जब तुम दूसरे की गैर-मौजूदगी से पीड़ित हो, अपनी मौजूदगी का कोई पता नहीं है; दूसरा मौजूद नहीं है, कांटे की तरह खल रही है उसकी गैर-मौजूदगी। एकाकी और एकांत में बड़ा भेद है। एकाकी रो रहा है। एकांत में जो बैठा है, आनंदित है, प्रमुदित है, प्रफुल्लित है। एकाकी नकारात्मक स्थिति है; एकांत विधायक।

तुम्हारा जो गीत तुमने लिखा है, वह एकाकीपन का गीत है: "अकेला हूं, मैं हमसफर ढूंढता हूं।' उसमें रुदन है। उसमें आंसू हैं। उसमें अभाव है।

तुझी को मैं शाम और सहर ढूंढता हूं।

"मेरे दिल में आ जा, निगाहों में छा जा

मुहब्बत की रंगीन रातों में आ जा।'

तुम परमात्मा की तरफ भी अभी उसी ढंग से सोच रहे हो जैसा तुम पत्नी की तरफ, प्रेयसी की तरफ सोचते थे। बहुत फर्क नहीं हुआ। वही पुरानी वासना, वही पुराना राग, वही पुरानी कामना तुमने परमात्मा पर आरोपित कर दी।

"यह महकी हुई रात कितनी हंसीं है

मगर मेरे पहलू में तू ही नहीं है।'

तुम उदास हो, क्योंकि रात महकी हुई है। जीवन प्रसन्न है, तुम उदास हो क्योंकि तुम्हारे पहलू में तुम्हारा प्यारा नहीं है।

"अकेला हूं, मैं हमसफर ढूंढता हूं

तुझी को मैं शाम और सहर ढूंढता हूं।'

तुम ढूंढते रहो, मिलेगा नहीं। एक बात पक्की है कि मिलेगा नहीं, तुम ढूंढते रहो। शाम और सहर ढूंढो, दिन और रात ढूंढो। ढूंढते रहो। जन्मों-जन्मों से तुम यही कर रहे हो। तुम छोड़ते ही नहीं लत, पुरानी लत। बस ढूंढे ही चले जा रहे हो। तुम्हारे ढूंढने में बुनियादी भूल है।

मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि तुम अपने अकेले में आनंदित हो जाओ। तुम अपने एकांत में प्रफुल्लित हो जाओ। तुम अपने एकांत को समाधि बनाओ। रोओ मत। भिखारी मत बनो। परमात्मा से कुछ मांगो मत। जो मांगता है वह चूक जाता है। मांगा कि प्रार्थना खराब हो गई, गंदी हो गई।

मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि जिस दिन तुम अपने परम आनंद में बैठे होओगे, कमल की तरह खिले, सुवासित, उस दिन परमात्मा तुम्हें ढूंढता है। उस दिन परमात्मा तुम्हारे पास आता है। तुम्हारे आनंद के द्वार से आता है; तुम्हारी आंसू भरी आंखों से नहीं; तुम्हारे गीत, प्रफुल्लित सुगंध से आता है।

तुम परमात्मा को ढूंढ रहे हो, इससे नहीं मिलेगा परमात्मा। ऐसा कुछ करो कि परमात्मा तुम्हें ढूंढे। तो ही मिलेगा। तुम ढूंढोगे भी कहां, जरा सोचो तो! तुम्हें कुछ पता-ठिकाना मालूम है? सुबह सांझ ढूंढो, मगर ढूंढोगे कहां। तुम जरूर गलत जगह ढूंढोगे, क्योंकि तुम्हें उसका ठीक पता तो मालूम ही नहीं है। तुम्हें उसकी शक्ल-सूरत भी मालूम नहीं है। मिल भी

जाएगा तो तुम पहचानोगे कैसे? जरा सोचो। अगर परमात्मा आज द्वार पर आ कर खड़ा भी हो जाए, तुम पहचानोगे? तुम नहीं पहचानोगे। तुम पहचान ही न सकोगे। क्योंकि तुमने पहले उसे कभी देखा नहीं, उसकी प्रत्यभिज्ञा कैसे होगी, पहचान कैसे होगी? तुम्हारी उससे किसी ने पहले मुलाकात ही नहीं करवाई न तुम्हारी मुलाकात हुई है, अगर आज अचानक द्वार पर खड़ा हो जाएगा, तुम द्वार बंद कर लोगे। तुम कहोगे, आगे जाओ, यहां कहां खड़े हो? क्या मामला है? किसलिए खड़े हो; तुम परमात्मा को न तो पहचान सकते हो न खोज सकते हो। खोजने के लिए कहां जाओगे? पहचानोगे कैसे? नहीं, तुम तो कुछ ऐसा करो कि परमात्मा तुम्हें खोजे।

यही फर्क है। ज्ञानी परमात्मा को खोजता है, भक्त को भगवान खोजता है। भक्त तो अपने आनंद में मग्न हो जाता है, नाचता है, अपनी मस्ती में प्रसन्न होता है। और ध्यान रखना, भक्त अगर कभी रोता भी है तो उसकी आंखों के आंसू आनंद के आंसू होते हैं, दुख के नहीं होते, पीड़ा के नहीं होते, उदासी के नहीं होते, शिकायत के नहीं होते--उसकी कृतज्ञता के होते हैं; उसके भरेपन से निकलते हैं। वह इतना भी जाता है कि वह अब आंसू से न बहे तो और क्या करे! और कोई रास्ता नहीं मिलता बहने का। वाणी से बहता है। नाच कर बहता है। आंसू से बहता है। कभी हंसता, कभी रोता--देखा नहीं, दया कहती है: कभी हंसता, कभी रोता, कभी उठता कभी गिरता--बड़ी अटपटी बात! कहीं पैर रखता, कहीं पड़ जाते--बड़ी अटपटी बात!

भक्त तो मतवाला होता है, मदमस्त होता है। वह तो अपने आनंद की शराब को पीए बैठा है। परमात्मा उसे खोजने आता है। भक्त का भाव यह नहीं है कि मैं अकेला हूं। भक्त का भाव कुछ और है।

भोर की आती किरण से रात की जाती छुअन तक
एक भीनी चुहचुहाती गंध मेरे साथ चलती है।
मैं अकेला तो नहीं हूं।

फर्क करो, तौलो। तुम्हारा प्रश्न है:

"अकेला हूं, मैं हमसफर ढूंढता हूं
तुझी को मैं शाम और सहर ढूंढता हूं।'

यह प्रेमी की बात तो है, भक्त की नहीं। भक्त की बात ऐसी है कुछ:

भोर की आती किरण से रात की आती छुअन तक
एक भीनी चुहचुहाती गंध मेरे साथ चलती है
मैं अकेला तो नहीं हूं
दृष्टि मेरी माप तीनों काल की
तारिकाएं मणि समुन्नत भाल की
खुद समय-सम्राट कांधों पर चढ़ा
ला रहा मेरी प्रगति की पालकी

मैं तिमिर-सीमांत हूं, उजियार लो
हाथ शिशु का भर मुझे अकवार लो
जो विवादों से परे निश्चल खड़ा, सत्य हूं
मुझको सहज स्वीकार लो
प्रश्न के मंथन-मनन से प्रीति के अर्पण नमन तक
वह तुम्हारी आखिरी सौगंध मेरे साथ चलती है
मैं अकेला तो नहीं हूं।
दिग-दिगंतों पर पड़े मेरे चरण
सांस में सधते-सतत जीवन-मरण
स्वप्न खिलते हैं धरा पर फूल बन
कल्पना मेरी क्षितिज का आवरण
यों मलय-वीथि फिरा खोया हुआ
आंधियों में चैन से सोया हुआ
किंतु परिमल ने पुनः मैला किया
गात मेरा ज्वार का धोया हुआ।
पीर की रह-रह छिलन से अश्रु की ढह-ढह ढलन तक
याद कोई तोड़ सब अनुबंध मेरे साथ चलती है
मैं अकेला तो नहीं हूं।

भक्त अनुभव करता है: मैं अकेला तो नहीं हूं। भक्त अनुभव करता है: भगवान मुझ सब तरफ घेरे है।

भोर की आती किरण से रात की जाती छुअन तक
मैं अकेला तो नहीं हूं।

भक्त की यह प्रतीति कि मैं अकेला नहीं हूं, कहां से आती है?--अपने में डूबने से आती है, अपने में उतरने से आती है।

कहते हैं, हजरत मोहम्मद के जीवन में उल्लेख है। हजरत मोहम्मद और अबुबकर, उनका एक साथी, दोनों के पीछे दुश्मन पड़े थे। हजारों दुश्मन और अबुबकर और मोहम्मद अकेले पड़ गए। एक पहाड़ की कंदरा में छिप कर बैठ रहे और दुश्मन उन्हें खोज रहे हैं। चारों तरफ घोड़े दौड़ रहे हैं। और मोहम्मद निश्चिंत बैठे हैं, अबुबकर कंप रहा है। आखिर उसने कहा कि हजरत, आप बड़े शांत बैठे हैं! हालत खसता है, दुश्मन ज्यादा हैं। और ज्यादा देर का जीवन नहीं है। जो करना हो कर लो। क्योंकि कितनी देर हम बचेंगे! घोड़ों की टाप प्रतिक्षण करीब आती जाती है। हम दो और वे हजार हैं।

मोहम्मद हंसे और उन्होंने कहा: "पागल, दो! हम तीन हैं। वे हजार हों, मगर हम तीन हैं।' अबुबकर ने चारों तरफ देखा। उसने कहा: "किसकी बातें कर रहे हैं? होश में हैं? हम

दो हैं।' मोहम्मद ने कहाः "फिर से देख, गौर से देख, हम तीन हैं। परमात्मा को भी तो गिन।'

भोर की आती किरण से रात की आती छुअन तक

मैं अकेला तो नहीं हूं।

ऐसा ही उल्लेख सेंट थैरेसा के जीवन में है। वह एक चर्च बनाना चाहती थी--बड़ा चर्च! तो उसने एक दिन गांव के लोगों को इकट्ठा किया। गरीब फकीर औरत! उसने कहा, एक बड़ा चर्च बनाना है, ऐसा कि पृथ्वी पर दूसरा न हो। पर लोगों ने कहा, पागल, बनेगा कैसे? तेरे पास कितना पैसा है? तो उसने एक पैसा था उसके पास, उसके देश की मुद्रा में--उसने निकाल कर कहा कि यह है मेरे पास। बनेगा, चर्च बन कर रहेगा। जो मेरे पास है सब लगा दूंगी। वे लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा, तेरा दिमाग खराब हो गया है। एक पैसा तेरे पास है, उससे बड़ा चर्च बनने वाला है? उसने कहा, तुम मेरा हाथ और मेरा पैसा ही देखते हो, मेरे साथ खड़े परमात्मा को नहीं देखते! एक पैसा थैरेसा का और परमात्मा की दौलत, कितना बड़ा चर्च नहीं बन सकता!

भोर की आती किरण से रात की जाती छुअन तक

मैं अकेला तो नहीं हूं।

और चर्च बना। चर्च अब भी खड़ा है। और कहते हैं, पृथ्वी पर वैसा चर्च नहीं है। वह भक्त की श्रद्धा से बना है। उस भाव से बना है कि मैं अकेला तो नहीं हूं।

तुम अकेलेपन की बात छोड़ो, नहीं तो तुम भटकते रहोगे। तुम्हें रोने में मजा हो, बात और। तुम इस तरह की दौड़-धूप में रस लेने लगे हो, बात और; लेकिन परमात्मा न मिलेगा।

परमात्मा को पाने का जो पहला कदम है वह यह है कि तुम जहां हो, जैसे हो, वहां थिर हो जाओ, आनंदित हो जाओ, मगन हो जाओ, मस्त हो जाओ। तुम्हारी सुगंध ही उसे बुला लाएगी। सुगंध के ही कच्चे धागों से बंधा हुआ चला आएगा। तुम्हारा शोरगुल वहां नहीं पहुंचता, लेकिन तुम्हारे प्राणों की गंध वहां पहुंच जाती है। भौंरे की तरह आ जाता है भगवान। तुम पात्रता जुटाओ।

फूल बनो तुम

पांचवां प्रश्नः ध्यान में मुझे नाचना है या मेरे शरीर को?

अभी तुम तो हो ही नहीं, अभी शरीर ही नाच सकता है। जब तुम भी आ जाओ तो तुम भी नाचना। अभी तुम हो ही नहीं, अभी तो शरीर ही है। अभी तुम कहां की बातें उठा रहे हो? आत्मा तो तुमने सुनी है, अभी जानी कहां? आत्मा के संबंध में पढ़ा है, अनुभव कहां किया? अभी तो तुम शरीर हो। अभी आत्मा तो सिर्फ सपना है। सपने को थोड़े ही नचा सकोगे? जो है ही नहीं, उसको कैसे नचाओगे? अभी तो शरीर को ही नचाओ। जो तुम्हारे पास है, उसको नचाओ। अभी तो शरीर से शुरू करो।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं संन्यास लेना है; लेकिन भीतर का दे दें, बाहर का संन्यास, क्या सार! मैं उनसे कहता हूं, भीतर अभी है कहां? मैं तो तैयार हूं, भीतर का भी दे दूं, मगर भीतर है कहां? अभी तो बाहर ही बाहर है। अभी तुम्हारा भीतर है कहां? मैं तो तुम्हारे भीतर को रंग दूं; मगर भीतर हो न, तभी तो! अभी भीतर नहीं है, इसलिए वस्त्र रंग देता हूं। चलो, प्रतीक तो हुआ, शुरुआत तो हुई। बाहर रंगा, रंगते-रंगते भीतर भी रंग लेंगे। कहीं से तो शुरू करना होगा। और वहीं से शुरू करना होगा जहां तुम हो। वहां से तो शुरू नहीं हो सकता जहां तुम हो ही नहीं। तुम सोचते हो कि भीतर, मगर भीतर अभी है क्या? कभी आंख बंद करके देखा भीतर है कहां? आंख बंद कर लेते हो तो भी आंख बाहर ही देखती है। आंख बंद कर ली, दुकान दिखाई पड़ रही है, बाजार दिखाई पड़ रहा है, मित्र-परिजन ये सब बाहर हैं; अभी भीतर कहां दिखाई पड़ रहा है! आंख बंद कर ली, विचार चलने लगे; ये तो सब बाहर हैं।

विचार तुमसे उतना ही बाहर है जितना वस्तुएं तुमसे बाहर हैं। भीतर का तो तब पता चलेगा, जब न वस्तुओं का स्मरण रह जाए न विचारों की धारा रह जाए; तुम्हीं रह जाओ, अकेला चैतन्य--तब भीतर का पता चलेगा। भीतर का पता हो जाए तो संन्यासी तुम हो ही गए। अभी भीतर का पता नहीं है, लेकिन आदमी बड़ा बेईमान है। चलना उसे है नहीं, तो वह वहां की बातें करता है जहां है ही नहीं। वह कहता है: भीतर का संन्यास....!

अब तुम पूछते हो कि ध्यान में मुझे नाचना है या मेरे शरीर को? तुम यह बात मान ही लिए कि तुम शरीर से अलग हो। अगर यही तुमको पता चल गया तो नाचो न नाचो, बराबर। मगर खयाल कर लेना, तुम्हें पता है? यह नाच ही इसलिए रहे हो कि किसी तरह भीतर का पता चल जाए। यह नाच उसी की शुरुआत है कि भीतर का पता चल जाए। फिर भीतर का पता चल जाए, फिर तुम्हारी मौज। दोनों तरह से हुआ है: कोई-कोई नाचा भी, कोई-कोई नहीं भी नाचा। मीरा नाची, दया नाची, सहजो नाची, चैतन्य नाचे; मगर बुद्ध नहीं नाचे, महावीर नहीं नाचे। भीतर जब हो जाएगा तब तुम पूछने की भी जरूरत अनुभव न करोगे। भीतर से जो सहज होता, नाचना होगा तो नाचना, नहीं नाचना तो मन नाचना। पर भीतर पहुंच जाने के बाद की बातें हैं ये।

तुम प्रश्न ऐसे उठा लेते हो जो शाब्दिक हैं, शास्त्रीय हैं।

एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन भागा हुआ अस्पताल पहुंचा। तेजी से उतरा स्कूटर से। अंदर गया, डाक्टर से बोला कि कोई बिस्तर खाली है? मेरी पत्नी को बच्चा होने वाला है। तो डाक्टर ने कहा, भलेमानस, पहले खबर क्यों नहीं की, एकदम चले आए! ठीक है भाग्य की बात कि एक बिस्तर खाली है, ले आओ, पत्नी कहां हैं? उसने कहा, फिर कोई फिक्र नहीं है। सिर्फ इंतजाम करने आया था। मैं देख रहा था कि जगह मिल सकती है या नहीं। तो डाक्टर ने पूछा पत्नी को बच्चा होने वाला कब है? उसने कहा, कहां की बातें कर रहे हैं, अभी पत्नी ही कहां है! विवाह करने की सोच रहा हूं।

मगर होशियार आदमी सब तैयारी पहले कर लेता है। अभी विवाह नहीं हुआ, अभी तैयारी कर रहा है बच्चे के होने की।

जल्दबाजी न करो। विवाह तो हो जाने दो। आत्मा का क्षण भी आएगा, अभी तो तुम देह से तो नाचो। मैं तुम्हारा मतलब जानता हूं। तुम शरीर से नाचना नहीं चाहते। तो तुम एक बहाना खोजना चाहते हो। तुम सोचते हो कि चलो शरीर को तो बिठा कर रखें, आत्मा को नचाएं। आत्मा को नचाओगे कहां? आत्मा ही होती तो प्रश्न ही क्या था! नहीं कि आत्मा नहीं है, लेकिन तुम्हें अभी उसका पता नहीं है।

सदा याद रखो, तुम जहां हो वहीं से यात्रा करो। इस तरह की बातें खोज कर यात्रा को रोक मत लेना।

फूल बनो तुम, गंध मिलेगी
उसे उड़ाओ
रंगों में रंग जाओ
गाओ, रंग दो दुनिया
मांग भरो उस सुहागिनी का
बन-ठन आई।
फूल बनो तुम!
अरे, फूल बनो तुम!
फूल बनो, सौंदर्य मिलेगा
स्मित मिलेगी
उसे बिखेरो
हेरो
छवि आएगी भू-अंबर में
उमड़ पड़ेगा
रस कितनों के सूखे उर में
कितनी ही कविताओं का तुम घर होओगे।
धरती पर तुम दिव्य द्युति भास्वर होओगे।
फूल बनो, आशीष मिलेगा
भक्तों से पहले तुमको ही ईश मिलेगा।

लेकिन आदमी फूल कैसे बने? आदमी साधारण अर्थों में फूल तो नहीं बन सकता है। आदमी कोई पौधा तो नहीं है। लेकिन आदमी जब प्रफुल्ल होता है तो फूल बन जाता है। प्रफुल्ल शब्द फूल से ही आया है। प्रफुल्लता का अर्थ होता है फुल्लता, खिल गए। जब तुम आनंदित होते हो तब तुम फूल बन जाते हो, तब तुम फूल बन जाते हो; जब तुम उदास होते हो तब पंखुड़ियां बंद हो जाती हैं। इसलिए नाच पर मेरा जोर है। क्योंकि जब तुम हृदय खोल कर नाच उठोगे, तुम्हारी सब पंखुड़ियां खिल जाएंगी।

फूल बनो तुम, गंध मिलेगी
उसे उड़ाओ
रंगों में रंग जाओ
गाओ, रंग दो दुनिया।
फूल बनो, सौंदर्य मिलेगा
स्मित मिलेगी
उसे बिखेरो
हेरो
छवि आएगी भू-अंबर में
कितनी ही कविताओं का तुम घर हीओगे
धरती पर तुम दिव्य द्युति भास्वर होओगे।
फूल बनो, आशीष मिलेगा
भक्तों से पहले तुमको हो ईश मिलेगा।

नाचो, संकोच न लाओ। छोटे-छोटे संकोचों में मत पड़ो। अगर शरीर को आनंदित किया तो शरीर के पीछे जो मन है उस पर भी आनंद की छाया पड़ेगी। धीरे-धीरे वह भी मगन होगा, वह भी डोलेगा। फिर जब मन डोलेगा तो उसके भी पीछे छिपी जो आत्मा है, उस पर भी छाया पड़ेगी, वह भी डोलेगी, वह भी नाचेगी।

ओ पिया, ओ पिया

छठवां प्रश्न: क्या आप अपने शिष्यों के लिए ही हैं कि मुझे आपसे मिलने नहीं दिया जाता?

शिष्य का अर्थ होता है जो सीखने आया है। जो सीखने आया है उसे ही सिखाया जा सकता है। जो सीखने नहीं आया है वह मेरा भी समय खराब करेगा, अपना भी समय खराब करेगा। मिलने की कोई जरूरत नहीं है। सीखने आए हो तो द्वार खुले हैं।

मगर बहुत बार ऐसा हो जाता है कि लोग सिखाने आ जाते हैं। और जिन सज्जन ने पूछा है उनका नाम है: ब्रह्मचारी सगुण चैतन्य। उनका चित्र भी मैंने देखा, उनका पत्र भी देखा। पंडित और ज्ञानी मालूम होते हैं। ब्रह्मचारी हैं। शास्त्र के ज्ञाता मालूम होते हैं। इसलिए तुम नाराज मत होना कि "लक्ष्मी' ने तुम्हें रोक दिया है मिलने से। मैंने ही रोक दिया है।

पांडित्य में मुझे रस नहीं है। व्यर्थ के सिद्धांत, बकवास में मुझे रस नहीं है। अगर तुम जानते हो तो जानते ही हो। क्यों मेरा समय और अपना समय खराब करना? अगर नहीं जानते हो तो आओ। लेकिन तब नहीं जानते हो, इसी भाव से आओ।

जानने वाले को जनाना बहुत मुश्किल है। जागे को जगाना बहुत मुश्किल है। और इस जगत में सबसे जो सूक्ष्म अहंकार है, वह जानने का, पांडित्य का, शास्त्र का। तो इन सूक्ष्म अहंकारियों में मुझे कोई रुचि नहीं है। अगर तुम्हें पता ही चल गया है, तुम धन्यभागी हो। अब तुम यहां क्यों परेशान हो रहे हो? यहां क्या मिलेगा? तुम्हें पता चल गया, बात खतम हो गई। अगर तुम्हें पता नहीं चला है तो सब कूड़ा-कर्कट दरवाजे के बाहर छोड़ कर आओ।

सीखने की तैयारी का अर्थ ही यह होता है कि यह मान कर ही आओ कि मुझे मालूम नहीं, मैं अज्ञानी हूं। तो तुम्हारे लिए द्वार खुले हैं।

पी.डी. आस्पेंस्की नाम का बहुत बड़ा रशियन गणितज्ञ जार्ज गुरजिएफ से मिलने गया। आस्पेंस्की जगत-ख्यात गणितज्ञ था। और उसकी एक किताब सारी दुनिया में प्रसिद्ध हो चुकी थी: "टर्सियम आर्गानम'। और गुरजिएफ को तो कोई भी नहीं जानता था; वह तो फकीर था। और जब आस्पेंस्की उसे मिलने गया तो निश्चित, जब कोई ख्यातिलब्ध व्यक्ति किसी को मिलने जाता है, तो अकड़ से भरा हुआ गया। गुरजिएफ ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और एक कागज उठा कर उसे दे दिया, एक कोरा कागज, और कहा कि बगल के कमरे में चले जाओ, एक तरफ लिख देना जो तुम जानते हो और दूसरी तरफ लिख देना जो तुम नहीं जानते हो। पर आस्पेंस्की ने कहा, इसका मतलब क्या? तो गुरजिएफ ने कहा, जो तुम जानते हो, फिर उसकी चर्चा हम न करेंगे। फिर समय क्यों खराब करना! जो तुम नहीं जानते हो, उसकी चर्चा करेंगे। तो तुम चले जाओ बगल के कमरे में, साफ-साफ कर आओ, क्योंकि तुम्हारे चेहरे से जानकारी झलकती है।

ठंडी रात थी, बर्फ पड़ रही थी। रूस की रात! जब आस्पेंस्की बगल के कमरे में गया तो पसीना निकलने लगा और कागज हाथ में कंपने लगा। बहुत कोशिश की कि क्या जानता हूं? मगर आदमी ईमानदार रहा होगा। एक शब्द न सूझा जो लिख दे जानता हूं। आत्मा, परमात्मा, मोक्ष--क्या जानता हूं? किताबें लिखी थीं, लेकिन किताबें तो जानकारी से लिखी जाती हैं, कोई जानना जरूरी तो नहीं। सभी किताबें जानने से तो नहीं आतीं, अधिक किताबें तो जानकारी से आती हैं। कंप गया। घंटे भर बाद वापस आया। पूरा कागज कोरा का कोरा दे दिया और गुरजिएफ को कहा, कुछ भी नहीं जानता हूं, अब बात शुरू करें। गुरजिएफ ने कहा, तब चलेगा।

यहां रोज लोग आ जाते हैं। संन्यासी हैं, पंडित हैं, शास्त्री हैं। मेरी उनमें उत्सुकता नहीं है। मेरे पास एक क्षण भी उनके लिए समय नहीं है। वे इस बात को भलीभांति जान लें। अगर वे जानते हैं तो बात खतम हो गई, मेरा आशीर्वाद! जान ही लिया, बात खतम हो गई। प्रभु तुम्हारा भला करे। अगर नहीं जानते हो तो कोरे कागज की तरह आओ। तो ही कुछ काम हो सकेगा।

अब एक बात तो पक्की है कि जो जानता है वह जाएगा किसलिए? आने की जरूरत क्या है? मैं तो नहीं जाता कहीं। तुम आए हो, साफ है कि जानते इत्यादि नहीं हो, जानने के भ्रम में पड़े हो। तो पता भी है कि भ्रम ही है, कुछ हुआ तो है नहीं, आनंद का कोई झरना नहीं फूटा, न कोई गीत उमगा है, न कोई चांद निकला है। वह उजियाला जिसकी तलाश हो रही है, अभी हुआ नहीं, अंधेरे से भरे हो। इसलिए तलाश रहे हो, लेकिन अहंकारी भी बहुत हो। यह मान भी नहीं सकते कि नहीं हुआ है।

मेरे पास भी कई दफा लोग आ जाते हैं: एक सज्जन आए। तीस साल से संन्यासी हैं। बहुत दिन उन्हें टालता रहा, क्योंकि कोई मतलब न था आने का, उनका मिलने का; लेकिन

जिद पकड़े रहे तो मैंने कहा, ठीक है मिला दो। मैंने उनसे यही पूछा कि मिल गया या नहीं? तो उन्होंने कहा, यह भी आप खूब पूछते हैं! एकदम शुरुआत में यह पूछते हैं कि मिल गया या नहीं! मैंने कहा, बात पहले ही साफ हो जाए। मिल गया तो खतम हो गई बात; नहीं मिला तो फिर कुछ काम हो सके। वे कहने लगे कि नहीं, मिला तो नहीं है; कुछ-कुछ मिला है। मैंने कहा, यह कभी हुआ ही नहीं दुनिया में आज तक कि परमात्मा कुछ-कुछ मिला हो। परमात्मा के साथ भी शल्यक्रिया करोगे कि हाथ काट कर ले भागे, कि पैर निकाल लिया; कि कुछ नहीं मिली, अपेंडिक्स मिल गई! परमात्मा अखंड है। सत्य अखंड है। तुम टुकड़े न कर सकोगे। कुछ-कुछ मिला--क्या कह रहे हो? कोई परमात्मा की लंगोटी ले भागे हो, क्या मामला क्या है?

नहीं, वे कहने लगे कि मिला तो नहीं है, ऐसे झलकें ही मिलीं। मैंने कहा, ईमानदारी की बात करो। झलक मिल गई हो तो उसी दिशा में चलते रहो, यहां समय क्यों खराब कर रहे हो? झलक मिल गई तो बात हो गई। फिर उसी दिशा में बढ़ते रहो, फिर समय मत गंवाओ। मेरे साथ समय मत खराब करो। तुम्हें झलक मिल गई, बढ़ते रहो।

तब जा कर कहीं वे बोले कि नहीं, आप क्यों ऐसी जिद किए जाते हैं? झलक भी नहीं मिली, अब बोलिए। तो मैंने कहा, अब बात हो सकती है। अब बात साफ हो गई। नहीं तो व्यर्थ का विवाद होता है।

मेरे पास लोग आ जाते हैं ले कर कि आपने ऐसा कह दिया, फलाने शास्त्र में ऐसा लिखा है। अब मैं उनसे क्या कहूं? अब किस शास्त्र में क्या लिखा है, उसका कोई मेरा ठेका है? अगर मेरी बात ठीक लगती है तो शास्त्र को सुधार लो। अगर मेरी बात गलत लगती है, तुम जानो, तुम्हारा शास्त्र जाने। इसमें मुझे कोई झंझट नहीं है। इसमें जरा भी अड़चन नहीं है मुझे। तुम और तुम्हारा शास्त्र...। तुम अपने शास्त्र के साथ रुको। शास्त्र से मिल रहा होता तो तुम यहां आए क्यों हो? शास्त्र से नहीं मिल रहा है, फिर भी तुम स्वीकार नहीं कर पाते। और अगर मेरे और शास्त्र में कुछ भेद है, तुम्हें मेरी बात जंचती है तो शास्त्र में तरमीन कर लो, सुधार कर लो। अब इतने शास्त्र हैं दुनिया में, अब सबका हिसाब मैं थोड़े ही रखूंगा कि कहां क्या लिखा है।

जिन मित्र ने पूछा है उनके चेहरे से ऐसी झलक लगी कि पांडित्य, विवादी मन है; शास्त्र में ऐसा है वैसा है। स्वामी चिन्मयानंद के शिष्य हैं, तो स्वभावतः पंडित का शिष्य कहां जाएगा, कहां पहुंचेगा! इसलिए दरवाजा बंद करवा दिया है। हलके हो कर आओ, पांडित्य उतार कर आओ--दरवाजा खुला पाओगे।

स्वभावतः तुम्हारा प्रश्न ही बता रहा है। तुम पूछते हो: "क्या आप अपने शिष्यों के लिए नहीं हैं?' पानी तो प्यासों के लिए है। गुरु शिष्य के लिए है। तुम अगर शिष्य हो तो मैं तुम्हारे लिए हूं। अगर तुम शिष्य नहीं हो तो न तुम मेरे लिए हो और न मैं तुम्हारे लिए हूं, बात खतम हो गई। कोई संबंध नहीं जुडता। संबंध जुडे बिना कोई बात न बनेगी।

इतना जरूर तुमसे कहना चाहूंगा:

जिन ऊंचाइयों पर तुम्हारी महत्वाकांक्षाएं
चीत सी मंडरा रही हैं
उनसे भी परे कुछ ऊंचाइयां हैं
तुम्हें जो सब कुछ जानने का अहं है
उस सबसे परे भी कुछ सच्चाइयां हैं
तुम जिन गहराइयों को पार कर आए हो
उसके बाद ही शेष नहीं
कुछ और भी गहराइयां हैं
जिन्हें मंजिल समझा, वे सब पड़ाव हैं
प्याज के छिलकों की भांति
एक पर्त के बाद दूसरी पर्त है
दूसरे के लिए पहली शर्त है।
दूसरे के लिए पहली शर्त है!

पहले पर कदम रख कर आगे बढ़ जाना होता है। निश्चित ही पहले आदमी पंडित के संपर्क में आता है। क्योंकि ज्ञानी के संपर्क में आना सीधा संभव नहीं है। दूसरे के लिए पहली शर्त है! पहले आदमी शास्त्र के संबंध में आता है, तभी सदगुरु के संबंध में आता है। दूसरे के लिए पहली शर्त है! लेकिन खयाल रखना:

जिन ऊंचाइयों पर तुम्हारी महत्वाकांक्षाएं
चील सी मंडरा रही हैं
उनसे भी परे कुछ ऊंचाइयां हैं।

उन ऊंचाइयों की खोज हो, आकांक्षा हो--मेरे द्वार खुले हैं। और द्वार उनके लिए ही खुले हैं जो वस्तुतः खोज पर निकले हैं। तुम्हारे भीतर प्यास हो, पुकार हो, तो ही मैं राजी हूं कि तुम पर बरसूं। अकारण व्यर्थ तुम्हारे कपड़े भिगो दूं और तुम नाराज होओ और तुम कहो कि नाहक वर्षा हो गई, अब जा कर घर कपड़े सुखाने पड़ेंगे--ऐसा कष्ट मैं तुम्हें नहीं देना चाहता।

मेघ ने खुल-खुल धरा का हिया
भर दिया, भर दिया
विहग एक वन-वन पुकारा किया--
"ओ पिया, ओ पिया!'
प्रीत यों ही बरसती रही उर खोले
प्यास यों ही तरसती रही क्या बोले
भूमि चुपचाप रसती रही हौले-हौले
गंध पथ भरती गई मेंहदिया मेंहदिया
"ओ पिया, ओ पिया'--

विहग एक वन-वन पुकारा किया।
बह चले वे सिरों पर शिखर-जल बांधे
भीगता है समय गंध झर पल बांधे
धान लहरा क्षितिज हांसिया
भर लिया, भर लिया
"ओ पिया, ओ पिया'--
विहग एक वन-वन पुकारा किया।

जब तुम वन-वन में भटकते हुए एक विहग हो जाओगे और पुकारोगे "ओ पिया, ओ पिया', तभी तुम शिष्य हुए।

शिष्य का अर्थ क्या होता है?--सीखने के लिए आतुर; ऐसा आतुर कि सब गंवा देने को तत्पर; पांडित्य, अहंकार, जो किया सब गंवा देने को तत्पर। शिष्य का अर्थ होता है, सब बोझ सिर का उतार कर रख देने को तत्पर। तुम बोझ उतारो तो मैं तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लूं। नहीं तो, मेरे पास थोड़ा सा समय है, उस थोड़े से समय में जिनके कंठ में प्यास है, उन पर ही मेरे जल को गिरने दो, व्यर्थ आ कर मेरा समय खराब मत करो। मेरी उत्सुकता पात्रों में है।

आखिरी प्रश्न: भगवान, क्या से क्या हो गई मैं, कुछ न सकी जान
नयनों में नयन डार तूने लूट लिए प्राण
होलि फिर गाने लगे हृदय के तार
रंग दिए डार।

पूछा है "आनंद सीता' ने।

...ऐसे हो कर आओ, तो कुछ हो, तो कुछ घटे। ऐसे हो कर आओ--मिटने को तैयार, डूबने को तैयार। मरने को तैयार हो कर आओ तो नया जीवन घटे।

यहां मैं ज्ञान देने में उत्सुक नहीं हूं--पुनर्जीवन! इससे कम में क्या मतलब है? मगर पुनर्जीवन के लिए सूली से गुजरना जरूरी है।

झीलों ने खोल दिए नावों के पाल
आसव पी आया है चैता अलमस्त चाल
हुई हवा नीली, फूल लाल-पीले
पंख खोल उड़े कहीं स्वप्न उन्मीले
टेसू के हाथों ने थाम ली मशाल
झीलों ने खोल दिए नावों के पाल।
बरस रहा कन-कन पर कंचनी पराग
तितली के अंग-अंग रंग गया सुहाग
खिसक रहा शिखरों से रजत हिम-दुशाल
झीलों ने खोल दिए नावों के पाल।

इधर तो मैं नावों के पाल खोल रहा हूं। तुम्हें यात्रा करनी हो तो नाव पर सवार हो जाओ। वाद-विवाद में मुझे उत्सुकता नहीं है। यहां जाने की तैयारी है दूसरे तट पर। इतनी हिम्मत हो...क्योंकि दूसरा तट दिखाई भी नहीं पड़ता यहां से, मुझ पर भरोसा करना पड़े। और मैं पागल भी हो सकता हूं, कौन जाने! यह किनारा भी छुड़ा दूं और वह किनारा हो ही न! और मझधार में कहीं मेरे साथ डूबना पड़े! ये सब खतरे हैं।

इसलिए होशियार मेरे साथ नहीं चल पाते। होशियार हो कर मत आओ। गैर होशियार हो कर आओ। जुआरी हो तो ही मेरे साथ चल सकोगे। यह किनारा खोना पड़ेगा, जो जाना-माना परिचित है। हिंदू का किनारा, मुसलमान का किनारा, जैन का, ईसाई का किनारा--यह जाना-माना परिचित है। शास्त्र का, वेद का, कुरान का, बाइबिल का किनारा--यह जाना-माना परिचित है। सिद्धांत का, समाज का--यह किनारा खूब पहचाना है। इस पर तुमने खूब जड़ें जमा ली हैं, खूटियां गाड़ ली हैं। मैं तुमसे कहता हूं, यह सब छोड़ कर मैंने यह नाव खोली है, यह पाल खुल चला, यह यात्रा शुरू हो रही है, इसमें बैठ जाओ।

और मैं तुमसे यह भी बात करने में बहुत उत्सुक नहीं हूं कि दूसरा किनारा है या नहीं, यह सिद्ध करूं, क्योंकि उसे सिद्ध किया ही नहीं जा सकता। तुम मेरे साथ चलो, दिखा दूंगा। मैंने देखा है। तुम्हें ले चलने को तैयार हूं। तुम विवाद करने को उत्सुक हो कि है भी दूसरा किनारा, है तो कैसा--पीला कि हरा कि लाल कि काला? मेरा रस नहीं है। क्योंकि तुम जितने रंग जानते हो, उनमें से कोई भी रंग उस किनारे का रंग नहीं है; वे सब इसी किनारे के रंग हैं। तुम जितने रूप जानते हो वे सब इसी किनारे के रूप हैं; वे उस किनारे के रूप नहीं। जो भाषा हम बोल सकते हैं, वह इसी किनारे की है; उस किनारे की कोई भाषा नहीं। मौन और सन्नाटा उस किनारे की भाषा है। तुम चलने को तैयार हो तो चल पड़ो।

खतरा तो है ही। खतरे में जो गुजरने को तैयार है, उसको ही मैं संन्यासी कहता हूं। खतरा यह है कि यह किनारा छूटता है और दूसरा मिलेगा या नहीं, पता नहीं; इस पागल आदमी की बात का भरोसा करके चल रहे हैं।

तो यह तो बड़े प्रेम में ही घट सकता है। यह तो अपूर्व प्रेम में ही घट सकता है इतना भरोसा।

शिष्य का अर्थ होता है जो मेरे प्रेम में पड़ गया है; जो मेरे साथ डूबने को तैयार है, अकेला उतरने को भी नहीं, मेरे साथ डूबने को तैयार है। शिष्य का अर्थ होता है कि अगर मैं नर्क जाऊं तो वह कहता है, हम आते हैं। जो यह कहता है कि अगर तुम्हारे बिना स्वर्ग जाना संभव होगा तो हम नहीं जाते; तुम्हारे साथ नर्क चलने को तैयार हैं--शिष्य का यह अर्थ होता है। शिष्य बड़ी हिम्मत की बात है--अपूर्व साहस!

सीता ने पूछा है:

"क्या से क्या हो गई मैं, कुछ न सकी जान!'

पता भी न चलेगा, पता चलता भी नहीं। यह क्रांति ऐसे चुपचाप घट जाती है कि पदचाप भी सुनाई नहीं पड़ती, कब हो जाती है! तुम अगर खुलने को राजी हो तो चुपचाप हो जाती है। जरा शोरगुल नहीं मचता।

"क्या से क्या हो गई मैं, कुछ न सकी जान
नयनों में नयन डार तूने लूट लिए प्राण
होली फिर गाने लगे हृदय के तार
रंग दिए डार।'

शिष्य का अर्थ है जो आंखों में आंखें डालने को तत्पर है; जो कहता है, "उंडेलो, मेरा पात्र खाली है, सब तरह से खाली है, तुम इसे भरो!' ऐसी तैयारी शिष्यत्व है।

अब यह बिलकुल सीधी-सीधी बात है कि मैं पात्रों में उत्सुक हूं, शिष्यों में उत्सुक हूं। "सीता' जैसे बनो तो आओ। अन्यथा तुम जहां हो, प्रभु तुम्हारा भला करे! जैसे हो, वैसे ही भला करे!

आज इतना ही।

नौवां प्रवचन

दिनांक १९ मार्च, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

किस बिधि रीझत हौ प्रभू, का कहि टेरूं नाथ।
लहर मेहर जब ही करो, तब ही होउं सनाथ।।
भवजल नदी भयावनी, किस बिधि उतरूं पार।
साहिब मेरी अरज है, सुनिए बारंबार।।
तुम ठाकुर त्रैलोकपति, ये ठग बस करि देहु।
दयादास आधीन की, यह बिनती सुनि लेहु।।
नहिं संजम नहिं साधना, नहिं तीरथ ब्रत दान।
माव भरोसे रहत है, ज्यों बालक नादान।।
लाख चूक सुत से परै, सो कछु तजि नहि देह।
पोष चुचुक ले गोद में, दिन दिन दूनो नेह।।
चकई कल में होत है, भान-उदय आनंद।
दयादास के दृगन वें, पल न टरो ब्रजचंद।।
तुमहीं सूं टेका लेगो, जैसे चंद्र चकोर।
अब कासूं झंखा करौं, मोहन नंदकिसोर।।

तातें तेरे नाम की, महिमा अपरंपार।
जैसे किनका अनल को, सघन बनौ दे जार।।
महामिलन का द्वार--महामृत्यु
कत्थई प्रात है जहां मैं हूं
सांवली रात है जहां मैं हूं
धूप के पांव डगमगाते हैं
सिर्फ बरसात है जहां मैं हूं
हर महकदार फूल कैदी है
मुक्त इस्पात है जहां मैं हूं
कीच है बेहिसाब काई है
पर न जलजाल है जहां मैं हूं
लोग खुलते हुए झिझकते हैं
प्यार अज्ञात है जहां मैं हूं
दर्पणों से नजर चुराते सब
झूठ हर बात है जहां मैं हूं
सिलवटी ओंठ तक नहीं आता
गीत अभिजात है जहां मैं हूं।

ऐसी मनुष्य की दशा है। वहां झूठ सच है। वहां व्यर्थ सार्थक है। और जहां कमल खिलने थे वहां कीचड़ और काई के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। ऐसी मनुष्य की दशा है। वहां अंधेरे में रहते-रहते हमने अंधेरे को ही उजियाला मान लिया है। आखिर जीने के लिए आदमी को सांत्वना भी तो चाहिए। अंधेरे को अंधेरा मानो तो बेचैनी होती है। अंधेरे को उजेला मान लो, अंधेरा उजेला तो नहीं बनता तुम्हारे मानने से, लेकिन मन को चैन आ जाता है।

आदमी ने बड़े झूठ गढ़े हैं। अधिकतर आदमी झूठ के सहारे जीता है। सच कठिन है। सच की खोज कठिन है। सच का रास्ता बहुत कंटकाकीर्ण है। इसलिए नहीं कि सच कठिन होना चाहिए, बल्कि इसलिए कि हम झूठ के बहुत अभ्यस्त हो गए हैं। जिस आदमी ने जन्मों-जन्मों तक कीचड़ को ही सब कुछ जाना हो, उसके लिए यह बात भी सोचनी असंभव मालूम होती है कि कीचड़ से कमल पैदा हो सकता है। और जो रात में ही जीया हो और आंखें अंधेरे की आदी हो गई हों, अगर रोशनी आज आ भी जाए तो आंखें खुल न पाएंगी, तिलमिला जाएंगी। अब तो रोशनी कष्टपूर्ण मालूम पड़ेगी।

इसलिए तो हम सुनते हैं बहुत बात परमात्मा को खोजने की, मगर खोजते नहीं। सुनते हैं बहुत बात भीतर जाने की, मगर जाते नहीं। चिल्लाते रहते हैं बुद्धपुरुष जागो, हम जागते नहीं। और वहां भी हम एक झूठ का खेल खेलते हैं। हम कहते हैं: "जागेंगे, जरूर जागेंगे! जागना है, मगर अभी कैसे! आज कैसे!' वहां भी हमने झूठ के बड़े फलसफे खड़े कर लिए हैं। हम कहते हैं: "जन्मों-जन्मों के कर्मों का जाल है, काटेंगे। समय लगेगा। साधना करनी

होगी, संयम साधना होगा। व्रत-नियम, तीर्थ, उपवास करने होंगे। पुण्य करेंगे तो पाप कटेगा। तब कहीं घटना घटेगी।'

ये सब मनुष्य की तरकीबें हैं न बदलने की। यदि तुम बदलना चाहो तो प्रभु का प्रसाद अभी उपलब्ध है इसी क्षण।

प्रकाश की किरण अंधेरे में प्रवेश जब करती है तो अंधेरा किसी तरह की बाधा डाल पाता है? कि अंधेरा कहता है कि "हजारों साल पुराना हूं, लाखों साल पुराना हूं, ऐसे कैसे कट जाऊंगा कि तू आ गई किरण और बस कट गया मैं? मैं कोई नया अंधेरा नहीं हूं, कोई बच्चा नहीं हूं, बूढ़ा हूं, अति प्राचीन हूं, पुरातन हूं! आएगी, टकराएगी किरण, जन्म-जन्म लगेंगे, तब कहीं काट पाएगी।' नहीं, अंधेरा ऐसा कुछ भी नहीं कहता और न अंधेरा ऐसा कर सकता है। अंधेरे का बल क्या है?

भक्त की यही कला है। भक्त का यही सारसूत्र है कि मैं तो अंधेरा हूं, भूलें की होंगी, जरूर की होंगी, अंधेरे में टकराया होऊंगा, लेकिन मैं अंधेरा हूं--यह मेरी अस्मिता, अहंकार है। तेरी किरण अगर उतरे तो अभी कट जाए। तेरे प्रसाद से अभी हो जाए।

इसलिए भक्ति की आकांक्षा अपने कर्मों को बदलने की नहीं है, प्रभु की कृपा को पुकारने की है।

आज के सूत्र उसी प्रभु-प्रसाद को बुलाने के सूत्र हैं। अनूठे सूत्र हैं। मगर यह बात पहले ही खयाल में ले लेना कि भक्त का मौलिक आधार प्रसाद है, प्रयास नहीं। प्रयास आदमी का; प्रसाद परमात्मा का। प्रयास वह जो तुम्हारे किए से होगा और प्रसाद वह जो तुम्हारे प्रतीक्षा करने से होगा, किए से नहीं होगा। प्रयास वह जो तुम करते हो, सफल-असफल होते हो; प्रसाद वह, जिसमें तुम होते ही नहीं, परमात्मा ही होता है। असफलता का कोई उपाय ही नहीं है।

या ऐसा समझो। मेरे देखे, प्रयास है तुम्हारा संसार। यह मनुष्य का प्रयास है। मकान बनाया, दुकान बनाई, पद-प्रतिष्ठा बनाई--यह सब तुम्हारा प्रयास है। यह तुम्हारी चेष्टा है। यह तुम्हारे बिना किए नहीं होने वाला था; यह तुमने किया तो हुआ है।

संसार है मनुष्य का प्रयास, क्योंकि संसार है मनुष्य के अहंकार का फैलाव। फिर धर्म? धर्म मनुष्य का प्रयास नहीं। धर्म है अपने प्रयास से थक जाना, ऊब जाना, परेशान हो जाना। सफल हो कर भी क्या खाक सफलता मिलती है! मकान बन भी गया तो सराय ही तो बनती है! मकान बन भी गया तो भी मकान कहां मिलता है? रात भर का पड़ाव है, सुबह हुई, चल पड़े! यहां सफलता भी तो असफलता ही सिद्ध होती है। यहां धन भी तो और निर्धन कर जाता है। यहां यश, नाम, पद कहां भीतर के हृदय को भरता है, कहां गदगद करता है? यहां सब धोखा है।

मनुष्य प्रयास से जो करता है वही माया है। और जो मनुष्य के प्रयास से नहीं होता वही परमात्मा है। तो भक्त की यह मौलिक धारणा है: पुकारने से होगा; अभीप्सा से होगा; प्रार्थना से होगा; अर्चना से होगा। और प्रार्थना और अर्चना को तुम प्रयास मत समझ लेना।

लोगों ने उसे भी प्रया बना लिया है। वे कहते हैं, प्रार्थना कर रहे हैं। बात गलत। प्रार्थना कोई कैसे करेगा? प्रार्थना में हो सकते हो, लेकिन कर नहीं सकते। की तो चूक गए। की तो तुम आ गए। हुई तो बात कुछ और हो गई।

इसलिए प्रार्थना का न तो कोई औपचारिक नियम है, न औपचारिक शब्द है। प्रार्थना अनौपचारिक है। किसी भाव-दशा में हो जाती है। कभी आंसुओं से हो जाती है; शब्द आते ही नहीं। कभी नृत्य से हो जाती है; आंसू उतरते ही नहीं। कभी मुस्कराहट से हो जाती है। कभी गीत की गुनगुनाहट से हो जाती है। और यह भी कोई बंधी लकीर नहीं है कि वही गीत रोज-रोज गुनगुनाना है। जो तुमने रोज-रोज गुनगुनाया, झूठा हो गया। जो उभरे, आए, अपने से सहज उठे...। बैठ गए घड़ी भर को, जो हुआ होने दिया। कभी रोए कभी गाए, कभी हंसे कभी नाचे, कभी कुछ न किया, शांत ही बैठे रहे। वही तो दया कहती है: कभी भक्त हंसता, कभी रोता, कभी गाता--कैसी अटपटी बात! कभी उठता कभी बैठता, कभी गिरता, गिर-गिर पड़ता--कैसी अटपटी बात!

कहते हैं, जब मोजिज को सिनाई के पर्वत पर परमात्मा का दर्शन हुआ तो वे सात बार गिरे। दर्शन इतना विराट था, ऐसी अपूर्व घटना थी कि आदमी कंप न जाए तो क्या हो! कि जड़ें हिल न जाएं तो क्या हो! वे सात बार गिरे, गिरे और उठे, सात बार गिरे, आठवीं बार उठ कर कहीं खड़े हो पाए, तब भी पैर कंप रहे थे।

परमात्मा इतनी बड़ी घटना है कि तुम पगला ही जाओगे। पैर कहीं के कहीं तुम्हारे पड़ने लगेंगे। तुम शराबी जैसे हो जाओगे। और यह शराब ऐसी नहीं कि एक बार चढ़ जाए तो उतर जाए। अंगूरों से ढाली शराब तो झूठी शराब है, क्योंकि चढ़ती है और उतर जाती है। जो रंग चढ़े और उतर जाए, उसको हम कच्चा रंग कहते हैं न! जो रंग चढ़े और चढ़ा ही रह जाए, फिर कभी न उतरे, उसी को तो पक्का रंग कहते हैं न! परमात्मा पक्की शराब है। अंगूरों से ढाल कर तो हमने धोखा पैदा किया है।

और तुम जान कर चकित होओगे, जिस आदमी ने शराब खोजी वह एक संत पुरुष था। दायोनीसस उसका नाम था। यूनानी था। उसने शराब खोजी। अब यह बड़ी अजीब बात है कि एक संत ने शराब खोजी। अब भी दायोनीसस के नाम पर चलने वाली जो मोनेस्ट्री है यूनान में, वहां अब भी शराब ढाली जाती है। पश्चिम के विचारक इस तथ्य को बीच-बीच में नहीं लाते, क्योंकि बात ही अजीब लगती है कि कोई संत और शराब खोजे। लेकिन मुझे बात जंचती है कि संत ही शराब खोज सकता है। जिसने असली जानी हो वही तो नकली बना सकता है। नकली बनाने के लिए असली को तो जानना जरूरी है न! तुम नकली नोट छापोगे लेकिन असली भी होना चाहिए, तभी; नहीं तो नकली का नक्शा कहां से खोजोगे? मुझे तो यह बात जंचती है। संत ने ही खोजी होगी। जिसने असली देख ली होगी, आदमियों पर दया करके सोचा होगा, ये बेचारे असली तक तो पहुंच न सकेंगे; इनके लिए नकली खोजी होगी। मुझे इसमें अड़चन नहीं मालूम होती। मुझे यह बात बड़ी तर्कपूर्ण मालूम होती है।

संत ही खोज सकते हैं शराब। जिन्होंने उसका स्वाद चखा, उन्होंने सोचा होगा कि आदमी को कुछ स्वाद लग जाए, कहीं से स्वाद लग जाए। चलो आज झूठे के चक्कर में पड़ेगा, चक्कर में तो पड़ा, कल सच को खोजने लगेगा। शराब पर कब तक रुका रहेगा? एक दिन तो सोचेगा कि कोई ऐसी शराब खोज लूं जो कभी न उतरे, चढ़े और चढ़ी ही रहे। उसी दिन परमात्मा की यात्रा शुरू हो जाएगी।

बिना परमात्मा की शराब खोजे जीवन में आनंद संभव नहीं है।

कसमसाहट है अंधेरे में कहीं

रात भी सोई नहीं मेरी तरह

बेसहारा इस कदर इतना दुखी

विश्व में कोई नहीं मेरी तरह

आज तक शायद किसी भी व्यक्ति ने

जिंदगी खोई नहीं मेरी तरह

आज तक शायद किसी ने अश्रु ने

हर खुशी धोई नहीं मेरी तरह।

लेकिन ऐसी ही दशा सबकी है। तुम्हें भी लगा होगा न कभी कि मुझ जैसा दुखी कौन! मुझ जैसा पीड़ित-परेशान कौन! ऐसा नहीं है कि तुम्हीं पीड़ित हो; सभी ऐसे ही पीड़ित हैं। और सभी को ऐसा लगता है कि मुझ जैसा दुखी कौन! लेकिन दूसरे का दुख तो हमें दिखाई नहीं पड़ता; उसके दुख के घाव तो उसके अंतरतम में छिपे हैं। हमें तो दूसरे की ऊपर की सजावट दिखाई पड़ती है; भीतर के घाव तो दिखाई नहीं पड़ते; भीतर के नासूर दिखाई नहीं पड़ते। अपने भीतर के नासूर दिखाई पड़ते हैं।

लोग हंस रहे हैं और हंसी का उनके पास कुछ कारण नहीं। लोग मुस्कराते भी हैं। क्या करें? अगर न मुस्कराएं तो क्या रोते ही रहें? तो किसी तरह मुस्कुराहट को भी अपने ऊपर थोप लेते हैं।

रूस का एक बहुत बड़ा विचारक मैक्सिस गोर्की अमरीका गया १९२० के करीब। अमरीका में उसे जगह-जगह, जो-जो अमरीका ने मनोरंजन के साधन खोजे हैं, वे दिखाई गए। अमरीका ने मनोरंजन के जितने साधन खोजे हैं, दुनिया में किसी ने नहीं खोजे। जो दिखाने वाला था वह सोचता था कि गोर्की बहुत प्रभावित होगा और गोर्की प्रभावित लगता था। सारे साधन देखने के बाद बाहर आ कर वह आदमी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगा, कुछ कहेगा गोर्की। लेकिन गोर्की की आंखों में एक आंसू आ गया। तो उसने पूछा, मामला क्या है, आप इतने उदास क्यों हैं? गोर्की ने कहा कि जिन लोगों को जीने के लिए इतने मनोरंजन के साधनों की जरूरत है वे जरूर दुखी होंगे। दुखी होने ही चाहिए। दुखी आदमी ही सिनेमा जा रहा है और दुखी आदमी ही शराब-घर जा रहा है और दुखी आदमी ही सर्कस देख रहा है और दुखी आदमी ही क्रिकेट का मैच देख रहा है। ये सब दुखी आदमी हैं। दुखी आदमी को अपने को उलझाने के लिए कोई व्यवस्था चाहिए उस व्यवस्था को वह मनोरंजन कहता है। मन उचटा-

उचटा है, भागा-भागा है--कहीं तो लग जाए, किसी भी तरह लग जाए! दुखी आदमी हजार ईजादें कर रहा है कि किसी तरह थोड़ी देर हंस ले।

सुखी आदमी अपने में डूबा होता है। मनोरंजन की जरूरत उन्हें होती है जो दुखी हैं। जो सुखी है उसका तो मन ही खो जाता है, मनोरंजन की तो बात छोड़ो। मन ही नहीं बचता, मनोरंजन किसका? जो सुखी है वह तो ऐसा लीन होता है ऐसा तल्लीन होता है, ऐसा मस्त होता है अपने होने में, अपना होना इतना पर्याप्त है कि कुछ और चाहिए नहीं। ऐसी परम तृप्ति और परितोष है।

परमात्मा की खोज का इतना ही अर्थ है: कुछ ऐसा हो जाए कि मुझे सुख खोजने मुझसे बाहर न जाना पड़े। परमात्मा शब्द का इतना ही अर्थ है कि कुछ ऐसा हो जाए कि मुझे मेरे सुख के लिए मुझसे बाहर न जाना पड़े; मेरा सुख मेरे भीतर मुझे मिल जाए; सूख का स्रोत झरना मेरे भीतर फूट उठे।

और जिस क्षण ऐसी घड़ी घट जाती है उस क्षण बूंद सागर हो जाती है; उस क्षण सारी सीमाएं विसर्जित हो जाती हैं। उस दिन न तुम देह हो न तुम मन हो; उस दिन तुम स्वयं परमात्मा हो। जिस दिन भगवान भक्त में उतरता है, भक्त भगवान हो जाता है।

और भक्त की आधारभूत शिला को सदा याद रखना कि भक्त यह नहीं कहता कि मैंने ऐसा किया, व्रत किया, नियम किया, उपवास किया, इसलिए तुम मुझे मिलो। नहीं, भक्त की यह बात ही नहीं है। यह तो बात ही दुकानदारी की हो गई कि मैंने ऐसा किया इसलिए तुम मुझे मिलो। यह तो दावा न हुआ प्रेम का; यह तो सौदे का दावा हो गया। यह तो ऐसा हुआ कि अगर न मिले तो अदालत में मुकदमा चलाऊंगा, कि मैं इतने दिन से उपवास कर रहा हूं और अभी तक फल नहीं मिल रहा।

जिसको तुम तपस्वी कहते हो वह अपने बल से भगवान को पाने में लगा है। उसका बल भी अहंकार की ही घोषणा है। इसलिए तुम्हारे तथाकथित योगी, महात्मा, साधु, उनके चेहरे पर तुम बड़ी अहंकार की दीप्ति पाओगे, दर्प पाओगे; अहंकार का दीया जल रहा है।

भक्त विनम्र है। वह कहता है, मेरे किए तो कुछ होता नहीं; होता है तो उसके किए होता है। तो गर्व कहां, गौरव कहां? भक्त तो कहता है कि मेरा कोई दावा नहीं है कि मैं योग्य हूं कि मैं पात्र हूं। भक्त तो इतना कहता है कि मुझे मेरी अपात्रता पता है। भक्त तो रोज अपनी अपात्रता उसके सामने खोल कर रख देता है और कहता है; "ऐसा अपात्र हूं, फिर भी तुम उतरो। क्योंकि तुमने अगर पात्रता मांगी मुझमें तो मेरे बस के बाहर है। और पात्रता मांगी तो फिर प्रसाद क्या? मैं जैसा हूं, यह हूं; बुरा-भला जैसा हूं, यह हूं। मुझे स्वीकार करो, मुझे अंगीकार करो।'

भक्त की प्रार्थना विनम्रता से उठती है। अहंकार बलपूर्वक कहता है कि मैंने इतना किया, ऐसा किया। भक्त कहता है, मेरा बल एक ही है कि तुमने मुझे बनाया और मेरा बल एक ही है कि तुम मुझे भूल न गए होओगे, मैं चाहे कितना ही तुम्हें भूल जाऊं; मेरा बल एक ही है कि तुम मेरे मूल उत्स हो, तुमसे मैं आया हूं; तो मेरा बल इतना ही है कि मैं तुम्हें पुकार

सकता हूं, क्योंकि तुमने ही मुझे बनाया; बुरा-भला जैसा बनाया, तुमने बनाया। इस भक्त की धारणा को समझोगे तो दया के ये पद बड़े अनूठे हैं।

तुम हो तो जग से सौ नाते हैं
तुम न हुए, संसार मुझे क्या?

भक्त कहता है--

तुम हो तो जग से सौ नाते हैं
तुम न हुए, संसार मुझे क्या?
सौ आंधीत्तूफान घिरे हों
नैया डगमग बिना सहारे
विश्वासों के बल पर खे कर
ले भी आऊं अगर किनारे
तुम ही जब हो नहीं नाव में
पाऊं कूल-कगार मुझे क्या?

भक्त कहता है, अगर मोक्ष भी मिल जाए और तुम वहां न होओ तो क्या करूंगा पा कर? दूसरा किनारा भी खोज लूं और तुम ही वहां न मिलो तो क्या फायदा? यह नाव को खेता रहूं और तुम्हें नाव में न पाऊं तो खेऊं भी किसलिए, प्रयोजन भी क्या?

तुम ही जब हो नहीं नाव में
पाऊं कूल-कगार, मुझे क्या?
तुम ही मेरे सूरज-चंदा
शाम-सुबह तुम ही ध्रुवत्तारा
तुम न हुए तो कौन हरेगा
मेरे जीवन का अंधियारा?
तुम हो तो सब उजला-उजला
तुम न हुए, उजियार मुझे क्या?

तो भक्त न तो प्रतीक्षा करता है कि कुंडलिनी जग जाए, न भक्त प्रतीक्षा करता है कि सहस्रार खुल जाए, न भक्त प्रतीक्षा करता है कि भीतर उजियारा हो जाए। भक्त कहता है, तुम आओ; तुम्हारे पीछे जो हो जाए ठीक है। तुम्हारे अतिरिक्त मेरी कोई और आकांक्षा नहीं है। तुम्हारे साथ अगर अंधेरे में भी रहना हो तो भला। बिना अगर उजेले में भी रहना हो तो भजा नहीं।

तुमसे ही मधुमास खिला है
तुमसे उजली हुई चांदनी
तुम हो तो सौंदर्य जी रहा
तुम मुखरित, बज रही रागिनी
तुम ही सजे, सज गई धरा यह

तुम न सजे, शृंगार मुझे क्या?
मन का लोहा कंचन, जब से
पाया पारस-परस तुम्हारा
द्वार तुम्हारे ठोकर खा कर
पाप पुण्य हो गया हमारा
द्वार तुम्हारे ठोकर खा कर
पाप पुण्य हो गया हमारा
मुझको तीरथ द्वार तुम्हारा
काशी और हरिद्वार मुझे क्या?

भक्त कहता है, पाप-पुण्य को बदलने के झंझट न तो मेरी सीमा में हैं, न मैं कर पाऊंगा; मैं तो तुम्हारे द्वार पर अपना सिर पटक देता हूं।

मन का लोहा कंचन, जब से
पाया पारस-परस तुम्हारा।

भक्त भगवान को कहता है: "पारस! तुम छू लो तो मैं स्वर्ण हो जाऊं। अपने किए मैं स्वर्ण न हो सकूंगा। अपने किए ही किए ही तो मैं भटका हूं। अपने ही कर्म से तो भटका हूं। अपने ही कर्तापन से भटका हूं।

द्वार तुम्हारे ठोकर खा कर
पाप पुण्य हो गया हमारा
मुझको तीरथ द्वार तुम्हारा
काशी और हरिद्वार मुझे क्या?
ऋद्धि-सिद्धियां तुम ही तो हो
तुमसे ही सब शकुन सुमंगल
तुम यदि बसो, बसे सुरनगरी
कल्पवृक्ष की छाया पलपल
एक नहीं जब तुम्हीं साथ में
मिले स्वर्ग-अधिकार, मुझे क्या?

भक्त की आकांक्षा न स्वर्ग की है न मोक्ष की, न बैकुंठ की, न आनंद की, न अमृत की, न सत्य की। भक्त की आकांक्षा है उस परम प्रिय को अपने हृदय में विराजमान कर लेने की। और भक्त होशियारी की बात करता है। क्योंकि उसके साथ ही सब आ जाता है।

जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन है: "सीक ई फर्स्ट दि किंगडम ऑफ गॉड, एंड आल एल्स शैल बी एडिड अन्टू यू।' पहले तुम प्रभु को खोज लो और शेष सब उसके पीछे अपने-आप चला आएगा। और शेष सबको खोजने में लगे रहे तो वह तो मिलेगा ही नहीं, प्रभु को भी चूक जाओगे।

भक्त अपनी नासमझी में बड़ा समझदार है और तथाकथित ज्ञानी और पंडित और पुरोहित और योगी और महात्मा अपनी समझदारी में बड़े नासमझ हैं। क्षुद्र को खोजते हैं, व्यर्थ को खोजते हैं। भक्त मूल को खोज लेता है। वह सम्राट को ही अपने घर बुला लाता है तो वजीर इत्यादि नौकर-चाकर सब चले आते हैं। वह एक-एक को निमंत्रण नहीं देता फिरता कि वजीर हैं, बड़े वजीर हैं, नौकर-चाकर हैं, द्वारपाल हैं, सेनापति हैं, इन सबकी वह फिक्र नहीं करता; वह सीधा भगवान को ही बुलाता है। वह मौलिक आधार को खींच लेता है, शेष सब अपने से चला आता है। इसलिए मैं कहता हूं, भक्त की नासमझी में भी बड़ी समझदारी है।

सुनो दया के वचन--

"किस बिधि रीझत हौ प्रभु, का कहिं टेरूं नाथ।

लहर मेहर जब ही करो, तब ही होउं सनाथ।।'

"किस बिधि रीझत हौ प्रभु'...। भक्त कहता है कि तुम्हें रिझाना चाहता हूं; तुम कैसे रीझते हो, इसकी कला भी तुम ही बता दो, क्योंकि मुझे तो कुछ पता नहीं। तुम्हीं कह दो कैसे तुम्हें पुकारूं, क्या है तुम्हारा नाम, क्या तुम्हारा पता-ठिकाना? क्योंकि मैं तो तुम्हारा पता-ठिकाना भी खोजूंगा तो गलत ही हो जाएगा। मुझसे गलत ही होता है। मुझसे जो होता है गलत ही होता है। मैं तो तुम्हें रिझाने की भी चेष्टा करूंगा तो तुम्हें नाराज कर दूंगा। मुझसे ठीक तो होता ही नहीं। मैं गलत का अभ्यासी हूं। मैं गलत में निपुण और कुशल हूं। मैंने जन्मों-जन्मों तक व्यर्थ को और गलत को ही सम्हाला, सजाया है। मैं तुम्हें कैसे सजाऊं? मैं तुम्हें कैसे पुकारूं?

वह कहता है, तुम ही मुझे बता दो कैसे तुम रीझोगे? यह प्यारी बात सुनते हैं?

"किस बिधि रीझत हौ प्रभू, का कही टेरूं नाथ'।

और मुझे तो तुम्हारा पता-ठिकाना और नाम भी नहीं मालूम। और जो नाम मालूम हैं, वे सब पांडित्य के हैं, शब्दों के हैं, शास्त्रों के हैं। तुम अपना असली पता मुझे दे दो, ताकि मैं तुम्हें पुकारूं।

"लहर मेहर जब ही करो, तब ही होउं सनाथ'।

और जब तुम्हारी मेहरबानी हो..."लहर मेहर जब ही करो'...जब तुम्हारी मेहरबानी की लहर मेरी तरफ आए कि तुम मुझे डुबा लो अपनी लहर में मेहरबानी की, तुम्हारी कृपा हो, अनुकंपा हो..."तब ही होउं सनाथ'। नहीं तो मैं अनाथ हूं। एक भटका हुआ यात्री, जिसे मंजिल की कोई खबर नहीं है, जिसे राहों का कुछ पता नहीं है और जिसे गलत का बड़ा प्राचीन अभ्यास है।

इस बात पर खयाल करो, ध्यान करो। तुमने अब तक जो किया है गलत ही तो हुआ है। समझो। तुमने धन इकट्ठा किया तो गलत हुआ। अब अगर तुम धन का त्याग भी करोगे तो भी गलत होगा। क्योंकि तुम ही गलत हो, तुम्हारे छूते ही चीजें गलत हो जाती हैं। जैसे पारस के छूते ही लोहा सोना हो जाता है, तुम्हारे छूते ही सोना लोहा हो जाता है। तुम जहां छू देते हो वहीं मिट्टी हो जाती है। तुमने अब तक धन इकट्ठा किया, जिस कारण से

किया था, अहंकार कि मैं दिखा दूं दुनिया को कि मैं कौन हूं, कितना धनी हूं, अब धन की व्यर्थता सिद्ध हो गई, इकट्ठा करके पता चला कुछ सार नहीं, अब तुम फिर दिखाना चाहते हो दुनिया को। रोग पुराना ही रहा। अब तुम कहते हो, अब मैं त्याग करके दिखा दूं दुनिया को कि मैं कौन हूं। तो धन तुम छोड़ भी दे सकते हो, त्याग कर दे सकते हो, नग्न खड़े हो सकते हो रास्तों पर, लेकिन पुराना रोग कायम है। रोग का नाम बदला, रोग नहीं बदला। रोग की शक्ल बदली, रोग नहीं बदला। और दूसरा रोग पहले से भी ज्यादा खतरनाक है, क्योंकि दूसरा रोग पहले से ज्यादा सूक्ष्म है।

इसलिए धनी आदमी का रोग तो सभी को दिखाई पड़ जाता है, अंधों को भी दिखाई पड़ जाता है कि पागल है; लेकिन त्यागी का रोग बड़ी गहरी आंख वालों को दिखाई पड़ता है, नहीं तो दिखाई ही नहीं पड़ता। वही का वही पागलपन नई दिशा में लग जाता है।

तुमने अब तक जो भी किया है...अब तक कामवासना में तुम दीवाने थे, अब तुमने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया और सब तरफ से अपने को दबा कर बैठ गए, कुछ फर्क न होगा। समझ तुम्हारी जैसी है उस समझ से तुम जो भी करोगे, चूक ही हो जाएगी।

मैंने सुना है, एक रात मुल्ला नसरुद्दीन और उसका एक पियक्कड़ साथी मधुशाला से धुत् नशे में बाहर निकले। आधी रात, रास्ते सुनसान! लेकिन एक चौराहे पर दोनों ठिठक कर खड़े हो गए। मुल्ला के साथी ने कहा, "यार, कैसी सुंदर स्त्री!' और ट्रेफिक-लाइट की तरफ इशारा किया। मुल्ला ने भी गौर से देखा और कहा, "चीज है चीज! पहुंची हुई चीज! स्त्री नहीं, अप्सरा है! और चेहरे पर तो देखो कैसा प्रकाश, कैसी आभा है! मैं आश्चर्यचकित हूं कि यह सुंदरी पूना में अब तक छिपी कहां रही! ठहरो, तुम यहीं रुको। मैं जाता हूं और उस पर डोरे डालता हूं।' और फिर दस मिनट तक उस सुंदरी से जा कर तरहत्तरह की बातें करता रहा। फिर लौटा तो दूसरे पियक्कड़ ने पूछा, "कैसी रही? कुछ प्रगति हुई?' मुल्ला ने कहा, "बुरी नहीं। बस और तो सब ठीक है, सुंदरी तो अदभुत है, पर गूंगी मालूम होती है। बोलती एक भी शब्द नहीं। मगर चिंता की कोई बात नहीं, राजी है, क्योंकि आंखें मिचमिचाती है।'

अब...आदमी पीए हो, होश में न हो तो जो भी अर्थ निकालेगा वे उसकी बेहोशी से निकलेंगे। वह जो व्याख्याएं करेगा, वे व्याख्याएं भी उसकी बेहोशी से आएंगी। तुम अगर बेहोश हो तो चाहे तुम घर बसाओ और चाहे जंगलों में भाग जाओ, कुछ भेद न पड़ेगा। बेहोशी कहीं इतनी आसानी से टूटती है?

इसलिए भक्त कहता है, मेरे वश में कहां! मैं अवश हूं।

"किस बिधि रीझत हौ प्रभू, का कहि टेरूं नाथ।

लहर मेहर जब ही करो, तब ही होउं सनाथ।।'

मेरे किए कुछ भी न होगा, मेरे किए तो मैं अनाथ हूं और अनाथ रहूंगा, अब तुम कुछ करो।

तो भक्त सिर्फ निवेदन करता है, समर्पण करता है। अपने अहंकार को परमात्मा के चरणों में रख देता है। बड़ी हिम्मत की जरूरत है। बड़ी हिम्मत की! क्योंकि आदमी का मन यह कहता है कि कुछ करता तो शायद हो जाता; कुछ ऐसा करना कुछ वैसा करता, गणित बदलता, विधि बदलता तो शायद कुछ हो जाता। फर्क खयाल में लेना। तुम्हारी विधि और गणित तो तुम बदल लोगे, लेकिन तुम स्वयं को कैसे बदलोगे? तुम ही बदलने वाले हो और तुम्हीं बदले जाने वाले, तुम स्वयं को कैसे बदलोगे? यह तो ऐसे ही हुआ कि जैसे कोई आदमी अपने जूते के फीतों को पकड़ कर अपने का ऊपर उठाए।

भक्त की बात में बड़ा जोर है। भक्त यह कहता है कि तुम उठाओगे तो उठूंगा। "लहर मेहर जब ही करो'...। यह तो मैं अपने को अगर जूते के बंद पकड़ कर उठाने की कोशिश करता रहा तो कुछ भी न होगा। मैं ही उठाने वाला हूं, मैं ही उठाया जाने वाला हूं। यह बात चलेगी नहीं। यह बात हो नहीं सकती। तुम उठा लो।

और भक्तों का सदियों का अनुभव यह है कि परमात्मा उठा लेता है अगर तुमने पूरा-पूरा छोड़ दिया। पर "पूरा-पूरा'--वही शर्त है। अगर तुमने रत्ती भर भी बचा कर रखा कि ठीक है, उठा ले तो ठीक, न उठाए तो फिर हम अपने जूते के बंद पकड़ कर उठाएंगे। अब अगर नहीं उठाया तो यह थोड़े ही है कि बैठे ही रहेंगे। उठेंगे तो ही। तो ऐसा आंख के कोने से देख रहे हैं कि अभी तक उठाया है कि नहीं, फिर उठें खुद ही उठें। अब खुद ही को सनाथ करें। अब तक तुमने नहीं किया तो अब खुद ही को कर लें।

अगर ऐसी जरा सी भी वासना बनी रही तो परमात्मा से संबंध नहीं होता। अगर तुम परमात्मा को चूकते हो तो परमात्मा के कारण नहीं, अपने बेईमान हृदय के कारण। तुम्हारे भीतर कहीं छिपे तल पर बात बनी ही रहती है कि अगर नहीं हुआ तो हम तो हैं। तुमने अपने पर भरोसा नहीं खोया है--और भक्ति का अर्थ ही है कि अपने पर पूरा भरोसा खो जाए, तो भगवान पर भरोसा आता है। तुम्हें अपने पर भरोसा है। जन्म-जन्म के दुख पा कर भी तुम भरोसे से नहीं अभी तक खाली हुए।

मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं, आत्मविश्वास की कमी है, इसलिए भक्ति नहीं हो पाती। आत्मविश्वास की कमी से भक्ति नहीं हो पाती! मैं उनसे कहता हूं, आत्मविश्वास की कमी से ही भक्ति होती है। आत्मविश्वास का मतलब ही यह है कि मैं काफी हूं, तुम्हारी कोई जरूरत नहीं। अगर तुम्हें सच में ही पता चल गया है कि आत्मविश्वास की कमी है तो तुम तो अदभुत द्वार पर आ गए खोल लो द्वार। अब तुम बिलकुल गिर ही जाओ। तुम कहो कि मेरे में ही है नहीं कोई विश्वास, मुझमें अपने पर कोई भरोसा नहीं है। मैंने बहुत उठा कर देख लिया, हर बार हारा, कितनी बार हारा, हार पर हार, हार पर हार! कैसा विश्वास? जहां गए वहां दीवार पाई, दरवाजा मिला नहीं अब तक--अब कैसा विश्वास!

तुम इस बात पर खयाल करना। तपस्वी आत्मविश्वास के सहारे चलता है, योगी आत्मविश्वास के सहारे चलता है, ज्ञानी आत्मविश्वास के सहारे चलता है। उसका मार्ग संकल्प का है। भक्त समर्पण करता है। वह कहता है, मैं ही नहीं हूं तो मुझ पर विश्वास

क्या? मैं तो एक खाली शून्य हूं। तेरा आंकड़ा मेरे सामने आ जाए तो मुझमें मूल्य आ जाए, तेरे बिना तो मेरा कोई मूल्य नहीं है।

"लहर मेहर जब ही करो, तब ही होउं सनाथ'।

तेरे बिना तो एक शून्य मात्र हूं जिसका कोई मूल्य नहीं है। एक पर रख दो शून्य तो दस हो जाता है। दस पर रख दो शून्य तो सौ हो जाता है, सौ पर रख दो हजार हो जाता है। देखते हो, एक पर रख दिया शून्य या शून्य पर रख दिया एक, तो शून्य की कितनी कीमत हो जाती है--नौ के बराबर! एक एक है; शून्य के साथ जुड़ते ही दस हो गया। तो शून्य की कीमत नौ हो गई। एक के जुड़ते ही शून्य में नौ की कीमत आ गई। तो परमात्मा अगर तुम्हारे शून्य से जुड़ जाए तो तुम बेशकीमती हो गए, तुम बहुमूल्य हो गए। तुम्हारा मूल्य ऐसा हो गया कि फिर कोई हिसाब लगाने की सुविधा न रही। सब खाते-बही छोटे पड़ जाएंगे, फिर तुम्हारा आंकड़ा नहीं लिखा जा सकता। परमात्मा के साथ जो जुड़ गया, अपने शून्य को जिसने परमात्मा के पीछे लगा दिया, बस बात खतम हो गई। अब तुम्हारा मूल्य ही मूल्य है। अब तुम पारस के संपर्क में आ गए।

"भवजल नदी भयावनी किस बिधि उतरूं पार।

साहिब मेरी अरज है, सुनिए बारंबार।।'

भक्त कहता है, अर्ज कर सकता हूं, अर्जी दे सकता हूं, रो सकता हूं, पुकार सकता हूं, ये आंसू हैं मेरे पास! मेरी आंखों में कोई दृष्टि तो नहीं, बस आंखों में आंसू हैं। ये आंसू तुम्हारे पैरों पर चढ़ा देता हूं। तुम्हारे पैरों को आंसुओं से धो देता हूं।

"भवजल नदी भयावनी...' यह संसार बड़ा भयावना है, क्योंकि सिवाय चूकने के और यहां कुछ हुआ ही नहीं, चूकते ही चले गए, रपटते ही चले गए, गिरते ही चले गए। उठना यहां कभी हो नहीं पाया। चोट पर चोट, दुख पर दुख पाए, फिर भी सपने पीछा नहीं छोड़ते।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने मनोचिकित्सक से कहा: डाक्टर साहिब, मैं रोज रात बस एक ही सपना देखता हूं--मछलियां पकड़ने का सपना। छोटी मछलियां, बड़ी मछलियां, रंग-रंग, ढंग-ढंग की मछलियां, पर सदा मछलियां और सदा मछलियां। रात भर और हर रात। इससे थोड़ी चिंता होती है।

डाक्टर ने कहा: बात तो चिंता की ही है। नसरुद्दीन, लेकिन मामला यह है कि तुम दिन भर जागते समय भी मछलियों के संबंध में ही सोचते हो। जो तुम दिन भर सोचते हो वही रात भर तुम्हारे सपनों में तैरता है। एक काम करो, सोने के पहले सुंदर स्त्रियों के संबंध में सोचो, क्या खाक मछलियों के पीछे पड़े हो! सुंदर स्त्रियों की कल्पना में डूबे-डूबे ही सो जाओ। इससे स्वप्न निश्चित बदल जाएंगे। और बहुत संभव है कि मछलियों की जगह सुंदर अप्सराओं के सपने देखने लगो।

इतना सुनते ही मुल्ला नाराजगी में उठ खड़ा हुआ और चीख कर बोला: क्या? और मछलियों से हाथ धो बैठूं?

सपने की मछलियां हैं, मगर उनको छोड़ने में भी घबराहट होती है: "मछलियों से हाथ धो बैठूं?' तुम्हारे पास सपने के अतिरिक्त और कुछ है भी नहीं।

मुझसे लोग पूछते हैं, आप अपने संन्यासियों को संसार छोड़ने के लिए क्यों नहीं कहते? मैं उनसे कहता हूं, ये सब मछलियां सपने की हैं, छोड़ कर भी कहां जाओगे? छोड़ने योग्य संसार में है क्या? अगर छोड़ने योग्य कुछ हो, तब तो पाने योग्य भी कुछ है। इस बात को खयाल में ले लेना है। अगर संसार में कुछ छोड़ने योग्य है, इतनी सच्चाई है संसार में कि छोड़नी पड़े तो तो फिर संसार में कुछ पाने योग्य भी हो गया। वही सच्चाई पाने योग्य हो जाएगी। मैं कहता हूं, छोड़ने को क्या है? संसार में है ही क्या? खयाल, सिर्फ खयाल।

मुल्ला की नाराजगी देखते हो! बोला: "क्या? और मछलियों से हाथ धो बैठूं?' और फिर तेजी से दफ्तर से बाहर निकलने लगा। तो डाक्टर ने कहा कि भाई, मेरी सलाह की फीस तो देते जाओ। तो उसने कहा: सलाह ली किस उल्लू के पट्ठे ने? लेते तो फीस भी देते।

सपने भी छोड़ने में बड़ी जिद है!

तुम जरा गौर से अपने भीतर देखना, सिवाय सपनों के तुम्हारा संसार क्या है? किसी को पत्नी मान रखा है, किसी को पति मान रखा है। मान्यता की बात है। मान लिया तो बात हो गई।

एक सज्जन अपनी पत्नी से बहुत परेशान हैं। परेशान तो कौन नहीं है! मगर सज्जन जरा भोले-भाले हैं, इसलिए कह देते हैं। तो जब भी आते हैं, वे एक रोना ही रोते हैं--पत्नी! तो मैंने कहा: "अब रोना भी बदलो। अब परमात्मा के लिए रोओ, कब तक पत्नी के लिए रोओगे?' पैसे वाले हैं, सुविधासंपन्न हैं। मैंने कहा: "अगर ऐसा ही है तो पत्नी को आधी जायदाद दे दो और छुटकारा पा लो।' अब यह छुटकारा कैसे हो सकता है? छुटकारा कैसे हो सकता है? आप यह क्या बात कहते हैं? तलाक के आप पक्षपाती हैं? यह तो जन्म-जन्म का संबंध है।

तो मैंने कहा, तुम पत्नी के साथ ही पैदा हुए थे? जनम-जनम का संबंध है! तुम जुड़वां भाई-बहन हो, क्या मामला है?

उन्होंने कहा: नहीं, जुड़वा नहीं हूं, लेकिन सात फेरे लगाए हैं। तो मैंने कहा: तुम पत्नी को ले आओ, मैं उलटे फेरे लगवा दूं। खोलो फेरे। क्योंकि कम से कम बीस साल से तुम्हें मैं जानता हूं और सदा रोना और सदा रोना। आखिर कहीं कुछ और अच्छी बातें भी हैं रोने के लिए। ये आंखें तुम्हारी सूज आई हैं रोते-रोते--पत्नी-पत्नी! और इससे कुछ मिलता नहीं, न रोने से कुछ मिलता है न धोने से कुछ मिलता है। अगर इतना ही तुम परमात्मा के लिए रोते तो परमात्मा मिल जाता।

मैं तुमसे छोड़ने को नहीं कहता कि तुम संसार छोड़ कर भाग जाओ। वहां है क्या छोड़ने को? इतना ही जान लो कि सब मान्यताएं हैं। पत्नी मान्यता है, पति मान्यता है, भाई-बहन मान्यता हैं, पिता-पुत्र मान्यता हैं--सब मान्यता हैं। मान लिया है तो ठीक है। इससे ज्यादा वहां कुछ भी नहीं है! दुकान है, बाजार है, यश, पद-प्रतिष्ठा, सब मान्यता हैं। सपना है।

खुली आंख का सपना है संसार। इसे ज्यादा मूल्य मत दो। इसको यथार्थ मत समझो। न यह पकड़ने-योग्य है न यह छोड़ने योग्य है। यह है ही नहीं तो पकड़ोगे क्या, छोड़ोगे क्या? यह जागने योग्य है। इस बात को खयाल में लेना।

और जागोगे तुम कैसे, क्योंकि तुम्हें सिर्फ सोने का अभ्यास है। तुमने जन्मों-जन्मों में सिर्फ नींद की दवा ही ढाली है।

इसलिए ठीक कहती है दया--"भवजल नदी भयावनी'। दुख पाया बहुत। सब तरफ भय ही भय है। जहां जाती हूं वहीं गिरती हूं। सब जगह जाल ही जाल, फंदे ही फंदे हैं। घृणा में पड़ो तो फंदा, प्रेम में पड़ो तो फंदा। क्रोध करो तो फंदा, करुणा करो तो फंदा। दुकान करो तो फंदा, आश्रम में बैठ जाओ तो फंदा। फंदे ही फंदे हैं।

"भवजल नदी भयावनी, किस बिधि उतरूं पार'।

दया पूछती है कि कोई विधि मेरी सूझ में नहीं आती। मेरी सूझ तो बुरी तरह टूट-फूट गई है। मेरा भरोसा अपने पर अब रहा नहीं। अब तक भरोसे के सहारे चलती रही कि किसी दिन मार्ग मिल जाएगा, द्वार मिल जाएगा; लेकिन नहीं, मेरे किए नहीं होता। जिस दिन तुम्हें यह प्रगाढ़ धारणा हो जाती है कि मेरे किए नहीं होता, नहीं होगा, जिस दिन यह तुम्हारे प्राणों में तीर की तरह चुभ जाती है बात कि मेरे किए नहीं होता, नहीं होगा--उसी क्षण तुम्हारे भीतर से जो भाव उठता है, वही प्रार्थना है। फिर तुम चाहे अल्लाह का नाम लो चाहे राम का, चाहे कृष्ण का, कोई फर्क नहीं पड़ता; सब नाम फिर उसी के हैं। तुम नाम लो न लो, फिर तुम जहां सिर झुका दोगे, उसी के चरणों में सिर झुक जाता है। फिर तुम जहां बैठे हो वहीं तीरथ शुरू हुआ।

"साहिब मेरी अरज है, सुनिए बारंबार।'

दया कहती है कि अर्ज कर सकती हूं बस। अर्जी भेजती हूं। सुन लो, ठीक; अन्यथा बार-बार करती रहूंगी। और तो कोई उपाय नहीं है। दोहराती रहूंगी जन्मों-जन्मों तक कि सुनो मेरी अर्ज। "साहिब मेरी अरज है, सुनिए बारंबार'।

भक्तों ने, संतों ने "साहिब' शब्द का बड़ा प्यारा प्रयोग किया है, परमात्मा को साहिब कहा है।

"साहिब मेरी अरज है, सुनिए बारंबार।

तुम ठाकुर त्रैलोकपति, ये ठग बस करि देहु।

दयादास आधीन की, यह बिनती सुनि लेहु।।'

तुम हो ठाकुर, सारे जगत के मालिक, तुम हो साहिब; और मैं सिर्फ एक निवास-स्थान बन गया हूं ठगों का। "ठग बस करि देहु।' मेरी देह में तो बस चोर बसे हैं, बेईमानियां बसी हैं, शत्रु बसे हैं। मैंने तो शत्रुओं को ही पोसा है। मैंने तो शत्रुओं जो मेरा विनाश कर रहे हैं, उन्हीं को पानी दिया है। मैंने तो अब तक जहर ही ढाले हैं। मैं आत्मघाती हूं। "तुम ठाकुर त्रैलोकपति, ये ठग बस करि देहु।' और इधर मैं हूं कि यहां ठगों के सिवाय मेरी देह में कुछ भी नहीं है। काम है, लोभ है, क्रोध है, माया-मोह-मत्सर है, सब ठग बैठे हैं। यह

मेरी संपदा है। इसके सहारे मैं तुमसे कहूं भी कि तुम आ जाओ, तो कैसे कहूं? तो पात्रता तो मेरी कोई भी नहीं है; तुम्हारी करुणा का ही भरोसा है। योग्यता मेरी कोई भी नहीं है। अयोग्य तो मैं सब भांति हूं, योग्य जरा भी नहीं। न ज्ञान है न ध्यान है, कुछ भी नहीं है। ये सब चोर हैं मेरे भीतर। मेरी पीड़ा समझो। मेरी पात्रता मत देखो। "दयादास आधीन की, यह बिनती सुनि लेहु'।

और मैं तो बिनती कर सकती हूं। दास हूं, आधीन हूं। तुम्हारी हूं बुरी-भली जैसी हूं। मेरी विनती सुन लो।

"नहिं संजम नहिं साधना, नहिं तीरथ व्रत दान।

मात भरोसे रहत है, ज्यों बालक नादान।।'

इन दो छोटे से वचनों में सारी भक्ति का सार आ गया है। नारद ने भक्ति-सूत्र में इतने सूत्र लिखे, उन सब सूत्रों का सार इन दो वचनों में आ गया है: "नहिं संजम नहिं साधना'। दया कहती है, संयम जानती नहीं क्या है। असंयम जानती हूं। योग से कोई पहचान नहीं, बस भोग ही भोग जानती हूं। भटकाव का तो मुझे अनुभव है, पहुंचने का मुझे कोई पता नहीं। "नहिं संजम नहिं साधना'। और साधना के नाम पर कुछ नहीं होता। करती हूं तो भी हाथ से फिसल-फिसल जाता है। कई बार करने की कोशिश कर ली है, नहीं होता। "नहिं संजम नहिं साधना'। तो न तो साधना का दंभ है, न संयम की अकड़ है। "नहिं तीरथ व्रत दान'। न कुछ दान किया है, क्योंकि है भी क्या दान करने को मेरे पास! कौड़िया हैं, इनको दान करूं तो क्या दान होगा? कौड़ी तो कौड़ी ही हैं; धन तो हो न, सब तो दान को सके!

तो दान तो कभी कोई करता है, कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट। जिनको तुम दानवीर कहते हो, दानवीर कहना नहीं चाहिए। मगर तुम्हारी आंखों में वेदानवीर दिखाई पड़ते हैं, किसी ने लाख रुपया दान कर दिया, तुम कहते हो दानवीर। क्योंकि तुम्हारे लिए लाख रुपए का मूल्य है--रुपए का मूल्य है, इसलिए दानवीर। अगर तुम जानते कि रुपए ठीकरे हैं तो तुम दानवीर कहते? यह क्या दान हुआ? कचरे का कोई दान होता है? यह तुम्हारा था ही नहीं, पहली तो बात, तुम दान कैसे कर रहे हो?

एक झेन फकीर के पास एक धनपति आया और उसने हजार स्वर्ण-मुद्राओं से भरी झोली फकीर के सामने रख दी और कहा कि हजार स्वर्ण-मुद्राएं लाया हूं। फकीर ने कहा, ठीक। और जैसे फिर उसकी बात ही न उठाई। अब जो आदमी हजार स्वर्ण-मुद्राएं लाया हो, वह इस आशा में आता है कि तुम धन्यवाद दोगे और कहोगे "बड़ा शुक्रिया, बड़ी कृपा की। आप बड़े दानी हैं। ऐसा-वैसा...।' वह फकीर कुछ बोला ही नहीं, जैसे उसने कुछ बात ही न ली। एक दफे उसने गौर से देखा भी नहीं उस झोली की तरफ। वह धनी बोला--"महाशय, आप समझते हैं कि हजार स्वर्ण-मुद्राओं का कितना मूल्य होता है? मुश्किल से आदमी इकट्ठ कर पाता है।' तो उस फकीर ने कहा: क्या मतलब? क्या तुम धन्यवाद चाहते हो? अगर धन्यवाद चाहते हो तो ले जाओ, उठाओ थैली यहां से, रस्ते पर लगो। क्योंकि जो धन्यवाद

चाहता है, उसे धन व्यर्थ है, ऐसा अभी दिखाई ही नहीं पड़ा। और मैं ऐसे आदमी का पैसा न लूंगा। उठाओ।'

धनपति थोड़ा घबड़ाया और कहाः "नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। अब तो दान कर ही चुका हूं।

फिर उस फकीर ने कहा कि शब्द वापस लो। दान कर चुके हो। जो तुम्हारा है ही नहीं, उसको दान क्या खाक करोगे? दान में तो दावा है कि मेरा था। तुम नहीं आए थे तब भी सोना इस पृथ्वी पर था; तुम चले जाओगे, तब भी सोना इस पृथ्वी पर रहेगा। न तुम लाए हो और न तुम ले जाओगे, तुम्हारा हो कैसे सकता है? बकवास बंद करो या थैली उठाओ। क्योंकि सोना तुम्हारा कैसे? जिसका है उसका है।

यह सारा संसार जिसका है उसका ही है। हम तो यहां खाली हाथ आते हैं और खाली हाथ चले जाते हैं। और हालत तो बड़ी अजीब है। कहावत है कि आते तो बंधे हाथ हैं और खुले हाथ जाते हैं। बच्चा जब पैदा होता है तो मुट्ठी बंधी होती है। बूढ़ा जब मरता है, हाथ खुले होते हैं। कुछ थोड़ा-बहुत लाते हैं, वह भी गंवा देते हैं।

तुम्हारा है क्या? दान कैसे करोगे? भक्त इस बात को जानता है कि मेरा है क्या जो दान करूं! मेरी सामर्थ्य क्या जो व्रत लूं? क्योंकि व्रत में तो अहंकार की अकड़ है, दंभ है कि मैंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया, अहिंसा का व्रत लिया, सत्य का व्रत लिया। अकड़ है कि मैंने इतने व्रत लिए, मैं व्रतधारी हूं! लेकिन तुम्हारी अकड़ ही तो बाधा बन रही है मिलने से।

"नहिं संजम नहिं साधना, नहिं तीरथ व्रत दान।

मात भरोसे रहत है, ज्यों बालक नादान।।'

दया कहती है, मैं तो ऐसे हूं जैसे छोटा बच्चा, मां के भरोसे रहता है। तुम्हारे भरोसे हूं। तुम करो तो कुछ हो; तुम न करो तो मर्जी। बारंबार अर्जी करती रहूंगी। उतना ही मेरा बस है। उतनी ही मेरी पहुंच है कि पुकारती रहूंगी, पुकारती रहूंगी, कभी तो सुनोगे न! कभी तो दया आएगी! कभी तो "लहर मेहर' होगी!

मरने से पूर्व मुझे एक और जीवन दो--ऐसी आकांक्षा है भक्त की।

मरने से पूर्व मुझे एक और जीवन दो, क्योंकि यह तो जीवन जीवन नहीं है। यह तो तुमने खूब खिलवाड़ किया। यह तो शरीर में बिठा कर तुमने खूब धोखा दिया। यह तो ऐसे है जैसे छोटे बच्चे को हम खिलौने पकड़ा देते हैं। बच्चा मांगता है कार, ले आए एक छोटा सा खिलौना--खिलौने की कार--और दे दी बच्चे को। और बच्चा बड़ा प्रसन्न, है चाबी भरता, चलाता।

इस जीवन को अगर तुमने जीवन समझा तो तुम खिलौने की कार को कार समझ बैठे हो, उससे कुछ यात्रा न हो सकेगी।

मरने से पूर्व मुझे एक और जीवन दो

अब तक का जीवन तो जीने की कोशिश में

जीए बिना बीत गया

अनगिनत विकल्पों में संकल्पों को
पूरा किए बिना बीत गया
कभी परिस्थितियों ने, कभी मनःस्थितियों ने
मुझे रोज तोड़ा है
मैंने सुविधाओं की बात मान
गूंगी सच्चाई से अक्सर मुख मोड़ा है
मुझमें अब मेरा-पन बचा नहीं
मुझको मेरे मन ने रचा नहीं
यह रेशम और रतन और वसन लौटा लो
मुझे एक दर्पण दो।
सुनते हो?
यह रेशम और रतन और वसन लौटा लो
मुझे एक दर्पण दो
मरने से पूर्व मुझे एक और जीवन दो।
दर्पण दो जिससे मैं पर्तहीन दिख पाऊं
साहस दो, जैसा भी देखूं मैं वैसा ही लिख पाऊं
जीवन का महाकाव्य ओस-धुले छंदों से रचूं नहीं
पिघला इस्पात मुझे जब-जब भी ललकारे,
पीठ दिखा बचूं नहीं
जो जैसा है उसे वैसा कहने की सामर्थ्य दो
जो जैसा है उसे वैसा जानने की सामर्थ्य दो
जो जैसा है उसे वैसा जीने की सामर्थ्य दो
झूठ बहुत हो गई
यह रेशम और रतन और वसन लौटा लो
मुझे एक दर्पण दो कि मैं अपने को देख सकूं।
और भागूं नहीं, पीठ दिखा बचूं नहीं,
पलायन करूं नहीं
और झूठे काव्य बहुत लिखे, अब न लिखूं
जीवन का महाकाव्य ओस-धुले छंदों से रचूं नहीं।
हो चुके सपने बहुत, अब जीवन के काव्य को सच्चाई से रचूं।
पिघला इस्पात मुझे जब-जब भी ललकारे
पीठ दिखा बचूं नहीं
भोगे यश-लाभ, नहीं मेरी संभावना
बांझ नहीं रह जाए मेरी फल-कामना

बनने से पूर्व बीज झरूं नहीं
मात्र यही, मात्र यही मुझको आश्वासन दो
मरने से पूर्व मुझे एक और जीवन दो।
यह रेशम, यह रतन और वसन लौटा लो
मुझे एक दर्पण दो।

भक्त कहता है: मैं अपने को देख सकूं, ऐसा दर्पण दो। तुम ऐसे दर्पण बन जाओ कि तुममें मैं अपने को देख सकूं। पुकारता रहूंगा। छोटे बालक की भांति, निर्दोष, "ज्यों बालक नादान, मात भरोसे रहत है'।

बच्चे की यह दशा को थोड़ा समझो। नौ महीने बच्चा मां के पेट में रहता है--न अपनी कोई खबर, न भूख-प्यास की कोई चिंता, न कोई जिम्मेदारी। निश्चिंत! सब होता है। ऐसे ही भक्त रहने लगता है। यह सारा अस्तित्व भक्त के लिए मां का गर्भ बन जाता है। वह कहता है, भगवान में जी रहा हूं, अब चिंता कैसी! उसी ने सब तरफ से घेरा है, अब फिक्र कैसी! वही सब तरफ से घेरे है, उसी की हवाएं, उसी के चांदत्तारे, उसी के सूरज, उसी के वृक्ष, उसी के लोग, उसी की पृथ्वी, उसी का आकाश! सब तरफ से उसी ने घेरा है! यह अस्तित्व गर्भ बन जाता है और भक्त इसमें निश्चिंत भाव से लीन हो जाता है। "मात भरोसे रहत है ज्यों बालक नादान।'

"लाख चूक सुत से परै, सो कछु तजि नहि देह'।

और बच्चा कितनी ही भूल करे तो कोई मां उसे त्याग नहीं देती।

"लाख चूक सुत से परै, सो कछु तजि नहि देह।
पोष चुचुक ले गोद में, दिन-दिन दूनो नेह।।'

जब-जब बच्चा भूल करता है, मां उसे चुमकारती है, पास लेती है और गोदी में ले कर प्यार करती है।

जीसस ने कहा है, भगवान ऐसा है जैसे एक गड़रिया सांझ अपनी भेड़ों को ले कर लौटता है और अचानक घर आ कर पाता है कि सौ भेड़ों में निन्यानबे घर आईं, एक कहीं जंगल में खो गई। तो निन्यानबे को वहीं छोड़, भागा जंगल में जाता है। दूर-दूर घाटियों में पुकारता है, रात के अंधेरे में टटोलता है। अपने जीवन को गंवाने का खतरा लेता है। और फिर उस भेड़ को खोज कर लाता है। और जब उस भेड़ को खोज कर लाता है तो जानते हो कैसे लाता है? उसको कंधे पर रख कर लाता है।

तो जीसस ने कहा है, भगवान तो गड़रिया है।

"लाख चूक सुत से परै, तो कछु तजि नहि देह'।

अब बेटा कितनी ही भूल करे तो मां माफ करती चली जाती है।

"पोष चुचुक ले गोद में, दिन-दिन दूनो नेह'।

और तुमने कभी खयाल किया कि मां उसी बेटे को ज्यादा प्रेम करती है जो ज्यादा उपद्रवी होता है, जो ज्यादा झंझटें खड़ी करके आता है, मुहल्ले में उपद्रव कर आता है! जो जितनी ज्यादा भूलें करता है, मां का प्रेम उतना ही ज्यादा उसकी तरफ बहता है।

सूफी फकीर बायजीद के आश्रम में सैकड़ों साधक थे। एक नया साधक आया। और उस साधक ने आ कर बड़ी उपद्रव की स्थिति बना दी। उसे चोरी की भी आदत थी, शराब भी पी लेता था, और भी तरहत्तरह के गुण थे, जुआ भी खेलता था। आखिर सभी शिष्यों ने बार-बार शिकायत की। और तो और, बायजीद तक की चीजें चोरी जाने लगीं। लेकिन बायजीद कि सुनता रहे, कहे कि ठीक, देखेंगे, देखेंगे। आखिर एक सीमा आती है। सारे शिष्य इकट्ठे हो गए। उन्होंने कहाः यह बहुत हुआ जा रहा है। आखिर क्या मामला है? इसको यहां रोकने की जरूरत क्या है? इसे आप हटाते क्यों नहीं?

बायजीद ने कहाः सुनो, तुम सब भले हो। तुम अगर चले जाओगे तो भी तुम किसी न किसी तरह परमात्मा को खोज लोगे। मगर यह अगर मुझसे चूक गया, अगर मैंने इसे निकाल दिया तो इसके लिए कोई उपाय नहीं। तो तुम ऐसा करो, अगर तुम्हें यह ज्यादा परेशान करता है, तुम चले जाओ। मगर इससे हमारा गठबंधन हो गया है, इसके साथ तो अब रहना ही है। और फिर तुम यह भी सोचो, मेरे सिवाय इसे कोई और स्वीकार नहीं करेगा। और माना कि यह चोर है और शराबी है, जुआरी है, और मेरी भी चीजें जाने लगी हैं, औरों को तो ठीक, वह मुझे भी बख्श नहीं रहा है--मगर परमात्मा जब उसको बरदाश्त कर रहा है और मैं बर्दाश्त न करूं तो परमात्मा मुझे भी कभी क्षमा न करेगा। परमात्मा ने सांस देनी बंद तो नहीं कर दी उसे। परमात्मा का सूरज उसके ऊपर अब भी वैसी ही रोशनी बरसाता है जैसे पहले बरसाता था। चांदत्तारे उसके लिए वंचित नहीं किए हैं। जब परमात्मा उसे बर्दाश्त कर रहा है तो मैं बीच में बाधा डालने वाला कौन हूं? उसकी मर्जी, उसका संसार। और अपना है क्या, यह चुरा क्या ले जाएगा?...तो तुम जा सकते हो, मगर इसे मैं विदा न कर सकूंगा। तुम्हें विदा कर दूंगा तो परमात्मा के सामने मुझे कहने की सुविधा रहेगी कि वे सब भले लोग थे, वे तुझे पा ही लेते; मगर इसको विदा कर दिया तो क्या मुंह दिखाऊंगा, जब वह मुझसे पूछेगा कि उसको कहां भेजा? वह कहां है? तूने कैसे उसे छोड़ो?

"लाख चूक सुत से परै सो कुछ तजि नहि देह'।

तो दया कह रही है कि तुम स्रोत हो, तुमसे हम आए हैं, हम तुम्हारे बच्चे हैं; भूलें हमसे बहुत हुई हैं, यह सच है। भूलें ही हुईं, और कुछ नहीं हुआ, यह भी सच हैं, यह सब अंगीकार है। मगर इससे कुछ त्याग थोड़े ही देते हैं। इससे कुछ मां मां न रह जाएगी, ऐसा थोड़े ही है। इससे हम अर्ज करते हैं, सुनो, "साहिब मेरी अरब है, सुनिए बारंबार'।

"चकई कल में होत है, भान-उदय आनंद।

दयादास के दृगन तें, पल न टरो ब्रजचंद।।'

यही प्रार्थना है; कुछ और बड़ी मांग भी नहीं है। ऐसे ही जैसे चातक आंख अटकाए रहता है चांद पर, कुछ बड़ी मांग भी नहीं है।

"दयादास के दृगन तें, पल न टरो ब्रजचंद'।

--बस मेरी आंखों से क्षण भर को दूर न होओ, बस इतनी ही मांग है। कुछ बड़ी मांग भी नहीं, कोई बड़ा खजाना नहीं मांगते, कोई मोक्ष नहीं मांगते, कोई स्वर्ग नहीं मांगते।

भक्त कुछ मांगता ही नहीं। भक्त कहता है कि इतना ही कि तुम्हें भुनूं न, तुम विस्मृत न होओ, तुम्हारी याद उठती रहे। इस फर्क को समझना। ज्ञानी इस संबंध में छोटा पड़ जाता है, क्योंकि ज्ञानी कुछ मांगता है। वह कहता है, आनंद चाहिए, मोक्ष चाहिए, पुण्य चाहिए, शाश्वत जीवन चाहिए--चाहिए ही चाहिए! भक्त कहता है: कुछ नहीं चाहिए; बस तुम्हें न भूलूं। नर्क में पड़ा रहूं, कोई फिक्र नहीं; तुम्हारी याद बनी रहे। मेरी प्रार्थना के तार तुमसे जुड़े रहें, बस इतना काफी है।

"दयादास के दृगन तें, पल न टरो व्रजचंद'!

"तुमहीं सूं टेका लगो'...तुम्हारे ही सहारे हूं।

"तुम्हीं सूं टेका लगो, जैसे चंद्र चकोर'।

तुम पर ही टिका हूं, तुम पर ही आंख अटकी है। तुम्हीं रोशनी, तुम्हीं जीवन, तुम्हीं मेरे मोक्ष।

"तुम्हीं सूं टेका लगो, जैसे चंद्र चकोर।

अब कासूं झंखा करौं, मोहन नंदकिसोर।।'

बड़ी प्यारी बात है। दया कहती है, अब किससे झंझट करूं? अब किससे झगड़ा करूं?

"तुमहीं सूं टेका लगो, जैसे चंद्र चकोर।

अब कासूं झंखा करौं, मोहन नंदकिसोर।।'

--अब तुमसे ही झगड़ूंगी। तुम्हीं हो, और तो कुछ है नहीं। अगर न होगा तो तुम्हीं से झंझट होगी, तुम्हीं से विवाद होगा, तुम्हीं से शिकायत होगी।

फर्क समझना। तुम भी शिकायत करते हो, भक्त भी शिकायत करता है; लेकिन तुम्हारी शिकायत में कोई प्रार्थना नहीं होती। भक्त की शिकायत में भी प्रार्थना होती है। तुम भी जाते हो भगवान से कुछ मांगने और शिकायत करने कि ऐसा है, ऐसा होना चाहिए...।

पश्चिम के बहुत बड़े विचारक इमर्सन ने कहा है कि आदमी की सब प्रार्थनाओं का सार-निचोड़ इतना है कि लोग जा कर भगवान से कहते हैं कि दो और दो चार नहीं होना चाहिए। तुमने चोरी की, अब सजा नहीं होनी चाहिए। तुमने पाप किया, अब दुख नहीं होना चाहिए। आदमी की सारी प्रार्थनाएं बस ऐसी ही हैं कि जो होना चाहिए वह नहीं होना चाहिए। कुछ और हो जाए जो तुम चाहते हो कि होना चाहिए। तुम व्यवस्था में कुछ रूपांतरण चाहते हो। तुम्हारी प्रार्थना वासना है। तुम्हारी शिकायत क्रोध से भरी है। लेकिन, भक्त भी कभी शिकायत करता है, लेकिन उसकी शिकायत में बड़ा प्रेम है। ये वचन सुनते हो: "अब किससे

झगड़ने जाऊं, तुम्हारे अतिरिक्त कोई है ही नहीं, तुम ही हो! लड़ूं तो तुमसे, प्रेम करूं तो तुमसे। रीझूं तो तुम पर, नाराज हो जाऊं तो तुम पर।

"तुमहीं सूं टेका लगो'...। अब सब तुम्हीं पर टिका है। जैसे चकोर चांद पर टिका है, ऐसे मेरी आंखें तुम पर लगी हैं। अब तुम नाराज मत होना।

एक और अनूठा पद है। मैत्रेय जी ने पता नहीं क्यों दया के इन पदों में उसको रखा नहीं। शायद सोचा होगा कि झंझटी है, इसलिए छोड़ दिया। मैत्रेय जी चुनते हैं, तो उन्होंने सोचा होगा, यह जरा झंझटी पद है। उस पद को लेकिन मैं नहीं छोड़ सकता। झंझट में मुझे रस है। पद है:

"बड़े-बड़े पापी अधम तरत लगी न बार।

पूंजी लगे कछु नंद की, हे प्रभु हमरी बार।।'

सुनते हो, बात बड़ी मजे की है!

"बड़े-बड़े पापी अधम'...। बड़े-बड़े पापी भी तर गए, तरत लगी न बार। "पूंजी लगे कछु नंद की'...तुम्हारे बाप का कुछ जाता है अगर हम भी तर जाएं?

यह बात बड़ी हिम्मत की है: "नंद बाबा का कुछ चला जाएगा?'

"पूंजी लगे कछु नंद की, हे प्रभु हमरी बार'।

--"सिर्फ हम ही को अटका रहे हो और बड़े-बड़े पापी तर गए!' यह सिर्फ भक्त ही कह सकता है। यह सिर्फ वही कह सकता है जिसके हृदय में प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। यह हिम्मत भक्त की ही हो सकती है।

और एक वचन है, वह भी मैत्रेय जी ने छोड़ दिया है--

"कब को टेरत दीन भौ, सुनो न नाथ पुकार'।

--मैं कब का पुकार रहा, कब की पुकार रही और तुम सुनते नहीं। "की सर वन ऊंचो सुनो'...कि कुछ ऊंचा सुनने लगे क्या?

"की सरवन ऊंचो सुनो, की दीन्हों विरद बिसार!'

--भूल गए पुराने आश्वासन: "संभवामि युगे-युगे! यदा-यदा हि धर्मस्य...जब-जब धर्म की ग्लानि होगी, युग-युग में आऊंगा।' भूल गए सब बकवास? सिर्फ मैं इधर झंझट में पड़ी।

"की सरवन ऊंचो सुनो'...कि कान कुछ खराब हो गए, बहरे हो गए?

यह सिर्फ भक्त ही कह सकता है। और ये बड़े प्यारे वचन हैं। ..."की दीन्हों विरद बिसार।' "विरद' का अर्थ होता है बड़ा नाम था तुम्हारा अब तक, भूल-भाल गए सब? डुबा दी लुटिया अपने नाम की? बड़ा नाम था कि पापियों को तरा देते हो, तारणतरण हो, बड़ा नाम था। मेरे संबंध में क्यों मामले में अड़चन हो रही है? मुझसे बड़े-बड़े पापी तर गए। "पूंजी लगे कछु नंद की, हे प्रभु हमरी बार।'

"तुम्हीं सूं टेका लगो, जैसे चंद्र चकोर।

अब कासूं झंखा करौं, मोहन नंदकिसोर।।'

यह झंखा है, यह झगड़ा है, यह प्रेम का झगड़ा है।

तुमने देखा, प्रेमी अक्सर झगड़ते हैं! और झगड़े से प्रेम में रस बढ़ता है, घटता नहीं। मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि जब कोई स्त्री और पुरुष, कोई पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेयसी झगड़ना बंद कर दें तो समझना प्रेम चुक गया, अब शांति आ गई। जब तक झगड़ा जारी रहता है तब तक प्रेम है। झगड़े का अर्थ ही इतना है कि दूसरे से लगाव है। लगाव है तो झगड़ा है। लगाव नहीं तो झगड़ा भी क्या है? तुम हर किसी से तो झगड़ने नहीं चले जाते। तुम्हारी पत्नी अगर तुम्हारे पीछे पड़ी है कि छोड़ो सिगरेट कि छोड़ो शराब, तो इसीलिए कि लगाव है कि प्रेम है, तो झगड़ा जारी है कि छोटी-छोटी बात पर कलह होती है। लेकिन हर कलह प्रेम को गहरा जाती है। कलह का सबूत ही इतना है कि अभी तुम कैसे होओ, इसकी एक आकांक्षा है; तुम्हें संवारने की, तुम्हें सुंदर बनाने की एक आकांक्षा है।

झगड़ा अनिवार्य रूप से दुश्मनी नहीं है। मित्र भी झगड़ते हैं। और तब झगड़े में एक रस होता है। और यह तो आखिरी प्रेम है; इसके पार तो फिर कोई प्रेम नहीं। भक्ति तो आत्यंतिक प्रेम है। तो भक्त तो भगवान से झगड़ता है। और यह हिम्मत केवल भक्त की है कि झगड़ सकता है। ज्ञानी तो डरता है। क्योंकि ज्ञानी का संबंध सौदे का है। वह कहता है, कहीं नाराज हो जाए! भक्त कहता है, होना हो नाराज तो हो जाओ। क्योंकि भक्त को भरोसा है कि तुम समझोगे। अगर अस्तित्व नहीं समझेगा तो फिर कौन समझेगा? भक्त जानता है कि यह जो मैं कह रहा हूं यह भी प्रेम से कहा जा रहा है। इस झगड़े में दुश्मनी नहीं है। इस झगड़े में एक गहरी मैत्री है, गहरी प्रीत है।

"तुमहीं सूं टेका लगो, जैसे चंद्र चकोर।
अब कासूं झंखा करौं, मोहन नंदकिसोर।।'

यों तो हम जीवन में कई बार बिछड़े
आंखों में बसे हुए दृश्य नहीं उजड़े
मेरा संपूर्ण अहं विगलित हो
तेरी ही ओर बहा जाता है
जितने भी सुख मेरे परिचित हैं
उन सबसे तेरा कुछ नाता है
साथ-साथ सोचे थे हमने जो सपने
अनगिन बेगानों में वे ही हैं अपने
सारा कोलाहल चुक जाता जब
तेरी आवाज तभी सुनता हूं
जो सबसे अधिक तुझे प्यारा था
रंगों में रंग वही चुनता हूं
जहां-जहां भी तेरी दृष्टि कभी अटकी
शाम उन्हीं राहों में बार-बार भटकी
कोई भी चित्र कहीं देखूं मैं

तेरा प्रतिबिंब उतर आता है
चाहे मैं कोई भी शब्द सुनूं
तेरा ही नाम उभर आता है
सांसों में देह गंध मन में चिनगारी
मेरा हर रोम प्राण तेरा आभारी!

भक्त कहता है, "कोई भी चित्र कहीं देखूं मैं, तेरा प्रतिबिंब उतर आता है। चाहे मैं कोई भी शब्द चुनूं, चाहे मैं कोई भी शब्द चुनूं, तेरा ही नाम उभर आता है।' सब नाम उसी के हो जाते हैं, सब रूप उसी के हो जाते हैं। सारा अस्तित्व उसी की तरंगों से भर जाता है। और भक्त एक अनूठे लोक में रहने लगता है--जहां प्रार्थना है, जहां प्रेम है, जहां शिकायत है, जहां एक अनूठा झगड?ा भी है; मान है, मनौवल है; रूठना है, रिझाना है।

ऊपर से देखने पर भक्त निश्चित ही पागल लगेगा। इसलिए ऊपर से जिन्होंने देखा, वे भक्त को नहीं समझ पाते। भक्त को समझने का तो एक ही उपाय है--भक्त हो जाना। भक्त को समझने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। यह स्वाद भीतर है; लगे तो लग गया। बाहर-बाहर खड़े हो कर देखा तो तुम्हारी समझ में कुछ भी न आएगा। इसलिए जिन लोगों ने भक्तों का अध्ययन बाहर से किया है, अध्ययन किया है, अनुभव नहीं किया, उन सबने जो भी कहा है भक्तों के संबंध में, गलत कहा है। अगर तुम मनोवैज्ञानिकों से पूछो मीरा के संबंध में, दया के संबंध में, सहजो के संबंध में, तो मनोवैज्ञानिक कहेंगे कि ये स्त्रियां विक्षिप्त हैं, रुग्ण हैं।

लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, अगर ये स्त्रियां रुग्ण हैं तो यह रोग तुम्हारे स्वास्थ्य से बेहतर है। अगर ये स्त्रियां पागल हैं तो यह पागलपन तुम्हारी बुद्धिमानी से लाख गुना बेहतर है। छोड़ो बुद्धिमानी और खरीद लो यह पागलपन। क्योंकि वह तुम्हारा जो मनोवैज्ञानिक है जो कहता है ये पागल लोग हैं, उसकी तरफ तो देखो--न जीवन में कोई रस है, न जीवन में कोई आभा है, न जीवन में कोई शांति है, न जीवन में कोई संगीत है; जीवन रूखा-सूखा है, मरुस्थल; मरूद्यान कहीं भी नहीं। और इन भक्तों के जीवन में फूल ही फूल हैं, हरियाली ही हरियाली है, झरने ही झरने हैं। तो अगर पागल होना है तो भक्ति तो ठीक, पागल हो जाना।

दुनिया से भक्ति धीरे-धीरे तिरोहित होती चली गई, क्योंकि लोग बाहर से जो बातें कहते हैं उन बातों को लोग बहुत मानने लगे हैं। दुनिया से प्रेम भी तिरोहित हो गया है। दुनिया में जो श्री श्रेष्ठ था वह तिरोहित होता जा रहा है। दुनिया में जो व्यर्थ है वही बच रहा है। और फिर अगर तुम्हारे जीवन का अर्थ खो जाए तो आश्चर्य क्या! तुमसे कोई छीने लिए जा रहा है सब। तर्कजाल जीवन की सभी संपदाओं को नष्ट किए दे रहा है। इनमें सबसे बड़ी संपदा है भक्ति, फिर सारी संपदाएं उससे नीचे हैं। क्योंकि भक्ति का अर्थ है परमात्मा से संबंध, परमात्मा से राग का संबंध। और राग का संबंध ही तुम्हारे जीवन में रंग ला सकता है। राग

का अर्थ ही रंग होता है। राग का संबंध ही तुम्हारे जीवन में नृत्य ला सकता है। राग का संबंध ही तुम्हारे जीवन में फूल खिला सकता है।

"तातें तेरे नाम की, महिमा अपरंपार।

जैसे किनका अनल को, सघन बनौ दे जार।।'

लेकिन दया कहती है, मुझे मालूम है कि तेरे नाम की बड़ी अपरंपार महिमा है।

"तातें तेरे नाम की महिमा अपरंपार। जैसे किनका अनल को'...जैसे एक छोटी सी चिनगारी "सघन बनौ दे जार', एक घने से घने जंगल को जला डालती है--ऐसी तेरे नाम की जरा सी चिनगारी भी मेरे भीतर पड़ जाए तो मेरा सब अंधकार जल जाए, मेरा सारा वन जल जाए, मेरे सारे पाप, मेरे सारे कर्म, मेरे सारे अनंत-अनंत कालों में की गई भूल-चूकें सब जल जाएं। तेरी कृपा का एक छोटा सा अंगार मेरे ऊपर गिर जाए।

तो भक्त प्रतीक्षा करता है।

भक्ति यानी प्रेम। भक्ति यानी प्रतीक्षा।

इस दिशा में कुछ कदम रखो। दया की वाणी समझने से कुछ भी न होगा। दया की वाणी समझने से तो थोड़ी सी तुम्हारी जीवन में प्यास जग जाए तो काफी है। इस दिशा में दो-चार कदम रखो। पागल होने की हिम्मत करो। प्रभु के नाम में अगर पागल न हुए तो उसे न पा सकोगे। पागल होने का इतना ही अर्थ है कि हम सब गंवाने को तैयार हैं--अपनी बुद्धिमानी भी।

मैं जिसे संन्यास कहता हूं वह ऐसी ही पागलपन और मस्ती की दशा है। मेरा संन्यास पुराने ढंग और ढांचे का संन्यास नहीं है; जीवन से तोड़ने वाला नहीं, जीवन से जोड़ने वाला; विराग का नहीं, परम राग का; भगोड़ेपन का नहीं, जीवन में जड़ें जमा कर खड़े हो जाने का। क्योंकि परमात्मा का है जीवन, भगाना कहां? और अगर परमात्मा की सृष्टि से भागोगे तो प्रकारांतर से परमात्मा से ही भाग रहे हो। उसकी सृष्टि की प्रशंसा उसकी ही प्रशंसा है। गीत की प्रशंसा गीतकार की प्रशंसा है। मूर्ति की प्रशंसा मूर्तिकार की प्रशंसा है। मूर्ति की निंदा मूर्तिकार की निंदा हो जाएगी।

इसलिए मैं कहता हूं, यह संसार उसका है। संसार के रोएं-रोएं में वह मौजूद है। तुम जरा पुलकित होओ, तुम जरा फैलो, विस्तीर्ण होओ। तुम जरा बुद्धिमानी की सीमाओं को उतार कर रखो और तुम अचानक पाओगे कि आश्चर्य, परमात्मा को इतने दिन तक चूकते कैसे रहे! जो इतना करीब था, जो इतना निकट था, उसे चूक--यही आश्चर्य की बात है, यही चमत्कार है। परमात्मा को पाने में कुछ चमत्कार नहीं; परमात्मा को चूके हैं, यह चमत्कार है। यह होना नहीं चाहिए। यह ऐसे ही है जैसा कबीर ने कहा कि मुझे देख कर बड़ी हंसी आती है कि मछली सागर में प्यासी है। यह हंसी की बात है कि हम परमात्मा के सागर में हैं और प्यासे हैं। हम उसकी ही लहरें हैं और प्यासे हैं। मछली सागर में ही पैदा होती है, सागर में ही जीती, सागर में ही विलीन हो जाती है--सागर की ही एक लहर है। मगर अगर

मछली सागर में प्यासी हो तुम भी हंसोगे न! और हम सब ऐसी ही मछलियां हैं जो सागर में हैं और प्यासी हैं।

एक पुरानी हिंदू कथा है कि एक मछली ने "सागर' शब्द सुना तो वह बड़ी उत्सुक हो गई कि सागर कहां है। वह खोजने लगी। वह दूर-दूर यात्राएं करने लगी। वह लोगों से पूछने लगी, सागर कहां है? जिससे भी पूछा...मछलियों से ही पूछा...उन्होंने कहा, भई सुना तो हमने है, पुराणों में लिखा है, शास्त्रों में है, सदगुरु सागर की बात करते हैं; मगर हम साधारण मछलियां हैं, पता नहीं कहा है! या पहले हुआ करता था; अब पता नहीं है भी या नहीं! या कौन जाने यह सिर्फ बातचीत हो कवियों की, कल्पनाशील लोगों की, सपने देखने वालों की! देखा नहीं कभी सागर।

मछली बड़ी बेचैन होने लगी और हर घड़ी सागर में ही है। और जिन मछलियों से पूछ रही है वे भी सागर में हैं। लेकिन सागर को जाने कैसे! जो बहुत करीब हो वह चूक जाता है। सागर से दूरी चाहिए न! सागर को जानने का एक ही उपाय है कि मछली को कोई मछुआ पकड़ कर सागर के तट पर डाल दे; रेत में तड़पे, तब उसे पता चले कि सागर कहां है। तो मछली को तो कोई मछुआ पकड़ कर सागर की रेत पर डाल भी सकता है किनारे पर, लेकिन परमात्मा का तो कोई भी कि किनारा नहीं; हमें तो कोई भी मछुआ निकाल कर बाहर नहीं डाल सकता है। हम तो जहां भी होंगे परमात्मा में ही होंगे। इसी कारण हम चूक रहे हैं।

तुम्हारे तर्क से, विचार से, खोज से तुम उसे न पाओगे। तुम खो जाओ तो उसे पा लो। भक्ति खोने का सूत्र है।

काश मैं होता न कस्तूरी हिरन
क्यों भटकते रात-दिन मेरे चरण!

कस्तूरी मृग के नाफे में बसती है सुगंध, भागता फिरता है। कस्तूरी कुंडल बसै। कस्तूरी बसी है कुंडल में अपने ही, मगर गंध ऐसा लगता है बाहर से आ रही है। पता भी कैसे चले कि गंध भीतर से आ रही है? नासापुट तो बाहर खुलते हैं, गंध बाहर निकल रही है और फिर लौट रही है और नासापुटों में भर रही है। भागता है पागल हो कर कस्तूरी मृग।

काश मैं होता न कस्तूरी हिरन
क्यों भटकते रात-दिन मेरे चरण!
फूल ही होता अगर खिलता नहीं
गंध मुझमें भी, मगर कितनी विफल
वायु सा रखती मुझे प्रतिपल विकल
आत्मरति के मंत्र से मोहित हुआ
कर रहा अपना स्वयं ही अनुसरण
पार कितनी मंजिलें मैं कर चुका
किंतु चुकती ही नहीं यह बालुका

कुछ पता जलस्रोत का चलता नहीं
और सूरज है कभी ढलता नहीं
दोहरा संताप यह कैसे सहूं?
कब तलक मांगूं न छाया से शरण?
यह प्रहर कितना विवश निरुपाया है
स्वप्न-आहत चेतना मृतप्राय है
विषमयी कुंठा मुझे डस जाएगी
सर्पणी-सी पाश में कस जाएगी
और कब तक जी सकूंगा इस तरह
चाट कर अपने अहं के ओस-कण?
हाय यह मुझको अचानक क्या हुआ?
किस अदेखे स्पर्श ने मुझको छुआ?
सांस लौटी लौट जाने के लिए
मेघ आए या बुलाने के लिए?
काश यह कोई बता पाए मुझे
जन्म है मेरा नया यह या मरण?
कस्तूरी मृग भटकता है--उस सुगंध की खोज में जो उसके भीतर छिपी है। दौड़ता, दौड़ता। यात्रा का कोई अंत ही नहीं आता--आ भी नहीं सकता। थक जाता, गिर जाता।
हाय यह मुझको अचानक क्या हुआ?
किस अदेखे स्पर्श ने मुझको छुआ?
सांस लौटी लौट जाने के लिए
मेघ आए या बुलाने के लिए?
काश यह कोई बता पाए मुझे
जन्म है मेरा नया यह या मरण?
भटकते-भटकते मरने के करीब स्थिति आ जाती है। और यह भी तो हमें पता नहीं चलता कि मृत्यु मृत्यु है या नए जन्म का सूत्रपात। जीवन का ही पता नहीं चला तो मृत्यु का कैसे पता चलेगा? जीवन से ही चूक गए तो मृत्यु से तो चूकना निश्चित है, सुनिश्चित है। जीवन तो सत्तर साल था तो भी न जाग सके; मृत्यु तो पल में घट जाएगी, कैसे जागेंगे? इसलिए बार-बार तुम जन्मे और बार-बार तुम चूके--जीवन से चूके, मृत्यु से चूके। और जिसकी तुम तलाश कर रहे हो...काश मैं होता न कस्तूरी हिरण, क्यों भटकते रात-दिन मेरे चरण...वह कस्तूरी तुम्हारे भीतर है।
परमात्मा बाहर ही थोड़े है। परमात्मा बाहर-भीतर का जोड़ है। परमात्मा खोजने वाले में उतना ही छिपा है। कैलाश और काबा, गिरनार और जेरुसलम भटकने से कुछ भी न होगा।

क्योंकि जिसे तुम खोज रहे हो, उस चैतन्य की एक किरण तुम्हारे भीतर भी बसी है। वहीं से पकड़ लो।

तो दो उपाय हैं। एक तो खोजी का उपाय है कि वहां से पकड़ो, श्रम करो, प्रयास करो। बहुत संभावना है तुमसे वह हो न सकेगा। कभी-कभार कोई प्रयास से पहुंचता है। सौ में कभी एक कोई प्रयास से पहुंचता है। और प्रयास से वही पहुंचता है जिसमें इतनी कला होती है कि प्रयास तो करता है और अहंकार को निर्मित नहीं होने देता, वही प्रयास से पहुंचता है। वह बड़ी दुर्लभ बात है--कोई महावीर, कोई बुद्ध। खतरा क्या है कि प्रयास के साथ अहंकार आ ही जाता है। इसलिए वही कुशल व्यक्ति प्रयास से पहुंचता है जो प्रयास तो करता है, अहंकार को नहीं आने देता। निरहंकार प्रयास...तो फिर कोई पहुंच जाता है! लेकिन वह तो झंझट हो गई। पहले तो प्रयास ही कठिन है, फिर उसको निरहंकार बनाना कठिन है। वह तो ऐसा हुआ कि जैसे जहर को कोई अमृत बनाने की चेष्टा करे। प्रयास और अहंकार तो ऐसे हैं जैसे नीम-चढ़ा करेला, और कड़वा हो जाता है।

अधिकतम लोग सत्य की अनुभूति में प्रसाद से पहुंचे, क्योंकि प्रसाद में एक सुविधा है। सुविधा यह है कि प्रसाद में अहंकार तो खड़ा हो नहीं सकता। तुम तो करने वाले हो ही नहीं, परमात्मा करने वाला है। इसलिए जो प्रयास का खतरा है यह प्रसाद के मार्ग पर नहीं।

दया प्रसाद के मार्ग की बात कर रही है। तुम प्रभु के हाथों में अपने को छोड़ दो। उसकी मर्जी पूरी हो, तुम उपकरण मात्र हो जाओ।

"तातें तेरे नाम की, महिमा अपरंपार।

जैसे किनका अनल को, सघन बनौ दे जार।।'

--एक छोटी सी चिनगारी गिर जाए मेरे ऊपर प्रभु तो जैसे जंगल जल जाता है ऐसे मैं जल जाऊं और राख हो जाऊं। जिस घड़ी भक्त जल गया और राख हो गया, शून्य हो गया, मिट गया, उसी क्षण भक्त भगवान हो गया। भक्त की मृत्यु भगवान का जन्म है भक्त में। भक्त की मृत्यु भगवान का आगमन है। भक्ति मृत्यु का पाठ है, क्योंकि प्रेम मृत्यु का पाठ है। केवल वे ही व्यक्ति प्रेम को जान पाते हैं जो मरने की क्षमता रखते हैं। और केवल वे ही व्यक्ति भक्ति को जान पाते हैं जो महामृत्यु के लिए तत्पर हैं।

तत्पर बनो, यह हो सकता है। और यह जब तक न हो जाएगा तब तक तुम अनाथ हो और अनाथ ही रहोगे। यह हो सकता है, यह तुम्हारे बहुत करीब है। तुम जरा द्वार-दरवाजे खोलो और प्रभु तुम्हारे भीतर चला आएगा; जैसे सूरज की किरणें चली आती हैं द्वार खोलते ही, और हवा के ताजे झोंके आ जाते हैं द्वार खोलते ही। द्वार बंद किए मत बैठे रहो और डोलो, नाचो, गुनगुनाओ। जीवन के प्रति धन्यवाद प्रकट करो। अगर तुम जीवन के प्रति धन्यवाद कर सको, जो मिला है वह भी काफी है। जो है वह भी बहुत है। उसके प्रति अगर धन्यवाद कर सको तो और-और मिलेगा। तुम्हारा धन्यवाद और-और ले आएगा। जितने तुम कृतज्ञ होने लगोगे उतना ही तुम्हारा पलड़ा भारी होने लगेगा। जितने तुम कृतज्ञ होने लगोगे उतने ही तुम पात्र होने लगोगे, प्रभु का प्रसाद तुम में भरने लगेगा।

लेकिन भक्ति का सारा मार्ग हृदय का मार्ग है। इसलिए यहां वे ही सफल होते हैं जो पागल होने में कुशल हैं। यहां वे ही सफल होते हैं जो दिल खोल कर रो सकते हैं, हंस सकते हैं। यहां वे ही सफल होते हैं जो परमात्मा की शराब पीने में भयभीत नहीं हैं। क्योंकि उस शराब को पीने के बाद तुम तो बेहोश हो जाओगे, तुम्हारा तो कुछ बस न रह जाएगा अपने जीवन पर। फिर वही चलाएगा तो चलोगे, फिर वही उठाएगा तो उठोगे। यद्यपि वह उठाता है और चलाता है और बड़े आनंद से जीवन चलता है और उठता है। अभी तो जीवन दुख ही दुख है, तब आनंद ही आनंद होता है। लेकिन तुम्हारा नियंत्रण न रह जाए अगर। वही भय है।

भक्ति की तरफ जाने में जो एकमात्र बात बाधा बनती है वह इतनी ही है कि तुम भयभीत हो कि मैं अपने नियंत्रण के बाहर हो जाऊंगा, अपना मालिक न रह जाऊंगा।

परमात्मा को मालिक बनाना हो तो तुम अपने मालिक नहीं रह सकते। "साहिब मेरी अरज है...'। उसे साहिब बनाना हो तो तुम्हें अपनी साहबियत छोड़ देनी पड़े। उसे मालिक बनाना हो तो तुम्हें सिंहासन से नीचे उतर आना पड़े। उतरो सिंहासन से! उतरते ही तुम पाओगे वह बैठा ही था; तुम्हारे बैठे होने की वजह से दिखाई नहीं पड़ता था। तुम उतर कर सिंहासन के सामने झुको और तुम पाओगेः उसकी अपरंपार ज्योति, उसकी अनंत ज्योति, उसका प्रसाद तुम्हें सब तरफ से भर गया है।

रामकृष्ण कहते थेः तुम नाहक ही पतवारें खे रहे हो। अरे पाल खोलो! पतवारें रख दो। उसकी हवाएं बह रही हैं। वह तुम्हारी नाव को उस पार ले जाएगा।

भक्ति है पाल खोलना और ज्ञान है पतवार चलाना। पतवार में तो स्वभावतः तुम्हीं को लगना पड़ेगा। पाल भगवान की हवाएं अपने में भर लेते हैं और नाव चल पड़ती है--तुम्हारे बिना किए कुछ चल पड़ती है। समर्पण--और खोल दो पाल! अपना किया अब तक कुछ न हुआ। अब छोड़ो भरोसा अपने पर। अब उसके पैरों से चलो! अब उसकी आंखों से देखो! अब उसके ढंग से जीयो। अब उसके हृदय से धड़को।

ये दया के सूत्र अनूठे हैं, तुम्हारे जीवन में क्रांति ला सकते हैं।

"जैसे किनका अनल को सघन बनौ दे जार'।

अगर इनका एक अंगारा भी तुम्हारे भीतर पड़ गया तो तुम्हारा अंधकार नष्ट हो सकता है।

जब भी मैं अपने को भाया हूं
तेरी ही याद मुझे आई है
जब जब भी दर्पण में
अपना प्रतिबिंब मुझे भला लगा
मेरी रोमांच-भरी आंखों में
तेरा प्रतिबिंब जगा
जब-जब मैं सुख पर ललचाया हूं
तेरी ही याद मुझे आई है।
जब कोई गीत नया जन्मा है अधरों पर

जाने क्यों याद मुझे आया तब तेरा स्वर
जब-जब मैं चांद चुरा लाया हूं
तेरी ही याद मुझे आई है।
साक्षी है तू मेरी सृजन-विकल रातों की
दृढ़ता है तू मेरे रचनारत हाथों की
जब-जब मैं काल जीत आया हूं
तेरी ही याद मुझे आई है।
जब-जब मैं अपने को भाया हूं
तेरी ही याद मुझे आई है।

एक बार तुम अपना अहंकार छोड़ो तो तुम चकित हो जाओगे। तुम अपने को भी दर्पण में देखोगे तो वही दिखाई पड़ेगा। दूसरे की तो बात छोड़ो, और सब में तो दिखाई पड़ेगा ही, तुम दर्पण में अपनी छवि भी देखोगे तो वही दिखाई पड़ेगा। तुम आंख बंद करके अपने भीतर झांकोगे तो भी वही दिखाई पड़ेगा। तुम चलोगे तो तुम्हारी पगध्वनि उसकी ही पगध्वनि हो जाती है। तुम गाओगे तो वही गुनगुनाएगा। तुम नाचोगे तो वही नाचेगा। एक बार अहंकार हट जाए तो उसकी ऊर्जा तुम्हारी ऊर्जा हो जाती है। एक बार अहंकार हट जाए तो उसका जीवन तुम्हारा जीवन है।

आज इतना ही।

दसवां प्रवचन

दिनांक २० मार्च, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

जिज्ञासाएं

भगवान, प्रेम मेंर् ईष्या क्यों है?
मैं कौन हूं और मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है?
प्रभु से सीधे ही क्यों न जुड़ जाएं? गुरु को बीच में क्यों लें?
मैं तीन वर्ष से संन्यास लेना चाहता हूं, लेकिन नहीं ले पा रहा हूं। क्या कारण होगा?
भक्ति क्या एक प्रकार की कल्पना ही नहीं है?
इस प्रवचनमाला का शीर्षक वैराग्य-रूप और जीवन-निषेधक लगता है। प्रेम-पथ पर यह निषेध क्यों है?
आपकी बातों में नशा है, इससे मैं डरता हूं।

मंदिर की सीढ़ियांः प्रेम, प्रार्थना, परमात्मा

पहला प्रश्नः भगवान, प्रेम मेंर् ईष्या क्यों है?

प्रेम मेंर् ईष्या हो तो प्रेम ही नहीं है; फिर प्रेम के नाम से कुछ और ही रोग चल रहा है।र् ईष्या सूचक है प्रेम के अभाव की।

यह तो ऐसा ही हुआ, जैसे दीया जले और अंधेरा हो। दीया जले तो अंधेरा होना नहीं चाहिए। अंधेरे का न हो जाना ही दीए के जलने का प्रमाण है।र् ईष्या का मिट जाना ही प्रेम का प्रमाण है।र् ईष्या अंधेरे जैसी है; प्रेम प्रकाश जैसा है। इसको कसौटी समझना। जब तकर् ईष्या रहे तब तक समझना कि प्रेम प्रेम नहीं। तब तक प्रेम के नाम से कोई और ही खेल चल रहा है; अहंकार कोई नई यात्रा कर रहा है--प्रेम के नाम से दूसरे पर मालकियत करने का मजा, प्रेम के नाम से दूसरे का शोषण, दूसरे व्यक्ति का साधन की भांति उपयोग। और दूसरे व्यक्ति का साधन की भांति उपयोग जगत में सबसे बड़ी अनीति है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा है। प्रत्येक व्यक्ति साध्य है, साधन नहीं। तो भूल कर भी किसी का उपयोग मत करना। किसी के काम आ सको तो ठीक, लेकिन किसी को अपने काम में मत ले आना। इससे बड़ा कोई अपमान नहीं है कि तुम किसी को अपने काम में ले आओ। इसका अर्थ हुआ कि परमात्मा को सेवक बना लिया। सेवक बन सको तो बन जाना, लेकिन सेवक बनाना मत।

असली प्रेम उसी दिन उदय होता है जिस दिन तुम इस सत्य को समझ पाते हो कि सब तरफ परमात्मा विराजमान है। तब सेवा के अतिरिक्त कुछ बचता नहीं।

प्रेम तो सेवा है:र् ईष्या नहीं। प्रेम तो समर्पण है; मालकियत नहीं।

पूछा हैः "प्रेम मेंर् ईष्या क्यों है?'

लेकिन, प्रश्न पूछने वाले की तकलीफ मैं समझ सकता हूं। सौ में निन्यानबे मौके पर जिस प्रेम को हम जानते हैं वहर् ईष्या का ही दूसरा नाम है। हम बड़े कुशल हैं। हम गंदगी को सुगंध छिड़क कर भुला देने में बड़े निपुण हैं। हम घावों के ऊपर फूल रख देने में बड़े सिद्ध हैं। हम झूठ को सच बना देने में बड़े कलाकार हैं। तो होती तोर् ईष्या ही है; उसे हम कहते प्रेम हैं। ऐसे प्रेम के नाम सेर् ईष्या चलती है। होती तो घृणा ही है; कहते हम प्रेम हैं। होता कुछ और ही है।

एक देवी ने और प्रश्न पूछा है। पूछा है कि "मैं सूफी ध्यान नहीं कर पाती और न मैं अपने पति को सूफी ध्यान करने दे रही हूं। क्योंकि सूफी ध्यान में दूसरे व्यक्तियों की आंखों में आंखें डाल कर देखना होता है। वहां स्त्रियां भी हैं। और पति अगर किसी स्त्री की आंख में आंख डाल कर देखे और कुछ से कुछ हो जाए तो मेरा क्या होगा? और वैसे भी पति से मेरी ज्यादा बनती नहीं है।'

जिससे नहीं बनती है उसके साथ भी हम प्रेम बतलाए जाते हैं। जिसको कभी चाहा नहीं है उसके साथ भी हम प्रेम बतलाए चले जाते हैं। प्रेम हमारी कुछ और ही व्यवस्था है--सुरक्षा,

आर्थिक, जीवन की सुविधा। कहीं पति छूट जाए तो घबराहट है। पति को पकड़ कर मकान मिल गया होगा, धन मिल गया होगा--जीवन को एक ढांचा मिल गया है। इसी ढांचे से अगर तुम तृप्त हो तो तुम्हारी मर्जी। इसी ढांचे के कारण तुम परमात्मा को चूक रहे हो, क्योंकि परमात्मा प्रेम से मिलता है। प्रेम के अतिरिक्त परमात्मा के मिलने का और कोई द्वार नहीं है। जो प्रेम से चूका वह परमात्मा से भी चूक जाएगा।

भय और प्रेम साथ-साथ हो कैसे सकते हैं? इतना भय कि पति कहीं किसी स्त्री की आंख में न आंख डाल कर देख ले! तो फिर प्रेम घटा ही नहीं है। फिर तुम्हारी आंख में आंख डाल कर पति ने नहीं देखा और न तुमने पति की आंख में आंख डाल कर देखा है। न तुम्हें पति में परमात्मा दिखाई पड़ा है, न पति को तुममें परमात्मा दिखाई पड़ा है। तो यह जो संबंध है, इसको प्रेम का संबंध कहोगे?

अगर प्रेम घटे तो भय विसर्जित हो जाता है। तब पति सारी दुनिया की स्त्रियों की आंख में आंख डाल कर देखता रहे तो भी कुछ फर्क न पड़ेगा। हर स्त्री की आंख में तुम्हीं को पा लेगा। हर स्त्री की आंख में तुम्हारी ही आंख मिल जाएगी। क्योंकि हर स्त्री तुम्हारी ही प्रतिबिंब हो जाएगी। हर स्त्री को देख कर तुम्हारी ही याद आ जाएगी।

लेकिन प्रेम तो घटता नहीं; किसी तरह सम्हाले हैं अपने को।

मैंने सुना है, एक सत्ताईस मंजिल वाले बड़े मकान में मुल्ला नसरुद्दीन लिफ्ट से ऊपर जा रहा है। लिफ्ट में बड़ी भीड़ थी। और जब दूसरी मंजिल पर मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी ने प्रवेश किया तो भीड़ और भी बढ़ गई। और फिर चौथी मंजिल पर एक अति सुंदर युवती प्रविष्ट हुई तो जगह बिलकुल न बची। युवती मुल्ला और उसकी पत्नी के बीच किसी तरह सिकुड़ कर खड़ी हो गई। लिफ्ट ऊपर उठने लगी, लेकिन मुल्ला की पत्नी अति बेचैन होने लगी। सत्ताईस मंजिल तक पहुंचते-पहुंचते...। और मुल्ला इतना सट कर खड़ा है उस युवती से और युवती भी सट कर खड़ी है और अब कहने का कुछ उपाय भी नहीं है, क्योंकि जगह ही नहीं है। बेचैनी और भी बढ़ने लगी क्योंकि मुल्ला अत्यंत गदगद है। मुल्ला का सुख! मुल्ला तो जैसे स्वर्ग में है! और मुल्ला बार-बार लार टपकती मुख-मुद्रा से युवती को निहार भी लेता है। फिर अचानक युवती ने चीख मारी और मुल्ला के मुंह पर जोर का तमाचा रसीद कर दिया। वह चिल्लाईः "खूसट बुड्ढे! तुम्हारा इतना साहस! च्यूंटी लेने का साहस!'

लिफ्ट में सन्नाटा हो गया। अगली मंजिल पर मुल्ला अपना चेहरा सहलाता हुआ पत्नी के साथ लिफ्ट से उतरा। लिफ्ट के बाहर उसकी बोलती लौटी। वह बोला, "मैं समझा नहीं कि हुआ क्या! मैंने च्यूंटी ली ही न थी।'

"मुझे मालूम है', पत्नी ने अत्यंत प्रसन्नता से गदगद होते हुए कहा, "च्यूंटी मैंने ली थी।'

ऐसे ही तुम्हारे सब प्रेम के संबंध हैं। एक-दूसरे पर पहरा है। एक-दूसरे के साथ दुश्मनी है, प्रेम कहां! प्रेम में पहरा कहां? प्रेम में भरोसा होता है। प्रेम में एक आस्था होती है। प्रेम में एक अपूर्व श्रद्धा होती है। ये तो सब प्रेम के ही फूल हैं--श्रद्धा, भरोसा, विश्वास। प्रेमी अगर विश्वास न कर सके, श्रद्धा न कर सके, भरोसा न कर सके, तो प्रेम में फूल खिले ही

नहीं।र् ईष्या, जलन, वैमनस्य, द्वेष, मत्सर तो घृणा के फूल हैं। तो फूल तो तुम घृणा के लिए हो और सोचते हो प्रेम का पौधा लगाया है। नीम के कड़वे फल लगते हैं तुममें और सोचते हो आम का पौधा लगाया है। इस भ्रांति को तोड़ो।

इसलिए जब मैं तुमसे कहता हूं कि प्रेम परमात्मा तक जाने का मार्ग बन सकता है तो तुम मेरी बात को सुन तो लेते हो, लेकिन भरोसा नहीं आता। क्योंकि तुम प्रेम को भलीभांति जानते हो। उसी प्रेम के कारण तुम्हारा जीवन नरक में पड़ा है। अगर मैं इसी प्रेम की बात कर रहा हूं तो निश्चित ही मैं गलत बात कर रहा हूं। मैं किसी और प्रेम की बात कर रहा हूं--उस प्रेम की, जिसकी तुम तलाश कर रहे हो, लेकिन जो तुम्हें अभी तक मिला नहीं है। मिल सकता है, तुम्हारी संभावना है। और जब तक न मिलेगा तब तक तुम रोओगे, तड़पोगे, परेशान होओगे। जब तक तुम्हारे जीवन का फूल न खिले और जीवन के फूल में प्रेम की सुगंध न उठे, तब तक तुम बेचैन रहोगे। अतृप्त! तब तक तुम कुछ भी करो, तुम्हें राहत न आएगी, चैन न आएगा। खिले बिना आप्तकाम न हो सकोगे।

प्रेम तो फूल है।

प्रेम बड़ी धार्मिक घटना है। प्रेमर् ईष्या से तो उलटा छोर है। प्रेम तो प्रार्थना के करीब है। जब प्रेम लगता है तो उसके आगे का कदम प्रार्थना है। जब प्रार्थना लगती है तो उसके आगे का कदम परमात्मा है। प्रेम, प्रार्थना, परमात्मा--एक ही मंदिर की तीन सीढ़ियां हैं।

अंत वहीं जहां उदगम

दूसरा प्रश्न: मैं कौन हूं और मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है?

मुझसे पूछते हो? भले आदमी, तुम्हें पता नहीं कि तुम कौन हो? और दूसरे से पूछ कर जो उत्तर मिलेगा, क्या किसी काम आएगा? उधार होगा। मैं तुम्हें कोई भी उत्तर दे दूं, तुम्हारा उत्तर न बन सकेगा। तुम्हें अपना उत्तर खोजना होगा। प्रश्न तुम्हारा, उत्तर भी तुम्हारा ही प्रश्न को हल करेगा। मैं तो तुमसे कह दूं, "तत्वमसि श्वेतकेतु'--कि श्वेतकेतु, तुम तो स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो--इससे क्या होगा? मैं तो तुमसे कह दूं, तुम आत्मा हो, शाश्वत, अमृतस्वरूप! इससे क्या होगा? ऐसे उत्तर तो तुमने सुने बहुत। ऐसे उत्तर तो तुम्हें भी कंठस्थ हैं। ऐसे उत्तर तो तुम भी दूसरों को दे देते हो। तुम्हारा बेटा भी तुमसे पूछेगा, तुम उसको भी समझा देते हो कि तू आत्मा है, साक्षीस्वरूप है, सच्चिदानंद है।

दूसरों के उत्तर काम नहीं आते। कम से कम इस संबंध में कि मैं कौन हूं, तुम्हें अपने "मैं' की ही सीढ़ियां उतरनी पड़ेंगी। यह "मैं' का गहरा कुआं है। इस कुएं में तुम उतरोगे तो ही जलस्रोत तक पहुंचोगे। और यह गहरा कुआं है। और यहां तुम्हें अकेला ही जाना होगा। यहां कोई दूसरा तुम्हारे साथ भी नहीं जा सकता। तुम्हारे भीतर कौन जा सकता है तुम्हारे अतिरिक्त? कोई भी नहीं जा सकता! यह यात्रा अकेले की है। यह अकेले की उड़ान अकेले की तरफ है।

इसलिए सारे धर्म कहते हैं: एकांत का रस लो। क्योंकि जब तक एकांत का रस न लिया तब तक अपने में उतरोगे कैसे? क्योंकि वहां तो अकेले जाना होगा। इसलिए सारे धर्म कहते हैं: ध्यान का दीया जलाओ। क्योंकि ध्यान का दीया ही साथ जा सकता है, और कुछ साथ न जाएगा--न धन जाएगा, न पद, न प्रतिष्ठा। ध्यान का दिया और तुम! तो फिर तुम उतर सकते हो तुम्हारे गहरे से गहरे कुएं में। निश्चित यह गहरा कुआं है। तुम्हारी गहराई अनंत है। तुम्हारी उतनी ही गहराई है जितनी परमात्मा की। इसलिए कम तो कैसे होगी, छोटी तो कैसे होगी? ऊपर से झांकोगे तो नीचे का जल तुम्हें दिखाई भी न पड़ेगा--गहराई बहुत बड़ी है! यात्रा लंबी है। स्वयं की यात्रा सबसे लंबी यात्रा है। यह बात बड़ी विरोधाभासी लगती है, क्योंकि हम तो सोचते हैं--"स्वयं यानी यह रहा! आंख बंद की कि पहुंच गए!' काश इतना आसान होगा! आंख बंद करने से जरूर आदमी पहुंचता है। लेकिन आंख बंद करने से आंख बंद कहां होती है! आंख तो बंद हो जाती है, सपने तो बाहर के ही चलते रहते हैं; व्यवसाय बाहर का ही चलता रहता है। आंख बंद हो जाती है, चित्र तो पराए ही उठते रहते हैं--मित्र, प्रियजन, सगे-संबंधी! आंख तो बंद हो जाती है, अकेले तुम कहां होते हो? अकेले तुम हो जाओ तो खुली आंख भी भीतर जा सकते हो। यह भीड़ हटानी पड़े। तुम्हारे सारे शास्त्र, तुम्हारे सारे सिद्धांत, सब हटा कर रख देना पड़ें; क्योंकि इस बोझ को ले कर तुम भीतर न जा सकोगे। यह बोझ तो कठिन हो जाएगा। यह यात्रा तो बड़ी निर्भार ही हो सकती है।

और ध्यान रखना, कोई साथ जाने को नहीं है, न कोई उत्तर। अक्सर तो उत्तर बाधा है। क्योंकि तुमने उधार उत्तर मान लिए हैं, इसलिए तुम भीतर जाते नहीं, खोजते नहीं। तुमने मान ही लिया कि भीतर आत्मा है तो तुम भीतर जाओगे क्यों! ये उधार उत्तर, ये विश्वास तुम्हारे जीवन को अनुभव नहीं बनने देते।

तो मैं तुमसे पहली बात तो यह कहूंगा कि तुम पूछते हो, "मैं कौन हूं', हो तो तुम जरूर, नहीं तो पूछते कैसे? कुछ तो हो जरूर। और कुछ जो भी हो, अ ब स, कुछ भी उसका नाम हो, चैतन्य भी जरूर हो, अन्यथा प्रश्न कैसे उठता? क्योंकि पत्थर नहीं पूछते। चैतन्य हो। तुम्हारे प्रश्न से ये नतीजे निकाल रहा हूं। तुम्हें उत्तर नहीं दे रहा हूं, सिर्फ तुम्हारे प्रश्न को साफ कर रहा हूं, तुम्हारे प्रश्न का विश्लेषण कर रहा हूं। क्योंकि अगर प्रश्न का ठीक-ठीक निदान हो जाए तो उपचार बहुत कठिन नहीं है। निदान बड़ी बात है। निदान ठीक हो जाए बीमारी का तो औषधि खोज लेनी बहुत मुश्किल नहीं है। निदान ही अगर ठीक न हो तो फिर तुम लाख औषधियों का उपयोग करते रहो, लाभ तो होगा नहीं, हानि भला हो जाए। क्योंकि अक्सर जो औषधि तुम्हारे काम की न थी, उसे अगर ले लोगे तो हानि होगी।

यह मैं तुम्हारे प्रश्न का निदान कर रहा हूं, विश्लेषण कर रहा हूं। तुम्हारे प्रश्न की नब्ज को पकड़ रहा हूं।

पहली बात: तुम पत्थर नहीं हो। पत्थर पूछता नहीं। मेरी पत्थरों से भी मुलाकात है। पत्थर कभी नहीं पूछता, मैं कौन हूं। तुम चैतन्य हो, इसलिए प्रश्न उठता है। पौधे भी नहीं पूछते, वृक्ष भी नहीं पूछते। पत्थर से ज्यादा जीवंत हैं, लेकिन अभी भी प्रश्न नहीं उठा है। तो जीवन

भी काफी नहीं है प्रश्न के लिए। तुम जीवन से कुछ ज्यादा हो। पशु-पक्षी भी नहीं पूछते। पौधों से विकसित हैं, उड़ सकते हैं, आ-जा सकते हैं; अगर कोई हमला करे तो रक्षा करते हैं। मौत से डरते हैं, जीवन का कुछ पता नहीं है।

तुम जीवन के संबंध में पूछ रहे हो कि मैं क्या हूं, मैं कौन हूं, मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? तुम पशु-पक्षियों से भी कुछ ज्यादा हो। तुम जीवंत हो, चैतन्य हो और चेतना में विमर्श है, रिफ्लैक्शन की शक्ति है। तुम लौट कर पूछ रहे हो कि मैं कौन हूं।

यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। लेकिन मुझसे मत पूछो। इस प्रश्न को ध्यान बना लो। एकांत में रोज आंख बंद करो, इसी प्रश्न को गुंजाओ अपने भीतर कि मैं कौन हूं। और ध्यान रखना, उत्तर को बीच में आने मत देना। उधार उत्तर बीच में आएंगे, बासे उत्तर बीच में आएंगे, दूसरे से सुने हुए उत्तर बीच में आएंगे। उनको बीच में आने मत देना। क्योंकि जो उत्तर बीच में आ रहे हैं, वह तुम्हारा मन है, तुम नहीं हो; वह तुम्हारी जानकारी है, तुम्हारा बोध नहीं है। अगर जानते ही होते तो पूछते क्यों? जानते नहीं हो, यह तो पक्का है। इसलिए अपनी जानकारी को तो उठा कर रख देना। वह दो कौड़ी की है, उसका कोई मूल्य नहीं है। उससे ज्ञान पैदा नहीं होता। उपनिषद पढ़े, गीता पढ़ी, कुरान पढ़ा, बाइबिल पढ़ी--इससे कुछ हल नहीं हुआ, नहीं तो उत्तर मिल गया होता। तुम पूछना: मैं कौन हूं! और दूसरों के दिए उत्तर--चाहे कृष्ण ने दिए, चाहे मोहम्मद ने, चाहे महावीर ने--हटा देना; चाहे मैंने...हटा देना। तुम अपना प्रश्न ही उतारते जाना। प्रश्न को निखारना। अपने सारे प्राण को प्रश्न पर लगा देना: मैं कौन हूं! कोई उत्तर न आएगा। सन्नाटा छा जाएगा। जैसे-जैसे तुम प्रश्न को पूछोगे गहरे और गहरे, उतना सन्नाटा होता जाएगा। घबराहट भी आने लगेगी कि उत्तर कहीं भी नहीं है। क्योंकि तुम उत्तर की जल्दी में हो। उत्तर इतने जल्दी नहीं मिलता। पहले तो तुम्हारे प्रश्न की तलवार से और सारे उधार उत्तरों से सिर काट डालने होंगे।

झेन फकीर कहते हैं कि अगर ध्यान के मार्ग पर बुद्ध से भी मिलना हो जाए तो उठाकर तलवार दो टुकड़े कर देना। रोज बुद्ध की पूजा करते हैं और रोज अपने शिष्यों को समझाते हैं कि ध्यान के मार्ग पर अगर बुद्ध से मिलना हो जाए तो जरा भी लाज-संकोच मत करना; दो टुकड़े कर देना तलवार उठा कर।

क्योंकि ध्यान के मार्ग पर दूसरे से मुक्त होना अनिवार्य है। तुम "पर' से मुक्त हो सकोगे, तभी तुम्हारी आंखें स्वयं पर पड़ेंगी। नहीं तो आंखें "पर' से उलझी रहती हैं। फिर "पर' कौन है, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता--तुम्हारा भाई, तुम्हारी बहन, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारा पति या बुद्ध या महावीर या कृष्ण। "पर' तो "पर' है।

एक ऐसी घड़ी आएगी इस जिज्ञासा में, जहां प्रश्न ही रह जाएगा मैं कौन हूं, और सन्नाटा होगा। तुम्हारी हड्डी-हड्डी में, मांस-मज्जा में एक ही प्रश्न गूंजने लगेगा: "मैं कौन हूं!' तुम्हारे प्राणों में एक ही तीर चुभने लगेगा--और गहरा, और गहरा: "मैं कौन हूं, मैं कौन हूं!' और घबड़ाहट बढ़ेगी, बेचैनी बढ़ेगी, क्योंकि कहीं कोई उत्तर नहीं दिखाई पड़ता; सागर है चारों तरफ और किनारा कहीं भी नहीं है। वही घड़ी साहस की घड़ी है। अगर तुम उस घड़ी

को पार कर गए तो उत्तर तक पहुंच जाओगे। उत्तर तक कब कोई पहुंचता है--जब ऐसी घड़ी आ जाती है कि कोई उत्तर नहीं बचता; तुम एकदम अज्ञानी हो जाते हो। कोई उत्तर नहीं बचने का अर्थ हुआ, एकदम अज्ञानी हो गए, निर्दोष बालवत हो गए। कुछ भी पता नहीं है। सब पांडित्य गया। सब बुद्धि गई। सब मन गया। सिर्फ प्रश्न बचा अब: "मैं कौन हूं, मैं कौन हूं!' एक धुन बची।

प्रश्न भी शब्द नहीं रह जाएंगे अंत में; सिर्फ एक बोध रह जाएगा कि मैं कौन हूं। ऐसा नहीं कि तुम दोहराओगे मैं कौन हूं। शुरू में दोहराओगे। शुरू में बात ओंठ पर होगी, फिर जीभ पर होगी, फिर कंठ पर होगी, फिर हृदय में उतर जाएगी। फिर तुम्हें दोहराना न होगा। तुम अनुभव करोगे कि मैं कौन हूं। एक प्रश्नवाचक चिह्न तुम्हारे प्राणों में खड़ा हो जाएगा। नहीं कि शब्द रहेंगे; शब्द तो गए और एक ऐसी स्थिति आएगी जब तुम सिर्फ प्यास ही प्यास रहोगे: "कौन हूं! कौन हूं!! कौन हूं!!!' उस प्यास को अगर झेल गए...तो जब सब उत्तर गिर जाते हैं तो अखीर में प्रश्न भी गिर जाता है। जब उत्तर आता ही नहीं कोई तो कब तक प्रश्न को पूछोगे?

खयाल रखना, जल्दबाजी मत करना। अपने से मत गिरा देना, अन्यथा बेकार गई बात। अपने से मत गिरा देना। चेष्टा से मत गिरा देना कि ठीक है कि अब बहुत हो गया, अब बंद करें। वर्ष लग सकते हैं। रोज पूछते चले जाओ। एक घंटा इसे दे दो। किसी दिन अचानक तुम पाओगे सब रुक गया: उत्तर तो गए, प्रश्न भी गया। तुम हो--खालिस तुम! शब्द नहीं बनते, बुद्धि की कोई तरंग नहीं उठती। उसी क्षण तुम पाओगे उत्तर मिल गया। उत्तर कुछ ऐसा थोड़े ही मिलेगा कि लिखा लिखाया कागज पर। उत्तर कुछ ऐसा थोड़े ही मिलेगा कि कोई कहेगा कि बेटा सुनो; कि वत्स, यह रहा उत्तर! उत्तर की तरह उत्तर न मिलेगा--अनुभव की तरह मिलेगा। तुम जान लोगे, एक बिजली कौंध गई। तुमने देख लिया। इसलिए तो हम दर्शन कहते हैं इस घड़ी को। तुमने देख लिया तुम कौन हो। अपने पर आंख पड़ गई। अपने से मुलाकात हो गई। अपने आमने-सामने पड़ गए।

और जिस घड़ी तुमने जान लिया तुम कौन हो, उसी घड़ी तुमने जान लिया कि जीवन का लक्ष्य क्या है। जीवन को जान लिया, जीवन का लक्ष्य जान लिया। स्रोत जान लिया, गंतव्य जान लिया। स्वयं को जान लिया, परमात्मा को जान लिया। क्योंकि तुम उसी की एक किरण हो। एक किरण को भी जान लो तो सारे सूरज का राज समझ में आ गया। सागर की एक बूंद को पहचान लो तो सारे सागरों का राज समझ में आ गया। एक बूंद में सारा सागर समाया है। एक तुम में सारा परमात्मा समाया है।

प्रश्न नहीं अस्तित्व बोध का

उससे तो बचना है

कोई नहीं विकल्प हमें

फिर नया कवच रचना है

हम हैं कौन, कहां से आए

हमको क्या होना है--
इन प्रश्नों का सार खोजना
व्यर्थ समय खोना है
क्योंकि मिलेगा जो भी उत्तर
वह केवल भ्रम होगा
दर्द हीनता और व्यर्थता का
न कभी कम होगा
हम हैं वह ही
जो कि हमें होना है।
समझो--
हम हैं वह ही
जो कि हमें होना है
हमें पराए बोझों को ढोना है।
तितली ने कब पूछा--
"मैंने पंख कहां से पाया?'
कांटे ने कब पूछा--
"मुझमें दंश कहां से आया?'
हम ही क्यों अनबूझ पहेली
आत्मसत्य की बूझें?
हमको ही क्या पड़ा कि
हम दिन-रात स्वयं से जूझें?
हम अभिव्यक्ति नहीं,
केवल माध्यम हैं;
नायक नहीं,
कथा के घटना-क्रम हैं।
ये नरभक्षी प्रश्न हमारी
काया नोच रहे हैं
छीज रहे हैं हम उतने ही
जितना सोच रहे हैं
पंथ कौन सा और कहां जाना है--
दुविधा त्यागो!
पीछे पड़ा हुआ है कोई क्रूर हिंस्र पशु
भागो!
भिन्न प्रक्रियाएं पर परिणति सम है

अंत वहीं है बंधु! जहां उदगम है।

तुम पूछते हो: जीवन का लक्ष्य क्या है?

अंत वहीं है बंधु! जहां उदगम है

हम हैं वह ही जो कि हमें होना है।

ये बातें थोड़ी विरोधाभासी लगती हैं।

हम हैं वही जो कि हमें होना है!

तुम अभी भी वही हो जो कि तुम्हें होना है।

बीज फूल ही है। अभिव्यक्ति का भेद है। अभी द्वार बंद पड़े हैं, कल द्वार खुल जाएंगे। अभी पंखुड़ियां सोई हैं, कल जग जाएंगी। बीज वही है जो उसे होना है।

इसलिए तुम हर किसी बीज से हर कोई फूल पैदा नहीं कर सकते। कमल के पौधे पर कमल का फूल लगेगा और गुलाब के पौधे पर गुलाब का फूल लगेगा। लाख उपाय करो तो भी कमल के पौधे पर गुलाब का फूल न लगेगा। क्योंकि हम हैं वही जो हमें होना है।

तुम्हारा भविष्य तुम्हारे भीतर पड़ा है। तुम्हारी संभावना तुम्हारे बीज में पड़ी है। और अंत वहीं है बंधु जहां उदगम है। हम जहां से आए हैं वहीं पहुंच जाते हैं। यह जीवन का एक परम सत्य है।

देखते हो, गंगा हिमालय से चलती है गंगोत्री से, गिरती सागर में है! तो शायद तुम कहोगे: "कहां पहुंची उदगम पर? चली थी गंगोत्री से, गिर गई गंगासागर में।' नहीं, फिर तुमने पूरी बात नहीं देखी। तुमने पूरा वर्तुल नहीं देखा। गंगा सागर से फिर उठेगी भाप बन कर आकाश में, फिर बादल बनेगी, और फिर बरसेगी हिमालय पर और गंगोत्री में उतरेगी। तब वर्तुल पूरा हुआ। गंगा जब फिर गंगोत्री में उतरेगी तो वर्तुल पूरा हुआ, यात्रा पूरी हुई।

अंत वहीं है बंधु! जहां उदगम है।

इसलिए तो सारे संत कहते हैं कि जब तुम सिद्धावस्था में पहुंचोगे तो फिर छोटे बच्चे की भांति हो जाओगे।

अंत वहीं है बंधु! जहां उदगम है।

जब तुम संतत्व को उपलब्ध होओगे तो सरल हो जाओगे--ऐसे जैसे अज्ञानी तो ज्ञान की चरम अवस्था ठीक अज्ञान जैसी है।

उपनिषद कहते हैं: जो कहे जानता हूं, जानना कि नहीं जानता। जो कहे कि नहीं जानता हूं, जानना कि जान लिया है उसने।

सुकरात ने कहा है: जब मैं जवान था तो सोचता था सब जानता हूं। जैसे-जैसे उम्र बढ़ी वैसे-वैसे पैर डगमगाने लगे और मुझे लगा, सब कहां जानता हूं! थोड़ा-बहुत जान लूं, वही बहुत है। और जब ठीक-ठीक बूढा हो गया तो पता चला कि कुछ भी नहीं जानता हूं। अज्ञानी हूं। अज्ञान का परम बोध ज्ञान की परम घड़ी भी है। क्यों?

अंत वहीं है बंधु! जहां उदगम है।

लेकिन तुम दूसरों के उत्तर मत दोहराना। तुम्हें अपनी गंगोत्री खोजनी पड़ेगी।

छाई क्यों अजब उदासी है
जिंदगी बन गई दासी है
ताजगी नहीं गर खयालों में
जिंदगी तुम्हारी बासी है।
खोलो खिड़की, हो गई सुबह
रोशनी छिटक कर आने दो
दिल मचल रहा है गाने को
कुछ नया तराना गाने दो

तुम क्यों दोहराओ दूसरों की बातों को? तुम क्यों न अपना गीत गाओ? तुम क्यों उधारी से जीओ? क्यों न तुम अपनी निजता को प्रगट करो?

मत पूछो मुझसे कि कौन हो तुम! जाओ अपने भीतर। तुम हो, इतना पक्का है। तुम्हें अगर अपने पर संदेह हो तो भी तुम हो, इतना पक्का है।

पश्चिम के बहुत बड़े विचारक दिकार्त ने कहा है कि संसार में केवल एक बात असंदिग्ध है कि तुम हो। क्यों असंदिग्ध है? तो दिकार्त ने कहा कि संदेह भी अगर तुम करो तो संदेह करने के लिए भी तुम्हारा होना जरूरी है। संदेह कौन करेगा? आत्मा पर संदेह किया ही नहीं जा सकता। कम से कम संदेह करने के लिए तो स्वीकार करना होगा कि मैं हूं, मुझे संदेह है, मुझे भरोसा नहीं आता। लेकिन यह कौन है जिसे भरोसा नहीं आता? यह कौन है जिसे संदेह उठ रहा है?

तो जगत में एक ही सत्य है जो असंदिग्ध है--वह तुम्हारा होना है। इस असंदिग्ध सत्य में थोड़े उतरो। इसकी सीढ़ियों में थोड़े भीतर जाओ।

और "मैं कौन हूं' की जिज्ञासा अदभुत है। अगर कर सको तो तुम अपने कुएं में उतर जाओ। और वहां जो निर्मल, स्फटिक मणि सा निर्मल जल है, उसे पी कर सदा के लिए तृप्त हो सकते हो।

बांस, जो बांसुरी बन गया--गुरु

तीसरा प्रश्नः प्रभु से सीधे ही क्यों न जुड़ जाएं? गुरु को बीच में क्यों लें?

बड़ी कृपा! गुरु पर कृपा! इरादा अच्छा है। ऐसा ही करें। लेकिन यहां किसलिए आ गए? और यह भी पूछने की जरूरत पड़ रही है? तो गुरु की खोज शुरू हो गई। मुझसे पूछते हो? तो उसका अर्थ हुआ कि किसी से पूछने की जरूरत है।

एक युवक मेरे पास आया। उसने कहा कि मैं विवाह करूं या न करूं? मैंने कहाः "फिर तू कर ही ले।' तो उसने कहाः "फिर! फिर का मतलब क्या?' मैंने कहाः "जब पूछता है तो कर ही ले।' तो उसने पूछाः "आपने नहीं किया?' तो मैंने उससे कहाः "मैंने किसी से कभी पूछा ही नहीं।'

पूछते हो, उसका मतलब ही साफ है। इस प्रश्न का उत्तर भी तुम खुद नहीं खोज सकते, तुम परमात्मा को खुद कैसे खोजोगे? इस छोटी सी बात के लिए भी तुम्हें दूसरे पर निर्भर होना

पड़ता है, तो उस विराट यात्रा पर तुम अकेले कैसे जा सकोगे? और यह सच है कि वह यात्रा अकेले की है। जा सको तो बड़ा शुभ। मगर जा न सकोगे। और क्या तुम सोचते हो गुरु तुम्हारे साथ जाता है उस यात्रा पर? कोई नहीं जा सकता किसी के साथ। गुरु भी नहीं जा सकता। फिर गुरु का उपयोग क्या है? गुरु का उपयोग सिर्फ तुम्हें ढाढस बंधाना है; सिर्फ तुम्हें साहस बंधाना है।

मैं छोटा था तो मुझे मेरे गांव में, जो व्यक्ति लोगों को तैरना सिखाते थे, उनके पास ले जाया गया। मैं तैरना सीखना चाहता था। नदी में मुझे बचपन से रस था। छोटा ही रहा होऊंगा--छह या सात साल का। वे जो गांव में तैरना सिखाते थे, बड़े अदभुत व्यक्ति थे। नदी से उनका लगाव भारी था। अब तो वे बूढ़े हो गए हैं अस्सी साल के, मगर इस समय भी वे नदी पर होंगे। वे सुबह चार बजे से ले कर दस बजे तक और फिर शाम पांच बजे से रात नौ बजे तक नदी पर ही...नदी ही उनका सब कुछ है, सार-सर्वस्व। अब उनका रस एक ही है कि कोई भी आ जाए तो उसको तैरना सिखा देना है।

जब मुझे उनके पास ले जाया गया तो मैंने उनसे कहा: "तैरना मुझे सीखना पड़ेगा कि आप सिखाएंगे?' उन्होंने कहा: "यह प्रश्न किसी ने पूछा नहीं। अब तुम पूछते हो तो सच तो यह है कि तैरना कोई किसी को सिखाता नहीं। मैं तो तुम्हें पानी में छोड़ दूंगा। तुम घबराओगे, हाथ-पैर फेंकोगे--वही तैरने की शुरुआत है। मैं किनारे पर खड़ा रहूंगा। इससे तुम्हें हिम्मत रहेगी कि डूब नहीं जाओगे। अगर जरूरत पड़ी तो मैं बचाऊंगा। मगर जरूरत कभी पड़ती नहीं।'

तो मैंने फिर उनसे कहा कि फिर ऐसा करें, आप किनारे पर खड़े रहें, मैं कूद जाता हूं। फिर आप मुझे फेंके पानी में, इसकी भी क्या जरूरत? और अगर जरूरत पड़ती ही नहीं है तो अगर मैं डूबने भी लगूं तो बचाना मत। क्योंकि मैं अपने से ही सीखना चाहूंगा।

वे बैठ गए। मैं पानी में उतर गया। स्वभावतः डुबकियां खा गया। पानी मुंह में चला गया। हाथ-पैर फेंके। लेकिन एक बात साफ थी कि जब वे कहते हैं, तैरना सिखाने में तो कुछ है नहीं, पानी में छोड़ देना पड़ता है, तो हाथ-पैर फेंके। पहले ढंग न था हाथ-पैर फेंकने में, फिर ढंग भी आ गया। एक तीन दिन में तैरना आ गया। और उनके मैंने हाथ का सहारा भी न लिया।

सच तो यह है कि धर्म में उतरना तैरने जैसी बात है। तुम्हें तैरना आता ही है, थोड़ा सा उतरने की बात है जल में। थोड़े हाथ-पैर फेंकोगे। पहले अस्तव्यस्त होंगे, व्यवस्थित न होंगे, घबराहट से भरे होंगे। फिर धीरे-धीरे भरोसा आएगा। क्यों? भरोसा आ ही जाएगा, क्योंकि नदी किसी को डुबाती थोड़े ही है। नदी तो उठाती है।

तुमने देखा नहीं, जिंदा आदमी डूब जाता है और मुर्दा आदमी नदी पर तैरने लगता है। अब यह बड़े मजे की बार है। जिंदा को जरूर कोई कला आता होगी जिसके कारण डूब गया। मुर्दा तैर रहा है और जिंदा डूब गया। तो जिंदा अपने ही कारण डूबा होगा; नदी के कार नहीं डूब सकता, क्योंकि नदी तो मुर्दे तक को नहीं डुबा रही। मुर्दा पानी पर तैर आता है। पानी में

स्वाभाविक उठाव है। पानी बड़ा अदभुत है। उसमें छिपा एक राज है जिसको वैज्ञानिक तलाशते हैं, अभी तक तलाश नहीं पाए। और उस राज में और भी बहुत से राज छिपे हैं। धर्म का सारा राज उसमें छिपा है। इसलिए मैंने तैरने के प्रतीक को ऐसे ही नहीं चुन लिया। ध्यानपूर्वक तरने के प्रतीक की मैं बात कर रहा हूं।

वैज्ञानिकों ने तीन सौ साल पहले खोज की, न्यूटन ने खोज की कि जमीन में गुरुत्वाकर्षण है। कथा तुमने सुनी है कि न्यूटन बैठा था बगीचे में और एक सेव का फल गिरा और उसे विचार आया कि कोई भी चीज गिरती है तो नीचे क्यों गिरती है, ऊपर क्यों नहीं गिरती! ऊपर की तरफ क्यों नहीं गिरती? नीचे की तरफ क्यों गिरती है? पत्थर फेंको, नीचे आ जाता है। हर चीज नीचे गिर जाती है। क्या राज है? सोचा-विचारा, खोजा, तो गुरुत्वाकर्षण, कशिश का सिद्धांत निकाला कि जमीन में आकर्षण है। नीचे की तरफ खींचने वाली एक शक्ति है जो हर चीज को नीचे खींच लेती है।

उसकी बात को बहुत विस्तार मिला। और आज का विज्ञान करीब-करीब न्यूटन की इस खोज पर खड़ा है, इसके बिना खड़ा नहीं हो सकता था। कशिश का सिद्धांत विज्ञान का आधार बन गया। लेकिन यह सिद्धांत अधूरा है। जिंदगी में कोई भी चीज अपने द्वंद्व के बिना नहीं होती।

न्यूटन के जमाने में एक और आदमी था--कवि, चिंतक, मनीषी संत--उसका नाम था रस्किन। उसने एक मजाक में बात कही न्यूटन के खिलाफ, लेकिन किसी ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। उसने कहा कि न्यूटन महाशय, यह तो सच है कि यह सेव का फल वृक्ष से गिरा और नीचे आ गया। लेकिन मैं पूछना चाहता हूं: यह ऊपर कैसे पहुंचा? पहले इसका तो पता लगाओ कि यह ऊपर कैसे पहुंचा!

तुम रोज देखते हो कि वृक्ष ऊपर उठता जाता है। कहीं छिपा था बीज में यह सेव का फल, एक दिन ऊपर खिला वृक्ष पर जा कर। यह पहले ऊपर कैसे पहुंचा, यह तो पता लगा लो; फिर नीचे कैसे आया, यह तो नंबर दो की बात है, यह दोयम है। यह ऊपर कैसे गया? और छोटी घटना नहीं है। लेबनान में सीदार के वृक्ष होते हैं पांच सौ फीट ऊंचे, छह सौ फीट ऊंचे, सात सौ फीट ऊंचे! सात सौ फीट ऊपर की पत्ती पर भी जड़ों से जल पहुंच जाता है। जलधार चढ़ती है। सात सौ फीट ऊपर भी कोई चीज ऊपर चढ़ा रही है।

रस्किन की बात पर किसी ने बहुत ध्यान नहीं दिया, क्योंकि संतों की बात पर कौन बहुत ध्यान देता है! कवियों की बात को तो लोग टाल देते हैं कि कवि है, जाने दो। मगर मैं तुमसे कहता हूं कि न्यूटन से ज्यादा महत्व की बात रस्किन ने कही है और आने वाले भविष्य के विज्ञान को रस्किन से समझौता करना होगा। और काम शुरू हुआ है। एक नए सिद्धांत की चर्चा वैज्ञानिक तबकों में शुरू हुई है जिसको वेलैविटी कहते हैं। ग्रेविटेशन, नीचे खींचने की शक्ति; और लैविटेशन, ऊपर खींचने की शक्ति। और निश्चित ही होनी चाहिए, क्योंकि जीवन हमेशा समतुल होता है। जन्म तो मृत्यु। दिन तो रात। गर्मी तो सर्दी। प्रेम तो घृणा। तुमने भी ऐसी कोई चीज देखी जो अपने विपरीत के बिना हो? ऐसा कुछ भी नहीं है। पुरुष तो स्त्री। बचपन तो बुढापा। ज्ञान तो अज्ञान। साधु तो असाधु। तुमने कभी कोई ऐसी

चीज देखी जीवन में जो अपने से विपरीत के बिना हो? अगर पाजिटिव विद्युत तो निगेटिव विद्युत। दोनों साथ ही होते हैं निगेटिव-पाजिटिव; अलग-अलग कर लो तो नहीं होते; दोनों समाप्त हो जाते हैं। तो ग्रेविटेशन का सिद्धांत अकेला ही एक ऐसा सिद्धांत है जो अकेला होगा? नहीं हो सकता। अपवाद नहीं होते। जरूर कोई सिद्धांत होगा जो चीजों को ऊपर भी खींचता है।

रस्किन ने जो बात कही, उसके कहने के पीछे कारण था, क्योंकि संतों ने सदा से उस सिद्धांत का नाम दिया है। उस सिद्धांत का नाम संतों की भाषा में "प्रसाद' है। ग्रेविटेशन और ग्रेस। कशिश और प्रसाद। जो ऊपर खींचता है वह प्रसाद। जल में वह प्रसाद है कि वह ऊपर उठाता है। तो जल डुबाता ही नहीं।

तैरने की कला में कोई कठिनाई नहीं है; सिर्फ तुम्हें जल पर भरोसा आना चाहिए। दो-चार दिन हाथ-पैर फेंक कर तुम्हें भरोसा आ जाता है कि घबराने की कोई जरूरत नहीं है; जल डुबाता ही नहीं है। तुम्हारा संदेह गया कि तुम तैरने लगे। श्रद्धा आई कि तैरने लगे। श्रद्धा और तैरना एक ही साथ घट जाता है। अब जल से थोड़ी पहचान की भर जरूरत है। जल की इस क्षमता की पहचान की जरूरत है।

तुमने देखा, कुएं में तुम गागर डालते हो! जब पानी भरता है और गागर कुएं में पानी में डूबी होती है तो हाथ पर बिलकुल वजन नहीं मालूम होता। फिर तुम गागर को खींचते हो। जैसे ही गागर पानी के ऊपर आई कि वजन शुरू होता है।

तुमने देखा, पानी में तुम अपने से दुगुने वजन के आदमी को उठा सकते हो, पानी के बाहर नहीं। पानी वजन के विपरीत है। पानी वजन को काटता है। पानी भार-रहितता को पैदा करता है।

तो तैरने में कोई कला नहीं है।

इसलिए तैरने के संबंध में एक बात और खयाल रख लेना कि तैरना एक दफे आ गया तो तुम कुछ भी उपाय करो, भूल नहीं सकते। तुमने और कोई चीज ऐसी देखी जिसको तुम भूल न सको? हर चीज सीखी हुई भूल जाती है। सीखी हुई चीज विस्मृत हो जाती है। लेकिन तैरना भूलता नहीं। तो इसका अर्थ इतना ही हुआ कि तैरना सीखना नहीं है; जीवन का एक सत्य है। एक दफा पहचान हो गई तो हो गई; अब भूलोगे कैसे? यह कोई ऐसी-वैसी बात थोड़े ही है कि स्मृति से उतर गई, कि तैरना आता था और गए नदी में और भूल गए और चिल्लाने लगे कि भाई मैं भूल गया हूं कि तैरना कैसा होता है। ऐसा तो संभव नहीं है।

इसलिए परमात्मा का स्मरण एक बार आ जाए तो फिर नहीं भूलता। और एक बार ध्यान लग जाए तो फिर नहीं भूलता। और एक बार प्रेम का चस्का लग जाए तो फिर नहीं भूलता। और एक दफा प्रार्थना की किरण उतर जाए तो फिर नहीं भूलती। भूल ही नहीं सकती, क्योंकि परमात्मा कोई सिखावन थोड़े ही है--हमारा स्वभाव है।

जल में तैरते समय तुम्हारा स्वभाव और जल का स्वभाव जब मेल खा जाता है, तो तैराक बिना हाथ-पैर हिलाए जल पर पड़ा रह जाता है, जल उसे उठाे रखता है। हाथ-पैर भी हिलाने की जरूरत नहीं रह जाती। तालमेल बैठ गया, संगीत सध गया।

ठीक ऐसी ही घटना गुरु के साथ घटती है परमात्मा में प्रवेश करते समय। गुरु कुछ करता नहीं। गुरु की मौजूदगी कैटेलिटिक एजेंट है। उसकी मौजूदगी से तुम्हें हिम्मत रहती है। अगर तुममें हिम्मत काफी हो तो गुरु की कोई भी जरूरत नहीं है। गुरु के बिना भी लोगों ने परमात्मा को जाना है। बहुत थोड़े लोगों ने जाना है, लेकिन गुरु के बिना भी जाना है। इसलिए तुम घबराना मत। अगर गुरु के बिना जानना हो तो गुरु के बिना भी जानना हो सकते है।

लेकिन खयाल रखना, कहीं यह सिर्फ अहंकार ही न हो जो कह रहा है, गुरु के बिना जानेंगे। अगर यह अहंकार है तो फिर न जान पाओगे। तुम फिर बुरी तरह डूबोगे। बुरी डुबकी खाओगे। तो खोजबीन कर लेना अपने भीतर।

इसको ऐसा समझो। गुरु तुम्हारे लिए थोड़े ही कुछ करता है, सिर्फ तुम्हारे अहंकार को उतार लेता है, तुम्हारे अहंकार को काट देता है। तुम तो जैसे हो, एकदम सुंदर, एकदम भले, एकदम सत्य, एकदम शुभ, शिवं! सिर्फ तुम्हारा अहंकार जो तुम्हारे ऊपर बैठा है, उसको खींच लेता है। और अहंकार कुछ है नहीं; सिर्फ भ्रांति है, सिर्फ एक धारणा है। तो गुरु के सत्संग में वह धारणा गिर जाती है, भ्रांति उतर जाती है। भ्रांति उतर जाए, बस तुम सर्वांग सुंदर हो। अगर तुमसे हो सके तो जरूर कर लेना, कोई अड़चन नहीं है।

और मैं जानता हूं कि यह प्रश्न एकदम व्यर्थ भी नहीं है। गुरुओं के नाम से जो चलता है, उससे कोई भी सोच-विचार-शील व्यक्ति परेशान हो जाता है--जो पाखंड चलता है, जो धोखाधड़ी चलती है, जो झूठ चलता है। गुरु के नाम से जिस-जिस तरह के लोग दावेदार बन जाते हैं उससे स्वभावतः ऐसा प्रश्न उठ सकता है।

सबके सब मरीज
मरीज तो मरीज
डाक्टर भी
इसलिए मदद नहीं कर सकते
एक-दूसरे की
लाचार
सबके सब बीमार
कोई आंख से, कोई कान से,
कोई तन से, कोई मन से
इतना बड़ा अस्पताल
कोई नहीं तीमारदार
सबके सब बीमार।

तो कभी-कभी ऐसा लगता है कि यहां तो जिनको तुम गुरु कह रहे हो वे भी उसी नाव में सवार हैं जिसमें तुम सवार हो। कुछ फर्क नहीं है। न उन्हें मिला है, तो तुम्हें कैसे मिला देंगे? न उनकी आंखों में झलक है परमात्मा, न उनके जीवन में शांति है परमात्मा की, न उनके प्राणों से सुगंध उठती है, न उनके वक्तव्यों की प्रामाणिकता है कोई। उनका गीत बासा है, किसी और का गाया हुआ है। अपना गीत खुद भी अभी गाया नहीं है, तो तुम्हारे भीतर सोए गीत को कैसे जगा देंगे?

गुरु का अर्थ होता है, ऐसे व्यक्ति को खोज लेना जिसका स्वयं का जीवन-फूल खिला हो। कठिन है, दुर्लभ है। गुरु को पा लेना इतना आसान नहीं है। तुम तो गुरु से बचना चाह रहे हो, मैं तुमसे यह कहता हूं कि तुम अगर पाना भी चाहो तो इतना आसान नहीं। फिर, गुरु मिल भी जाए तो तुम यह मत सोच लेना कि तुम्हें अंगीकार कर ही लेगा। क्योंकि तुम जैसा गुरु खोजते हो वैसा गुरु शिष्य खोजता है।

शिष्य का अर्थ होता है: सीखने की विनम्रता; सीखने के लिए समर्पण; सीखने के लिए झुकने की क्षमता। तो तुम अकड़ कर अगर खड़े रहे तो तुम गुरु को खोज भी लो तो भी गुरु तुम्हें स्वीकार न कर पाएगा। नहीं कि गुरु स्वीकार नहीं करना चाहता; करना चाहता है, लेकिन कोई उपाय नहीं है। तुम अकड़े खड़े हो, तुम्हें बदला नहीं जा सकता। तुम्हारे सहयोग के बिना तुम्हें बदला नहीं जा सकता।

और फिर, गुरु का अर्थ क्या होता है? गुरु का इतना ही अर्थ होता है कि परमात्मा तो अदृश्य है, उसकी तो हम पहचान भी जुटाएं भी तो कहां से जुटाएं, कहीं उसकी झलक भी पड़ती हो थोड़ी-बहुत तो भरोसा आ जाए। आकाश का चांद तो बहुत दूर है।

तुमने देखा नहीं, कभी छोटे बच्चे रोने लगते हैं कि चांद पाना है, तो मां क्या करती है! एक थाली में जल भर कर रख देती है। आकाश का चांद थाली के चांद में प्रतिबिंबित होने लगता है। बच्चा प्रफुल्लित हो जाता है। कि मिल गया चांद, अपनी थाली में आ गया!

गुरु ऐसा ही है जैसे थाली में चांद। चांद तो बहुत दूर है। शायद हमारी आंखें उतनी ऊपर उठने में अभी समर्थ भी नहीं हैं। शायद सत्य का सीधा-सीधा साक्षात्कार हम कर भी न पाएंगे। शायद सत्य इतना विराट होगा, इतनी चकाचौंध से भरा होगा...। देखा नहीं, दया बार-बार कहती है कि हजार-हजार सूरज उग गए, ऐसी चकाचौंध है! अगर तुम तैयार नहीं तो तुम घबरा जाओगे। परमात्मा विराट है; तुम्हारे छोटे से आंगन में समा न सकेगा। अगर तुमने दीवालें नहीं तोड़ दी हैं पहले से तो तुम बिलकुल डांवाडोल हो जाओगे, भूकंप आ जाएगा, भूचाल आ जाएगा।

गुरु, जो असीम है, उसको सीमा में झलकाता है। गुरु तुम जैसा है और तुम जैसा नहीं भी। इसलिए गुरु का हाथ पकड़ने की सुविधा है; परमात्मा का तो हाथ तुम पकड़ न सकोगे। क्योंकि उसका कोई हाथ नहीं है। तुम टटोलते रहोगे, उसका हाथ तुम्हारी पकड़ में न आएगा। परमात्मा तो निराकार है। परमात्मा तो निर्गुण है। गुरु साकार है। गुरु सगुण है।

बांस का मैं तो टुकड़ा क्षुद्र

मुझे अपनी पूरी पहचान
तुम्हारे अधरों का पा स्पर्श
उठा है फूट कंठ से गाना
तुम्हारा ही तो वह श्वास
कि जो मुझमें भरता है राग
तुम्हारा ही गाता मैं गीत
गुंजाता और तुम्हारी तान।

गुरु तो क्या है--बांस का एक टुकड़ा है! एक ऐसा टुकड़ा जो बांसुरी बनने को तैयार हो गया है। एक ऐसा टुकड़ा जो परमात्मा के स्वर को गुंजाने को तत्पर हो गया है।

बांस का मैं तो टुकड़ा क्षुद्र
मुझे अपनी पूरी पहचान
तुम्हारे अधरों का पा स्पर्श
उठा है फूट कंठ से गान
तुम्हारा ही तो वह श्वास
कि जो मुझमें भरता है राग
तुम्हारा ही गाता मैं गीत
गुंजाता और तुम्हारी गान।

तो गुरु के पास परमात्मा को सीखने की बारहखड़ी मिलेगी। गुरु का अर्थ इतना ही है: मानवीय भाषा में, मनुष्य की सीमा में, परमात्मा की थोड़ी सी झलक।

गुरु द्वार है। तुम बिना द्वार के भी जा सकते हो, कोई अड़चन नहीं है। तुम्हारी मर्जी। कोई मेहमान की तरह आता है, कोई चोर की तरह भी आ सकता है। मेहमान तो आता है घर के मुख्य द्वार से, मेजबान द्वार पर खड़ा हुआ स्वागत करता है कि आइए, पधारिए। फिर कोई चोर भी है, वह रात के अंधेरे में सेंध लगा कर घुस जाता है। परमात्मा के जगत में चोर भी पहुंच जाते हैं, ऐसा भी कुछ नहीं है। और उसकी चोरी करने में कुछ हर्जा भी नहीं है। उसकी चोरी न करेंगे तो किसकी करेंगे! वह खुद भी चोर है। इसलिए तो हिंदुओं ने उसको एक नाम दिया है: हरि। हरि का अर्थ होता है जो हर ले, चुरा ले, चोर। वह खुद भी चोर है; वह लोगों के हृदय चुराता रहता है। तो तुमने अगर उसके साथ चोरी की और जेब काट लिया, कुछ हर्जा नहीं है। तो तुम्हारी मौज, अगर सेंध लगा कर जाना हो, ऐसे चले जाना। खिड़की कूद कर जाना हो, ऐसे चले जाना। बागुड़ छलांग लगाकर जाना हो, ऐसे चले जाना। तुम्हारी मौज। मगर मुख्य द्वार से भी जा सकते हो। गुरु मुख्य द्वार है। सीधे भी जा सकते हो। सुगम मार्ग से भी जा सकते हो।

फिर एक बात खयाल रखना--

दानी समुंदर ने मुझे प्यासा स्वयं लौटा दिया
फिर इस कृपण संसार में मिलता कहां पानी मुझे

सागर कृपण होता नहीं, मैंने यही सोचा किया
जितना जहां भी नीर है सब है समुंदर का दिया
लेकिन समुंदर से मुझे इतनी मिली अवहेलना
पानी नदी से मांगते आई परेशानी मुझे।
मैंने सुना था व्योम से, प्यारा बड़ा संसार है
सौ-सौ जनम के घाव का मरहम यहां का प्यार है
लेकिन जगत के प्यार ने कुछ इस कदर सदमा दिया
अच्छी नहीं लगती यहां कोई मेहरबानी मुझे।

मैं जानता हूं, तुम्हारी तकलीफ क्या है! तुमने जीवन में बहुत संबंध बनाए और सब जगह धोखा खाया। तो डरते हो कि अब यह गुरु का संबंध बनाना कि नहीं!

लेकिन जगत के प्यार ने कुछ इस कदर सदमा दिया
अच्छी नहीं लगती यहां कोई मेहरबानी मुझे।

अब तुम डर गए हो। और गुरु के साथ तो और कोई नाता नहीं हो सकता; उसकी मेहरबानी का ही, उसकी कृपा का ही। और यहां तुमने बहुत कृपाएं देखीं और सब जगह धोखा खाया। यहां तुमने बहुत दरवाजे टटोले और सब जगह दीवाल पाई। और यहां तुमने बहुत प्यार चखे और जहर पाया और नरक निर्मित हुआ। अब तुम गुरु के प्रेम से भी थोड़े डरते हो।

अच्छी नहीं लगती यहां कोई मेहरबानी मुझे।

अगर तुम समुंदर जाओ, समुंदर तो इतना विराट है, लेकिन उसका पानी पी सकोगे? वह तो पानी पिया न जा सकेगा।

दानी समुंदर ने मुझे प्यासा स्वयं लौटा दिया
फिर इस कृपण संसार में मिलता कहां पानी मुझे।

फिर मैं सोचने लगा कि जब समुंदर तक ने लौटा दिया खाली हाथ और पानी मुझे पीने को न मिला तो अब पानी मुझे मिलेगा कहां!

सागर कृपण होता नहीं, मैंने यही सोचा किया
जितना जहां भी नीर है, सब है समुंदर का दिया
लेकिन समुंदर से मुझे इतनी मिली अवहेलना
पानी नदी से मांगते आई परेशानी मुझे।

लेकिन ध्यान रखना, नदी का पानी ही पिया जा सकता है; हालांकि नदी में समुंदर का ही पानी है, मगर पिया नदी का ही पानी जा सकता है।

परमात्मा समुंदर जैसा है, गुरु नदी जैसा है। गुरु छोटा सरोवर है। गुरु को जो भी मिला है, परमात्मा से मिला है। लेकिन तुम परमात्मा को सीधा न पी सकोगे। समुंदर को कौन सीधा पी सकता है! तुम्हारे पीने योग्य पानी बन जाता है गुरु के भीतर से जब परमात्मा आता है। गुरु तो एक कीमिया है। तुम मिट्टी तो नहीं खा सकते, कि खा सकते हो? छोटे बच्चे को छोड़ कर और कोई चेष्टा करता नहीं। मिट्टी तुम नहीं खा सकते। लेकिन तुम जो भी खाते

हो, सब मिट्टी से बनता है। गेहूं खाते, चावल खाते, अंगूर, सेव, नाशपाती, कुछ भी खाओ, सब मिट्टी से बनती है। लेकिन मिट्टी तुम सीधी नहीं खा सकते। वृक्ष कुछ बड़ा काम कर देता है--मिट्टी को ऐसा रूपांतरित कर देता है कि तुम्हारे पचाने योग्य हो जाती है, वृक्ष बीच का रास्ता है। वृक्ष मिट्टी को तुम्हारे पेट के योग्य बना देता है। ऐसा गुरु है। परमात्मा को तुम सीधे न पचा पाओगे--गुरु के माध्यम से पचने योग्य हो जाता है। लेकिन तुमने अगर तय किया हो कि बिना गुरु के जाना है तो मजे से जाओ। जाओगे कहां? किस दिशा में जाओगे? किसको खोजोगे? जिसको भी खोजने तुम जाओगे, वह किसी न किसी गुरु का कहा हुआ है। ईश्वर को खोजोगे? तो तुमने मान ली किसी गुरु की बात। उपनिषद की मान ली, वेद की मान ली कुरान की मान ली। आत्मा को खोजोगे? मान ली किसी गुरु की बात। महावीर की मान ली कि कृष्ण की मान ली। मोक्ष खोजोगे, निर्वाण खोजोगे? मान ली किसी गुरु की बात। क्या खोजोगे? तुम जो भी खोजोगे, किसी गुरु की बात मान ली। और अगर माननी ही हो किसी गुरु की बात तो किसी जिंदा गुरु की मानना। क्योंकि मुर्दे गुरु पूजने के लिए अच्छे हैं, और ज्यादा काम नहीं आ सकते।

लोग होशियार हैं; वे पूजना ही चाहते हैं, रूपांतरण नहीं चाहते। तो फिर ठीक है। तो तुम मुर्दा गुरु को खोज लेना। जरा गुरु की आंख से तुम अगर झांको तो सत्य की तुम्हें सीधी परख होनी शुरू होगी। जिंदा गुरु के हृदय में अगर तुम थोड़े धड़को--और यही तो सत्संग का अर्थ है कि गुरु के पास बैठ गए; उसके राग में राग मिलाया; उसकी तरंग में तरंग डुबाई; उसके हृदय के साथ थोड़े धड़के; थोड़े उसके साथ चले, उसकी रौ में बहे, उसकी धारा में डुबकी लगाई।

गुरु का क्या अर्थ है? इतना ही कि कोई दूरबीन उपलब्ध है।

तुम जरा मेरी आंखों के करीब आओ। तुम थोड़ा मेरी आंखों से देखो। उस देखने से तुम्हें खयाल आएगा कि तुम्हारी आंखें कैसी होनी चाहिए। तुम जरा मेरे उत्सव में सम्मिलित हो जाओ तो तुम्हें खयाल आएगा कि तुम्हारा जीवन कैसा उत्सव होना चाहिए। गुरु बनाने का क्या और अर्थ होता है?

संन्यास--एक तलाश अमर संपदा की

चौथा प्रश्नः मैं तीन वर्ष से संन्यास लेना चाहता हूं, लेकिन नहीं ले पा रहा हूं। क्या कारण हो सकता है?

एक छोटा लतीफा--

एक युवक, बड़ा शरमीला, अपनी प्रेयसी को लिए चांदनी रात में बैठा है। शरद-पूर्णिमा होगी। एकांत है। वृक्ष के तले दोनों बैठे हैं। शरमीला युवक है, लाज-संकोच से भरा। सन्नाटा भारी होने लगा है, कुछ बोलता नहीं। आखिर बड़ी हिम्मत जुटा कर लड़खड़ाते-लड़खड़ाते कहाः "क्यों मैं...क्या मैं...क्या मैं तुम्हें चूम सकता हूं?' युवती ने उसकी तरफ आंखें उठा कर देखा। निमंत्रण था उन आंखों में, धन्यवाद था उन आंखों में। लेकिन युवक तो अपनी आंखें जमीन पर गड़ाए था। फिर सन्नाटा का सन्नाटा हो गया। अब चुप्पी और भी भारी हो

गई। आधा घड़ी बाद उसने फिर पूछाः "क्या मैं...क्या मैं...क्या मैं तुम्हें चूम सकता हूं?' युवती फिर उसकी तरफ आंखें उठा कर देखी, लेकिन अब वह आकाश के चांदत्तारों को देख रहा था--बचने के लिए! फिर सन्नाटा हो गया। आखिर आधा घड़ी बाद, अब तो बहुत बोझिल होने लगी बात, उस युवक ने कहाः "क्या तुम अचानक बहरी हो गई हो? या गूंगी हो गई हो?' युवती ने कहाः "नहीं, न बहरी न गूंगी; लेकिन तुम्हें क्या लकवा मार गया है?'

इतना ही मैं तुम्हें कह सकता हूं। "तीन साल से संन्यास लेना चाहता हूं'--तुम्हें क्या लकवा मार गया है? अब किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो? और नाम है तुम्हारा गोवर्धनदास। ऐसा अच्छा नाम! इसको गोबरदास करके रहोगे? तीन साल! सोचते ही रहोगे, विचारते ही रहोगे? जिंदगी निकल जाएगी हाथ से। नाम तो बड़ा प्यारा हैः गोवर्धनदास! हिम्मत करो; नहीं तो मरते वक्त, मैं तुमसे फिर कहता हूं, गोबरदास रह जाओगे।

अब तुम मुझसे पूछ रहे हो कि मैं तीन वर्ष से संन्यास लेना चाहता हूं, लेकिन नहीं ले पा रहा हूं, क्या कारण हो सकता है! कारण कुछ भी नहीं है। साहस की कमी होगी। हिम्मत की कमी होगी।

संन्यास का अर्थ होता हैः हिम्मत, साहस। यह तो पागल होने की बात है। वह दया कहती है न बार-बार कि कभी हंसता, कभी रोता कभी गाता--ऐसा होता भक्त! कहीं पैर पड़ता, कहीं पड़ जाता--ऐसा होता भक्त। बड़ी अटपटी बात!

संन्यास तो एक और ढंग की जीवन-शैली है। एक तो संसार है--एक जीवन-शैली। दुकान-दफ्तर, पत्नी-बच्चे, धन, पद-प्रतिष्ठा--संसार की शैली है। इस संसार की शैली में संन्यास की किरण को लाने का अर्थ है कि तुमने इसके आधार बदलने शुरू किए। अब धन से ज्यादा मूल्यवान ध्यान हो गया। अब पत्नी और पति से ज्यादा मूल्यवान परमात्मा हो गया। अब पद-प्रतिष्ठा से ज्यादा मूल्यवान मोक्ष हो गया, मुक्ति हो गई। अब तुम्हारे सारे जीवन की आधारशिला बदली। सब अस्तव्यस्त हो जाएगा, अराजकता फैल जाएगी। फिर से सब नया जमाना होगा।

तो संन्यास कोई छोटी घटना नहीं है; बड़ी घटना है। इसलिए डर लगता है। तो सोचते हो, जैसा चल रहा है चलाए चले जाओ। चलाए जाओ। मौत आएगी और सब छीन लेगी।

संन्यास का अर्थ हैः कुछ ऐसी कमाई कर लो कि मौत न छीन सके। संन्यास का अर्थ हैः मौत को ध्यान में रख कर कुछ कमाओ। संसार का अर्थ हैः मौत को भूल जाओ और कमा लो। मौत तो छीन लेगी, तुम्हारा कमाया न कमाया सब बराबर हो जाएगा। कमाया कि गंवाया, सब बराबर हो जाएगा। मौत तुम्हारी दीवाली और दिवाले को बराबर कर जाएगी। कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

मौत को ध्यान में रख कर जो व्यक्ति जीवन को जीता है, वह संन्यासी है। और मौत को ऐसा किनारे रख कर मौत को भूल कर जो जीता है, वह संसारी है। अब मौत को सामने रख कर जीना कठिन काम है। यह बात ही सोचना मन को बहुत घबराती है कि मुझे मरना

होगा। मुझे और मरना होगा! मन कहता है: "और सब मरते हैं, मैं थोड़े ही मरने वाला हूं! यह सब औरों को घटती है बात, मैं तो कोई तरकीब निकाल लूंगा और बचा रहूंगा।' मौत को बाद दे देने का नाम है संसार। और मौत को ध्यान में रख कर, मौत को साक्षात्कार में ले कर जीवन की विधि को बना लेना संन्यास है। मौत को बीच में लेते ही सारे मूल्य बदल जाते हैं।

ऐसा हुआ कि एक युवक एकनाथ के पास मिलने आता था और एक प्रश्न बार-बार पूछता था कि आप इतने शांत, इतने आनंदित, इतने मगन सदा बने रहते हैं। यह कैसे होता होगा? एकनाथ सुनते और चुप रह जाते। एक दिन युवक आया, फिर उसने वही पूछा कि मुझे भरोसा नहीं आता। मैं कभी-कभी घर में सोचने लगता हूं कि हो सकता है, जब सबके सामने रहते हैं तो बड़े मुस्कुराते रहते हैं और एकांत में न मुस्कुराते हों। रात जब सोते हों तो हमारे ही जैसे हो जाते हों। दिखावा ही हो, क्या पता! क्योंकि यह हो कैसे सकता है, मुझे नहीं हो रहा, किसी और को नहीं हो रहा, तो यह आनंद की वर्षा तुम्हें कैसे हो रही है! और तुम्हारे पास कुछ दिखाई भी नहीं पड़त जिसके कारण आनंद हो सकता है--न धन है, न पद है, न प्रतिष्ठा है, न यश है। क्या है तुम्हारे पास--नंगे फकीर हो! यह लंगोटी पर इतने प्रसन्न हो रहे हो!

तो उस दिन एकनाथ ने देखा कि शायद ठीक क्षण आ गया। उन्होंने युवक से कहा कि तेरा हाथ देखूं जरा। हाथ हाथ में ले लिया, उदास हो गए। युवक घबरा गया। उसने कहा कि क्यों आप उदास हो गए; बात क्या है? हाथ में क्या देखा? एकनाथ ने कहा: "देखा कि तेरी उम्र की रेखा कट गई है। सात दिन और प्यारे! बस सात दिन से ज्यादा अब नहीं है उम्र। सात दिन बाद जैसे ही रविवार का सांझ का सूरज डूबेगा, तुम भी डूबे।'

वह तो युवक उठ कर खड़ा हो गया; एकनाथ ने कहा: "अरे, जाते कहां? अभी तो तेरे प्रश्न का उत्तर देना है, तू जो सदा से पूछता रहा है।'

उस युवक ने कहा: "भाड़ में जाने दो प्रश्न और प्रश्न का उत्तर। जय राम जी! अब यह कोई वक्त है तत्व-चर्चा का?'

पसीना-पसीना हो गया युवक। अभी आया था, सीढ़ियां अभी-अभी चढ़ा था। तब एक शान थी, पैरों में एक बल था। अब जब उतरा तो दीवाल का सहारा ले कर उतरने लगा सीढ़ियां। बूढ़ा हो गया। क्योंकि जब मौत का स्मरण आ गया तो सब बात डांवाडोल हो गई। सब योजनाएं बना रखी थीं--क्या करना, क्या नहीं करना! वे सब गईं। यह तो सब जैसे ताश का महल बनाया था और हवा का झोंका आया और गिर गया।

घर गया, बिस्तर से लग गया। पत्नी को बताया, पत्नी रोने लगी। बच्चे रोने लगे। मोहल्ले-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए और सारे गांव में खबर फैल गई। और एकनाथ कहें तो ठीक ही कहा होगा। अब एकनाथ, तो झूठ तो बोलेंगे नहीं। मौत निश्चित है।

वह तो तीसरे-चौथे दिन तो आधा मर ही गया। वह तो बिस्तर पर लगा पड़ा रहे। ताकत ही न रही। भोजन में रस न रहा। कोई भोजन का कहे तो वह कहे क्या सार! जिनसे दुश्मनी थी

उनसे क्षमा मांग आया। जिनसे मुकदमे चल रहे थे, उनसे कहा कि भाई, माफ करना, भूल-चूक हो गई। सारे झगड़े-झांसे सब खतम हो गए। मौत आ गई, अब क्या झगड़ा-झांसा, अब किससे...! ये तो सब जीवन के राग-रंग हैं। कौन अपना कौन पराया! पत्नी भी पास बैठी रहती तो वह ऐसे ही देखता है जैसे कोई बैठा है। अपना बेटा भी पास आता तो वह ऐसे ही देखता जैसे कि कोई आया। गए अपने-पराए। टूट गए सब संबंध। जब मौत आ गई तो सब बिखर गया। एक ही बात अब तो बेचैन करने लगी कि यह सातवां दिन आया जा रहा, अब मौत आई जा रही, अब क्या करना क्या नहीं करना! सातवें दिन तो वह बिलकुल खाट से लग गया, उसकी आवाज न निकले, आंखें गड्ढों में समा गईं। बस बार-बार इतना ही पूछे कि और सूरज कितना डूबने को शेष है?

और जब सूरज बिलकुल डूबने को शेष था, तब एकनाथ उसके दरवाजे पर पहुंच गए। पत्नी रोने लगी, पैरों में गिर पड़ी। बच्चे रोने लगे। एकनाथ ने कहा: "मत घबराओ, कोई घबराने की बात नहीं। मुझे अंदर तो ले चलो।' वे अंदर गए। उससे पूछा कि मेरे भाई, सात दिन में कोई पाप किया?

उसने बड़ी मुश्किल से आंख खोली। उसने कहा: "पाप! होश में हो आप? इधर मौत खड़ी है सामने, जगह कहां है पाप करने की?'

तो एकनाथ ने कहा: "तेरी अभी मौत आई नहीं, यह तो मेरे प्रश्न का उत्तर दिया है। ऐसे ही मौत मुझसे भी सट कर खड़ी है, आंख के सामने खड़ी है। फुर्सत कहां है पाप करने की! और जब पाप नहीं तो दुख नहीं। जब पाप नहीं तो चिंता नहीं। जब पाप नहीं तो बेचैनी नहीं। जब पाप नहीं तो अपने-आप पुण्य की सुगंध उठने लगती है। उठ, मौत तेरी अभी आई नहीं।'

वह तो झट से उठ कर बैठ गया। जल्दी से आंखें बदल गईं उसकी। बेटे की पीठ पर हाथ फेरने लगा और बोला कि अच्छी झंझट में डाला। मैं तो उनसे भी क्षमा मांग आया जिनसे झगड़ा चल रहा था। अब देखता हूं...कल देखता हूं! मैं तो मुकदमे तक उठा लेने का कह आया था कि "बात खतम हो गई; अब ले लेना जमीन, जितनी तुम्हें लेनी हो; कब्जा कर लेना, कब्जा खेल पर करना हो। अब क्या सार है!' यह खूब झंझट में आपने डाल दिया। यह भी कोई ढंग है उत्तर देने का? मेरा सीधा-सादा प्रश्न और सबको सात दिन रुलाया और मैं तो मरा ही मरा हुआ जा रहा था।

और दूसरे दिन से वह आदमी फिर वैसा ही हो गया।

मौत तुम्हारे जीवन में उतर आए तो संन्यास। मौत को तुम अंगीकार कर लो तो संन्यास।

तो हिम्मत न होगी। मगर हिम्मत करो। मौत को तुम स्वीकार करो न स्वीकार करो, मौत तो आएगी। मौत आने वाली है। सात दिन बाद कि सात वर्ष बाद कि सत्तर साल बाद, क्या फर्क पड़ता है! मौत आने वाली है, एक बात सुनिश्चित है। मौत के अतिरिक्त और कुछ निश्चित नहीं है। अगर मौत दिखती हो तो हिम्मत करो।

तो संन्यास एक ऐसी संपदा की तलाश है जिसे मौत नहीं छीन पाती।

जीवन अर्थपूर्ण है हृदय से

पांचवां प्रश्न: भक्ति क्या एक प्रकार की कल्पना ही नहीं है? क्या यह भी एक प्रकार का स्वप्न देखना नहीं है?

बुद्धि से सोचो तो ऐसा ही लगेगा कि यह तो एक सपना है। अब यह भी क्या बात, दया बात कर रही है कृष्ण से! न केवल बात करती है, झगड़ा-झंझट ही खड़ा करती है। मनाती बुझाती है, रूठ भी जाती है।

तो बुद्धि से सोचोगे तो तुम्हें लगेगा कि यह तो सब एक तरह का स्वप्न-जाल है। बुद्धि से सोचने पर निश्चित ही भक्ति स्वप्न-जाल लगेगी। लेकिन बुद्धि से सोचने पर तो प्रेम भी स्वप्न-जाल है। और बुद्धि से सोचने पर तो जीवन में जो भी रसपूर्ण है, सभी स्वप्न-जाल है। बुद्धि से सोचने पर तो तुम्हारा जीवन रूखा-रूखा हो जाएगा, पथरीला हो जाएगा, मरुस्थल हो जाएगा, मरूद्यान बिलकुल न बचेगा। क्योंकि सब मरूद्यान बुद्धि के हिसाब से सपने हैं, कल्पनाएं हैं।

सारी दुनिया में विचारशील लोगों को यह प्रश्न निरंतर उठता रहता है कि जीवन का अर्थ क्या है? और प्रश्न का कोई उत्तर भी मिलता नहीं। क्योंकि जीवन में जो भी अर्थ है वह हृदय से आता है, बुद्धि से नहीं। और हृदय स्वप्न की भाषा समझता है, गणित की भाषा नहीं। हृदय काव्य को समझता है, प्रेम को समझता है, सौंदर्य को समझता है। हृदय का ढंग ही और है, उसका जगत ही और है।

तो भक्ति तो हृदय का जगत है। अगर भक्त से पूछोगे तो बात कुछ और है। भक्त कहेगा--

राहें नहीं, क्षितिज धुंधलाया है
जितने भी थे लक्ष्य
व्यर्थ हो गए सभी
शब्दों का क्या दोष,
अर्थ खो गए सभी
सपने शायद घर पहुंचा देते
हमको सत्यों ने भटकाया है।
सपने शायद घर पहुंचा देते
हमको सत्यों ने भटकाया है।

सिद्धांत, तर्क, गणित...अगर भक्त से पूछोगे तो वह कहेगा, इन्हीं ने भटका दिया है आदमी को, अन्यथा आदमी एक रस का झरना होता; अन्यथा आदमी एक गीत का झरना होता; अन्यथा आदमी नाचता, प्रफुल्लित होता; उसके जीवन में उत्सव होता, परमात्मा होता।

सब कोलाहल सो जाने के बाद
जो शब्द जागता है।
सुनना हो तो उसे सुनो।
एक मृदुल संगीत उभर धीरे-धीरे

सारे सन्नाटे पर यों छा जाता है
जैसे किसी झील के निर्मल दर्पण में
एक जादुई नीलापन थर्राता है
सब सत्यों के खो जाने के बाद
जो स्वप्न जागता है
बुनना हो तो उसे बुनो।
हर जुलूस कुछ नारों का अनुगामी है
भीड़ों का कोई व्यक्तित्व नहीं होता
सबसे अधिक सुनी जाती हैं अफवाहें
बहुमत में सच का अस्तित्व नहीं होता
सब ज्वारों के ढल जाने के बाद
जो बच जाता है कूल पर
चुनना हो तो उसे चुनो।
शिल्पकार, इतना न तराशो प्रतिमा को
परिष्कार से सहज रूप मर जाता है
यह अरूप अनमना उदास अधूरापन
कृतियों का यौवन अनंत कर जाता है
है भविष्य उसका ही जो कि अपूर्ण है
उसका हर क्षण एक नया संवेदन है
गुनना हो तो उसे गुनो।
सब सत्यों के खो जाने के बाद
जो स्वप्न जागता है
बुनना हो तो उसे बुनो।
हर जुलूस कुछ नारों का अनुगामी है
भीड़ों का कोई व्यक्तित्व नहीं होता
सबसे अधिक सुनी जाती हैं अफवाहें
बहुमत में सच का अस्तित्व नहीं होता
सब ज्वारों के ढल जाने के बाद
जो बच जाता है कूल पर
चुनना हो तो उसे चुनो।
शिल्पकार, इतना न तराशो प्रतिमा को
परिष्कार से सहज रूप मर जाता है
यह अरूप अनमना उदास अधूरापन
कृतियों का यौवन अनंत कर जाता है

है भविष्य उसका ही जो कि अपूर्ण है
उसका हर क्षण एक नया संवेदन है
गुनना हो तो उसे गुनो।
सब सत्यों के खो जाने के बाद
जो स्वप्न जागता है
बुनना हो तो उसे बुनो।

भक्ति बुद्धि की भाषा में स्वप्न है और हृदय की भाषा में वही सत्य है, सत्यतर, सत्यतम। उससे ज्यादा सत्य और कुछ भी नहीं है।

अब यह तुम्हें निर्णय करना है कि तुम किस ढंग के आदमी हो। अगर बुद्धि के ढंग के आदमी हो तो भक्ति तुम्हें न रुचेगी। जो न रुचे उसकी फिक्र न करो। तुम्हारे लिए रास्ता और है फिर। तुम फिर ज्ञान और ध्यान के मार्ग से चलो। तुम फिर बुद्धि के ही परिष्कार से चलो। लेकिन अगर तुम्हें भक्ति का मार्ग जंचता हो, रुचता हो, हृदय प्रफुल्लित होता हो सुन कर भक्तों की बातें, भक्ति की बात सुन कर दिल डांवाडोल होता हो, तो फिर तुम छोड़ो फिक्र कि बुद्धि क्या कहती है। फिर बुद्धि की सुनना बंद करो।

सब सत्यों के खो जाने के बाद
जो स्वप्न जागता है
बुनना है तो उसे बुनो।

फिर तुम छोड़ दो सिद्धांत, सत्य इत्यादि की बातें; फिर तो तुम भक्ति के इस रस को बुनो। और तुम पाओगे कि स्वप्न से भी आदमी परमात्मा तक पहुंच जाता है। लेकिन परमात्मा का स्वप्न देखना सीखना होगा।

स्वप्न भी शक्ति है। जैसे तर्क एक शक्ति है, वैसे ही स्वप्न एक शक्ति है। तर्क विज्ञान का आधार है; स्वप्न भक्ति का। तर्क योग का आधार है; स्वप्न प्रेम का। ये दो ही उपाय हैं। या तो कल्पना को इतना फैलाओ कि तुम्हारी कल्पना परमात्मा को देखने में समर्थ हो जाए। या फिर कल्पना को इस तरह विसर्जित करो कि कल्पना बिलकुल खो जाए; और जो है, वह नग्न तुम्हारे सामने प्रगट हो जाए।

बुद्धि से चलोगे तो सत्य का अनुभव होगा; और भक्ति से चलोगे तो प्रभु का, प्यारे का। है एक ही; ज्ञानी उसे सत्य कहते हैं, भक्त उसे प्रभु कहते हैं। अब यह तुम्हारी मर्जी। और मुझे लगता है, भक्त ज्यादा रस पाते हैं, क्योंकि सत्य को प्यारा बना लेते हैं, सत्य को प्रीतम बना लेते हैं। सत्य फिर गणित का हिसाब नहीं रह जाता; दो और दो चार जैसा नहीं रह जाता। सत्य ऐसा हो जाता है जैसे तुम्हारा बेटा। सत्य ऐसा हो जाता है जैसे तुम्हारी प्रेयसी। सत्य ऐसा हो जाता है जैसा तुम्हारा प्रेमी। सत्य प्रेम में पग जाता है।

अगर तुम्हारा हृदय आंदोलित होता है, तरंगित होता है, प्रभु की प्रशंसा में गाए गए भक्तों के गीत सुन कर तो डरो मत।

फिर कोई चेहरा बस गया निगाहों में

खोए हुए क्षितिज फिर उभरे
अस्तमान सूरज फिर उभरे
फिर रेशम बिछ गया कंटीली राहों में
जब से देखी हैं वे आंखें
उग आई हैं कंधों पर पांखें
फिर सपने उड़ चले अदेखी चाहों में
जहां-जहां भी छुआ गया हूं
वहां-वहां हो गया नया हूं
फिर कोई कस गया जादुई बांहों में
फिर कोई चेहरा बस गया निगाहों में

अगर परमात्मा का चेहरा बसता हो निगाहों में और तुम्हें अनुकूल आता हो तो डरो मत। चुनना तो पड़ेगा ही--या तो हृदय या बुद्धि।

पथराई यादों को सरका
इधर-उधर को पलभर तिलभर
अरे उगा है
सपन उगा है
दिवसों-दिवसों बाद उगा है
चांद उगा है।

...उगने दो। अगर प्रभु का सपना उगता है तो सपना कह कर निंदा मत करो। सपने भी प्यारे हैं।

ऐसा समझो, सपने भी सच हो जाते हैं अगर तुम अपना पूरा प्राण उन में उंडेल दो। और सच भी झूठे रह जाते हैं अगर उधार और बासे हों; अगर दूसरे के हो; अगर तुमने पूरा प्राण उनमें न उंडेला हो।

संसार तो रेत है

छठवां प्रश्नः इस प्रवचनमाला का शीर्षक "जगत तरैया भोर की' वैराग्य-रूप और संसार-निषेधक लगता है। कृपया समझाएं कि रस, मस्ती और सर्व-स्वीकार के प्रेम-पथ पर यह निषेध क्यों है?

लगा होगा तुम्हें, है नहीं निषेध। "जगत तरैया भरे की', इसमें संसार का विरोध नहीं है। इसमें संसार को त्यागने का भी कोई उपदेश नहीं है। इसमें केवल संसार के तथ्य की घोषणा है। न विधेय है, न निषेध है। "जगततरैया भोर की', इसमें कोई निंदा नहीं है। ये प्यारे शब्द निंदा के हो भी नहीं सकते। इसमें सिर्फ इतना ही कहा है कि ऐसा जगत है, जैसे सुबह का तारा--अभी है, अभी गया। यह तो सत्य है, निंदा कहां! अगर कोई पानी के बबूले को कहे कि यह बबूला है, अभी है और अभी मिट जाएगा, तो क्या तुम कहोगे कि इसमें निषेध हो गया? अगर कोई आदमी को कहे कि तुम अभी हो और अभी मौत आ जाएगी,

तो क्या कुछ निषेध हो गया? क्षणभंगुर को क्षणभंगुर कहने में निषेध है? सिर्फ तथ्य का स्वीकार है। जगत ऐसा ही तो है।

लेकिन आदमी अपने-अपने ढंग से समझते हैं।

पूछा है योग चिन्मय ने। योग चिन्मय के मन में निषेध की वृत्ति है, तो कहीं से भी निषेध के लिए कोई सहारा मिल जाए तो छोड़ते नहीं, पकड़ लेते हैं। पुराने ढब का हिसाब है--संसार का निषेध! तो उन्हें लगा होगा: "जगत तरैया भोर की', यह मौका ठीक है! सो दया भी ऐसा ही कहती है!

लेकिन नहीं, दया ऐसा नहीं कह रही। दया सिर्फ इतना कह रही है कि ऐसा है।

एक दिन मैंने मुल्ला नसरुद्दीन को टोकरी भर मछलियां ले जाते देखा। नदी की तरफ से आ रहा है टोकरी भर मछलियां लिए। पूछा मैंने: "बड़े मियां, कहां से पकड़ लाए?' मुल्ला बोला, "एक गजब की जगह मिल गई है और किसी सज्जन ने मार्गदर्शन की दृष्टि से जगह-जगह तख्तियां भी लगा दी हैं सो भूलने का भी उपाय नहीं है। बस नदी के किनारे एक झील नीचे की ओर चल कर एक तख्ती लगी है जिस पर लिखा है अंग्रेजी-हिंदी दोनों में: "प्राइवेट; निजी प्रवेश निषिद्ध; ऐन्ट्रेस प्राहिबिटिड'। थोड़ी दूर चलने पर दूसरी तख्ती आती है, जिस पर लिखा है; "ट्रेसपासर्स विल बी प्रासीक्यूटिड; जो इसके आगे जाएगा उस पर मुकदमा चलेगा'। बस फिर थोड़ी दूर और चलिए और तीसरी तख्ती आती है, "फिशिंग नॉट अलाउड; मछली मारने की सख्त मनाही है।' और यही वह स्थान है।

इनको वे कह रहे हैं कि किसी सज्जन ने मार्गदर्शन की दृष्टि से तख्तियां भी लगा दी हैं!

आदमी अपने हिसाब से अपने मतलब के अर्थ निकाल लेता है। हम वही सुनते हैं जो हम सुनना चाहते हैं जगत तो है ही तरैया भोर की। इसमें निषेध कुछ भी नहीं है। इसमें सिर्फ निवेदन है कि ऐसा है। इसको शाश्वत मत मान लेना, क्योंकि यह शाश्वत नहीं है। मान कर भी यह शाश्वत होगा नहीं। यह आया और गया। यह पानी पर खींची लकीर है। इसलिए अगर इसे शाश्वत मान कर रुके रहे तो दुख ही दुख पाओगे। अगर शाश्वत की आकांक्षा हो तो शाश्वत इसमें मत खोजना। शाश्वत कहीं और है, कहीं छिपा है, कहीं इसके पार है। और इससे नजर उठेगी तो ही शाश्वत पर लगेगी।

तो जब हम कहते हैं कि "जगत तरैया भोर की' तो इसका इतना ही अर्थ है कि कहीं ध्रुवतारा भी है। मगर तुम इसमें भी मत उलझे रह जाना, नहीं तो ध्रुवतारा से वंचित रह जाओगे। आंखें इसी में गड़ी रह गई तो ध्रुवतारा को कौन आंखें देखेंगी? इतना जान ले कर कि यह शाश्वत नहीं है, तुम्हारा मन अचानक इससे उठने लगेगा, हटने लगेगा, पार जाने लगेगा। क्योंकि प्राणों की आकांक्षा है शाश्वत के लिए, नित्य के लिए--जो सदा रहे। हम उसी को खोज रहे हैं जो सदा रहे। जो अभी है और कल चला जाएगा, खोजने में समय ही व्यर्थ होगा, शक्ति ही व्यर्थ होगी।

भक्ति का मार्ग रस और मस्ती का ही मार्ग है। निषेध वहां कहां! लेकिन अगर हम किसी से कहें, कोई आदमी रेत में से तेल निचोड़ रहा हो और हम उसको कहें, "पागल, रेत में तेल

नहीं है, अगर तेल निचोड़ना है तो तिल खोज,' हम तेल निचोड़ने की मनाही नहीं कर रहे हैं, खयाल रखना। अगर तुम मुझे मिल जाओ और रेत में से तेल निचोड़ते और रेत को कोल्हू में पेलते, तो मैं तुमसे कहूं कि--"महाराज, तेल निचोड़ने की आकांक्षा बिलकुल ठीक है, जरूर निचोड़ें, मगर तिल खोजें; यह रेत है, इससे तेल निकलेगा नहीं, और कहीं कोल्हू खराब न हो जाए'--तो मैं कोई निषेध थोड़े ही कर रहा हूं; इतना ही कह रहा हूं कि रेत में तेल नहीं है। तेल जरूर है--तिल खोज लें। रस और मस्ती है, लेकिन भगवान के साथ, संसार के साथ नहीं।

संसार तो रेत है। जन्मों-जन्मों से तुम कोल्हू पेल रहे हो, कुछ निकला नहीं, मगर पेले चले जा रहे हो। आदत बन गई है। अब कुछ और करने को सूझता ही नहीं तो फिर पेले चले जाते हो।

मैं मोक्ष की मदिरा का व्यापारी

आखिरी प्रश्न: आपकी बातों में नशा है, इससे मैं डरता हूं।

नशा तो है, लेकिन बातों में तो कुछ भी नहीं है, थोड़ी नशे की झलक है। अगर बातों से ही डर गए तो असली नशे से वंचित रह जाओगे, क्योंकि असली नशा तो अनुभव में है। अगर मेरी बातों में कुछ नशा है तो सिर्फ इसीलिए कि भीतर की शराब में से डूब कर आ रहे हैं ये शब्द, तो थोड़ी सी खबर लाते हैं, थोड़ा तुम्हें भी डांवाडोल कर जाते हैं।

मैं तो शराब का प्रशंसक हूं। शराब का व्यापारी!

और डर भी तुम्हारा मैं समझता हूं, क्योंकि तुम्हें भय है कि यह शराब ऐसी है कि तुम्हारा अहंकार इसमें डूब जाएगा, तुम इसमें खो जाओगे। और तुम खोने से डरते हो।

एक मित्र ने पूछा है:

खा रहा गोते हूं मैं भवसिंधु के मझधार में

आसरा है दूसरा कोई न अब संसार में

पाप-बोझे से लदी नैया भंवर में आ रही

नाथ दौड़ो, अब बचाओ, जल्द डूबी जा रही।

तुम गलत आदमी के पास आ गए; यहां तो डुबाने का ही धंधा है। अगर थोड़ी देर हो रही होगी डूबने में तो हम जल्दी करेंगे और जल्दी से डुबा देंगे। क्योंकि जो डूब गया वह उबर गया। जो डूब गया वह पहुंच गया। मझधार में डूब कर ही किनारा मिलता है। यहां तो डूबने की ही बात चल रही है। यहां तो तुम्हें फुसलाने का काम चल रहा है कि किसी तरह तुम भी शराबी हो जाओ।

मुल्ला नसरुद्दीन शराब की प्रशंसा में एक दिन मुझसे कह रहा था--दूसरी शराब की प्रशंसा में; नकली शराब की प्रशंसा में मुझसे कह रहा था कि "आदमी ही नहीं साहब, जानवर भी शराब के कायल हैं।' मैंने पूछा: "तुम्हारा मतलब?' तो उसने कहा: "एक दिन मैं मछलियां मारने गया तो कांटे पर लगाने के लिए आटा ले जाना भूल गया। केंचुए खोजे कि चलो उन्हीं को कांटे पर लगा दूं तो केंचुए भी न मिले। तभी एक सांप मुंह में एक मेंढक को दबाए मिल

गया। तो मैंने झट सांप के मुंह से मेंढक छीन लिया और मेंढक के टुकड़े काट-काट कर उनसे ही मछलियां पकड़ने का काम लिया। लेकिन फिर मुझे सांप पर थोड़ी दया आई कि बेचारा, इसका भोजन मैंने छीन लिया। कुछ और उपाय न देख कर परिपूर्ति की दृष्टि से मैंने अपनी बोतल झोली से निकाली और शराब की चार बूंदें उसके मुंह में डाल दी। और उसका आनंद-भाव देखने जैसा था! और उसने जैसा सिर हिलाया और जैसे मस्ती से आंखें उठाईं और जैसा डोला...।

फिर मुल्ला ने कहा कि मैं उसे भूल गया, मछलियां पकड़ने में लगा रहा। कोई घंटे भर बाद मुझे लगा कि कोई चीज मेरे जूते पर धीरे-धीरे चोट कर रही है। तो मैंने चौंक कर नीचे देखाः वही सांप दो मेंढक मुंह में दबाए जूते पर चोट कर रहा था। वह यह कह रहा है कि अब फिर हो जाए।

तो यह तो नकली शराब की बात है, इधर असली शराब की चर्चा हो रही है।

भयभीत होना भी स्वाभाविक है, क्योंकि एक ढंग से तुम जी रहे हो, मैं सब गड़बड़ कर दूंगा। तुमने एक तरह का संसार बसा रखा है, मैं सब अस्तव्यस्त कर दूंगा। लेकिन तुमसे मैं कहना चाहता हूं कि तुमने जो बसा रखा है--जगत तरैया भोर की! तुम बसाने का खयाल ही कर रहे हो, बसा कुछ भी नहीं है। और मैं जिस तरफ इशारा कर रहा हूं, वह ध्रुवतारा है। अगर तुम्हारे जीवन में उसकी किरण आ गई तो शाश्वत से तुम्हारा संबंध जुड़ सकता है। और शाश्वत से जब तक संबंध न जुड़ जाए, संतुष्ट मत होना। परमात्मा से कम पर राजी मत होना। मोक्ष की मदिरा जब तक न ढले, तब तक खोज जारी रहे। जारी रखनी ही होगी। उसके पहले तो रुक गए वे मंजिल पाए बिना रुक गए, उन्होंने कुछ बीच के पड़ाव को घर बना लिया। वे दुखी होंगे, परेशान होंगे। वे ही संसारी लोग हैं ।

यहां तो कोशिश है तुम सभी को संन्यासी बना डालने की; तुम सबको शराबी बना डालने की। जिस दिन तुम भी उठोगे, गिरोगे; कहीं रखोगे पैर, कहीं पड़ेगा; हंसोगे, रोओगे, गाओगे, प्रभु का गुणगान करोगे--उस दिन तुम्हारे जीवन का फूल, जो अभी नहीं खिला, खिलेगा। तुम्हारा कमल सारी पंखुरियों को खोलेगा। और तुम्हारी सुगंध हवाओं में मुक्त हो जाएगी। वही मोक्ष है। और वही मोक्ष आनंद है। उसके अतिरिक्त सब दुख है, सब पीड़ा है, सब संताप है।

हिम्मत करो, साहस करो। यह शराब चूक जाने जैसी नहीं है।

आज इतना ही।